Development of Learner and Teaching Learning Process

DEDU402

LOVELY
PROFESSIONAL
UNIVERSITY

अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया

DEVELOPMENT OF LEARNER AND TEACHING LEARNING PROCESS

Copyright © 2012 Laxmi Publications (P) Ltd.
All rights reserved

Produced & Printed by
LAXMI PUBLICATIONS (P) LTD.
113, Golden House, Daryaganj,
New Delhi-110002
for
Lovely Professional University
Phagwara

पाठ्यक्रम (SYLLABUS)

अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया
(Development of Learner and Teaching Learning Process)

उद्देश्य

- मानव विकास के विभिन्न चरणों के दौरान आए विविध परिवर्तनों से जुड़े ज्ञान को प्राप्त करना।
- मनोविज्ञान की विभिन्न अवधारणाओं के शैक्षिक प्रभाव से उन्हें अवगत कराना।
- अधिगम की प्रकृति और प्रक्रिया को समझना और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के उत्तरदायी कारकों को जानना।

Objectives

- To acquire knowledge about the diverse changes during various stages of human development.
- To acquaint themselves with the educational implications of various concepts of Psychology.
- To understand the nature and process of learning and the factors responsible for teaching-learning process.

Sr. No.	Content
1	Psychology: Meaning, nature, branches and schools of Psychology; Educational Psychology: Meaning, nature and scope; Methods of Educational Psychology: Observation, Experimental, Case Study.
2	Growth and development –Meaning and Principles; Stage specific development: Infancy, childhood and Adolescence; Learning: Meaning, Nature and Process; Nature of teaching and learning, factors affecting teaching-learning process
3	Theories of learning: Thorndike's theory of learning and its educational implications, Pavlov's classical conditioning and its educational implications, Skinner's operant conditioning theory and its educational implications, Insightful learning theory and its educational implications.
4	Transfer of learning: meaning, types and strategies to achieve maximum positive transfer of Learning; Motivation: Meaning, types and techniques of motivating learner.
5	Intelligence: Meaning, nature and types, Measurement of Intelligence, Theories of Intelligence: Unifactor, Two factor, multifactor theory, SOI and their educational implications
6	Memory: meaning, types, factors influencing memory;Forgetting: Meaning, types and theories of forgetting; the trace decay theory, interface theory and repression theory
7	Individual differences: Meaning, types and their educational implications, Factors influencing individual differences, Personality: Meaning, nature types of Personality, Assessment of personality; Creativity: Meaning, concept and measurement;
8	Mental health: Meaning, definition, factors influencing mental health. Stress: Meaning,
	Types of stress and stress management strategies. Anxiety: Meaning, types & causes.
9	Adjustment: Concept, types and mechanism of adjustment; Adolescence: characteristics, problems, needs & aspirations; Behavioural problems: Concepts, some common behavioural problem of students, their preventive and remedial measures.

10	Attitude: Concept, factors influencing formation of attitude and measurement of attitude; Aptitude: Meaning, nature, classification and measurement of Aptitude; Psychology of thinking, reasoning and problem solving: meaning, nature and factors affecting thinking, reasoning and problem solving.

विषय-सूची

इकाई (Units) | (CONTENTS) | पृष्ठ संख्या (Page No.)

1. मनोविज्ञान के स्वरूप, शाखाएँ एवं संप्रदाय (Nature, Branches and Schools of Psychology) 1
2. शिक्षा मनोविज्ञान : अर्थ, प्रकृति एवं विषय–क्षेत्र (Educational Psychology: Meaning, Nature and Scope) 21
3. शिक्षा–मनोविज्ञान की अध्ययन विधियाँ (Methods of Educational Psychology) 32
4. अभिवृद्धि एवं विकास का सामान्य स्वरूप (The General Nature of Growth and Development) 43
5. विकास की अवस्थाएँ (Stages of Development) 50
6. अधिगम (Learning) 74
7. शिक्षण सिद्धान्त की प्रकृति (Nature of Teaching Theory) 85
8. अधिगम के सिद्धांत : थॉर्नडाइक का अधिगम सिद्धांत एवं उसके शैक्षिक निहितार्थ (Theories of Learning: Thorndike's Theory of Learning and its Educational Implications) 94
9. पावलोव का अनुकूलित प्रत्यावर्तन सिद्धांत एवं उसके शैक्षिक निहितार्थ (Povlov's Conditioned Theory and its Educational Implications) 107
10. स्किनर का सक्रिय अनुकूलन सिद्धांत (Skinner's Operant Conditioning Theory) 116
11. कोहलर का सूझ सिद्धांत (Kohler's Insight Theory) 126
12. प्रशिक्षण या अधिगम का स्थानान्तरण (Transfer of Training or Learning) 135
13. अधिगम में अभिप्रेरणा (Motivation in Learning) 144
14. बुद्धि का स्वरूप और सिद्धांत (Nature and Theories of Intelligence) 154
15. बुद्धि–परीक्षण (Intelligence-Tests) 162
16. बुद्धि के सिद्धांत (Theories of Intelligence) 177
17. स्मृति (Memory) 187
18. विस्मृति (Forgetting) 195
19. व्यक्तित्व का स्वरूप, प्रकार एवं विकास (Nature, Type and Development of Personality) 206
20. व्यक्तित्व मापन (Measurement of Personality) 216
21. सृजनात्मकता (Creativity) 224
22. अभिवृत्ति (Attitude) 237
23. अभिक्षमता (Aptitude) 283
24. वैयक्तिक भिन्नता (Individual Differences) 291
25. मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health) 302
26. तनाव या प्रतिबल का अर्थ एवं विशेषताएँ (Meaning and Characteristics of Stress) 309
27. दुश्चिंता (Anxiety) 338
28. समायोजन (Adjustment) 348
29. किशोरावस्था (Adolescence) 360
30. व्यावहारिक समस्याएँ (Behavioural Problems) 374
31. चिन्तन, तर्क व समस्या–समाधान (Thinking, Reasoning and Problem-Solving) 381

नोट

इकाई 1: मनोविज्ञान के स्वरूप, शाखाएँ एवं संप्रदाय (Nature, Branches and Schools of Psychology)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

1.1 मनोविज्ञान का अर्थ (Meaning of Psychology)

1.2 मनोविज्ञान के क्षेत्र और विधियाँ (The Scope and Methods of Psychology)

1.3 मनोविज्ञान एक विज्ञान (Psychology is a Science)

1.4 मनोविज्ञान की शाखाएँ (Branches of Psychology)

1.5 सारांश (Summary)

1.6 शब्दकोश (Keywords)

1.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- मनोविज्ञान का अर्थ, क्षेत्र एवं उसकी विधियों को समझने में।
- मनोविज्ञान एक विज्ञान है–यह जानने में।
- मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओं के विषय में जानकारी प्राप्त करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

मनोविज्ञान समूचे मानव-व्यवहार का अध्ययन है। मनुष्य के भीतर घटने वाली मानसिक घटनाओं का सूक्ष्म से सूक्ष्म अध्ययन मनोविज्ञान के अध्ययन का आधार है। मानव-व्यवहार स्वाभाविक एवं अर्जित दोनों प्रकार का होता है अत: इन दोनों का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से मनोविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। इस रूप में वह पशु-व्यवहार का भी अध्ययन करता है ताकि मानव-व्यवहार से उसकी तुलना कर अपने निष्कर्षों को अधिक सफल रूप में प्राप्त कर सके। इन सभी के अध्ययन हेतु उसने विभिन्न अध्ययन-क्षेत्र एवं पद्धतियाँ विकसित की हैं।

1.1 मनोविज्ञान का अर्थ (Meaning of Psychology)

'मनोविज्ञान' पद का अंग्रेजी रूपांतर 'Psychology' दो ग्रीक शब्दों के मिलने से बना है– 'Psyche' तथा 'logos'। 'Psyche' का अर्थ है आत्मा (soul) तथा 'logos' का अर्थ है अध्ययन या विवेचन। इस शाब्दिक अर्थ के अनुसार

नोट

मनोविज्ञान का अर्थ हुआ आत्मा के संबंध में अध्ययन करने वाला एक विषय। प्राचीन दार्शनिकों जिनमें अरस्तू (Aristotle) तथा प्लेटो (Plato) का नाम अधिक मशहूर है, इसी शाब्दिक अर्थ को ध्यान में रखते हुए मनोविज्ञान को आत्मा के बारे में अध्ययन करनेवाला विषय माना था। परंतु प्राचीन दार्शनिकों द्वारा दी गई यह परिभाषा अब मात्र एक ऐतिहासिक परिभाषा बनकर रह गई है।

17वीं शताब्दी तथा 18वीं शताब्दी के दार्शनिकों (Philosophers) ने, जिनमें लिबिनिट्ज (Leibnitz), हॉब्स (Hobbes), लॉक (Locke), कांट (Kant), ह्यूम (Hume) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 'Psyche' शब्द का अर्थ मन (Mind) बताया और कहा कि मनोविज्ञान की विषय-वस्तु मन है। फलत: मनोविज्ञान मन के अध्ययन का विज्ञान माना गया। मनोविज्ञान की यह परिभाषा करीब-करीब 1870 ई॰ तक सर्वमान्य रही और मनोविज्ञान, जो उस समय दर्शनशास्त्र (Philosophy) की एक शाखा थी, की विषय-वस्तु मन (mind) बनी रही।

इन दार्शनिक परिभाषाओं में मुख्यत: दो तरह के दोष पाए गए। पहला, आत्मा (Soul) या मन (Mind)। मन एक ऐसी अमूर्त (Abstract) वस्तु है जिसे देखा या सुना नहीं जा सकता। फलत: इसका अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से सम्भव नहीं है और न इसपर कोई प्रयोग ही किया जा सकता है। दूसरा, मनोविज्ञान को मन या आत्मा का विज्ञान मान लेने से उसकी विषय-वस्तु अस्पष्ट ही बनी रहती है, क्योंकि इन शब्दों का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है और मनोविज्ञान में यह किस अर्थ में प्रयुक्त होता है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मनोविज्ञान पहले दर्शनशास्त्र (Philosophy) की एक शाखा था और 1879 ई॰ में जब विलियम वुण्ट (Wilhelm Wundt) ने जर्मनी के लिपजिग विश्वविद्यालय (अब इसका नाम कार्ल मार्क्स विश्वविद्यालय कर दिया गया है) में मनोविज्ञान की सबसे पहली प्रयोगशाला स्थापित की, उस समय से मनोविज्ञान का संबंध दर्शनशास्त्र से धीरे-धीरे कम होता गया और इसका स्वरूप प्रयोगात्मक अधिक होता गया। फलस्वरूप मनोविज्ञान की विषय-वस्तु मन या आत्मा से हटकर मानसिक क्रियाएँ (Mental Activities) या चेतन अनुभूति (Conscious Experience) हो गई। इस परिभाषा को माननेवाले मनोवैज्ञानिकों को संरचनावादी (Structuralists) कहा गया। जिसमें विलियम वुण्ट तथा टिचेनर (Titchener) प्रमुख थे। इन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनोविज्ञान चेतन अनुभूति या तात्कालिक अनुभूति (Immediate Experience) के अध्ययन का विज्ञान है। चेतन अनुभूति या तात्कालिक अनुभूति का अर्थ यहाँ संवेदना (Sensation), कल्पना (Imagination), प्रतिमा (Image), भाव (Feeling) आदि मानसिक क्रियाओं से है। वुण्ट के अनुसार संवेदना (Sensation) चेतन अनुभूति के वस्तुनिष्ठ तत्व (Objective element) तथा भाव चेतन अनुभूति के आत्मनिष्ठ तत्व (Subjective Element) कहे जाते थे। लेकिन, संरचनावादियों की इस परिभाषा में अनेक दोष पाए गए। सबसे प्रमुख दोष यह बताया गया कि चूँकि चेतन अनुभूति का वस्तुनिष्ठ ढंग से अध्ययन नहीं किया जा सकता है, अत: इस परिभाषा से मनोविज्ञान के प्रयोगात्मक स्वरूप की व्याख्या नहीं हो पाती है। इस परिभाषा में मात्र चेतन अनुभूति के अध्ययन पर बल डाला गया है, परंतु व्यक्ति के सभी अनुभव चेतन नहीं होते, बल्कि अधिकांश अनुभव अचेतन होते है। इस परिभाषा से तब यह बिलकुल स्पष्ट नहीं होता है कि मनोविज्ञान मन की सभी अवस्थाओं का अध्ययन करता है या नहीं।

संरचनावादियों की परिभाषा में त्रुटि पाए जाने पर मनोविज्ञान की दूसरी परिभाषा दी गई जो व्यवहारवादियों (Behaviourists) की थी। व्यवहारवादियों में जे॰ बी॰ वाटसन (J. B. Watson) का नाम प्रमुख है। इन लोगों ने मनोविज्ञान को व्यवहार का एक वस्तुपरक विज्ञान (Positive Science of Behaviour) माना है। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि इसमें चेतन अनुभूति (Conscious Experience) को मनोविज्ञान की विषय-वस्तु से अलग कर दिया गया तथा उसकी जगह व्यवहार (behaviour) को रखा गया जिसका स्वरूप अधिक वस्तुनिष्ठ (Objective) था, क्योंकि इसे देखा या सुना जा सकता है। दौड़ना, रोना, हँसना, सोचना आदि व्यवहार के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं। इस परिभाषा में मनोविज्ञान को एक वस्तुपरक विज्ञान (Positive Science) माना गया, क्योंकि इसमें व्यवहार से संबद्ध तीन पक्षों–क्या (What), क्यों (Why), तथा कैसे (How) का अध्ययन किया जाता है। इस परिभाषा का

नोट

प्रमुख दोष यह बताया गया कि मात्र व्यवहार का अपने-आपमें कोई अर्थ नहीं होता। सचाई यह है कि किसी भी व्यवहार की व्याख्या हम अपनी अनुभूतियों के आधार पर ही करते हैं और तब उसका सही अर्थ निकलता है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान का जो अर्थ बताया है उसमें सच पूछा जाए तो उपर्यूक्त दोनों तरह की परिभाषाओं का संगम देखने को मिलता है। एटकिन्सन, एटकिन्सन, स्मिथ तथा हिलगार्ड (Atkinson, Atkinson, Smith & Hilgard) ने मनोविज्ञान को परिभाषित करते हुए कहा है, "मनोविज्ञान व्यवहार तथा मानसिक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।" परिभाषा से स्पष्ट है कि मनोविज्ञान में सिर्फ व्यवहार का ही अध्ययन नहीं किया जाता है, बल्कि उन मानसिक प्रक्रियाओं (Mental Processes) का भी अध्ययन किया जाता है जिन्हें बाहर से नहीं देखा जा सकता है और जिनके बारे में व्यवहारों के आधार पर अनुमान मात्र लगाया जाता है मॉर्गन, किंग, विस्ज तथा स्कॉपलर (Morgan, King, Weisz & Schopler) ने भी स्पष्ट किया है कि मनोविज्ञान मानव-व्यवहार तथा पशु-व्यवहार के अध्ययन का विज्ञान है। साथ-ही-साथ इन लोगों ने आगे स्पष्ट करते हुए यह कहा है कि मनोविज्ञान को व्यवहार का विज्ञान कहते समय मन (Mind) अर्थात आंतरिक मानसिक घटनाओं (Internal Mental Events) के अध्ययन को अलग नहीं किया जा रहा है, बल्कि उसी में इसे भी सम्मिलित किया जा रहा है। मॉर्गन, किंग, विज तथा स्कौपलर (Morgan, King, Weisz & Schopler, 1986) के शब्दों में, "जब हमलोग मनोविज्ञान को व्यवहार के विज्ञान के रूप में परिभाषित करते हैं, तो हमलोग मन को अलग नहीं कर देते हैं, हमलोग इतना ही कहते हैं कि जो व्यक्ति करता है, अर्थात् उसका व्यवहार ही वह मार्ग (Avenue) है जिसके सहारे आंतरिक मानसिक घटनाओं का अध्ययन किया जाता है।"

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है आधुनिक समय में मनोविज्ञान का अर्थ एक ऐसे विज्ञान से लिया जाता है जिसमें व्यवहारों एवं मानसिक प्रक्रियाओं (Mental Processes) दोनों का अध्ययन किया जाता है।

1.2. मनोविज्ञान के क्षेत्र और विधियाँ (The Scope and Methods of Psychology)

मनोविज्ञान का स्वरूप (The Nature of Psychology)

मनोविज्ञान विषय का महत्त्व मनोविज्ञान के स्वरूप को समझने पर ही पता चलता है। मनोविज्ञान के स्वरूप को समझने के लिए हमें जानना होगा कि मनोविज्ञान क्या है, मनोविज्ञान किस प्रकार का विज्ञान है, मनोविज्ञान की कौन-कौन-सी शाखाएँ हैं, मनोविज्ञान के उद्देश्य क्या हैं और इसकी समस्याएँ क्या हैं। मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य क्या है और मनोविज्ञान की मानव जगत को क्या-क्या देन है, इन बातों का अध्ययन करने से भी मनोविज्ञान के स्वरूप (The Nature of Psychology) को भली प्रकार समझा जा सकता है।

प्रारम्भ में शताब्दियों तक मनोविज्ञान दर्शनशास्त्र (Philosophy) का ही एक अंग बना रहा। गत पचास वर्षों में मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को एक स्वतंत्र विषय के रूप में प्रस्तुत करके विज्ञान (Science) का एक स्वरूप दिया। इसी कारण अब विश्वविद्यालयों में मनोविज्ञान के पृथक् विभाग खुल गये हैं और इसे स्वतंत्र विषय के रूप में पढ़ाया जाता है।

मनोविज्ञान का जो वर्तमान स्वरूप हमारे सामने है, प्रारम्भ में मनोविज्ञान का स्वरूप इससे भिन्न था। इसे शुरू-शुरू में आत्मा का शास्त्र (Science of Soul) माना जाता था। उस समय इस विषय का उद्देश्य आत्मा के सम्बन्ध में अन्वेषण (Investigation) करना और इसी सम्बन्ध में चिन्तन (Thinking) करना था। इस प्रकार मनोविज्ञान आध्यात्मवाद (Spiritualism) से सम्बन्धित था और दर्शनशास्त्र (Philosophy) का अंग था। सोलहवीं शताब्दी तक मनोविज्ञान आत्मा का विज्ञान बना रहा। लोग आत्मा (Soul) को प्रत्यक्ष रूप में न तो देख सके और न उसे परिभाषित कर सके, अत: इसे आत्मा का विज्ञान मानने में लोगों को आपत्ति होने लगी। इसमें परिवर्तन लाने की दृष्टि

नोट

से लोगों ने इसे मन (Mind) का विज्ञान कहना शुरू किया। परन्तु मन (Mind) का स्वरूप भी आत्मा (Soul) की भाँति निश्चित और परिभाषित नहीं किया जा सका। इसलिए मनोविज्ञान को मन का विज्ञान स्वीकार नहीं किया गया और मनोविज्ञान को अभी तक शुद्ध विज्ञान (Pure Science) जैसा स्थान नहीं मिल सका।

मनोविज्ञानिकों ने गहन अध्ययन करके देखा कि मनुष्य के व्यवहार में चेतना (Consciousness) का प्रभाव रहता है। अत: मनोविज्ञान को चेतना का विज्ञान (Science of Consciousnes) मान लिया गया, परन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों ने पाया कि व्यक्ति सभी व्यवहार चेतना के वशीभूत होकर नहीं करता, वह अचेतन (Unconsciousness) से भी व्यवहार करता है। इसलिए मनोविज्ञान को अचेतना का विज्ञान (Science of Unconsciousness) मान लिया गया, परन्तु आगे चलकर मनोविज्ञान की यह परिभाषा भी लोगों को मान्य न रही और मनोविज्ञान का स्वरूप बदलता चला गया।

अब मनोविज्ञान को मानव और पशु के व्यवहार का विज्ञान (Science of Human and Animal Behaviour) माना जाता है। मनोविज्ञान के अन्तर्गत मानव व्यवहार का अध्ययन करना ही लक्ष्य होता है, परन्तु इस अध्ययन का आधार पशु व्यवहार को भी बनाया जाता है। पहले मनोविज्ञान की सहायता से पशुओं के व्यवहार का प्रयोगात्मक अध्ययन (Experimental Study) कर लिया जाता है और बाद में मानव व्यवहार के साथ पशु व्यवहार की तुलना करके मानव का अध्ययन करने में सफलता प्राप्त कर ली जाती है। मानव व्यवहार स्वाभाविक (Natural) तथा अर्जित या अधिगमित (Acquired or learned) दो प्रकार का होता है। इन दोनों ही प्रकार के व्यवहारों का अध्ययन आधुनिक मनोविज्ञान में किया जाता है।

इस प्रकार मनोविज्ञान का स्वरूप आध्यात्मवाद (Spiritualism) से हटाकर मानव और पशु के व्यवहार पर केन्द्रित हुआ।

क्या आप जानते हैं अपने शुरुआती समय में मनोविज्ञान का अध्ययन दर्शनशास्त्र की एक शाखा के रूप में किया जाता था। सन् 1879 में विलियम वुंट ने जर्मनी के 'लिपजिग' विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान की पहली प्रयोगशाला स्थापित की और इसके साथ ही मनोविज्ञान धीरे-धीरे दर्शनशास्त्र से अलग हो गया।

1.3. मनोविज्ञान एक विज्ञान (Psychology is a Science)

मनोविज्ञान पशु और मानव के व्यवहार के अध्ययन का एक विज्ञान है। इसे अब एक पूर्ण विज्ञान का स्थान प्राप्त हो चुका है। जैसे शुद्ध विज्ञान (Pure Science) में प्रयोगों (Experiments) के आधार पर निश्चित सिद्धान्त और नियम निकाले जाते हैं, वैसे ही मनोविज्ञान में भी व्यवहार-सम्बन्धों नियमों और सिद्धान्तों का निरूपण कर लिया गया है। इन्हीं नियमों और सिद्धान्तों के आधार पर मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। इन्हीं के आधार पर व्यवहारों के कारणों की खोज कर ली जाती है और व्यवहार के भूत (Past) तथा भविष्य (Future) की सम्भावनाओं का पता भी लगा लिया जाता है। मनोविज्ञान कोरे चिन्तन (Thinking) का विषय नहीं है, इसमें तो प्रयोगात्मक (Experimental) जैसी वैज्ञानिक पद्धतियाँ अपनाकर प्रमाण जुटाये जाते हैं। मनुष्य अपने वातावरण (Environment) के उद्दीपकों (Stimulants) के प्रति जो अनुक्रियाएँ (Responses) दर्शाता है उन्हीं का अध्ययन मनोविज्ञान द्वारा किया जाता है, अत: हम कह सकते हैं, –"मनोविज्ञान मानव व्यवहार अथवा वातावरण में स्थित उद्दीपकों के प्रति मानव द्वारा दर्शायी गयी अनुक्रियाओं के अध्ययन का विज्ञान है।"

वास्तव में मनोविज्ञान मानव व्यवहार का विज्ञान है। इसे पदार्थ विज्ञान (Material Science) नहीं माना जा सकता। इसे प्राकृतिक विज्ञान (Natural Science) भी कहा जा सकता है। मनोविज्ञान (Psychology) और पदार्थ विज्ञान (Material Science) में एक विशेष और मौलिक अन्तर है। पदार्थ विज्ञान में पदार्थ पर सभी प्रकार का नियंत्रण

नोट

(Control) रखा जा सकता है, और प्रयोगशाला में मनोवांछिक परीक्षण करके सफलता प्राप्त की जा सकती है। इसके विपरीत मनोविज्ञान में पदार्थ के स्थान पर एक ऐसा मनुष्य विषय (Subject) होता है जिस पर पदार्थ की भाँति नियंत्रण नहीं रखा जा सकता। मानव-मस्तिष्क पर पूर्ण नियंत्रण रखना सम्भव नहीं होता। मस्तिष्क की दौड़ पर नियंत्रण नहीं हो पाता। वह न्यूयार्क की सोचता है तो क्षण भर में वह पीकिंग की सोचने लगता है। यदि किसी की बात सुनने में वह व्यस्त है तो त्तकाल ही मन में कोई और बात घूमने लगती है। इस प्रकार मानव मस्तिष्क पर पदार्थों की भाँति नियंत्रण सम्भव नहीं होता। यही कारण है कि मनोविज्ञान के प्रयोगों के फलस्वरूप जब मानसिक व्यवहार का अध्ययन किया जाता है या मस्तिष्क-सम्बन्धी नियम और सिद्धान्त निरूपित किये जाते हैं तो उनमें अनुमान (Inferences) और सम्भावनाएँ (Probabilities) अवश्य ही रहती हैं। इसलिए मनोविज्ञान भौतिक विज्ञान (Physics) तथा रसायन विज्ञान (Chemistry) की भाँति शुद्ध विज्ञान (Pure Science) नहीं है।

नोट्स

मनोविज्ञान के प्रयोगों के फलस्वरूप जब मानसिक व्यवहार का अध्ययन किया जाता है या मस्तिष्क संबंधी नियम और सिद्धांत निरूपति किए जाते हैं तो उनमें अनुमान या संभावनाएँ अवश्य रहती हैं। इसलिए मनोविज्ञान भौतिक विज्ञान एवं रसायन विज्ञान की भांति शुद्ध विज्ञान नहीं है।

पदार्थ विज्ञान और मनोविज्ञान में दूसरा अन्तर यह है कि पदार्थ विज्ञान में सार्वभौमिकता (Universality) पायी जाती है, जबकि मनोविज्ञान में वैयक्तिकता (Individualness) और वैयक्तिक (Individual Differences) रहते हैं। उदाहरण के लिए, जब मनोवैज्ञानिक मानव व्यवहार का प्रयोगशाला में अध्ययन करता है तब उसका विषय 'व्यक्ति-विशेष' का मस्तिष्क होता है जिससे उसके व्यवहार संचालित होते हैं। यदि इस व्यक्ति के स्थान पर दूसरा व्यक्ति परीक्षण या अध्ययन के लिए लाया जाए तो उस पर किया गया अध्ययन पहले के अध्ययन के समान नहीं होगा। इसी प्रकार यदि वैज्ञानिक हाथी पर प्रयोग करता है तो वह सभी मनुष्यों की हाथी के प्रति होने वाली प्रतिक्रियाएँ देखेगा और सामान्य नियम निकाल लेगा, परन्तु जब मनोवैज्ञानिक हाथी के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रिया का अध्ययन करेगा तब उसे व्यक्ति-व्यक्ति की पृथक्-पृथक् प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करना होगा। उनके आधार पर वह कोई सामान्य नियम नहीं निकाल सकेगा।

मनोविज्ञान प्राकृतिक विज्ञान की तीन प्रमुख विधियों–निरीक्षण (Observation), परीक्षण (Experimentation) और वर्णन (Description) को अपनाता है। इसलिए वह भी एक प्राकृतिक विज्ञान है। वह जब व्यक्ति या वस्तु-विशेष का अध्ययन करता है तो वह वैज्ञानिक विधियों का उपयोग करता है। मनोविज्ञान में दर्शनशास्त्र (Philosophy) नीतिशास्त्र या सौन्दर्यशास्त्र (Ethics or Aesthetics) की भाँति केवल सैद्धान्तिक आदर्शवाद की चर्चा नहीं होती।

1.4. मनोविज्ञान की शाखाएँ (Branches of Psychology)

उद्देश्यों को दृष्टि में रखते हुए मनोविज्ञान को दो प्रमुख शाखाओं में विभक्त किया जा सकता है–

(1) सामान्य मनोविज्ञान (Normal or General Psychology)

(2) असामान्य मनोविज्ञान (Abnormal Psychology)

सामान्य मनोविज्ञान में मनुष्य और पशु के सभी व्यवहारों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है, परन्तु असामान्य मनोविज्ञान (Abnormal Psychology) में मनुष्य की अस्वस्थ या असामान्य अवस्था का अध्ययन किया जाता है। ये दोनों शाखाएँ आगे चलकर अन्य प्रतिशाखाओं (Sub-branches) में बाँट दी गयी हैं। जैसे सामान्य मनोविज्ञान

नोट

को शुद्ध वैयक्तिक (Individual), सामूहिक (Group),सामाजिक (Social) और व्यावहारिक (Applied) आदि प्रतिशाखाओं में विभक्त कर दिया गया है। असामान्य (Abnormal) मनोविज्ञान को केवल वैयक्तिक (Individual) तथा सामूहिक (Group) मनोविज्ञानों में बांटा गया है। इन प्रतिशाखाओं के अतिरिक्त भी इनकी और प्रतिशाखाएँ निकली हैं जिनका यहाँ उल्लेख नहीं किया जा सकेगा।

व्यावहारिक मनोविज्ञान (Applied Psychology) से यही कार्य-क्षेत्र प्रभावित हुए हैं। जैसे व्यावहारिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत शिक्षा मनोविज्ञान (Educationl Psychology), औद्योगिक मनोविज्ञान (Industrial Psychology), धार्मिक मनोविज्ञान (Religious Psychology) आदि प्रशाखाएँ हैं। यहाँ हम शिक्षा मनोविज्ञान पर विचार करेंगे।

मनोविज्ञान की शिक्षा (Schools of Psychology)

शिक्षा और मनोविज्ञान में घनिष्ठ सम्बन्ध है, इस विषय पर पूर्व अध्यायों में प्रकाश डाला गया है। मनोविज्ञान द्वारा हमें मानव-मस्तिष्क का ज्ञान होता है, अत: शिक्षा से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध होना अनिवार्य है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यवहार की व्याख्या, मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न ढंग से की है। शिक्षा-मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक व्यावहारिक शाखा है। शिक्षार्थी के व्यवहार का विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन करने के लिए एक शिक्षक को मनोविज्ञान के क्रमिक विकास का ज्ञान होना आवश्यक है ताकि वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिए वह उसे प्रभावित करके व्यवहार में परिवर्तन और परिमार्जन कर सके। मनोविज्ञान के विकास और व्यवहार की व्याख्या में मनोवैज्ञानिकों में मतभेदों के फलस्वरूप ही सम्प्रदायों (Schools) की उत्पत्ति हुई। इन सम्प्रदायों ने केवल व्यवहार के स्वरूप की व्याख्या ही नहीं प्रस्तुत की, वरन् शिक्षा-मनोविज्ञान की धारणाओं, अध्ययन विधियों तथा क्षेत्र में भी ये परिवर्तन उत्पन्न किए।

मनोविज्ञान के सम्प्रदाय का अर्थ–यहाँ सम्प्रदाय का अर्थ मनोविज्ञान के क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों का संगठित समुदाय और उनके चिन्तन और विचार करने की विधि से है।

मनोवैज्ञानिक **वुडवर्थ** का विचार है- "हमारे लिए 'सम्प्रदाय' मनोवैज्ञानिकों का एक समूह है जो एक निश्चित विचार प्रणाली रखते हैं, जिससे सभी लोगों को उनके अनुसरण हेतु मार्ग-संकेत किया जाता है, यदि मनोविज्ञान को सदा के लिए सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक मूल्य वाला एक सही व उत्पादक विज्ञान बनाना है।"

" For us a 'School' is a group of psychologists who put forward a certain system of ideas designed to point the way that all must follow if psychology is everto be made a genuine productive service of both theoritical and practical value." **—R. S. Woodworth**

इस कथन से स्पष्ट है कि मनोविज्ञान का सम्प्रदाय मनोविज्ञान के क्षेत्र में सिद्धान्त निरूपण करने वालों का एक ऐसा संगठन है जो उसे वैज्ञानिक अध्ययन का स्वरूप प्रदान करते हैं।

बीसवीं शताब्दी में मनोवैज्ञानिकों ने जो प्रयोग किए, उसमें उन्होंने प्राणी के व्यवहार की अलग-अलग ढंग से व्याख्या की है। इसलिए मनोविज्ञान में विभिन्न मत के सम्प्रदाय उत्पन्न हो गये। इन सम्प्रदायों ने एक ही समस्या का समाधान, भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से किया। प्रत्येक सम्प्रदाय का अलग-अलग क्षेत्र और चिन्तन प्रणाली रही है। शिक्षा-मनोविज्ञान में शिक्षा की समस्याओं का उपयुक्त समाधान करने के लिए इन विचारधाराओं में समन्वय की आवश्यकता नहीं है। ये सम्प्रदाय अपने विशेष क्षेत्र से सम्बन्धित योगदान करके शिक्षा प्रक्रिया में सहायक हो सकते हैं।

शिक्षा-मनोविज्ञान का प्रमुख उद्देश्य बालक के सर्वांगीण विकास में सहायता प्रदान करना है। मनोविज्ञान के सम्प्रदाय मानव मन को अपने-अपने दृष्टिकोण से समझने का प्रत्यत्न करते हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय ने मानसिक समस्याओं का गहन अध्ययन किया है। कुछ सम्प्रदायों ने शिक्षा के क्षेत्र में सीखने की प्रक्रिया, बौद्धिक विकास और व्यक्तित्व-विकास आदि से सम्बन्धित विषयों का अन्वेषण कर शिक्षा प्रक्रिया को प्रभावित किया है। यहाँ मनोविज्ञान

नोट

के कुछ प्रमुख सम्प्रदायों का संक्षेप में विवेचन किया जायेगा। जिन प्रमुख सम्प्रदायों का प्रत्यक्ष प्रभाव शिक्षा तथा शिक्षा–मनोविज्ञान के क्षेत्र पर पड़ा है, उनका क्रमबद्ध वर्णन निम्नांकित है–

1. संरचनावाद (Structuralism)
2. प्रकार्यवाद (Functionalism)
3. व्यवहारवाद (Behaviourism)
4. मनोविश्लेषणवाद (Psychoanalysis)
5. अवयवीवाद (Gestalt School)
6. क्षेत्र सिद्धान्त (Field Theory)
7. पूर्णांगवाद (Holostic Psychology)
8. प्रयोजनवाद (Purposivism)

1. संरचनावाद (Structuralism)

मनोविज्ञान में संरचनावादी विचारधारा के प्रवर्तक **विलियम वुन्ट और टिचनर** (Wundt and Titchener) हैं। इन्होंने 1879 ई. में जर्मनी में **लिपज़िग** (Leipzig) नगर में सबसे पहली मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला की स्थापना की। इस प्रयोगशाला में मानसिक संरचना और क्रियाओं के प्रयोगात्मक अध्ययन का आरम्भ हुआ। संरचनावादियों के अनुसार मनुष्य की चेतना विभिन्न मानसिक क्षमताओं और क्रियाओं का योग है। इस विचारधारा में मन, चेतना; अनुभव आदि की संरचना क्या और किस प्रकार है, यह बताने का प्रयत्न किया जाता है। संरचनावादी सम्प्रदाय एक ऐसी मनोवैज्ञानिक चिन्तन प्रणाली है जिसका अध्ययन क्षेत्र और विषय प्राणी के चेतन अनुभव का स्वरूप होता है। इसका प्रमुख लक्ष्य वैज्ञानिक विधि से चेतन अनुभवों का अध्ययन करना है। मनोविज्ञान आन्तरिक अनुभवों का सर्वेक्षण करता है। इस विचार से कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इस सम्प्रदाय को 'अन्तर्दर्शनवाद' भी कहा है। यह अन्तर्दर्शन विधि पर आधारित है। इस विधि द्वारा चेतना के विभिन्न अंगों और अनुभवों का अध्ययन भली–भाँति किया जा सकता है।

संरचनावादी सम्प्रदाय की विशेषताएँ

1. ये अनुभव का आधार तंत्रिका तंत्र (Nervous System) को मानते हैं जो अनुभव प्राप्त करने में सहायता करता है। टिचनर के अनुसार व्यक्ति के अनुभवों की इकाई मानसिक त्तव है। अनुभव व्यक्ति की चेतन आन्तरिक संरचना है। चेतना किसी निश्चित समय में घटित होने वाली मानसिक क्रियाओं का योग है।
2. इसमें मन और चेतना के स्वरूप की जानकारी विश्लेषण द्वारा की जाती है। चेतना के तीन त्तव हैं– **संवेदन, प्रतिभा** और **भाव**। संवेदन का सम्बन्ध प्रत्यक्षीकरण से, प्रतिभा का सम्बन्ध विचारों से और भाव का सम्बन्ध संवेगों से होता है।
3. मन और शरीर दोनों का स्वतंत्र अस्तिव है और दोनों मिलकर मानसिक प्रक्रियाओं के घटित होने की व्यवस्था करते हैं।

संरचनावाद का शिक्षा में योगदान– इस विचारधारा का प्रभाव मनोविज्ञान पर ही नहीं शिक्षा पर भी पड़ा–

1. इस विचाधारा ने शिक्षा को मानसिक क्रिया और शिक्षा का उद्देश्य अनुभवों की वृद्धि माना है।
2. शिक्षा–मनोविज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में वैज्ञानिक अध्ययन पर बल दिया।
3. मानसिक क्रियाओं के स्वरूप और रचना के क्रमबद्ध निरीक्षण पर बल दिया।
4. इस विचारधारा का मनोविज्ञान के वैज्ञानिक ढंग से विकसित होने में ऐतिहासिक महत्त्व है।

नोट

संरचनावाद की सीमाएँ–

(1) इस सम्प्रदाय ने अन्तर्दर्शन विधि अपनाने के कारण मनोविज्ञान के एक सीमित क्षेत्र में ही कार्य किया।

(2) इन्होंने मन की समग्रता की दिशा में कोई कार्य नहीं किया।

(3) अभिप्रेरणा और व्यक्तित्व जैसे विषयों से सम्बन्धित समस्याओं की ओर ध्यान नहीं दिया।

20वीं शताब्दी के आरम्भ में इसकी तीव्र आलोचना हुई, जिसमें प्रमुख आलोचक **विलियम जेम्स** थे। उनका विचार था कि चेतना के त्तवों का अध्ययन और विश्लेषण करना व्यर्थ है। इसके बदले हमें यह देखना चाहिए कि चेतना का हमारे शरीर के विभिन्न अंगों पर क्या प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरूप एक नवीन विचारधारा का जन्म हुआ जिसे 'प्रकार्यवाद' या 'चेतना कार्यवाद' कहा गया।

2. प्रकार्यवाद (Functionalism)

इस विचारधारा का विकास अमेरिका में (1842–1910) हुआ। इसका विकास संरचनावादी सम्प्रदाय की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। इस विचारधारा पर डारविन के विकासवादी सिद्धान्त का प्रभाव है। प्रकार्यवाद को वास्तविक स्वरूप जॉन डीवी और रोनेल्ड एंजिल ने दिया। इसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि प्रयोजनवाद (Pragmatism) है। इस वाद का आधार क्यों और कैसे है? इस सम्बन्ध में **वुडवर्थ** महोदय का विचार है- "एक मनोविज्ञान जो इस प्रश्न पर मनुष्य क्या करते है? का सही और व्यवस्थित उत्तर देता है और आगे के प्रश्नों, किस प्रकार वे उसे करते हैं? और क्यों वे उसे करते है? का भी उत्तर देता है, प्रकार्यवाद सम्प्रदाय कहलाता है।" मनोविज्ञान में ज्ञान (Knowing), संकल्प (Willing) तथा क्रिया (Feeling) का समावेश प्रकार्यात्मवाद) के कारण हुआ। यह विचारधारा मन की शक्तियों की गत्यात्मकता पर बल देती है।

प्रकार्यवाद सम्प्रदाय का प्रसार विभिन्न देशों में मनोवैज्ञानिकों द्वारा हुआ। इसके प्रमुख सम्प्रदाय निम्नांकित हैं–

शिकागो सम्प्रदाय– इसमें जॉन डीवी, जेम्स रोनेल्ड एंजिल और हार्बेकर के नाम विशेष उल्लेखनीय है। जॉन डीवी ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में मन और बुद्धि की उपयोगिता पर विशेष बल दिया। इन्होंने समस्या समाधान में किस प्रकार चिन्तन प्रक्रिया कार्य करती है-इस पर भली-भाँति प्रकाश डाला। **जॉन डीवी** ने अपने एक लेख 'रिफलेक्स आर कानसेप्ट ऑफ़ साइकोलॉजी, (The Reflex are Concept of Psychology) में इस बात पर बल दिया है कि मानसिक कार्यों में निरन्तरता होती है। वे बिना एक क्षण भी रुके होती रहती हैं। उन्होंने उद्दीपन और अनुक्रिया में पृथकता और सम्बन्धों की खोज की है। उद्दीपन और अनुक्रिया दो अलग वस्तुएँ नहीं हैं। मानव के समस्त मानसिक कार्य का कोई उद्देश्य या प्रयोजन होता है। इन्होंने संरचनावाद की तरह मन और चेतना को मानसिक त्तवों का योग नहीं माना, बल्कि मानसिक त्तवों के प्रकार्य पर बल दिया। इसीलिए उन्होंने मानसिक प्रकार्य पर बल दिया है।

जेम्स रोनेल्ड एंजिल–इन्होंने प्रकार्यवाद की स्पष्ट व्याख्या की है। इनके अनुसार संरचनावाद का सम्बन्ध जहाँ 'तत्व' या 'वस्तु' से है वहाँ प्रकार्यवाद का सम्बन्ध 'प्रक्रिया' से है। इनके अनुसार मानसिक प्रक्रियाओं का स्वरूप क्या है और ये किस प्रकार कार्य करती हैं इनकी जानकारी पर बल देते हैं। मानसिक प्रकार्य परिस्थितियों के अनुरूप सम्पादित होते है। मन और शरीर दोनों संयुक्त रूप से क्रियाशील होते हैं और प्राणी को अपने पर्यावरण से समायोजन करने में सहायता देते हैं। सभी मानसिक क्रियाएँ मन और शरीर के सम्मलित प्रयास और योग पर निर्भर हैं। प्रकार्यवाद मन और शरीर को दो भिन्न वस्तुओं के रूप में नहीं स्वीकार करता। **हार्वेकार** ने मनोविज्ञान को मानसिक क्रियाओं का विज्ञान बताया है। प्रकार्यवादी मनोविज्ञान का विषय 'क्यों' और 'कैसे' है।

कोलम्बिया सम्प्रदाय– इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक कोलम्बिया विश्वविद्यालय के **जेम्स कैटल, एडवर्ड थर्नडाइक** और **राबर्ट वुडवर्थ** थे। कैटल ने साहचर्य, प्रत्यक्ष ज्ञान और मनोभौतिकी पर कार्य किया। थार्नडाइक ने बुद्धिमापन और अधिगम प्रक्रिया पर कार्य किया। **राबर्ट वुडवर्थ** ने 'समकालीन मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय' (Contemporary Schools of Psychology) पुस्तक लिखकर ख्याति प्राप्त की। इन्होंने अपने विभिन्न प्रयोगों के आधार पर

नोट

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान पर भी पुस्तक लिखी। प्रकार्यवाद में समंजन पर बल देने के कारण गत्यात्मक मनोविज्ञान का विकास हुआ। इन्होंने व्यवहार में प्रेरणा को महत्त्व दिया। प्रकार्यवाद ने जो पशुओं की बुद्धि और व्यवहार का अध्ययन किया उसके आधार पर 'व्यवहारवाद' नामक मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय का उदय हुआ।

प्रकार्यवाद का शिक्षा में योगदान– शिक्षा के क्षेत्र में इस सम्प्रदाय की प्रमुख देन इस प्रकार है–

1. इस विचाधारा ने अधिगम प्रक्रिया में पर्यावरण और समायोजन पर बल दिया।
2. इस सम्प्रदाय के लोगों के द्वारा वैयक्तिक भिन्नता, अधिगम, बुद्धि, समायोजन, परीक्षण व मूल्यांकन आदि के क्षेत्रों में बहुत से शोधकार्य हुए जिसका प्रभाव शिक्षा पर पड़ा।
3. इस विचाधारा ने शिक्षा प्रक्रिया में बालक को महत्त्व देते हुए बाल मनोविज्ञान के विकास में योगदान किया।
4. विभिन्न आयु स्तर के बालकों की शिक्षा में उनकी आवश्यकताओं को समझने पर बल दिया।
5. इसने शिक्षा में उपयोगिता के सिद्धान्त को जन्म दिया। पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों को महत्त्व दिया जो व्यक्ति और समाज के लिए उपयोगी हों।
6. इसने मन और शरीर की संयुक्त (एक साथ) क्रियाशीलता पर बल दिया। उनका विचार था कि मन के बिना शरीर और शरीर के बिना मन का अध्ययन अधूरा है। मन और शरीर दोनों एक साथ क्रिया करते है। इसी कारण अध्ययन विधि के रूप में तीन रीतियों पर ज़ोर दिया–

(क) दैहिक रीति–इसमें प्रत्येक क्रिया के दैहिक आधार का अध्ययन करने का प्रयास किया गया।

(ख) विभिन्न अवस्थाओं में अध्ययन रीति–इसमें विभिन्न अवस्थाओं में प्राणी का निरीक्षण किया जाता है।

(ग) अन्तर्दर्शन विधि।

3. व्यवहारवाद (Behaviourism)

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में संरचनावाद और प्रकार्यवाद का विरोध होने के कारण व्यवहारवाद की स्थापना हुई। इसके पहले चेतना के त्तवों के अध्ययन पर बल दिया गया, जिसे कुछ मनोवैज्ञानिकों ने निरर्थक समझा और कहा कि चेतना का हमारे शरीर पर जो प्रभाव पड़ता है उसका अध्ययन सार्थक है। इसलिए चेतना की रचना के स्थान पर उसके कार्यों पर बल दिया गया। किन्तु कुछ समय बाद चेतना का अध्ययन करने वाली पद्धति अन्तर्दर्शन विधि की कटु आलोचना होने लगी। इनमें **विलियम जेम्स** प्रमुख आलोचक थे। व्यवहारवाद के जन्मदाता **जे. बी वाटसन** थे। इस वाद का क्षेत्र व्यवहार का अध्ययन करना है। वाटसन ने चेतना जैसी अस्पष्ट वस्तु को स्वीकार नहीं किया। इनके अनुसार प्राणी को समझने के लिए उसके शरीर के कार्य, इन्द्रियों की चेष्टाएँ और बाहरी क्रियाओं को देखना और समझना चाहिए। मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की जाँच, उसके व्यवहार और क्रियाओं से होती है। इसलिए केवल चेतना का अध्ययन करना उपयोगी नहीं बल्कि संवेदन, भाव, प्रतिभा और स्मृति के स्थान पर उसकी चेष्टा या व्यवहार पर ध्यान दिया जाए जो कि प्रत्यक्ष दिखाई देता है। ये चेष्टाएँ और व्यवहार दोनों स्वाभाविक और अर्जित होते हैं जिनका अध्ययन मनोवैज्ञानिक करते हैं। व्यवहारवादी सम्प्रदाय मनोवैज्ञानिकों का वह समुदाय है जो प्राणी मात्र के प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले स्वाभाविक और अर्जित दोनों प्रकार के व्यवहारों का अध्ययन करता है। प्रमुख व्यवहारवादी मनावैज्ञानिकों में मेक्समेयर, **पी. बीस, हल और टालमैन** और **बी. एफ. स्किनर** आदि हैं।

सन् 1912–14 में जिस समय अमेरिका में व्यवहारवादी आन्दोलन चल रहा था, उसी समय रूस में मनोवैज्ञानिक **वेशेरेव** और **पावलोव** (1857–1936) सम्बद्ध सहज क्रिया, अभिसन्धानित सहज क्रिया और गतिवाहक सहज क्रियाओं पर प्रयोग कर रहे थे। (Associated Reflex Action, Conditioned Reflex Action, Motor Reflexes) इन लोगों ने पशु और मनुष्य दोनों पर प्रयोग किए।

नोट

व्यवहारवादी मत के अनुसार वातावरण में उत्तेजना के उपस्थित होने पर ही प्राणी अनुक्रिया करता है। इस वाद ने प्राणी की क्रिया पर विचार किया और मांसपेशीय तथा ग्रंथीय क्रियाओं का अध्ययन किया। इसमें 'उत्तेजना अनुक्रिया सिद्धान्त' (Theory of Stinulu-Response) को प्रमुख स्थान दिया गया है। जिसके फलस्वरूप मनुष्य अपने को परिरिथति और पर्यावरण के अनुकूल बनाने के लिए व्यवहार करता है।

व्यवहारवाद के उदय में पशु मनोविज्ञान के क्षेत्र में थार्नडाइक महोदय का उल्लेखनीय योगदान है। इन्होंने मछली, मुर्गी और बिल्लियों पर कई प्रयोग किये। इन प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया कि पशु बुद्धि कम होने के कारण प्रयास और त्रुटि (Trial and Error) द्वारा बहुत-सी बातें सीखते हैं। पशु प्रयत्न करते-करते किसी कार्य को पूरा करने में सफल हो जाता है। अधिगम नामक अध्ययन में इन प्रयोगों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

व्यवहारवाद का शिक्षा में योगदान–

(1) व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने पशुओं पर जो प्रयोग किये उनसे सीखने के नियमों और सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ। प्रयत्न और त्रुटि विधि को अधिगम में लागू किया गया।

(2) बाल मनोविकास के अध्ययन को प्रोत्साहन मिला।

(3) मानव विकास और अभिवृद्धि पर पर्यावरण के प्रभाव और महत्त्व पर बल दिया।

(4) अधिगम की विधियाँ, अधिगम के नियम एवं सिद्धान्त, संवेदगात्मक व्यवहार, मूल प्रवृत्तियों से सम्बन्धित आदतों आदि पर व्यवहारवादी सम्प्रदाय के मनोवैज्ञानिकों ने काफी प्रकाश डाला। इससे शिक्षा-मनोविज्ञान की प्रगति हुई।

(5) शिक्षा का सम्बन्ध मानव व्यवहार से है। व्यवहार का वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों पक्ष होता है। इस मत का विश्वास है कि मानव के सभी व्यवहार पर्यावरण से निरन्तर अन्त:क्रिया द्वारा सम्पन्न होते हैं।

(6) शिक्षण विधि के रूप में 'पूर्व नियोजित अधिगम' का विकास हुआ।

(7) इस सम्प्रदाय ने निरीक्षण और मापन पर बल दिया।

(8) व्यवहारवादियों ने बालक के व्यक्तित्व के अध्ययन को सरल और वस्तुनिष्ठ बना दिया। विभिन्न परिस्थितियों और पर्यावरण में बालक के व्यवहार का अध्ययन करके, व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने की उपयोगी विधियों को जन्म दिया।

(9) उत्तेजना-अनुक्रियावाद के फलस्वरूप शिशु शिक्षा प्रणाली में इन्द्रिय प्रशिक्षण पर बल दिया।

4. मनोविश्लेषणवाद (Psychoanalysis)

मनोविश्लेषणवाद के प्रमुख प्रवर्तक वियना के **सिगमंड फ्रायड** (1856-1939) थे। यह सम्प्रदाय विशेष रूप से अज्ञात मन की चेष्टाओं का अध्ययन करता है। **डॉ. फ्रायड** (S. Freud) ने मूर्छा और स्नायु रोगों की चिकित्सा के लिये सम्मोहन या मोह-निद्रा विधि को अपनाया। इस विधि द्वारा वह रोगियों को अचेतन अवस्था में करके उससे प्रश्न पूछता था। मोह-निद्रा के सहारे रोगी ऐसी बातों को कह डालता था जिससे उसके संवेगात्मक कष्टों का पता लग जाता था। मोह-निद्रा की अवस्था में रोगी अज्ञात चेतना के सहारे अपनी उन सभी बातों को प्रकट कर देता था जिन्हें वह चेतन अवस्था में लज्जा, भय या संकोच के कारण नहीं बताता। अचेतन अवस्था में सम्मोहन की स्थिति में कही हुई बातों को सुनकर फ्रायड उसके रोग के कारण को तर्क कर लेता था। कुछ रोगियों पर मोह-निद्रा या सम्मोहन का प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसे रोगियों की चिकित्सा के लिए उसने 'स्वतंत्र साहचर्य' विधि का प्रयोग किया। फ्रायड ने मानव मन का विश्लेषण करने के लिए युक्तियाँ (विधि) निकालीं। मन का गहन अध्ययन करने के बाद जो तथ्य प्राप्त हुए उनके आधार पर जिन सिद्धान्तों का निरूपण किया गया उन्हें मनोविश्लेषणवाद का नाम दिया गया। इस सम्बन्ध में **अरनेस्ट जॉन** (Earnest Jones) ने कहा है- मनोविश्लेषण शब्द का प्रयोग तीन वस्तुओं को बताने के लिये किया जाता है-

नोट

(1) मनोविश्लेषण का अर्थ चिकित्सा की एक विशेष विधि से, जिसका प्रयोग वियना के प्रोफेसर फ्रायड ने स्नायुविक रोगों के कुछ विशिष्ट वर्ग के लोगों को ठीक करने के लिए किया था, इस प्रकार यह नियंत्रित अर्थ में सर्वप्रथम प्रयुक्त हुआ।

(2) इसका अर्थ मन के गहरे स्तरों की खोज की एक विशेष प्रविधि भी है।

(3) अन्त में इस शब्द का प्रयोग ज्ञान के एक क्षेत्र के लिए भी किया जाता है, जो कि इस विधि द्वारा प्राप्त किया जाता है और इस अर्थ में यह व्यावहारिक रूप में 'अचेतन मन का विज्ञान' होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मनोविश्लेषणवादी सम्प्रदाय मानव के असाधारण आचरण का अध्ययन, अचेतन मन की विशेषताओं के साथ करता है। मनो-विश्लेषणवादी सम्प्रदाय में **फ्रायड, एडलर** तथा **युंग** तीन प्रमुख मनोवैज्ञानिक हैं, जिन्होंने अचेतन मन की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। इन महानुभावों के विचारों को संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है-

टास्क मनोरोगी के इलाज हेतु फ्रायड की मोह निद्रा अथवा सम्मोहन विधि से आप कहाँ तक सहमत हैं? कुछ समय पहले इमैजिन टी.वी. पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रम (राज़ पिछले जनम का) और फ्रायड के सिद्धांत में क्या आप कोई समानता पाते हैं?

फ्रायड–फ्रायड मनोविश्लेषणवादी सम्प्रदाय के पहले मनोवैज्ञानिक हैं। फ्रायड ने मन के तीन स्तर बताए हैं– चेतन (Conscious), अवचेतन (Sub-conscious) तथा अचेतन (Unconscious)। मन के अज्ञात या अचेतन मन की अपेक्षा चेतन मन अधिक छोटा है। मानव व्यवहार अचेतन मन से बहुत अधिक नियंत्रित होता है। अचेतन मन का चेतन मन पर बहुत प्रभाव रहता है। अचेतन मन में अनेक अतृप्त भावनाएँ, संवेग और आवेग दबे पड़े रहते हैं। फ्रायड ने मन की तुलना समुद्र में तैरते हुए एक हिमखंड (Ice berg) से की है जिसका अधिकांश भाग पानी की सतह के नीचे होता है। इस प्रकार चेतन मन बहुत छोटा होता है और अचेतन मन अधिक प्रबल होता है। किन्तु मन के दोनों भाग क्रियाशील रहते हैं। अज्ञात चेतन में मानव की अतृप्त इच्छाएँ और भावनाएँ एकत्रित हो जाती हैं जो कि निष्क्रिय नहीं होती हैं। व्यक्ति सामाजिक या अन्य कारणों से उन्हें चेतन मन पर आने से रोकता है। इस प्रकार चेतन और अचेतन मन की शक्तियों में बराबर संघर्ष जारी रहता है। मन में दबी हुई भावनाएँ जब अपनी अभिव्यक्ति और प्रकाशन नहीं कर पातीं तब मन में इनकी गांठ या गुत्थी बन जाती है जिसे भावना ग्रन्थि कहते हैं। इन ग्रन्थियों का प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है। **फ्रायड** ने मन पर शासन करने वाली तीन शक्तियाँ बताई हैं- **इदम्, अहम् और परम्** (Id, Ego, Super-Ego)। इनकी संक्षिप्त व्याख्या निम्नलिखित है-

इदम् (Id) – इसका सम्बन्ध आनुवंशिकता से है। इसमें व्यक्ति के जन्मजात गुण व्याप्त रहते हैं। इसमें पाये जाने वाले विचार और वस्तु की चेतना व्यक्ति की नहीं होती, किन्तु यह व्यक्ति की मानसिक शक्तियों और वृत्तियों का स्रोत है। यह दमित इच्छाओं और वासनाओं का आधार है। इसमें विवेक नहीं होता। इसका स्वरूप, अचेतन और वास्तविकता से सम्बन्धित नहीं है। इसका सम्बन्ध काम प्रवृत्ति से है जिसे **फ्रायड** ने लिबिडो (Libido) कहा है।

अहम् (Ego) – यह इदम् का वह अंश है जिसका विकास बाहरी पर्यावरण में होता है। इसका सम्बन्ध पर्यावरण की वास्तविकता से होता है। यह चेतन होता है और अचेतन मन की अवांछित इच्छाओं पर नियंत्रण रखता है। यह व्यक्ति का 'साधारण अन्तःकरण' है। इसमें व्यक्ति की अच्छी और बुरी सभी प्रकार की इच्छाएँ रहती हैं। अच्छी इच्छाओं पर कोई रोक नहीं होती पर बुरी इच्छाओं को बाहर आने के लिये हमारा 'परम् अहम्' जाग्रत रहता है।

परम अहम् (Super Ego) – यह बुरी इच्छाओं को चेतन मन में आने से रोकता है। इसका काम अहम् (Ego) पर शासन करना है। यह चेतन और अचेतन मन के बीच प्रहरी का कार्य करता है। हमारा साधारण अंतःकरण सभी

नोट

प्रकार की इच्छाओं को पूरा करना चाहता है, किन्तु सामाजिक नियमों और मान्यताओं का ज्ञान शैशवकाल में ही व्यक्ति को धीरे-धीरे होने लगता है जिसके फलस्वरूप परम अहम् या 'उच्च अन्तःकरण' का निर्माण हो जाता है।

फ्रायड के अनुसार **इदम्** का आधार सुख है और **अहम्** का आधार वास्तविकता। इसके अनुसार व्यक्ति की सभी मानसिक क्रियाएँ 'सुख सिद्धान्त' से प्रेरित होती हैं। यदि व्यक्ति का 'अहम्' समुचित रूप से विकसित है तो वह उचित या वांछनीय निर्णय लेने में सफल होता है और यदि उसका अहम् दुर्बल है तब अधिकतर उसकी इदम्-प्रेरित इच्छाओं की पूर्ति होती है। किन्तु जब व्यक्ति की आयु और अनुभव में वृद्धि होने लगती है तब उसी के अनुसार उसका अहम् वास्तविकता और यथार्थ सिद्धान्त के अनुसार काम करने पर बल देता है।

एलफ्रेड एडलर– मनोविश्लेषणवाद के दूसरे मनोवैज्ञानिक **एडलर** ने फ्रायड के साथ बहुत दिनों तक कार्य किया। एडलर का फ्रायड से सैद्धान्तिक मतभेद था। इस कारण वह फ्रायड के सभी निष्कर्षों को मानने के लिए तैयार न था। फ्रायड ने समस्त क्रियाओं के आधार रूप में काम भावना को प्रधान शक्ति या प्रेरणा माना है जबकि एडलर का विचार था कि जीवन एक संघर्ष है और व्यक्ति को समाज में रहकर विभिन्न परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। वह अपने व्यक्तित्व की रक्षा और उचित विकास करना चाहता है। व्यक्तित्व-विकास के लिए उसकी कुछ इच्छाएँ, अभिलाषाएँ और मानसिक आवश्यकताएँ होती हैं। इसलिए इन बातों को ध्यान में रखते हुए, उसके लिए शक्ति प्राप्त करने की अभिलाषा को एडलर ने जीवन-कार्यों का आधार माना है और महत्त्व दिया है। शैली अध्ययन पर बल दिया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्ति का व्यवहार भावना-ग्रन्थियों के कारण असाधारण हो जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सही विकल्प चुनकर रिक्त स्थान की पूर्ति करें

1. सर्वप्रथम मनोविज्ञान का अध्ययन ..... की एक शाखा के रूप में होता था।
   (क) समाजशास्त्र (ख) शिक्षाशास्त्र (ग) दर्शनशास्त्र
2. संरचनावादी विचारधारा के प्रवर्तक ..... हैं।
   (क) विलियम वुंट (ख) फ्रायड (ग) एडलर
3. सिग्मंड फ्रायड द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत को ..... के नाम से जाना जाता है।
   (क) संरचनावाद (ख) मनोविश्लेषणवाद (ग) व्यवहारवाद
4. संरचनावाद की प्रतिक्रिया स्वरूप ..... का विकास हुआ।
   (क) व्यवहारवाद (ख) मनोविश्लेषणवाद (ग) प्रकार्यवाद

एडलर के अनुसार सभी प्रकार के मानसिक रोगियों के रोग का कारण कोई अपराध नहीं बल्कि 'हीनता की भावना' होती है। उसका विचार है कि हीनता की भावना से बचने के लिए वह एक विचित्र जीवन शैली (Style of Life) को अपनाता है। यह भावना अज्ञात चेतना में होती है और यही ज्ञात चेतना में 'श्रेष्ठता की भावना' के रूप में दिखाई देती है। इस प्रकार व्यक्ति अपनी कमजोरियों को छिपाना चाहता है और अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के लिए एक अनोखी जीवन-शैली अपनाता है। व्यक्ति के सामाजिक-व्यवहार प्रदर्शन में अज्ञात और ज्ञात दोनों प्रकार की चेतना का सहयोग होता है। एडलर के इन विचारों को 'वैयक्तिक व मनोविज्ञान' कहा गया है। व्यक्ति की जीवन शैली के अध्ययन से मनोविश्लेषणवादी को काफी सहायता मिल सकती है।

कार्लजुंग (Carl Jung)– इस सम्प्रदाय के तीसरे मनोवैज्ञानिक **जुंग** है। इसके सिद्धान्त फ्रायड और एडलर से भिन्न हैं। जुंग ने साहचर्य-परीक्षण और विश्लेषण का कार्य किया। इन परीक्षणों द्वारा व्यक्ति की मानसिक ग्रन्थियों का अनुमान किया जा सकता है। इनका फ्रायड से दो बातों में मतभेद दिखाई देता है–

नोट

1. फ्रायड मानसिक रोग का कारण बाल्यकाल में बनी भावना ग्रन्थियों को मानता है, जबकि जुंग अतीत की बातों के साथ वर्तमान परिस्थिति पर भी बल देता है।
2. जुंग ने 'कामभावना' Libido का विस्तृत अर्थ लिया है। यह जीवन की मुख्य शक्ति है जो दो रूपों में दिखाई देती है- कामवासना सम्बन्धी प्रवृत्ति और जीवन-शक्ति प्राप्त करने की प्रवृत्ति। जुंग ने अज्ञात चेतना को ज्ञात चेतना से अधिक महत्त्व दिया है और अज्ञात चेतना को ज्ञात चेतना का क्षतिपूरक कहा है। जैसे जो व्यक्ति ज्ञात चेतना में साहसी दिखाई देते हैं अज्ञात चेतना में डरपोक या भीरु होते हैं। अज्ञात चेतना में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के विचार होते हैं। जुंग के विचारों में फ्रायड और एडलर दोनों के मतों का समन्वय है।

मनोविश्लेषणवाद का शिक्षा में योगदान–शिक्षा पर इस सम्प्रदाय का बहुत प्रभाव पड़ा। बालक के व्यक्तित्व-विकास का सम्बन्ध शिक्षा से होता है। संक्षेप में इस वाद का प्रभाव इस प्रकार पड़ा-

1. व्यक्ति के विकास में आनुवंशिकता और पर्यावरण मुख्य त्तव होते हैं। इनका सम्बन्ध अचेतन मन से होता है।
2. मनोविश्लेषणवाद ने शिक्षा के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों पर प्रभाव डाला है। सीखने की प्रक्रिया में अज्ञात चेतना या अचेतन मन का महत्त्वपूर्ण स्थान है।
3. शिक्षा-प्रक्रिया में बालक के प्रारम्भिक जीवन के अनुभवों और संस्कारों का बहुत महत्त्व है, शैशव और बाल्यकाल में पड़ी यही भावना-ग्रन्थियाँ बालक के भावी जीवन और व्यवहार को प्रभावित करती हैं।
4. इसने शिक्षा में संवेगों के महत्त्व पर प्रकाश डाला है।
5. मनोविश्लेषणवाद की सहायता से बालकों में कुसमायोजन के कारणों का पता लगाया गया जा सकता है। यह वाद समायोजन प्रक्रिया को समझने में बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है।
6. मनोविश्लेषणवाद ने बालक के व्यक्तित्व-विकास में प्रकृतिवादियों के समान 'स्वतंत्रता के सिद्धान्त' पर बल दिया है।
7. शिक्षा का एक प्रमुख कार्य मूल प्रवृत्तियों का शोधन है। इसमें मनोविश्लेषणवाद से सहायता मिलती है।
8. शिक्षा का सम्बन्ध बालक के समाजीकरण से होता है। इस प्रकार के विचारों के समर्थक **जुंग** महोदय हैं, उनका विचार है कि सामूहिक भावना और अचेतन मन का गहरा सम्बन्ध है। वास्तव में समाजीकरण और सांस्कृतिकरण व्यक्तिगत अचेतन एवं सामूहिक अचेतन का सामंजस्य है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मनोविश्लेषणवाद का शिक्षा पर कितना प्रभाव है।
9. इस वाद की सहायता से मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को समझने एवं दूर करने में सहायता मिली है।

5. अवयवीवाद (Gestalt School)

व्यवहारवाद के साथ ही जर्मनी में 1912 ई. के लगभग अवयवीवाद का जन्म हुआ। जर्मन भाषा में अवयवीवाद को 'गेस्टाल्ट साइकोलॉजी' कहते हैं। गेस्टाल्ट का अर्थ- रूप, आकृति, अवयवी, समग्र, पूर्ण आकार या प्रतिदर्श (Shape, Form, Whole, Pattern) होता है। शिक्षाशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक शब्दावली में इसे 'समग्राकृति' भी कहा गया है। इस समप्रदाय के मनोवैज्ञानिक केवल व्यवहार, चेतना और अचेतन मन के विश्लेषण से संतुष्ट नहीं हुए। उनके अनुसार व्यवहार या अनुभूतियों के विश्लेषण में मानव-व्यक्तित्व को ठीक से नहीं समझा जा सकता। उन्होंने मानसिक अध्ययन में समग्रता और अखंडता के सिद्धान्त पर विशेष बल दिया। ये लोग व्यवहार क्रिया, चेतना आदि के विशेष लक्षणों के अलावा सभी लक्षणों और अंगों को एक साथ रखकर उसकी समग्राकृति या रूप पर अपना ध्यान देते हैं। उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति की मुखाकृति में विभिन्न अवयवों- आँख, नाक, कान आदि को

नोट

मिलाकर देखने से उसके पूरे चेहरे का बोध होता है। इसी प्रकार मनुष्य में शरीर के विभिन्न अंगों को अलग-अलग न करके एक साथ मिलाकर जो आकृति, रूप या प्रतिदर्श मिले उसे मनुष्य कहा जाए। अवयवों (Parts) का अध्ययन 'अवयवी' (Whole) के सम्बन्ध में किया जाए तभी उसका कुछ अर्थ होता है। उसी प्रकार ज्ञान, भाव और क्रिया के सग्रम रूप को ही ध्यान में रखकर समझा जाए। गेस्टाल्टवादियों ने किसी वस्तु को समझने के लिए पूर्ण से अंश की ओर (From Whole to Parts) चलने पर बल दिया है अर्थात् पहले हमें पूर्ण वस्तु का एक अवयवी के रूप में ज्ञान प्राप्त करना सरल है। गेस्टाल्टवादी सम्प्रदाय उन मनोवैज्ञानिकों का समुदाय है जो "व्यवहार, क्रिया, घटना, व्यक्ति, वस्तु सभी के सम्पूर्ण रूप को आधार बनाकर अध्ययन करता है।"

इस सम्प्राय के प्रमुख मनोवैज्ञानिक **एम. वर्दीमर** (M. Wertheimer), **के. कॉफ्का** (K. Koffka) और **कोहलर** (W. Kohler) हैं।

अवयवीवाद का शिक्षा में योगदान–अवयवीवाद ने भी शिक्षा को किस प्रकार प्रभावित किया है उसका संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है-

1. इस सम्प्रदाय ने सीखने की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष ज्ञान पर बहुत बल दिया है। शिक्षक को पाठ्यवस्तु को पहले समग्र रूप में प्रस्तुत करना चाहिए। किसी वस्तु या घटना का ज्ञान उसकी सम्पूर्ण स्थिति को समझ कर ही होता है। **कोहलर** महोदय का प्रयोग और उसका अन्तर्दृष्टि का सिद्धान्त इस तथ्य को सिद्ध करता है। यह 'सीखना' अध्याय में विस्तार से समझाया गया है। सीखना के अन्तर्गत संवेदन, प्रत्यक्षीकरण, निरीक्षण, अवधान, स्मरण, चिन्तन, कल्पना, तर्क आदि की प्रक्रियाएँ सन्निहित हैं। अत: इस सम्प्रदाय का सीखने की प्रक्रिया पर बहुत प्रभाव पड़ा है।
2. इसने बाल-मनोविज्ञान और सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में काफी महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं।
3. व्यक्तित्व के विकास पर एवं पर्यावरण के महत्त्व पर प्रकाश डाला है।
4. बुद्धि की व्याख्या अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और युक्तिपूर्ण ढंग से की है। बुद्धि ही 'सूझ' या अन्तर्दृष्टि का आधार होती है। पर्यावरण के साथ समायोजन बुद्धि द्वारा ही होता है। अत: शिक्षा में बालक के पर्यावरण पर ध्यान देना आवश्यक है।
5. इसने सीखने में चिन्तन और समस्या-समाधान के लिए नवीन विचार प्रस्तुत किए हैं। यह अन्य सम्प्रदायों से अधिक प्रगतिशील विचार रखता है।
6. उत्तजेना-अनुक्रियावाद पर भी इन्होंने महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाला है। यह सम्प्रदाय व्यवहार को समझने के लिये उसके विभिन्न अंगों का पृथक्-पृथक् अध्ययन नहीं करता वरन् उसे समझने के लिये सम्पूर्ण परिस्थिति का अध्ययन करता है क्योंकि व्यवहार सम्पूर्ण स्थिति का फल है।
7. सीखना एक सप्रयोजन एवं उद्देश्य क्रिया है। शिक्षक को शिक्षार्थी के सामने एक समस्या प्रस्तुत करनी चाहिए। समस्या उत्पन्न करके, उसके मन में तनाव की स्थिति उत्पन्न होने पर उसकी क्रिया-शक्ति बढ़ जाती है। इस तनाव को दूर करने के लिए वह उस कार्य को जल्दी पूरा कर लेता है। प्रोजेक्ट और ह्यूरिस्टिक प्रणाली में इस सिद्धान्त का प्रयोग किया जाता है।

6. क्षेत्र सिद्धान्त (Field Theory)

मनोविज्ञान में क्षेत्र सिद्धान्त का प्रतिपादन **कुर्ट लेविन** (Kurt Levin) ने किया। पहले साहचर्यवादी मनोवैज्ञानिक थे, किन्तु उन्होंने गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों – कोहलर, कोफ्का तथा वर्दाईमीर के साथ भी कार्य किया। अत: वह गेस्टाल्टवाद से प्रभावित थे। मनोविज्ञान में उनकी दो पुस्तकें– **प्रिंसिपल ऑफ टोपोलाजिकल साइकोलॉजी** तथा

नोट

कामेंश्चुअल रिप्रेजन्टेशन एण्ड मेजरमेन्ट ऑफ साइकोलॉजिकल फोर्सेज विख्यात हैं। कुर्ट लेविन ने गेस्टाल्टवादियों से भिन्न मनोवैज्ञानिक विचारधारा प्रस्तुत की। उनके मनोवैज्ञानिक विचार स्थान-विज्ञान (Typology) तथा सदिशता (Vector) पर आधारित हैं। उनके अनुसार व्यवहार भूत अथवा भविष्य पर नहीं वरन् वर्तमान क्षेत्र पर निर्भर करता है। व्यवहार की व्याख्या क्षेत्र (Field) के आधार पर करने के कारण उनका मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त 'क्षेत्र सिद्धान्त' कहलाया। क्षेत्र का तात्पर्य जीवन-स्थान से है, जो एक व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक जगत (Psychological World) होता है। मनोवैज्ञानिक जगत, जो एक प्रकार से भौतिक-सामाजिक पर्यावरण के रूप में होता है, का मनोवैज्ञानिक प्रत्यक्षीकरण एक व्यक्ति के व्यवहार का कारण बनता है। लेविन ने अपने क्षेत्र सिद्धान्त को दो भागों में प्रस्तुत किया है यथा – संरचना तथा गतिशील।

लेविन के अनुसार 'क्षेत्र' की संरचना व्यक्ति तथा उसके मनोवैज्ञानिक द्वारा होती है। क्षेत्र की संरचना में क्षेत्रीय स्थान (Regions), उसकी सीमा (Boundary) तथा उसके विस्तार (Scope) के साथ बाहरी सीमा से जुड़े त्तव (Foreign Hull) सम्मिलित होते हैं इनके द्वारा व्यक्ति संवेदना एंव प्रत्यक्षीकरण अथवा उत्तेजना (Stimulus) प्राप्त कर उसके प्रतिगामक प्रतिक्रिया व्यक्त करता है।

लेविन ने गतिशील के सम्बन्ध में बताया है कि गतिशीलता व्यक्ति को एक जीवन-स्थान में गतिशील या चलायमान बनाती है अर्थात् यह व्यक्ति में गति की शक्ति उत्पन्न करता है। ये शक्तियाँ मुख्य रूप से तीन प्रकार की होती हैं– (अ) कर्षण शक्ति (Valence), जिसके द्वारा व्यक्ति किसी कार्य को करता अथवा नहीं करता है। कर्षण शक्ति सकारात्मक अथवा नकारात्मक हो सकती है, जो क्रमशः कार्य करने अथवा न करने के लिए व्यक्ति को प्रेरित करती है। (ब) सदिश शक्ति (Vector) इसका सम्बन्ध यन्त्र विज्ञान से है। इसके अनुसार बल के दो गुण हैं – (1) दिशा और (2) शक्ति। इन दोनों गुणों का योग सदिश है। कर्षण का स्वरूप दिशा निर्धारित करता है अर्थात् यदि कर्षण सकारात्मक है तो वह व्यक्ति को उस जीवन-स्थान की ओर ले जायेगा जहाँ उसे व्यवहार प्रदर्शित करना है। किन्तु यहाँ कार्य करने में यदि कोई अवरोध (BaÙkier) आ जाए तो व्यक्ति भग्नाशा का शिकार हो जाता है और वह द्वन्द्व (Conflict) की स्थिति में आ जाता है। (स) गति (Locomotion), द्वन्द्वात्मक स्थिति से उत्पन्न तनाव (Tension) को कम करने वाली व्यक्ति की क्रियाएँ गति कहलाती हैं, जो आराम (Relief) प्राप्त करने के उद्देश्य से होती हैं।

लेविन के उपर्युक्त सिद्धान्त व्यक्ति के अधिगम, प्रेरणा, व्यवहार के संगठन एवं पुनर्संगठन आदि में वांछित तथा दक्ष संरचना बनाने तथा गतिशीलता लाने में महत्त्वपूर्ण ज्ञान प्रदान करते हैं।

क्षेत्र सिद्धान्त का शिक्षा में योगदान–क्षेत्र मनोविज्ञान का शिक्षा में क्या योगदान है, इसके सम्बन्ध में संक्षिप्त बातें निम्नलिखित हैं-

1. लेविन का अधिगम सम्बन्धी क्षेत्र सिद्धान्त बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अधिगम पर कर्षण शक्ति का प्रभाव पड़ता है। अध्यापक को ऐसी परिस्थिति का निर्माण करना चाहिए जिससे बालक की सकारात्मक कर्षण शक्ति सक्रिय हो।
2. बालक की उचित शैक्षिक परिस्थिति के सम्बन्ध में क्षेत्र-मनोविज्ञान का महत्त्वपूर्ण योगदान है।
3. क्षेत्र मनोविज्ञान में आकांक्षा स्तर (Level of Aspiration) के सम्बन्ध के विचार व्यक्त कर शिक्षा में अभिप्रेरणा को प्रोत्साहित किया गया। शिक्षा के प्रति आकांक्षा स्तर जितना ऊँचा होगा बालक उतना ही अधिक रुचि लेगा।
4. सामूहिक शिक्षा को प्रभावशाली बनाने में लेविन का समूह गत्यात्मकता वाद (Group Dynamism) का विचार अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।
5. लेविन के विचारों में वैयक्तिक भिन्नता का सिद्धान्त परिलक्षित होता है तथा शिक्षा में उसके उपयोग को बल मिलता है।

नोट

6. लेविन ने क्षेत्र मनोविज्ञान में भग्नाशा, द्वन्द्व, तनाव तथा आराम आदि का उल्लेख कर शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, क्योंकि इन बातों का बालक की निष्पत्ति पर बहुत प्रभाव पड़ता है।
7. लेविन के विचारों के अनुसार बालक की शक्तियों, शैक्षिक परिस्थितियों की आवश्यकताओं, अध्यापन विधियों तथा लक्ष्य को पहचान कर बेहतर शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है।

7. पूर्णांगवाद (Holostic Psychology)

पूर्णांगवाद (Holostic Psychology) का विचार जर्मनी और अमेरिका में विकसित हुआ। पूर्णांगवादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति एक एकात्मक अवयव (Unitary Organism) है तथा मानव एक पूर्ण व्यक्तित्व (Whole Person) है। इस विचारधारा को मानने वाले मनोवैज्ञानिकों को दो समूहों में रखा जा सकता है–

(1) अवयवादी मनोवैज्ञानिक (Organismic Psychologist) तथा (2) व्यक्तित्ववादी मनोवैज्ञानिक (Personalistic Psychologist)। प्रथम का विचार अधिकतर जीव वैज्ञानिक तो दूसरे का अधिकतर विचार सामाजिक बिन्दु वाला है। इन दोनों का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित रूप से है–

(1) अवयववादी मनोविज्ञान (Organismic Psychology)–अवयववादी मनोवैज्ञानिक में **एडोल्फ मेयर** (Adolf Meyer), **जी. ई कागहिल** (G. E. Coghill) तथा **कुर्ट गोल्डस्टीन** (Kurt Goldstein) प्रमुख हैं। इन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं–

(*i*) मनोशारीरिक स्वास्थय के लिए मनोजैविकी (Psycho-biological) ज्ञान आवश्यक है, जिससे रोगों का निदान एवं निवारण किया जा सके।

(*ii*) मानव शरीर के अंगों का विकास 'पूर्ण से अंश' की ओर होता है तथा अधिगम गतियाँ 'सामान्य से विशिष्ट' की ओर चलती हैं।

(*iii*) जीव अथवा मानव के शारीरिक अवयवों में शक्ति समान रूप से फैली रहती है। इस विचार से मनोविज्ञान में शक्ति के समीकरण (Equalization of Energy) के सिद्धान्त का प्रचलन हुआ।

(*iv*) जीव वातावरण के साथ समायोजन करने के लिए दो स्थितियों का सामना करता है– पहला, वास्तविक वातावरण–जैसा वातावरण उसके समक्ष है तथा दूसरा, अवास्तविक वातावरण से उत्पन्न सम्भावित एंव अनुमानित वातावरण जिसके लिए जीव स्वयं के व्यवहार में परिवर्तन लाता है।

(2) व्यक्तित्ववादी मनोविज्ञान (Personalistic Psychology)– व्यक्तित्ववादी मनोवैज्ञानिकों में **जी. डब्लू. आलपोर्ट** (G. W. Allport) का नाम, व्यक्तित्व के विज्ञान को बनाने के लिए, विशेष रूप से जाना जाता है। यद्यपि कि **स्टर्न** (Stern) ने व्यक्तित्ववादी मनोविज्ञान की विचारधारा विश्व में पहले (1906) में प्रस्तुत की थी। **स्टर्न** के अनुसार व्यक्ति में एकता, मूल्य तथा उद्देश्य निहित रहते हैं (Personality has Unity, Value and Purpose)। व्यक्ति अनेक भागों का पूर्णांग (Unitas Multiplex) होता है। स्टर्न ने अपने व्यक्तिवादी मनोविज्ञान का व्यावहारिक उपयोग चिकित्सकीय तथा निदर्शन मनोविज्ञान में किया। **आलपोर्ट** व्यक्तित्व की पूर्णता पर बल देता है। उसके अनुसार एक व्यक्ति विचित्र संगठित पूर्णांग (The Individual As a Unique Organised Whole) होता है। उसके अनुसार व्यक्तित्व की परिभाषा निम्नलिखित है–

"व्यक्तित्व, व्यक्ति में निहित मनोदैहिक प्रणालियों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन है, जो व्यक्ति का उसके वातावरण के साथ विशिष्ट समायोजन निश्चित करता है।"

नोट

उपर्युक्त परिभाषा के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि व्यक्तित्ववादी मनोविज्ञान के समग्र रूप को महत्त्व देता है तथा उसे शारीरिक तथा मानसिक रूप से गतिशील मानता है, जिससे वह वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करता है।

पूर्णांगवाद का शिक्षा में योगदान–शिक्षा में पूर्णांगवाद का योगदान निम्नलिखित रूप से है–

(1) पूर्णांगवाद ने ही सर्वप्रथम यह मनोवैज्ञानिक तथ्य उद्घाटित किया कि बालक का विकास पूर्ण से अंश की ओर होता है तथा ज्ञान सामान्य से विशिष्ट की ओर बढ़ता है। इस सिद्धान्त से ही दो शिक्षण सूत्र (Maxims) बने, यथा– 'अंश से पूर्ण की ओर' तथा 'सामान्य से विशिष्ट की ओर'।

(2) पूर्णांगवाद का महत्त्वपूर्ण योगदान 'व्यक्तित्व के मनोविज्ञान' के विकास के रूप में है, जिसके द्वारा व्यक्तित्व का ज्ञान तथा मापन विधियाँ विकसित की जा सकीं।

(3) पूर्णांगवाद के प्रभाव के करण ही शिक्षाविदों ने समायोजन के महत्त्व को समझा तथा बालक को कु-समायोजन से बचाने तथा सु-समायोजन को अपनाने के प्रयासों को कम करने पर बल दिया।

(4) यदि शिक्षा में गेस्टाल्टवादियों का योगदान स्वीकार्य है तो पूर्णांगवाद भी शिक्षा में महत्त्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि पूर्णांगवादी मनोवैज्ञानिक विचारधारा ने गेस्टाल्टवादी मनोविज्ञान के विकास हेतु पृष्ठभूमि का निर्माण किया।

(5) पूर्णांगवाद द्वारा मनोजैविकी का विकास करना भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि बालकों के मनोविकारों का निदान एवं उपचार करने में इस विचारधारा का विशेष योगदान है।

8. प्रयोजनवाद (Purposivism)

प्रयोजनवाद (Purposivism) को प्रेरकीयवाद (Hormic) के नाम से भी जाना जाता है। मनोविज्ञान में इस विचारधारा के जनक इंग्लैंड के **विलियम मैक्डूगल** (William Mc. Dougall) हैं। हार्मिक (Hormic) ग्रीक शब्द हार्म (Horme) से बना है, जिसका अर्थ है- प्रेरक। अत: जो मनोवैज्ञानिक प्रेरणा, प्रेरक तथा प्रयोजन को मनोविज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग मानते हैं, वे हार्मिक अथवा प्रयोजनवादी मनोवैज्ञानिक कहलाते हैं। यह वह मनोवैज्ञानिक विचारधारा है जिसमें व्यवहार का सूत्रपात प्रयोजन द्वारा होना माना जाता है। प्रयोजन एक समिष्ट शब्द है। प्रयोजनशील व्यवहार लक्ष्य प्राप्ति के समान होता है जिसमें दो घटक- इच्छा शक्ति एवं दूरदृष्टि संयुक्त होते है। व्यक्ति किसी प्रयोजन से प्रेरित होकर व्यवहार करता है। अत: प्रयोजनवाद मनोविज्ञान में उन तथ्यों के अध्ययन पर बल देता है जो किसी कार्य प्रारम्भ एवं पूर्ण करने अर्थात् व्यवहार करने की प्रेरणा देते हैं। **मैक्डूगल** के अनुसार पशु तथा मनुष्य 'एक यंत्र' के समान व्यवहार करते हैं और व्यवहार करना जीवित प्राणी की विशेषता है। इसी विचारधारा के अंतर्गत मैक्डूगल ने मूल-प्रवृत्ति का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

मूल प्रवृत्ति का सिद्धान्त– मैक्डूगल के इस सिद्धान्त के अनुसार मूल प्रवृत्तियाँ जन्मजात होती हैं किन्तु अधिगम प्रयासों से इनमें सुधार किया जा सकता है। मैक्डूगल के अनुसार मूल प्रवृत्ति प्राथमिक स्तर पर एक पूर्ण मानसिक प्रक्रिया होती है जिसका विश्लेषण तीन भागों में किया जा सकता है यथा – (1) संग्राहकिक दिशा की ओर (On the receptive side), (2) कार्यान्वयन दिशा की ओर (On the executive side) तथा (3) संवेगात्मक गति (Emotional impulse or striving)। **मनोवैज्ञानिक मैक्डूगल** के अनुसार कुल चौदह मूल प्रवृत्तियाँ तथा उनसे सम्बन्धित संवेग होते हैं, जिनका अवलोकन निम्न सूची में किया जा सकता है-

नोट

तालिका 1.1

क्रम सं.	मूल प्रवृत्ति	संवेग
1.	युयुत्सा (Combat)	क्रोध (Anger)
2.	पलायन (Escape)	भय (Fear)
3.	भोजनावेषण (Food Seeking)	भूख (Hunger)
4.	निवृत्ति (Repulsion)	घृणा (Disgust)
5.	सन्तान रक्षा (Parental)	स्नेह (Affection)
6.	काम (Sex)	कामुकता (Lust)
7.	जिज्ञासा (Curiosity)	आश्चर्य (Wonder)
8.	प्रार्थना (Apeal)	दुख (Distress)
9.	दैन्य (Submission)	आत्महीनता (Negative Self Feeling)
10.	आत्म गौरव (Self Assertion)	आत्माभिमान (Positive Self feeling)
11.	सामूहिकता (Company Seeking)	एकाकीपन (Loneliness)
12.	रचना (Coustruction)	कृतिभाव (Feeling of Creativity
13.	हास (Laughter)	आमोद (Amusement)
14.	संग्रह प्रवृत्ति (Collection)	अधिकार भावना (Ownership feeling)

मैक्डूगल के मूल प्रवृत्ति तथा सम्बन्धित संवेग के सिद्धान्त की कटु आलोचना वाटसन, बर्नार्ड तथा थार्नडाइक आदि मनोवैज्ञानिकों ने की और प्रेरक के सिद्धान्त के रूप में इसे स्वीकार नहीं किया। फिर भी इसका शौक्षिक महत्त्व है।

प्रयोजनवाद का शिक्षा में योगदान–यद्यपि मानवीय व्यवहार के प्रेरक के रूप में आज प्रयोजनवाद, विशेष रूप से मूल प्रवृत्ति का सिद्धान्त, मान्य नहीं रह गया फिर भी इसकी कुछ बातें शिक्षा में महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं, जिससे शिक्षा में प्रयोजनवाद का योगदान सिद्ध होता है, जैसे-

(1) अधिगम के लिए प्रेरणा आवश्यक है। शिक्षक मूल प्रवृत्तियों के ज्ञान का लाभ उठाकर बालकों को प्रभावशाली अधिगम के लिए प्रेरित कर सकते है।

(2) बालकों के मूल प्रवृत्तियों का परिमार्जन तथा उसका उचित दिशा में मार्गान्तरण करने के द्वारा बालकों को सु-समायोजन के लिए अध्यापक अपनी सहायता दे सकता है।

(3) मैक्डूगल द्वारा बताई गई कुछ मूल प्रवृत्तियाँ शिक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं- जैसे- जिज्ञासा, आत्म-गौरव तथा रचना। शिक्षा में इनका उचित उपयोग कर अधिगम तथा शिक्षण को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

1.5 सारांश (Summary)

- प्राचीन दार्शनिकों, जिनमें अरस्तू तथा प्लेटो का नाम अधिक मशहूर हैं, मनोविज्ञान को आत्मा के बारे में अध्ययन करनेवाला विषय माना था।

नोट

- फलत: मनोविज्ञान मन के अध्ययन का विज्ञान माना गया। मनोविज्ञान की यह परिभाषा करीब-करीब 1870 ई॰ तक सर्वमान्य रही और मनोविज्ञान जो उस समय दर्शनशास्त्र की एक शाखा था, की विषय-वस्तु मन बनी रही।
- 1879 ई॰ में जब विलियम वुण्ट (Wilhelm Wundt) ने जर्मनी के लिपजिग विश्वविद्यालय (अब इसका नाम कार्ल मार्क्स विश्वविद्यालय कर दिया गया है) में मनोविज्ञान की सबसे पहली प्रयोगशाला स्थापित की, उस समय से मनोविज्ञान का संबंध दर्शनशास्त्र से धीरे-धीरे कम होता गया और इसका स्वरूप प्रयोगात्मक अधिक होता गया। फलस्वरूप मनोविज्ञान की विषय-वस्तु मन या आत्मा से हटकर मानसिक क्रियाएँ (Mental Activities) या चेतन अनुभूति हो गई।
- मनोविज्ञानिकों ने गहन अध्ययन करके देखा कि मनुष्य के व्यवहार में चेतना (Consciousness) का प्रभाव रहता है। अत: मनोविज्ञान को चेतना का विज्ञान (Science of Consciousness) मान लिया गया, परन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों ने पाया कि व्यक्ति सभी व्यवहार चेतना के वशीभूत होकर नहीं करता, वह अचेतन (Unconsciousness) से भी व्यवहार करता है।
- वास्तव में मनोविज्ञान मानव व्यवहार का विज्ञान है। इसे पदार्थ विज्ञान (Material Science) नहीं माना जा सकता। इसे प्राकृतिक विज्ञान (Natural Science) भी कहा जा सकता है। मनोविज्ञान (Psychology) और पदार्थ विज्ञान (Material Science) में एक विशेष और मौलिक अन्तर है। पदार्थ विज्ञान में पदार्थ पर सभी प्रकार का नियंत्रण (Control) रखा जा सकता है, और प्रयोगशाला में मनोवांछित परीक्षण करके सफलता प्राप्त की जा सकती है। इसके विपरीत मनोविज्ञान में पदार्थ के स्थान पर एक ऐसा मनुष्य विषय (Subject) होता है जिस पर पदार्थ की भाँति नियंत्रण नहीं रखा जा सकता।
- शिक्षा और मनोविज्ञान में घनिष्ठ सम्बन्ध है, इस विषय पर पूर्व अध्यायों में प्रकाश डाला गया है। मनोविज्ञान द्वारा हमें मानव-मस्तिष्क का ज्ञान होता है, अत: शिक्षा से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध होना अनिवार्य है।
- बीसवीं शताब्दी में मनोवैज्ञानिकों ने जो प्रयोग किए, उसमें उन्होंने प्राणी के व्यवहार की अलग-अलग ढंग से व्याख्या की है। इसलिए मनोविज्ञान में विभिन्न मत के सम्प्रदाय उत्पन्न हो गये।
- शिक्षा-मनोविज्ञान का प्रमुख उद्देश्य बालक के सर्वांगीण विकास में सहायता प्रदान करना है। मनोविज्ञान के सम्प्रदाय मानव मन को अपने-अपने दृष्टिकोण से समझने का प्रत्यत्न करते हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय ने मानसिक समस्याओं का गहन अध्ययन किया है। कुछ सम्प्रदायों ने शिक्षा के क्षेत्र में सीखने की प्रक्रिया, बौद्धिक विकास और व्यक्तित्व-विकास आदि से सम्बन्धित विषयों का अन्वेषण कर शिक्षा प्रक्रिया को प्रभावित किया है।

1.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **भग्नाशा**–हताशा
2. **कर्षण**–खींचना

1.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र एवं विज्ञान से किस रूप में भिन्न है। समझाइए।
2. संरचनावाद क्या है? यह प्रकार्यवाद से किस रूप में भिन्न है?
3. मनोविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र के अंतर्गत व्यवहारवाद का विश्लेषण प्रस्तुत कीजिए।

नोट

4. फ्रायड के सिद्धांत 'मनोविश्लेषणवाद' पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिए।
5. 'क्षेत्र सिद्धांत' पर एक टिप्पणी लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (ग) 2. (क) 3. (ख) 4. (ग)

1.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. मनोविज्ञान–*डॉ. सरयू प्रसाद, आगरा बुक स्टोर, आगरा।*
2. मनोविज्ञान–*मानव व्यवहार का अध्ययन–ब्रजकुमार मिश्र, पी.एच.आई. लर्निंग, नई दिल्ली।*
3. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
4. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 2: शिक्षा मनोविज्ञान: अर्थ, प्रकृति एवं विषय-क्षेत्र (Educational Psychology: Meaning, Nature and Scope)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

2.1 शिक्षा-मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Educational Psychology)

2.2 शिक्षा-मनोविज्ञान: एक स्वतंत्र अनुशासन (Educational Psychology: An Independent Discipline)

2.3 शिक्षा-मनोविज्ञान का विषय-क्षेत्र (Scope of Educational Psychology)

2.4 सारांश (Summary)

2.5 शब्दकोश (Keywords)

2.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

2.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शिक्षा-मनोविज्ञान को समझने में।
- शिक्षा-मनोविज्ञान के विषय-क्षेत्र को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। परिवार में जन्म लेने के साथ ही वह किसी न किसी रूप में समाज से जुड़ जाता है। समाज में मानव का व्यवहार कैसा हो अथवा होना चाहिए, इसकी शिक्षा भी हम समाज से ही प्राप्त करते हैं। शिक्षा-मनोविज्ञान का उद्देश्य व्यक्ति के व्यवहार में शिक्षा के माध्यम से परिवर्तन लाना है। शिक्षा-मनोविज्ञान के अंतर्गत शैक्षिक वातावरण में उत्पन्न समस्याओं और उनके समाधान का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

2.1 शिक्षा-मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Educational Psychology)

शिक्षा और मनोविज्ञान का अर्थ समझ लेने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य मानव-व्यवहार में रूपान्तर लाना है और मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जिसका सम्बन्ध व्यावहारिक

नोट

परिवर्तनों के अध्ययन से है। यह सामान्य मनोविज्ञान का व्यावहारिक रूप है। शिक्षा-मनोविज्ञान शिक्षार्थी तथा सीखने और शिक्षक की क्रियाओं से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का अध्ययन करता है।

शिक्षा-मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है-'शिक्षा' और 'मनोविज्ञान'। इसका शाब्दिक अर्थ है-शिक्षा सम्बन्धी मनोविज्ञान अर्थात् यह शिक्षा की प्रक्रिया में मानव-व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है तथा यह शैक्षिक समस्याओं को हल करने में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग करता है। **स्किनर** (Skinner) के शब्दों में "शिक्षा-मनोविज्ञान, अपना अर्थ शिक्षा से, जो सामाजिक प्रक्रिया है और मनोविज्ञान से, जो व्यवहार सम्बन्धी विज्ञान है, ग्रहण करता है।" (Educational Psychology takes its meaning from education a social process and from psychology a behavioural science.)

शिक्षा द्वारा मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो मानव-व्यवहार के सभी रूपों का अध्ययन करता है। इस दृष्टि से शिक्षा और मनोविज्ञान दोनों ही मानव व्यक्तित्व के विकास से सम्बन्धित हैं। शिक्षा-मनोविज्ञान का आधार मनोविज्ञान व्यक्तिगत आचरण के तथ्य और नियमों का अध्ययन करता है उसी प्रकार शिक्षा-मनोविज्ञान एक विशेष प्रकार के व्यक्तियों अर्थात् विद्यालय या विद्यालय के बहार शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के आचरण व व्यवहार का अध्ययन करता है। इसका अध्ययन-क्षेत्र अधिक संकीर्ण एवं विशिष्ट है। शिक्षा मनोविज्ञान अपने विषय के अध्ययन के लिए सामान्य मनोविज्ञान की पद्धतियों का प्रयोग करता है। यह बालक की प्रवृत्तियों, स्वभाव तथा उसके व्यवहार का शैक्षिक परिस्थितियों में अध्ययन करता है तथा शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का विवेचन, विश्लेषण और समाधान प्रस्तुत करता है। **स्किनर** के शब्दों में, "शिक्षा-मनोविज्ञान उन खोजों को शैक्षिक परिस्थितियों में प्रयोग करता है जो कि विशेष तथा मानव-प्राणियों के अनुभव और व्यवहार से सम्बन्धित हैं।" (Educational Psychology utilizes those findings that deal specifically with the experiences and behaviour of human being in educationl situation.)

शिक्षा-मनोविज्ञान उन प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है, जो मानव-व्यवहार को प्रभावित करती हैं। मनोविज्ञान में केवल सिद्धांतों का प्रतिपादन ही नहीं किया जाता, बल्कि यह भी बताने का प्रयत्न किया जाता है कि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का उपयोग करके किस प्रकार जीवन को स्वस्थ एवं समृद्धशाली बनाया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग व्यावहारिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उठने वाली विभिन्न समस्याओं और स्थितियों में किया जाता है। इस विभिन्न क्षेत्रों में शैक्षिक विषय महत्त्वपूर्ण है। चूँकि मनोविज्ञान के विभिन्न सिद्धांन्तों और नियमों का प्रयोग शैक्षिक परिस्थितियों में किया जाता है इसलिए शिक्षा-मनोविज्ञान को व्यावहारिक मनोविज्ञान भी कहते हैं। शिक्षा-मनोविज्ञान क्या है? उसका क्या अर्थ है? यह उसकी विभिन्न परिभाषाओं, उद्देश्यों तथा उसके विषय-क्षेत्र सम्बन्धी विवरण से और अधिक स्पष्ट हो जाएगा।

नोट्स

मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो मानव-व्यवहार के सभी रूपों का अध्ययन करता है। इस दृष्टि से शिक्षा और मनोविज्ञान दोनों ही मानव-विकास से संबंधित हैं।

शिक्षा-मनोविज्ञान की परिभाषा मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षाशास्त्रियों ने विभिन्न प्रकार से की है जिसमें से कुछ का उल्लेख किया जा रहा है-

(1) स्किनर–''शिक्षा-मनोविज्ञान मानवीय व्यवहार का शैक्षिक परिस्थितियों में अध्ययन करता है।'' (Educational Psychology deals with the behaviour of human being in educational situations.)

(2) क्रो और क्रो–''शिक्षा-मनोविज्ञान व्यक्ति के जन्म से वृद्धावस्था तक सीखने के अनुभवों का वर्णन और व्याखा करता है।'' (Educational Psychology describes and explains the experinces of an individual from birth to the old age.)

नोट

(3) नाल और अन्य–''शिक्षा-मनोविज्ञान मुख्य रूप से सामाजिक प्रक्रिया से परिवर्तित या निर्देशित होने वाले मानव-व्यवहार के अध्ययन से सम्बन्धित है।'' (Educational Psychology is concerned primarily with the study of human behaviour as it is changed or directed under the social process of education.)

(4) स्वारे तथा टेलफोर्ड– ''शिक्षा-मनोविज्ञान का मुख्य सम्बन्ध सीखने से है। यह मनोविज्ञान का वह अंग है, जो शिक्षा की मनोवैज्ञानिक पहलुओं की वैज्ञानिक खोज से सम्बन्धित है।'' (The major concern of educational psycholgy is learning, It is that field of psychology which is primarily concerned with the scientific investigation of the psychological aspects of education.)

(5) एलिस क्रो–''शिक्षा मनोविज्ञान, वैज्ञानिक विधि से ग्राह्य किये जाने वाले मानव-प्रतिक्रियाओं के उन सिद्धन्तों के प्रयोग करता है, जो शैक्षिक और अधिगम को प्रभावित करता हैं।'' (Educational psychology represents the application of scientifically derived principles of human reactions that affefct teaching and learning.)

(6) कॉलसनिक–''शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान के सिद्धान्तों तथा खोजों का शिक्षा में प्रयोग है।'' (Educational Psychology is the application of the finding and theories of psychology infield of education.)।

(7) स्टीफन–''शिक्षा-मनोविज्ञान शैक्षणिक विकास का अध्ययन है।'' (Educational Psychology is a systematic study of educational growth.)

जे. एम. स्टीफन्स के विचारों के अनुसार–''शिक्षा-मनोविज्ञान शैक्षणिक प्रगति के परिवेश का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। इस दृष्टि से शिक्षा-मनोविज्ञान के अन्तर्गत केवल मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का अनुप्रयोग ही नहीं बताया जाता, प्रत्युत यह मनोविज्ञान की एक विशिष्ट शाखा सिद्ध होती है। यह शाखा शैक्षणिक गतिविधियों को समझने का उसी प्रकार प्रयास करती है जिस प्रकार सामाजिक मनोविज्ञान की शाखा सामाजिक घटनाओं की व्याख्या का प्रयास करती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि शिक्षार्थी की शैक्षिक पर्यावरण के प्रति अनुक्रियाओं (responses) के साथ ही शैक्षिक वातावरण में उत्पन्न समस्याओं और उनके समाधान का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। **इनसाइक्लोपीडिया ऑफ एजूकेशनल रिसर्च** में इसकी व्याख्या व्यापक रूप से इस प्रकार की गई है– ''शिक्षा-मनोविज्ञान का सम्बन्ध सीखने में मानवीय तत्व से है। यह ऐसा क्षेत्र है, जिसमें मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में किए गए प्रयोगात्मक कार्य द्वारा प्राप्त प्रत्ययों(Concepts) को, शिक्षा में लागू किया जाता है। किन्तु यह ऐसा भी क्षेत्र है जिसमें ऐसे प्रत्ययों की शिक्षा में व्यावहारिकता की परीक्षा तथा शिक्षा की विशिष्ट रुचि के अध्ययन प्रकरणों को निर्धारित करने के लिए प्रयोगात्मक कार्य किया जाता है। यह सीखने-सिखाने की प्रक्रिया की विभिन्न शाखाओं, जो कि बालक को अधिकतम सुरक्षा तथा संतोष के साथ समाज से तादात्म्य या अनुकूलन न स्थापित करने में सहायता देने के लिए निर्देशित हों– का अध्ययन करता है।"

शिक्षा–मनोविज्ञान की प्रकृति (Nature of Educational Psychology) **–** उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर शिक्षा–मनोविज्ञान की प्रकृति अथवा स्वरूप पर विचार किया जा सकता है। शिक्षा–मनोविज्ञान की प्रकृति को वैज्ञानिक माना गया है। शिक्षा-मनोविज्ञान के अर्थ से यह स्पष्ट हो जाता है कि मनोविज्ञान के सिद्वान्तों का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में किया जाता है। आज शैक्षिक प्रक्रिया में मनोविज्ञान अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ है। मनोविज्ञान की सहायता से सीखने के नियम, ध्यान, थकान, स्मरण की विधियाँ, पाठ्यक्रम–निर्माण के सिद्धान्त, शिक्षण और शैक्षिक मूल्यांकन आदि के सम्बन्ध में वैज्ञानिक सिद्धान्तों और नियमों का निरूपण किया जाता है। इस प्रकार अध्ययन–पद्धति के दृष्टिकोण से मनोविज्ञान की भाँति शिक्षा–मनोविज्ञान की प्रकृति को वैज्ञानिक कहा जाता है। शिक्षा–मनोविज्ञान शिक्षा की विभिन्न समस्याओं के समाधान में वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके निष्कर्षों के

नोट

आधार पर सामान्य नियम का प्रतिपादन करता है और शैक्षिक परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार तथा सीखने से सम्बन्धित विषय में भविष्यवाणी करता है। शिक्षा–मनोविज्ञान की अध्ययन विधियों का वर्णन आगे किया जाएगा। आज शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षकों, परामर्शदाताओं और विद्यालयों के सभी क्रियाकलापों के लिए तथा मानव प्रकृति को समझने के लिए शिक्षा–मनोविज्ञान के क्षेत्र में अनेक अनुसंधान कार्य हो रहे है। शिक्षा–मनोविज्ञान को एक व्यावहारिक मनोविज्ञान माना जाता है, क्योंकि यह अधिगम प्रक्रिया की व्याख्या मानवीय व्यवहार के आधारभूत वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर करता है।

इस प्रकार शिक्षा-मनोविज्ञान शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का विवेचन, विश्लेषण और समाधान प्रस्तुत करता है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिए गये विचारों के आधार पर शिक्षा–मनोविज्ञान का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि–

(1) शिक्षा-मनोविज्ञान भी व्यवहार का विधायक विज्ञान है। इसमें भी मनोविज्ञान की तरह व्यवहार के क्या, क्यों और कैसे का अध्ययन किया जाता है? इसमें सीखने–सिखाने की क्रिया की शैक्षिक परिवेश में मनोवैज्ञानिक ढंग से व्याख्या की जाती है। इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक क्रो और क्रो का विचार ''मनोवैज्ञानिक सीखने से सम्बन्धित मानव विकास के 'कैसे' की व्याख्या करता है, शिक्षा सीखने के 'क्या' को प्रदान की चेष्टा करती है, शिक्षा–मनोविज्ञान सीखने के 'क्यों' और 'कब' से सम्बन्धित है।'' (Psychology explained 'how' of human development as related to learning education attempts of provide the 'what' of learning educational psychology is concerned with the 'why' and ' when' of learning.)

अर्थात **क्रो** एवं **क्रो** के अनुसार, शिक्षा मनोविज्ञान को व्यावहारिक विज्ञान माना जा सकता है क्योंकि यह मानव व्यवहार के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विधि से निश्चित किये गये सिद्धान्तों और तथ्यों के अनुसार सीखने की व्याख्या करने का प्रयास करता है।

स्वारे और टेलफोर्ड– "शिक्षा मनोविज्ञान अपनी खोज के रूप में विज्ञान की विधियों का प्रयोग करता है।"

(2) शिक्षा-मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है। इसमें भी शिक्षार्थी की शैक्षिक परिस्थितियों में क्रियाओं एवं व्यवहार का व्यवस्थित तथा नियमित अध्ययन वैज्ञानिक विधि द्वारा किया जाता है।

(3) शिक्षा-मनोविज्ञान के अध्ययन का केन्द्र शैक्षणिक परिवेश में सीखने से सम्बन्धित व्यवहार है। शिक्षा-मनोविज्ञान के स्वरूप को समझने के लिए मनोवैज्ञानिक **स्किनर** के विचारों पर ध्यान देना चाहिए- "शिक्षा-मनोविज्ञान उन खोजों को शैक्षिक परिस्थितियों में प्रयोग करता है जो कि विशेषतया मानव प्राणियों के अनुभव और व्यवहार से सम्बन्धित है।" (Educational Psychology utilized those finding that deal specifically with the experiences and behaviour of human being in educational situation.)

अन्त में हम कह सकते हैं कि शिक्षा-मनोविज्ञान शिक्षा की मनोवैज्ञानिक सिद्धातों एवं नियमों के अनुसार अध्ययन करने वाला विज्ञान है। यद्यपि शिक्षा-मनोविज्ञान की एक शाखा है किन्तु आज वह स्वतंत्र रूप से शैक्षिक समस्यओं का समाधान प्रयोगात्मक ढंग से करके, प्रयोगों के निष्कर्ष के आधार पर नियमों एवं सिद्धांन्तों का प्रतिपादन करता है और इन नियमों और सिद्धान्तों के अनुसार शैक्षणिक परिस्थितियों में होने वाले व्यवहार एवं क्रियाओं का अध्ययन करता है। इनका सीखने की क्रिया और सीखने के उत्पाद पर प्रभाव पड़ता है।

2.2 शिक्षा-मनोविज्ञानः एक स्वतंत्र अनुशासन (Educational Psychology: An Independent Discipline)

शिक्षा-मनोविज्ञान के सम्बन्ध में शिक्षा-शास्त्रियों का विचार है कि अब यह एक स्वतंत्र अनुशासन (discipline) हो गया है। जैसा कि इस उद्धरण से स्पष्ट है– "आज का शिक्षा-मनोविज्ञान, मनोविज्ञान के सामान्य सिद्धान्त को

नोट

ज्यों का त्यों मानकर उनका प्रयोग मात्र नहीं करता, बल्कि उनको अपने दैनिक कार्य में लागू करके उनका परीक्षण भी करता है और परीक्षण के बाद अपने सिद्धान्तों को अलग-अलग ढंग से निरूपित करता है। इसलिए आधुनिक शिक्षा-मनोविज्ञान का अपना विशिष्ट क्षेत्र, कार्यक्रम, समस्याएँ तथा विधियाँ हैं। इन सबमें इसका सामान्य मनोविज्ञान से सम्बन्ध आता है, किन्तु वे सब सामान्य मनोविज्ञान पर निर्भर नहीं हैं।" इसका सम्बन्ध एक ओर सामान्य मनोविज्ञान से है और दूसरी ओर शिक्षा से है। शिक्षाशास्त्र विषय से शिक्षा मनोविज्ञान का निकट संबंध है क्योंकि शिक्षाशास्त्र के साथ शिक्षा-मनोविज्ञान का अध्ययन करना अनिवार्य है। अत: हम यह कह सकते हैं कि शिक्षा-मनोविज्ञान शिक्षाशास्त्र का एक सामाजिक विज्ञान है।

आज शिक्षा-मनोविज्ञान को एक शैक्षिक अनुशासन के रूप में माना जाता है। शिक्षाशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों ने इसके पक्ष में निम्नलिखित विचार प्रकट किये हैं–

1. शिक्षा-मनोविज्ञान, मानव व्यवहार पर अपने को केंन्द्रित करता है।
2. यह तथ्यों (Facts) और सूचनाओं का पिंड (Body) है जो निरीक्षण (Observations) और खोज (Investigations) के फलस्वरूप प्राप्त हुए हैं।
3. इस ज्ञान-पिंड (समूह) को सिद्धान्तों और नियमों के रूप में सामान्यीकृत (generalize) किया जा सकता है।
4. शिक्षा-मनोविज्ञान ने एक पद्धति का विकास किया है जिसमें ज्ञान की खोज की जाती है, परिकल्पनाओं (Hypothesis) का परीक्षण होता है तथा सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है।
5. यह पद्धति अपने आप उत्पन्न होने वाली शैक्षिक समस्याओं का समाधान ढूँढने में सहायक होती है।
6. ये सूचनाएँ, ज्ञान, सिद्धान्त और पद्धति सभी मिलकर शिक्षा-मनोविज्ञान का विषय बनते है और शैक्षिक सिद्धान्त (Educational Theory) तथा शैक्षिक व्यवहार को आधार प्रदान करते हैं।

शिक्षा-मनोविज्ञान एक व्यावसायिक विषय के रूप में–शिक्षण-प्रक्रिया और सीखने की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण कारक शिक्षक होता है। अत: शिक्षण व्यवसाय को अपनाने के लिए वह व्यक्ति जो शिक्षक बनेगा उसे शिक्षाशास्त्र और शिक्षा-मनोविज्ञान का अध्ययन करना आवश्यक होता है। इस दृष्टि से शिक्षा-मनोविज्ञान को एक व्यावसायिक विषय भी कहा जा सकता है। इस पर विस्तार से 'शिक्षा-मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र' में प्रकाश डाला गया है।

2.3 शिक्षा-मनोविज्ञान का विषय-क्षेत्र (Scope of Educational Psychology)

शिक्षा-मनोविज्ञान के अर्थ तथा उद्देश्य पर विचार करने के उपरान्त यह स्पष्ट हो गया कि शिक्षा-मनोविज्ञान शैक्षणिक परिस्थितियों में शिक्षार्थी, सीखने की प्रक्रिया तथा सीखने के परिणाम (उपलब्धि या उत्पाद) का मनोवैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करता है। शिक्षा-मनोविज्ञान के क्षेत्र का स्पष्टीकरण **चार्ल्स ई. स्किनर** ने इस प्रकार किया है–''शिक्षा-मनोविज्ञान मानव व्यवहार का शैक्षिका परिस्थितियों में अध्ययन करता हैं। इसका सम्बन्ध उन मानव-व्यवहारों और व्यक्तित्व के अध्ययन से है जिनका उत्थान, विकास और मार्ग-प्रदर्शन शिक्षा की प्रक्रिया द्वारा होता है।'' शिक्षा-मनोविज्ञान की विषय-सामग्री के साथ सम्बन्ध में कुछ शिक्षा-शास्त्रियों के विचार इस प्रकार हैं–

(1) **गैरीसन व अन्य–** ''शिक्षा-मनोविज्ञान की विषय-सामग्री का नियोजन दो दृष्टिकोणों से किया जाता है– (1) शिक्षार्थी के जीवन को समृद्ध और विकसित करना और (2) शिक्षकों को अपने शिक्षण में गुणात्मक उन्नति करने में सहायता देने के लिए ज्ञान प्रदान करना।''

(The subject-matter of educational psychology is designed (1) to enhance and enrich the lives of he learners, and (2) to furnish teachers with he knowledge and under-standing that will help the institute improvement in the quality of instruction.)

नोट

(2) **डगलस व हालैंड–** ''शिक्षा-मनोविज्ञान की विषय-सामग्री, शिक्षक की प्रक्रियाओं में भाग लेने वाले व्यक्ति की प्रकृति, मानसिक जीवन और व्यवहार है।'' (The subject-matter of educational psychology is the nature, mental life, and behaviour of the individual undergoing the process of education.)

क्रो और क्रो–''शिक्षा-मनोविज्ञान की विषय-सामग्री का सम्बन्ध अधिगम को प्रभावित करने वाली दशाओं से है।'' (The subject-matter of educational psychology is concerned with the conditions, that affect learning.)

शिक्षा और मनोविज्ञान का घनिष्ठ सम्बन्ध है। आज मनोविज्ञान का व्यावहारिक रूप में शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग होने लगा है तथा इसकी सहायता से ही शिक्षण सम्बन्धी समस्याओं के समाधान का प्रयत्न किया जाता है। चूँकि शिक्षा आजीवन चलने वाली विकास की प्रक्रिया है, इसलिए शिक्षा-मनोविज्ञान का क्षेत्र बाल्यावस्था या किशोरावस्था तक ही सीमित नहीं है वरन् व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन की समस्त शैक्षणिक परिस्थितियों तक विस्तृत है।

जब ये प्रश्न किये जाते हैं कि शिक्षा किसे दी जाए? कब दी जाए? किस प्रकार दी जाए? किस परिस्थिति तथा किस व्यवस्था में दी जाए? किसके द्वारा दी जाए तथा शिक्षा क्या होती है? तब इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए शिक्षा-मनोविज्ञान के अर्न्तगत प्रमुख रूप से शिक्षार्थी, सीखने की प्रक्रिया, सीखने की परिस्थितियाँ तथा सीखने के परिणाम (उपलब्धि या उत्पाद) से सम्बन्धित बातों पर विचार किया जाता है।

(1) शैक्षिक परिस्थिति सम्बन्धी अध्ययन–शिक्षा में परिस्थिति एवं वातावरण का अत्यधिक महत्त्व है। शिक्षा के लिए शैक्षिक परिस्थिति का निर्माण नियोजित रूप से किया जाता है। यदि उचित वातावरण नहीं होता है तो शैक्षिक प्रयास सफल नहीं हो पाते। मनोविज्ञान में वातावरण का भी अध्ययन किया जाता है क्योंकि व्यवहार का जन्म देने वाले तत्व वातावरण में निहित होते हैं। बालक की सफल शिक्षा के लिए प्रभावकारी वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिए। यदि शिक्षा की अपेक्षाओं की दृष्टि से वातावरण नियोजित एवं नियंत्रित नहीं किया जाता तो शिक्षण एवं अधिगम सफलतापूर्वक निष्पादित नहीं हो सकते। अत: शिक्षा मनोविज्ञान में वातावरण का महत्त्व, वातावरण के प्रकार, अधिगम परिस्थियों की दशाएँ, शैक्षिक तकनीक, कक्षा पर्यावरण तथा वातावरण का शिक्षण, अधिगम, वैयक्तिक भिन्नता, व्यक्तित्व निर्माण, समायोजन एवं स्वास्थ अभिवृद्धि एवं विकास पर प्रभाव आदि सम्बन्धित विषयों का सविस्तार अध्ययन किया जाता है।

लिण्डग्रेन (Lindgren) ने शैक्षिक अथवा अधिगम परिस्थिति का एक केन्द्रीय क्षेत्र माना है। लिण्डग्रेन महोदय के अनुसार बालक की शिक्षा की एक परिस्थिति होती है जिसमें शैक्षिक प्रक्रिया घटित होती है। परिस्थिति में वे तत्व आते है जो बालक को या शैक्षिक प्रक्रिया को या दोनों को प्रभावित करते हैं। कक्षा, पुस्तकालय, वाचनालय, प्रयोगशाला आदि प्रत्यक्ष एवं तात्कालिक शैक्षिक परिस्थितियों का निर्माण करते हैं, जबकि समुदाय, प्रशासन एवं प्रबन्ध तंत्र तथा नीति निर्धारक आदि दूर से, किन्तु प्रभावकारी ढंग से, शैक्षिक परिस्थितियों का निर्माण एवं नियंत्रण करते है। इसी दृष्टि से शैक्षिक परिस्थिति सम्बन्धी अध्ययन को आधुनिक शिक्षा-मनोविज्ञान में सम्मिलित किया जा रहा है।

(2) शिक्षार्थी से सम्बन्धित अध्ययन– आधुनिक मनोवैज्ञानिक विचारधारा के अनुसार शिक्षा की द्विमुखी प्रक्रिया में सीखने वाला शिक्षा-प्रक्रिया का केन्द्र-बिन्दु होता है। शिक्षा-प्रक्रिया का आरम्भ होते ही मुख्य प्रश्न यही उठता है कि हम किसे शिक्षा दे रहे हैं? निश्चित रूप से हमारा उत्तर होगा– बालक को या अधिक व्यापक रूप से कहें तो इसे सीखने वाले की सज्ञा दी जाती है। आज इस प्रमुख प्रश्न पर ही शिक्षा-जगत में विशेष रूप से विचार किया जाता है और इसीलिए शिक्षा-मनोवैज्ञानिकों ने बालक या शिक्षार्थी को शिक्षा का केन्द्र बिन्दु माना है, जो शिक्षा इस केन्द्र के चारों ओर घूमती है उसी को बाल-केन्द्रित शिक्षा या मनोवैज्ञानिक शिक्षा कहते हैं। यह विचारधारा उस मनोवैज्ञानिक आन्दोलन का परिणाम है जिनका सूत्रपात शिक्षा-शास्त्री **रूसो** एवं **पेस्टालॉजी** ने किया और आज इसे

नोट

शिक्षा-मनोविज्ञान के अतिरिक्त सभी व्यक्तियों का प्रबल समर्थन प्राप्त है। प्रश्न उठता है कि शिक्षार्थी से हमारा क्या तात्पर्य है? सरल शब्दों में इसका अर्थ है– सीखने वाला।

एक शिक्षक तथा उसके अभिभावक को शिक्षार्थी के बारे में क्या-क्या जानने की और क्यों जानने की आवश्यकता होती है। इस विषय पर शिक्षार्थी से सम्बन्धित निम्नांकित बातों का अध्ययन आवश्यक है–

(क) वंशानुक्रम और वातावरण–बालकों की शिक्षा पर वंशानुक्रम से प्राप्त गुणों तथा उसके वातावरण का प्रभाव पड़ता है। शिक्षा-मनोविज्ञान में दोनों का अध्ययन किया जाता है और यह जानने का प्रयास किया जाता है कि शिक्षा पर वंशानुक्रम का अधिक प्रभाव पड़ता है या वातावरण का।

(ख) बाल विकास की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन–इसमें अभिवृद्धि एवं विकास के सिद्धान्त तथा बाल-विकास की विभिन्न अवस्थाओं-शैशव, बाल्य तथा किशोरावस्था का अध्ययन किया जाता है और इन अवस्थाओं में पाई जाने वाली शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक विशेषताओं के अनुसार शिक्षा का रूप निर्धारित किया जाता है।

शारीरिक विकास–शारीरिक विकास के अंतर्गत बाल विकास की विभिन्न अवस्थाओं–शैशवावस्था, बाल्यवस्था की शारीरिक विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है।

मानसिक विकास–इसमें संवेदन, प्रत्यक्षीकरण, निरीक्षण, ध्यान, रुचि, सीखना, प्रेरणा, स्मृति, विस्मृति कल्पना, चिन्तन, तर्कख निर्णय वृद्धि आदि का अध्ययन किया जाता है और विभिन्न प्रयोगों द्वारा इस बात का भी प्रयास किया जाता है कि बालक में इनका विकास किन विधियों द्वारा कराया जाये।

संवेगात्मक विकास–इसमें भावों, संवेगों, स्थायीभाव, मनोग्रन्थियों, मूल प्रवृत्तियों, सहज प्रवृत्तियों का अध्ययन होता है। संवेग बालक की शिक्षा में सहायक और कभी-कभी बाधक दोनों होते हैं। शिक्षा-मनोविज्ञान इसका अध्ययन करके यह पता लगाने का प्रयास करता है कि किस प्रकार संवेग बालक की शिक्षा में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

सामाजिक तथा चारित्रिक विकास–इसके अन्तर्गत सामाजिक क्रियाएँ, खेल, सामूहिक निर्माण की क्रियाएँ तथा पाठ्य-विषयान्तर क्रियाएँ, जिनसे सामाजिक और चरित्रिक विकास में सहायता मिलती है, उन सब बातों का अध्ययन होता है।

(ग) बालकों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं का अध्ययन–शिक्षा-मनोविज्ञान तीव्र, सामान्य, मन्द बुद्धि समस्यात्मक, असाधारण, मानसिक रोग-ग्रस्त और विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व वाले बालकों का अध्ययन करता है और यह निश्चित करता है कि किस प्रकार के बालकों को किस प्रकार की और किन विधियों से शिक्षा देनी चाहिए।

(घ) बालक के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन–इसमें मानसिक स्वास्थ्य के सिद्धान्त, मानसिक स्वास्थ्य पर बाधा डालने वाले तथा उन्नति करने वाले कारकों का अध्ययन होता है।

(ङ) बालक के व्यवहार तथा समायोजन सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन तथा निर्देशन देने का कार्य किया जाता है।

(3) सीखने की प्रक्रिया का अध्ययन (Learning Process)– सीखने का जीवन में बहुत महत्त्व है और शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य है व्यक्ति को सिखाना। सीखना उत्तेजना-अनुक्रिया का परिणाम है। वातावरण में जो उत्तेजनाएँ (Stimulate) होती हैं उनके प्रति बालक प्रारम्भ से ही अनुक्रियाएँ करने लगता है जो कि मूल प्रवृत्यात्मक होती हैं। अनुभव द्वारा वह इन अनुक्रियाओं में परिवर्तन करता रहता है। धीरे-धीरे समायोजित परिष्कृत प्रतिक्रियाएँ करने लगना ही सीखना है। इस प्रकार के सीखने के फलस्वरूप ही वह समाज में अपने को समायोजित कर पाता है। सामाजिक समायोजन की क्रिया सीखने की प्रक्रिया है। "प्रगतिशील व्यवहार व्यवस्थापन की प्रक्रिया को सीखना कहते हैं।" सीखना निरन्तर परिवर्तन की उस प्रक्रिया को कहते हैं जो आंतरिक और बाह्य कारणों द्वारा आरम्भ तथा अनुकूलित होती हैं और परिस्थितियों के प्रति समायोजन की ओर निर्देशित होती हैं।

नोट

क्या आप जानते हैं बालक शैक्षिक परिस्थितियों में उत्तेजनाओं से प्रेरित होकर आंतरिक और बाह्य अनुक्रियाएँ करता है और उसके परिणामस्वरूप सीखता है।

सीखने की प्रक्रिया में निम्नांकित बातों का अध्ययन किया जाता है–

(क) सीखने की प्रकृति या स्वरूप (Nature of Learning)– शिक्षा-मनोविज्ञान प्रयोगों द्वारा इस बात का पता लगाता है कि सीखने की कौन-सी विधि विशेष उपयोगी है और सीखने के सिद्धान्त, सीखने के नियम, सीखने की विभिन्न विधियों को, सीखने में पुरस्कार और दण्ड का क्या महत्त्व है एवं इनका उपयोग किस प्रकार किया जाए?

(ख) सीखने में प्रेरणा का स्थान–इसमें सीखने की प्रक्रिया की क्रिया में प्रेरणा का क्या महत्त्व है, इस पर विचार किया जाता है।

(ग) अधिगम का स्थानान्तरण (Transfer of Learning)– इसमें सीखने के स्थानान्तरण का क्या अर्थ एवं महत्त्व है, स्थानान्तरण किस प्रकार होता है तथा स्थानान्तरण के विभिन्न सिद्धान्त क्या हैं– आदि बातों का अध्ययन किया जाता है।

(घ) स्मृति तथा विस्मृति (Memory and Forgetting)– इसमें स्मृति का अर्थ, अंग, विशेषताएँ, प्रकार, नियम एवं विधियों पर विचार किया जाता है। सीखने की क्रिया के लिए विस्मृति के स्वरूप, इसके कारण तथा निवारण को जानना भी आवश्यक है। शिक्षा में सीखने की क्रिया को सफल बनाने के लिए स्मृति परीक्षण पर ध्यान देना आवश्यक है। सीखने के फलस्वरूप उसने कुछ धारण किया है उसी के आधार पर विशेष परिस्थिति में व्यवहार करना है। स्मरण करना धारण की प्रक्रिया है जो कि सीखने की प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण अंग है। अत: स्मृति एवं विस्मृति शिक्षा-मनोविज्ञान के अंतर्गत आते हैं।

(4) सीखने के परिणाम (उत्पाद) का अध्ययन (Product of Learning)– शिक्षा-मनोविज्ञान के क्षेत्र के अंतर्गत सीखने को प्रभावित करने वाली क्रियाएँ एवं दशाएँ आती हैं। सीखने के फलस्वरूप व्यक्ति कुछ ज्ञान प्राप्त करता है। सीखना मानसिक क्रियाओं की सहायता से सम्पन्न होता है। सीखने के कारण व्यक्ति जो कुछ ग्रहण कर लेता है, उसे शैक्षिक उपलब्धि, परिणाम या उत्पाद कहते है। सीखने के उत्पाद को जानने के लिये निम्नांकित बातों पर ध्यान देना चाहिए।

शैक्षिक परिणाम या उपलब्धि की जानकारी के लिये निम्नांकित बातों पर ध्यान दिया जाता है–

(क) शिक्षा में चिन्तन क्रिया, प्रत्यय, निर्माण, तर्क तथा समाधान का अत्यधिक महत्त्व है। बौद्धिक एवं मानसिक विकास या सीखने की प्रक्रिया को भली-भाँति संचालित करने के लिए इनका विकास करना आवश्यक है।

(ख) बालक मे सृजनात्मक प्रवृत्ति (creativity) का विकास करना आवश्यक है। शैक्षिक दृष्टि से इस प्रवृत्ति का उपयोग करके रचनात्मक कार्यो के माध्यम से शिक्षा देनी चाहिए।

(ग) विद्यालय में सामूहिक भावना के माध्यम से विद्यार्थियों में अनेक गुणों का विकास किया जा सकता है। इसके लिये विभिन्न समूहों के साथ सामाजिक अन्त:क्रिया (Social Interaction) का होना आवश्यक है। समूह भावना एवं नेतृत्व (Leadership) की शिक्षा के लिये समूह मनोविज्ञान बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

दिए गए कथन के लिए सही विकल्प चुनिए–

1. "शिक्षा-मनोविज्ञान शैक्षणिक विकास का अध्ययन है।" शिक्षा मनोविज्ञान की यह परिभाषा किसने दी है–

   (क) एलिस क्रो (ख) स्टीफ़न (ग) सी. एल. कुण्डू

नोट

2. "शिक्षा-मनोविज्ञान अपनी खोज के रूप में विज्ञान की विधियों का प्रयोग करता है।" यह परिभाषा किसने दी है–

   (क) स्वारे और टेलफ़ोर्ड (ख) क्रो और क्रो (ग) डगलस व हालैंड

3. "शिक्षा-मनोविज्ञान मानवीय व्यवहार का शैक्षिक परिस्थितियों में अध्ययन करता है।" यह परिभाषा किसने दी है–

   (क) चार्ल्स ई. स्किनर (ख) डगलस व हालैंड (ग) गैरीसन

(5) मापन और मूल्यांकन सम्बन्धी अध्ययन–इसमें शैक्षिक उपलब्धि एवं विषय-योग्यता का मापन तथा बुद्धि, चरित्र, व्यक्तित्व सम्बन्धी माप के लिये विभिन्न साधनों, विधियों, परीक्षणों और सांख्किीय कार्यों का प्रयोग किया जाता है। सीखने की प्रक्रिया में शिक्षकों की बुद्धि, व्यक्तित्व तथा विभिन्न योग्ताओं का ज्ञान होना आवश्यक है। इन सबकी माप करना शिक्षा-मनोविज्ञान के क्षेत्र में आता है।

(6) शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन सम्बन्धी अध्ययन–मापन और मूल्यांकन के परिणामों के आधार पर बालक को शिक्षा और व्यवसाय सम्बन्धी निर्देश दिया जाता है।

टास्क क्या आपकी राय में एक सफल शिक्षक के लिए शिक्षणशास्त्र का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए? तर्क सहित विचार कीजिए।

(7) शिक्षक सम्बन्धी अध्ययन–शिक्षा का एक प्रमुख अंग शिक्षक होता है। सीखने की प्रक्रिया में सीखने की परिस्थिति का निर्माण करने, उसे नियंत्रित एवं नियोजित करने में शिक्षक विशेष रूप से सहायक होता है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में शिक्षार्थी तथा शिक्षक के बीच जो अन्त:क्रिया होती है उससे शिक्षण कार्य तथा अधिगम कार्य में सहायता मिलती है। बालक के अधिगम में शिक्षक ही महत्त्वपूर्ण कारक होता है। शिक्षक के व्यक्तित्व में कृतित्व का बालक के विकास पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। अत: शिक्षा-मनोविज्ञान में शिक्षक के व्यक्तित्व, उसके प्रशिक्षण तथा उसके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य आदि का व्यापक रूप से अध्ययन किया जाता है।

उपर्युक्त विभिन्न बातों से सम्बन्धित अध्ययन शिक्षा-मनोविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में व्यापक रूप से आते हैं। यह बात अलग है कि आवश्यकतानुसार शिक्षा-मनोविज्ञान की पुस्तकों में किसी बात पर अधिक बल दिया गया है तो किसी बात पर कम। **प्रोफेसर सी. एल. कुण्डू** ने निम्नलिखित पाँच प्रमुख अध्ययन विषयों को शिक्षा-मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र माना है–

1. मानव अभिवृद्धि एवं विकास
2. अधिगम
3. व्यक्तित्व एवं समायोजन
4. मापन एवं मूल्यांकन
5. शिक्षा-मनोविज्ञान में तकनीक एवं प्रविधियाँ।

प्रो. कुण्डू के अनुसार, "संक्षेप मे जो कुछ शैक्षिक है अथवा जो कुछ बालक को उसकी कक्षा में व्यवहार को छूता है शिक्षा-मनोविज्ञान के क्षेत्र में आते हैं।" (In short, whatever is educational or whatver touches child in his classroom behaviour comes with the scope of educational psychology.)

नोट

अन्त में निष्कर्ष रूप में, स्किनर के शब्दों में कहा जा सकता है– "शिक्षा-मनोविज्ञान के क्षेत्र में वह सब ज्ञान और विधियाँ सम्मिलित हैं जो सीखने की प्रक्रिया को भली प्रकार से समझने और अधिक कुशलता से निर्देशित करने के लिए आवश्यक हैं।" (Educational Psychology takes for its province all informations and techniques pertinent to a better understanding and a more efficient direction of the learning process.)।

उपर्युक्त विवेचन से शिक्षा-मनोविज्ञान के क्षेत्र की विषय-वस्तु स्पष्ट हो गई है। इस विषय-वस्तु की विस्तृत व्याख्या आवश्यकतानुसार विभिन्न अध्यायों में प्रस्तुत की जा रही है।

2.4 सारांश (Summary)

- मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जिसका सम्बन्ध व्यावहारिक परिवर्तनों के अध्ययन से है।
- शिक्षा द्वारा मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो मानव-व्यवहार के सभी रूपों का अध्ययन करता है। इस दृष्टि से शिक्षा और मनोविज्ञान दोनों ही मानव व्यक्तित्व के विकास से सम्बन्धित हैं।
- चूँकि मनोविज्ञान के विभिन्न सिद्धांन्तों और नियमों का प्रयोग शैक्षिक परिस्थितियों में किया जाता है इसलिए शिक्षा-मनोविज्ञान को व्यावहारिक मनोविज्ञान भी कहते हैं।
- अध्ययन–पद्धति के दृष्टिकोण से मनोविज्ञान की भाँति शिक्षा–मनोविज्ञान की प्रकृति को वैज्ञानिक कहा जाता है। शिक्षा–मनोविज्ञान शिक्षा की विभिन्न समस्याओं के समाधान में वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके निष्कर्षों के आधार पर सामान्य नियम का प्रतिपादन करता है और शैक्षिक परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार तथा सीखने से सम्बन्धित विषय में भविष्यवाणी करता है।
- शिक्षा में परिस्थिति एवं वातावरण का अत्यधिक महत्त्व है। शिक्षा के लिए शैक्षिक परिस्थिति का निर्माण नियोजित रूप से किया जाता है। यदि उचित वातावरण नहीं होता है तो शैक्षिक प्रयास सफल नहीं हो पाते। मनोविज्ञान में वातावरण का भी अध्ययन किया जाता है क्योंकि व्यवहार का जन्म देने वाले तत्व वातावरण में निहित होते हैं। अत: शिक्षा-मनोविज्ञान में शिक्षक के व्यक्तित्व, उसके प्रशिक्षण तथा उसकी शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य आदि का व्यापक रूप से अध्ययन किया जाता है।

2.5 शब्दकोश (Keywords)

1. **सृजनात्मक प्रवृत्ति:** रचनात्मकता का गुण।

2.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. शिक्षा-मनोविज्ञान से आप क्या समझते हैं?
2. शिक्षा-मनोविज्ञान के विषय-क्षेत्र पर प्रकाश डालिए।
3. 'शिक्षा-मनोविज्ञान एक स्वतंत्र अनुशासन है'–इस पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment) नोट

1. (ख) 2. (क) 3. (क)

2.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. बच्चों में शिक्षा का महत्त्व एवं जानकारियाँ–*सीमा चोपड़ा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
2. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.एच. सिन्हा और रचना शर्मा, अटलांटिक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।*
3. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
4. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 3: शिक्षा-मनोविज्ञान की अध्ययन विधियाँ (Methods of Educational Psychology)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

3.1 शिक्षा-मनोविज्ञान की विधियाँ (Methods of Educational Psychology)

3.2 प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method)

3.3 जीवन-इतिहास विधि (Case History Method)

3.4 सारांश (Summary)

3.5 शब्दकोश (Keywords)

3.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

3.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शिक्षा-मनोविज्ञान की विभिन्न विधियों को समझने में।
- व्यक्ति-इतिहास पद्धति के विषय में जानकारी प्राप्त करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा-मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार का तथा विभिन्न समस्याओं का अध्ययन शैक्षिक परिस्थितियों में करता है। यह अध्ययन एक विधि से किया जाता है। विधि का अर्थ उस प्रणाली या तरीके से है जिसकी सहायता से व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन, विश्लेषण और व्याख्या करके एक निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है। विधि तथ्यों की जानकारी का एक तरीका है। शिक्षा-मनोविज्ञान भी अपनी विभिन्न समस्याओं का अध्ययन एवं समाधान करने के लिए वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करता है। शिक्षा-मनोविज्ञान में किसी पदार्थ विज्ञान की भाँति अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणालियों को कठोरता से लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि यहाँ अध्ययन की विषय-वस्तु जीवित शरीरधारी शिक्षार्थी का शैक्षिक व्यवहार होता है। हम यह भलीभाँति जानते हैं कि शिक्षाशास्त्र और शिक्षा-मनोविज्ञान को कुछ कारणों से विशुद्ध विज्ञान (रसायन एवं भौतिक शास्त्र) की कोटि में नहीं रखा जा सकता, क्योंकि इनके नियम अटल होते हैं और उनका सम्बन्ध भौतिक पदार्थों (Matter) से है जबकि शिक्षा एक मानवीय विषय है और यह मानव-समाज तथा शैक्षिक क्रिया-कलापों से सम्बन्ध रखती है।

नोट

अब शिक्षा-मनोविज्ञान को भी विज्ञान की कोटि में रखा जाने लगा है, क्योंकि इसने कल्पना, अनुमान तथा अन्धविश्वास को त्याग करके अपने कार्यों के लिए वैज्ञानिक विधि को अपनाया है। वैज्ञानिक भाषा की 'अध्ययन विधि' का तात्पर्य उस मार्ग से है जिस पर चलकर सत्य की खोज की जाती है।

वैज्ञानिक विधि क्या है?–यह अध्ययन की एक पद्धति है जो वैज्ञानिक नियमों के अन्तर्गत संचालित होती है। वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग केवल प्राकृतिक या भौतिक वस्तुओं के विषय में अध्ययन करने के लिए ही किया जा सकता है, यह एक भ्रान्त धारणा है। आज सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक पद्धति में धर्म, दर्शन या कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं है। इसके विपरीत पर्यवेक्षण (observation), परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण की एक व्यवस्थित कार्य-प्रणाली को वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं। **श्री जार्ज ए. लुण्डबर्ग** (Lundberg) ने वैज्ञानिक पद्धति के अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट किया है– "सामाजिक वैज्ञानिकों में यह विश्वास पुष्ट हो गया है कि उनके सम्मुख जो समस्याएँ हैं उनका हल यदि होना है तो सामाजिक घटनाओं के निष्पक्ष एवं व्यवस्थित निरीक्षण, सत्यापन, वर्गीकरण तथा विश्लेषण द्वारा ही होगा। इसी दृष्टिकोण को, उसके अति ठोस एवं सफल रूप में, मोटे तौर पर वैज्ञानिक पद्धति कहा जाता है।" (Social scientists are committed to the belief that the problems which confront them are to be solved if at all, by judicious and systematic observations, verification, classification and interpretations of social phenomenon. This approach in its most rigorous and successful from is broadly designated as the scientific method.)

वैज्ञानिक विधि के आवश्यक तत्व (Essential Elements of Scientific Method)– श्री मार्टिन डाल तथा मोनाकेसी (Martin Dale and Monachesi) ने कहा है- "विज्ञान भी विचार का एक तरीका है। अन्य सभी विचारों की तरह यह भी समस्याओं के प्रत्युत्तर में ही उदय होता है। यह अन्य सभी विचारों से प्रधानत: पद्धति में ही भिन्न है। विज्ञान की पद्धति की विशेषता यह है कि यह (1) अवलोकन पर बल देती है। (2) विचारों की व्यवहारत: या वास्तविक परीक्षा करने का प्रयत्न करती है। (3) उन प्रयोगों (Experiments) या आदर्श परिस्थितियों (Model situations) का विकास करती है जिनसे उनके विचारों की परीक्षा हो सके। (4) ऐसे नए उपकरणों (Tools) का आविष्कार करती है जिनसे अधिक निश्चित रूप में निरीक्षण और अधिक यथार्थ माप सम्भव हो। (5) अपने अध्ययन से वैज्ञानिकों के निजी आदर्शात्मक मूल्यांकनों का दृढ़ता से बहिष्कार करती है और इस समय पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है कि घटनाएँ वास्तविक रूप में कैसे घटित होती हैं न कि क्यों होती हैं या क्या होना चाहिए।" संक्षेप में हम कह सकते हैं कि वैज्ञानिक विधि अध्ययन की एक पद्धति है जो वैज्ञानिक नियमों के अन्तर्गत संचालित होती है।

शिक्षा-मनोविज्ञान अपनी समस्याओं के अध्ययन एवं शोध कार्यों में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करता है। इस विधि में विश्वसनीयता, यथार्थता, विशुद्धता, वस्तुनिष्ठता, निष्पक्षता निहित हैं। आधुनिक युग में विषय की वैज्ञानिकता का मापदण्ड उसकी पद्धति है। वैज्ञानिक पद्धति की प्रमुख विशेषताएँ हैं- सत्यापनीयता (Verificability), निश्चयात्मकता (Definiteness) वस्तुनिष्ठता (Objectivity), सामान्यता (Generality) पूर्वकथनीयता (Predictability), वैज्ञानिक पद्धति में अध्ययनकर्ता अवलोकन या निरीक्षण द्वारा सत्य परख करके, विषय से सम्बद्ध कोई निष्कर्ष निकाल कर नियम का प्रतिपादन करता है।

3.1 शिक्षा-मनोविज्ञान की विधियाँ (Methods of Educational Psychology)

शिक्षा-मनोविज्ञान की अध्ययन विधियों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है–

(1) आत्मगत या आत्मनिष्ठ विधियाँ (Subjective)–इस विधि के अन्तर्गत व्यक्ति स्वयं अपने व्यवहार की व्याख्या और विश्लेषण करता है जैसे अन्तदर्शन विधि और गाथावर्णन विधि।

नोट

(2) वस्तुगत या वस्तुनिष्ठ विधियाँ (Objective)–इस विधि में दूसरों के द्वारा तथ्यों का संग्रह किया जाता है। इसके अंतर्गत बहुत-सी विधियाँ हैं।

इन दोनों वर्गों की विभिन्न विधियों का उल्लेख नीचे दिया जा रहा है।

शिक्षा-मनोविज्ञान का मनोविज्ञान से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अत: दोनों की अध्ययन विधियों में समानता है, उनमें अन्तर केवल उपयोग के क्षेत्र का है। शिक्षा-मनोविज्ञान की प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं-

(1) अन्तर्निरीक्षण या अन्तर्दर्शन विधि (Introspective Method)

(2) बाह्य निरीक्षण या बहिर्दर्शन विधि (Observation Method)

(3) प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method)

(4) व्यक्ति इतिहास विधि (Case History Method)

(5) गाथा वर्णन विधि (Ancedotal Method)

(6) विकासात्मक विधि (Developmental Method)

(7) तुलनात्मक विधि (Comparative Method)

(8) साक्षात्कार विधि (Interview Method)

(9) प्रश्नावली विधि (Questionnaire Method)

(10) सांख्यिकी विधि (Statistical Method)

(11) उपचारात्मक विधि (Clinical Method)

(12) परीक्षण विधि (Test Method)

(13) मनोविश्लेषण विधि (Psycho-Analytical Method)

उपर्युक्त विधियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

(1) अन्तर्निरीक्षण या अन्तर्दर्शन विधि (Introspective Method)–इस विधि का उपयोग प्राचीन समय में अधिक होता था किन्तु आज इस विधि को वैज्ञानिक नहीं माना जाता। इसलिए इसका प्रयोग कम होता है। 'अन्तर्निरीक्षण' का तात्पर्य है 'अपने आप में देखना' (To look within or self observation)। इस पद्धति में व्यक्ति स्वयं अपनी मानसिक प्रक्रियाओं का निरीक्षण, विश्लेषण और वर्णन करता है। अन्तर्निरीक्षण में व्यक्ति अपने अनुभवों का स्मरण और अपनी भावनाओं का मूल्यांकन करने का प्रयास करता है। अन्तर्निरीक्षण के माध्यम से ही व्यक्ति अपने अनुभवों को अभिव्यक्त कर सकता है।

स्काउट के अनुसार-"अपनी ही मानसिक क्रियाओं का क्रमबद्ध अध्ययन ही अन्तर्निरीक्षण कहलाता है। **वुडवर्थ** ने इसे आत्मनिरीक्षण कहा है। व्यक्ति जब अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है तब उसे आत्मनिरीक्षण का सहारा लेना पड़ता है, क्योंकि मानसिक क्रियाएँ आत्मगत होती हैं इसलिए उनका प्रत्यक्ष ज्ञान इसी विधि से हो सकता है। वह अपनी मानसिक क्रियाओं के निरीक्षण के आधार पर जो सामग्री प्रस्तुत करता है उसे अन्तर्निरीक्षणात्मक सामग्री (data) कहते हैं। अन्तर्निरीक्षण में दो बातें पाई जाती हैं–(1) व्यक्ति अपनी मानसिक क्रियाओं का स्वयं निरीक्षण करता है, तथा (2) उनके सम्बन्ध में वितरण भी प्रस्तुत करता है।

गुण–

(*i*) इस पद्धति का सबसे बड़ा गुण यह है कि व्यक्ति अपनी मानसिक क्रियाओं और अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करके अपने को समझने में समर्थ हो जाता है। व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं का सीधा (direct) अध्ययन अन्तर्निरीक्षण द्वारा ही सम्भव है। जैसे सुख-दु:ख में किस प्रकार का अनुभव होता है। इसका उत्तर वह अन्तर्निरीक्षण द्वारा दे सकता है।

नोट

(*ii*) इस विधि का प्रयोग किसी भी समय और किसी भी स्थान पर किया जा सकता है। इस पद्धति में किसी प्रयोगशाला, यंत्र व सामग्री की आवश्यकता नहीं पड़ती। **रॉस** (Ross) ने कहा है- "मनोवैज्ञानिक का स्वयं का मष्तिष्क प्रयोगशाला होता है, क्योंकि यह सदैव उनके साथ रहता है, इसलिए वह अपनी इच्छानुसार कभी भी निरीक्षण कर सकता है।"

(*iii*) इस पद्धति का बार-बार प्रयोग करने से व्यक्ति की विचार शक्ति बढ़ती है। इस विधि से दूसरों की मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जा सकता है। मानसिक क्रियाओं के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को जो अनुभव हुए हैं उनका भी तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

(*iv*) अन्तर्निरीक्षण विधि द्वारा मनोविज्ञान का वैज्ञानिक अध्ययन आरम्भ हुआ। अत: मनोविज्ञान को विज्ञान बनाने में इस विधि ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। यद्यपि इस विधि का प्रयोग क्षेत्र सीमित है फिर भी इसकी सहायता से अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याओं का अध्ययन हुआ है। अन्तर्निरीक्षण विधि मनोविज्ञान की एक उपयोगी विधि है।

दोष–

(*i*) मानसिक प्रक्रियाओं का निरीक्षण असम्भव है क्योंकि वे अस्पष्ट, चंचल तथा अस्थिर होती हैं और उनमें शीघ्रता से परिवर्तन होता रहता है। मानसिक प्रक्रियाओं जैसे संवेग, अनुभूति, विचार आदि को हम स्थिर नहीं रख सकते, क्योंकि ध्यान-केन्द्रित करने का प्रयास करते ही वे मस्तिष्क से दूर चले जाते है। व्यक्ति हर समय एक ही मनोदशा में नहीं रहता है इसलिए उसका ध्यान अन्य बातों की ओर चला जाता है।

(*ii*) इस विधि का एक अन्य दोष यह है कि व्यक्ति स्वयं ही निरीक्षक तथा अनुभवकर्त्ता होता है। उसे निरीक्षण और अनुभव दोनों कार्य करने पड़ते हैं। यह कार्य परस्पर विरोधी है, क्योंकि यहाँ निरीक्षण और अनुभवकर्त्ता एक होते हैं। यह उपयुक्त नहीं है। मन के द्वारा मन का निरीक्षण असम्भव है। जैसा कि **रॉस** (Ross) ने कहा है "दृष्टा और दृश्य दोनों एक ही होते हैं, क्योंकि मन निरीक्षक का स्थान और साधन दोनों होता है।" इसलिए वह सभी अनुभवों का ईमानदारी के साथ निरीक्षण नहीं कर सकता। प्राय: इसमें व्यक्ति अपनी अनुभूतियों को संकोचवश प्रकट नहीं होने देना चाहता। कभी-कभी अधिक ध्यान देने पर भी हमारी मानसिक अनुभूतियाँ ही समाप्त हो जाती हैं। जैसे जब कोई व्यक्ति चिन्तन करता है और अन्तर्निरीक्षण द्वारा उस चिन्तन का अध्ययन करना चाहता है तो उस समय प्राय: ऐसा देखा जाता है कि व्यक्ति की चिन्तन-क्रिया समाप्त हो जाती है।

(*iii*) इस विधि का प्रयोग सभी प्रकार के प्राणियों पर सम्भव नहीं है। इस विधि द्वारा केवल सामान्य वयस्क व्यक्तियों का ही अध्ययन किया जा सकता है, क्योंकि यह विचार-शक्ति पर निर्भर होती है। छोटे बालकों तथा मानसिक रोगियों पर इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता। इसका प्रयोग केवल सामान्य व्यक्ति पर ही कर सकते हैं।

(*iv*) इस विधि का एक दोष यह भी है कि हम अपनी सभी अनुभूतियों को भाषा द्वारा अभिव्यक्त नहीं कर सकते जैसे प्राय: हम अपने मानसिक या शारीरिक कष्ट को, सुखद या दु:खद अनुभूति को ठीक-ठीक शब्दों में अभिव्यक्त नहीं कर पाते। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार यह दोष इस विधि का नहीं है बल्कि भाषा का है क्योंकि हम अन्तर्निरीक्षण तो कर ही लेते हैं किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से भाषा की इस सीमा का अन्तर्निरीक्षण पर भी प्रभाव पड़ता है। प्रश्न उठता है कि यदि हम अपनी अन्तर्निरीक्षण की अनुभूति को बता नहीं सकते तो उसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन कैसे सम्भव होगा। मनोविज्ञान की विधि ऐसी होनी चाहिए जिसकी सहायता से मनोवैज्ञानिक अध्ययन भाषा की त्रुटियाँ रहने पर भी किया जा सके।

नोट

(v) इस विधि द्वारा प्राप्त ज्ञान आत्मगत (Subjective) होता है। इससे एक ही व्यक्ति की मानसिक दशा का पता चल सकता है। इससे प्राप्त सामग्री दूसरे व्यक्ति के अन्तर्निरीक्षण से प्राप्त सामग्री से भिन्न होती है। इसलिए न तो उनकी तुलना की जा सकती है और न उनकी सत्यता की जाँच ही की जा सकती है। अत: इस विधि द्वारा प्राप्त ज्ञान के आधार पर वैज्ञानिक नियम नहीं बनाये जा सकते हैं।

क्या आप जानते हैं मानसिक प्रक्रियाओं का निरीक्षण असंभव है क्योंकि वह अस्पष्ट, चंचल तथा अस्थिर होती हैं और उनमें शीघ्रता से परिवर्तन होता रहता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इस विधि में कई अन्य दोष होने के कारण मनोवैज्ञानिकों ने इसका परित्याग कर दिया है। उन्होंने इन्हीं कठिनाइयों के कारण इस पद्धति को अपूर्ण ठहराया है।

(2) बाह्य-निरीक्षण या बहिर्दर्शन विधि–इस विधि में अध्ययनकर्त्ता व्यक्ति के व्यवहार और क्रियाओं का निरीक्षण अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर करता है। इसमें बाह्य रूप से जो कुछ स्पष्ट दिखाई देता है उसका निरीक्षण किया जाता है और उसी के आधार पर उसकी मानसिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। व्यक्ति के व्यवहार, क्रियाओं या प्रतिक्रियाओं का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करके उसकी मानसिक अवस्था का पता लगाया जाता है। जैसे किसी व्यक्ति को मुस्कराता देखकर हम जान लेते हैं कि वह प्रसन्न है, आँसू बहाते देखकर उसे दु:खी समझ लेते हैं। बाह्य-निरीक्षण द्वारा स्वाभाविक परिस्थितियों में होने वाले व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने इस विधि को विशेष महत्त्व दिया है। उन्होंने अनुभूति के स्थान पर व्यवहार को मनोविज्ञान का अध्ययन विषय माना है और अन्तर्निरीक्षण के स्थान पर बाह्य-निरीक्षण को मनोविज्ञान की विधि स्वीकार किया। उनके अनुसार अनुभूति वैयक्तिक और आत्मगत होती है। इसके विपरीत व्यक्ति के बाह्य व्यवहारों का सरलतापूर्वक देखा और समझा जा सकता है। उसके व्यवहार को देखकर मानसिक अवस्था की जानकारी हो जाती है। उनके अनुसार व्यवहारों के अध्ययन के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष अधिक वैज्ञानिक होगा। चूँकि व्यवहार व्यक्ति की शारीरिक क्रियाओं में ही दिखाई देता है, बाह्य-निरीक्षक व्यक्ति की शारीरिक क्रियाओं का निरीक्षण करके उसके आधार पर सामान्य मनोवैज्ञानिक नियमों का प्रतिपादन करता है। निरीक्षण विधि के निम्न सोपान हैं-

(क) दूसरों के व्यवहार का प्रत्यक्ष निरीक्षण करके उनकी मन:स्थिति का पता लगाना–यह विधि का मुख्य तत्व है। इसमें निरीक्षण द्वारा तथ्यों को सावधानीपूर्वक नोट करना आवश्यक होता है।

(ख) व्यवहार की व्याख्या और विश्लेषण करना–इसमें अध्ययनकर्त्ता अपने अन्तर्दर्शन के आधार पर दूसरों के व्यवहार की व्याख्या और विश्लेषण करता है, जैसे किसी व्यक्ति को आँसू बहाते देखकर हम अपने पूर्व अनुभव से उसके दु:खी होने का अनुमान लगा लेते हैं।

नोट्स बाह्य-निरीक्षण द्वारा स्वाभाविक परिस्थितियों में होने वाले व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

3.2 प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method)

प्रयोगात्मक विधि प्राकृतिक विज्ञान की देन है जिसके द्वारा कार्य-कारण (Cause and Effect relationship) संबंध का अध्ययन श्रेष्ठ ढंग से किया जाता है। आधुनिक समाज मनोविज्ञान में इस विधि का उपयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इस विधि में सामाजिक व्यवहार का अध्ययन प्रयोगशाला से अलग वास्तविक परिस्थितियों में भी किया जाता है। इन्हें क्षेत्र प्रयोग (Field Experiment) कहते हैं। कुछ प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

नोट

1. **रैथस** (Rathus)–"प्रयोग, वैज्ञानिक जाँच की एक विधि है जिसमें स्वतंत्र चर को प्रयुक्त करके आश्रित चर पर उसके प्रभाव का निरीक्षण करके कारण-प्रभाव संबंध की खोज की जाती है।" (Experiment is a method of scientific investigation that seeks to discover cause and effect relationships by introducing independent variables and observing their effects on dependent variables.)।
2. **गैरेट** (Garrett)–"नियंत्रित दशाओं में प्रेक्षण ही प्रयोग है।" (Experiment is observation under controlled conditions)
3. **टाउनसैंड** (Townsend)–"नियंत्रण के अभाव में किया गया प्रयोग व्यर्थ है।" (No experiement is better than its poorest control.)
4. **जहोदा** (Jahoda)–"प्रयोग, परिकल्पना के परीक्षण की विधि है।" (Experiments is a method of testing hypotheses.)
5. **फेस्टिगर** (Festiger)–"प्रयोग का मूल आधार स्वतंत्र चर में परिवर्तन करने से परतंत्र चर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है।" (The essence of an experiment may be described as oberving the effect on a dependent variable of the manipulation of an independent variable.)
6. **चैपलिन** (Chaplin)–"प्रयोग, निरीक्षणों की एक श्रृंखला है जो किसी परिकल्पना की जाँच के लिए नियंत्रित परिस्थिति में किया जाता है।" (Experiment is a series of obervations carried out under controlled conditions for testing the hypothesis.)

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रयोगात्मक विधि वह विधि है जिसमें योजनानुसार चरों को घटा-बढ़ा कर नियंत्रित दशाओं में अध्ययन किया जाता है। इस विधि में कार्य को आश्रित चर (Dependent Variable) तथा कारण को स्वतंत्र चर (Independent Variable) कहते हैं।

किसी भी व्यवहार को प्रभावित करने वाले अनेक कारक होते हैं। अध्ययनकर्त्ता इन कारकों में से कुछ को अध्ययन के लिए चुन लेता है तथा शेष कारकों को नियंत्रित करके चुने हुए कारकों का व्यक्ति के व्यवहार पर प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। चुने हुए कारक स्वतंत्र चर कहलाते हैं तथा नियंत्रित किये गये कारक बाधक चर (Intervening Variables) कहलाते हैं। प्रयोग करते समय स्वतंत्र चर को घटा बढ़ा कर (Manipulation) कार्य पर पड़ने वाले प्रभावों को नोट कर लिया जाता है। अन्त में, प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण कर परिकल्पना की जाँच की जाती है। प्रयोगात्मक अध्ययन में कम से कम दो अध्ययन समूह होते हैं जिनमें से एक को नियत्रित समूह (Controlled Group) तथा दूसरे को प्रयोगात्मक समूह (Experimental Group) कहते हैं।

टास्क प्रयोगात्मक विधि पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए।

प्रयोग की विशेषताएँ (Characteristics of Experiment)

प्रयोग की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. इसमें परिस्थिति का प्रत्यक्ष अवलोकन किया जाता है।
2. इसमें प्रायोगिक अवस्थाओं का नियंत्रण रहता है।
3. इसमें कारण-प्रभाव संबंध (Cause-effect relationship) का अध्ययन किया जाता है।

नोट

4. इसके द्वारा परिकल्पना की पुष्टि की जाती है।
5. इसमें स्वतंत्र चर का आश्रित चर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाता है।
6. नियंत्रित परिस्थितियों में किसी कारक के प्रभाव का निरीक्षण प्रयोग कहलाता है।
7. इसमें बाह्य कारकों पर नियंत्रण करके प्रयोगात्मक चर के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है।
8. प्रयोग की मुख्य विशेषताएँ–नियंत्रित परिस्थिति का उपयोग, प्रभावों का निरीक्षण तथा प्रभावों का शुद्ध मापन होती हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

दिए गए कथन के सामने सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाएँ–

1. शिक्षा-मनोविज्ञान की अन्तर्निरीक्षण विधि ही सर्वाधिक मान्य विधि है। ☐
2. बहिर्दर्शन विधि के अन्तर्गत बाह्य रूप से जो कुछ स्पष्ट दिखाई देता है उसी के निरीक्षण के आधार पर अध्ययन किया जाता है। ☐
3. प्रयोगात्मक विधि वह विधि है, जिसमें योजनानुसार चरों को घटा-बढ़ाकर नियंत्रित दशाओं में अध्ययन किया जाता है। ☐
4. प्रयोगात्मक विधि द्वारा शुद्ध प्रयोग भी संभव है ☐

प्रयोगात्मक विधि के सोपान (Steps of Experimental Method)

प्रयोगात्मक विधि के प्रमुख सोपान इस प्रकार हैं–

1. **समस्या** (Problem)–इसके अन्तर्गत अध्ययनकर्त्ता किसी न किसी समस्या का चयन करता है। इस कार्य में वह पहले किये गये कार्यों, सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन, वर्तमान कार्यों का अध्ययन, विशेषज्ञों से विचार विमर्श आदि से सहायता ले सकता है। कभी-कभी वह स्वयं ही शिक्षा की ज्वलन्त समस्याओं को चुन लेता है।
2. **सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन** (Review of Related Literature)–लिटरेचर रिव्यू करके वह यह जानना चाहता है कि समस्या पर किन विद्वानों ने कितने और क्या परिणाम प्राप्त किये हैं तथा यह अध्ययन कब किये गये हैं।
3. **उपकल्पना का निर्माण** (Formulation of Hypothesis)–लिटरेचर रिव्यू के आधार पर वह उपकल्पना का निर्माण करता है। उपकल्पना बना लेने से समस्या सुनिश्चित (Pin-pointed) हो जाती है।
4. **चर** (Variables)–इसके अन्तर्गत शोधकर्त्ता यह निश्चय करता है कि उसे कितने चर लेने हैं तथा मध्यवर्ती (बाधक) चरों की किस प्रकार पहचान करनी है तथा उन्हें नियंत्रित करना है।
5. **न्यादर्श** (Sample)–इसके अन्तर्गत यह निश्चय किया जाता है कि अध्ययन समूह किन लोगों का तथा कितना बड़ा होगा। न्यादर्श चयन कुछ विशेष विधियों द्वारा किया जाता है।
6. **उपकरण तथा सामग्री** (Tools and Material)–यह निश्चित किया जाता है कि आँकड़ों को एकत्रित करने के लिए किस प्रकार के उपकरणों की आवश्यकता होगी। कभी-कभी उसे स्वयं भी Tool विकसित करने पड़ जाते हैं।

नोट

7. **चरों का नियंत्रण** (Control of Variables)–इससे अन्तर्गत शोधकर्त्ता मध्यवर्ती चरों को नियंत्रित करके शुद्ध आँकड़े प्राप्त करता है।
8. **विधि** (Procedure)–इसके अन्तर्गत शोधकर्त्ता अपने प्रयोग की सम्पूर्ण योजना का संक्षिप्त वर्णन संकलित करता है।
9. **परिणाम** (Result)–प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण करके निष्कर्ष प्राप्त किये जाते हैं तथा उपकल्पना की जाँच की जाती है।
10. **व्याख्या तथा सामान्यीकरण** (Discussion and Generalization)– प्राप्त परिणामों की व्याख्या करके प्रयोगकर्त्ता अपने परिणामों की तुलना दूसरे मनोवैज्ञानिकों के परिणामों से करते हैं। अन्त में, सांख्यिकीय विधियों के आधार पर वह अपने परिणामों का सामान्यीकरण करता है।

प्रयोगशालयी प्रयोग एवं क्षेत्र प्रयोग में अंतर (Difference Between Laboratory Experiment and Field Experiment)

प्रयोगशालयी प्रयोगों में यह देखा गया है कि प्रयोज्य को यह ज्ञात हो जाता है कि उन पर प्रयोग किया जा रहा है तो उनका व्यवहार स्वाभाविक नहीं रह पाता। साथ ही, प्रयोगशाला की कृत्रिम परिस्थिति के कारण परिणाम भी शुद्ध प्राप्त नहीं होते हैं। इन्हीं सीमाओं के कारण क्षेत्र प्रयोगों का विकास हुआ है। इसका अर्थ नहीं है कि क्षेत्र प्रयोग दोषमुक्त होते हैं। क्षेत्र प्रयोगों की सबसे बड़ी सीमा यह है कि इनमें चरों का नियंत्रण व प्रहस्तन (Manipulation) प्रयोगशालयी प्रयोगों की अपेक्षा कठिन होता है।

प्रयोगात्मक विधि के लाभ (Advantages)–इस विधि के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं–

1. कार्य-कारण संबंधों का अध्ययन अधिक शुद्धता से किया जाता है।
2. यह विधि अन्य विधियों की तुलना में शुद्ध एवं संक्षिप्त है।
3. यह विधि उपकल्पना के परीक्षण की श्रेष्ठ विधि है।
4. यह विधि अन्य विधियों की अपेक्षा सर्वाधिक वैज्ञानिक विधि है।
5. इस विधि द्वारा प्राप्त परिणाम वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय, वैध, सार्वभौमिक होते हैं।
6. इस विधि द्वारा यथार्थ निरीक्षण करके सही आँकड़े और तथ्य एकत्रित किये जा सकते हैं।
7. इस पद्धति द्वारा प्राप्त निष्कर्षों की उन्हीं परिस्थितियों में पुनः जाँच की जा सकती है।
8. यह पद्धति S-O-R के बीच संबंध स्थापित करने में सहायक होती है।
9. इस पद्धति की सहायता से शिक्षा संबंधी अनेक प्रकार की समस्याओं को सुलझाया जा सकता है।
10. इसमें प्रयोगकर्त्ता सदैव सक्रिय रहता है।

दोष (De-merits)–इस विधि में कुछ दोष भी हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. शुद्ध प्रयोग करना सम्भव नहीं।
2. स्वतंत्र चर का घटाना-बढ़ाना या प्रहस्तन एक कठिन कार्य है।
3. क्षेत्र अध्ययनों में प्रयोगात्मक विधि का प्रयोग सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता।
4. प्रयोग करते समय प्रयोज्य से सहयोग नहीं मिलता।
5. इस विधि का प्रयोग व्यवहार के विभिन्न रूपों के अध्ययन में नहीं किया जा सकता।

नोट

6. यह पद्धति अन्य पद्धतियों की तुलना में कहीं अधिक खर्चीली है।
7. इस पद्धति में प्रयोज्य के व्यवहार में कृत्रिमता आ जाती है।
8. इस पद्धति द्वारा सभी प्रकार की घटनाओं का अध्ययन करना सम्भव प्रतीत नहीं होता।
9. इस पद्धति को एक स्वतंत्र पद्धति न मानकर इसे अनेक पद्धतियों का समन्वित रूप माना जाता है।
10. इस विधि में प्रशिक्षित व्यक्तियों का होना आवश्यक है।

निष्कर्ष (Conclusion): इस पद्धति के द्वारा प्राप्त परिणाम अन्य पद्धतियों से प्राप्त परिणामों की अपेक्षा अधिक सत्य, विश्वसनीय तथा वैज्ञानिक होते हैं। इसके निष्कर्षों को सत्यापित किया जा सकता है तथा उनके आधार पर नियम या सिद्धांत भी बनाये जा सकते हैं। इस प्रकार, यह एक वैज्ञानिक पद्धति है। अत: उपरोक्त दोषों के होते हुए भी इस पद्धति को अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अनुसंधान की सबसे अच्छी पद्धति माना है।

3.3 जीवन-इतिहास विधि (Case History Method)

व्यक्ति इतिहास विधि (Case History Method) का विकास ईसा से लगभग 400 वर्ष पूर्व समस्यात्मक बालकों का अध्ययन करने के लिए किया गया था। इस विधि का प्रयोग भी व्यक्ति से संबंधित सूचनाएँ एकत्रित करने के लिए किया जाता है। इस विधि का सुव्यवस्थित रूप 10वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में स्थापित हुआ। कानून के क्षेत्र में इस विधि का अत्यधिक प्रयोग हुआ। इसके बाद इस विधि का प्रयोग चिकित्सा, मनोविज्ञान एवं शिक्षा के क्षेत्र में भी किया जाने लगा। शिक्षा के क्षेत्र में इस विधि का प्रादुर्भाव अत्यन्त पुराना नहीं है। अब तक अध्यापक अपना प्रमुख कार्य अध्यापन को ही मानता था, छात्र में व्यक्तिगत रुचि लेना वह आवश्यक नहीं समझता था। लेकिन अब शिक्षा के क्षेत्र में निर्देशन, व्यक्तिगत विभिन्नता, मानसिक स्वास्थ्य आदि की महत्ता के कारण प्रत्येक छात्र को समझना आवश्यक हो गया है। व्यक्ति इतिहास विधि द्वारा किसी एक व्यक्ति की विशेषताओं, व्यवहार एवं उसके मानसिक जीवन का अध्ययन किया जाता है। एक प्रकार से व्यक्ति इतिहास विधि, व्यक्ति से संबंधित समस्त उपलब्ध तथ्यों का संग्रह मात्र है।

व्यक्ति इतिहास विधि एक प्रकार का व्यक्ति का इतिहास होता है। व्यक्तित्व के मापन में यह भी एक विधि के रूप में स्वीकार की गई है। जब हम किसी व्यक्ति के संबंध में उसके जीवन इतिहास उसकी घरेलू पृष्ठ भूमि, रुचियों, आवश्यकताओं, उसके कार्य-कलापों, स्वास्थ्य संबंधी जानकारी प्राप्त करने के लिए उसके मित्रों, पारिवारिक सदस्यों तथा अन्य संबंधित व्यक्तियों से मिलकर सूचनाएँ एकत्रित करते हैं तो यह सब व्यक्ति इतिहास (Case-study) के अंतर्गत आता है। इसके द्वारा व्यक्ति का एक सामान्य परिचय हमें प्राप्त हो जाता है। यह भी मूल्यांकन की एक प्रभावी विधि है, परन्तु इसकी विश्वसनीयता बहुत अधिक नहीं मानी गई है, क्योंकि इसमें सूचनाओं के स्रोत ऐसे होते हैं जो कभी-कभी ठीक प्रकार से सूचनाएँ नहीं दे पाते हैं। व्यक्ति इतिहास का उद्देश्य समायोजन समस्याओं (Adjustment-Problems) का पता लगाना होता है। यह पद्धति मानसिक अस्पतालों (Mental Hospitals) में अधिक उपयोगी होती है। इस प्रकार के व्यक्ति इतिहास में अध्यापक संचयी आलेख पत्र (Cumulative Record Cards) का भी प्रयोग कर सकता है। कभी-कभी मनोवैज्ञानिक यह जानने की कोशिश करता है कि विद्यार्थी के बारे में अध्यापक से उसे कुछ एकत्रित तथ्य मिल जायें। मनोवैज्ञानिक या कोई सामाजिक कार्यकर्त्ता व्यक्ति इतिहास में प्राय: निम्न बातों को जानने की कोशिश करता है, जैसे–नाम, पता, घरेलू पृष्ठभूमि, व्यवसाय, वैवाहिक संबंध, व्यक्तित्व के गुण आदि। यद्यपि व्यक्ति इतिहास को रोग का निदान अथवा चिकित्सा का आधार नहीं बनाया जा सकता, फिर भी, इससे पर्याप्त मात्रा में सहायता जरूर मिलती है। इस विधि का प्रयोग प्राय: असाधारण व्यक्तियों अथवा बालकों को समझने के लिए किया जाता है।

नोट

क्रो और क्रो (Crow & Crow) ने लिखा है- "व्यक्ति-इतिहास विधि का मुख्य उद्देश्य किसी कारण का निदान करना है।" (The purpose of case history is predominantly diagnostic.')

इस विधि के निम्नलिखित गुण-दोष हैं-

गुण–

(*i*) इस विधि का उपचारात्मक शिक्षण में प्रयोग किया जा सकता है। मन्द-बुद्धि, पिछड़े बालक तथा मानसिक विकारग्रस्त बालकों के अध्ययन एवं उपचार करने में यह विधि सहायक होती है।

(*ii*) व्यापक ढंग से विभिन्न स्रोतों से तथ्य संचय किये जाते हैं। इसलिए निष्कर्ष पर विश्वास किया जा सकता है।

दोष–

(*i*) इस विधि का प्रयोग करने के लिये चिकित्सालय (Clinic) विशेषज्ञ की जरूरत पड़ती है अत: यह विधि व्ययशील भी है।

(*ii*) इस विधि में समय, धन और श्रम अधिक लगता है। इसलिए हमारे देश में इस विधि का प्रयोग करने में कठिनाई उपस्थित होती है।

3.4 सारांश (Summary)

- शिक्षा-मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार का तथा विभिन्न समस्याओं का अध्ययन शैक्षिक परिस्थितियों में करता है। यह अध्ययन एक विधि से किया जाता है। विधि का अर्थ उस प्रणाली या तरीके से है जिसकी सहायता से व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन, विश्लेषण और व्याख्या करके एक निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है। अब शिक्षा-मनोविज्ञान को भी विज्ञान की कोटि में रखा जाने लगा है, क्योंकि इसने कल्पना, अनुमान तथा अन्धविश्वास को त्याग करके अपने कार्यों के लिए वैज्ञानिक विधि को अपनाया है।
- शिक्षा-मनोविज्ञान की अध्ययन विधियों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है– **(1) आत्मगत या आत्मनिष्ठ विधियाँ** (Subjective)–इस विधि के अन्तर्गत व्यक्ति स्वयं अपने व्यवहार की व्याख्या और विश्लेषण करता है जैसे अन्तदर्शन विधि और गाथावर्णन विधि। **(2) वस्तुगत या वस्तुनिष्ठ विधियाँ** (Objective)– इस विधि में दूसरों के द्वारा तथ्यों का संग्रह किया जाता है। इसके अंतर्गत बहुत-सी विधियाँ हैं।

3.5 शब्दकोश (Keywords)

1. **अंतर्दर्शन विधि**–इस पद्धति में व्यक्ति स्वयं की मानसिक क्रियाओं का निरीक्षण, विश्लेषण करता है।
2. **बहिर्दर्शन विधि**–इसमें बाह्य रूप से जो कुछ स्पष्ट दिखाई देता है, उसका अध्ययन किया जाता है।

3.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. शिक्षा-मनोविज्ञान की अध्ययन पद्धतियों का उल्लेख कीजिए।
2. शिक्षा-मनोविज्ञान के अध्ययन की अंतर्निरीक्षण विधि क्या है? इसके गुण-दोषों का विवेचन कीजिए।
3. शिक्षा-मनोविज्ञान की जीवन-इतिहास पद्धति (Case History Mathod) से आप क्या समझते हैं?

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (×) 2. (✓) 3. (✓) 4. (×)

3.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
2. अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
3. मनोविज्ञान–*डॉ. सरयू प्रसाद, आगरा बुक स्टोर, आगरा।*
4. मनोविज्ञान–*मानव व्यवहार का अध्ययन–ब्रजकुमार मिश्र, पी.एच.आई. लर्निंग, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 4: अभिवृद्धि एवं विकास का सामान्य स्वरूप (The General Nature of Growth and Development)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

4.1 अभिवृद्धि और विकास का अर्थ (Meaning of Growth and Development)

4.2 परिपक्वता (Maturity)

4.3 विकास के सिद्धान्त (Principles of Development)

4.4 सारांश (Summary)

4.5 शब्दकोश (Keywords)

4.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

4.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अभिवृद्धि और उसके विकास के अर्थ को समझने में।
- परिपक्वता क्या है? इसे जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

बालक के विकास की प्रक्रिया जन्म पूर्व जब वह माता के गर्भ में आता है तभी से आरम्भ हो जाती है और जन्म के बाद शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था तथा क्रमशः चलती रहती है। इस प्रकार वह विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता है जिनमें उसका विकास होता है। **मनोवैज्ञानिक हरलॉक** (Hurlock) का कथन है–"विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषताएँ और नवीन योग्यताएँ प्रकट होती हैं।" (Development results in new characteristics and new abilities.)

विकास एक बहुमुखी प्रक्रिया है। इसमें बहुत-सी बातों का समावेश होता है। शिक्षा-मनोविज्ञान के अध्ययन में बालक का केवल बौद्धिक पक्ष ही नहीं, बल्कि उसके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए शारीरिक, मानसिक सामाजिक तथा संवेगात्मक अवस्थाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। विकास के ये सभी पक्ष परस्पर सम्बन्धित हैं। बाल विकास का वर्णन करते समय विकास का अर्थ, स्वरूप, सिद्धान्त तथा विकास के विभिन्न पक्षों पर संक्षेप में प्रकाश डालना आवश्यक समीचीन होगा।

नोट

4.1 अभिवृद्धि और विकास का अर्थ (Meaning of Growth and Development)

व्यक्ति के स्वाभाविक विकास को अभिवृद्धि (Growth) कहते हैं। गर्भाशय में भ्रूण बनने के पश्चात् जन्म के समय तक उसमें जो प्रगतिशील परिवर्तन होते हैं वह अभिवृद्धि है। इसके अतिरिक्त जन्मोपरान्त से प्रौढ़ावस्था तक व्यक्ति में स्वाभाविक रूप से होने वाले परिवर्तन, जो अधिगम अथवा प्रशिक्षण आदि से नहीं प्रभावित होते और ऊर्ध्ववर्ती होते हैं, भी अभिवृद्धि है। अभिवृद्धि का स्वरूप विकास के समान है किन्तु दोनों विचार में अन्तर निहित है। विकास में अधिगम एवं वातावरण द्वारा अर्जित गुण सम्मिलित होते हैं, किन्तु अभिवृद्धि में इनका स्थान नगण्य हो सकता है। उदाहरणार्थ दाँत निकलना अभिवृद्धि का द्योतक है इसमें अर्जित गुणों का कोई स्थान नहीं। अभिवृद्धि की एक दिशा और सीमा होती है।

शिक्षा-मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन करता है और उसका लक्ष्य बालक के व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन करना है। अत: शिक्षक को बालक की अभिवृद्धि एवं विकास के विषय में तथा इनके परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तनों को जानना भी आवश्यक है। प्राय: अभिवृद्धि और विकास को एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है और दोनों शब्द बढ़ने की दिशा की ओर संकेत करते हैं। किन्तु मनोवैज्ञानिकों ने इन दोनों शब्दों में कुछ अन्तर बताया है। अत: अभिवृद्धि और विकास में अन्तर समझने के लिए दोनों शब्दों का अर्थ समझ लेना चाहिए। सामान्य रूप से अभिवृद्धि का अर्थ शरीर और उसके अंगों के आकार, भार, ऊँचाई में वृद्धि से होता है।

नोट्स मनोवैज्ञानिक फ्रैंक ने अभिवृद्धि को कोशीय वृद्धि (Cellular multiplication) के अर्थ में प्रयोग किया है। उसके अनुसार "शरीर और व्यवहार के किसी पहलू में जो परिवर्तन होते है उन्हें अभिवृद्धि कहते हैं और समय दृष्टि से व्यक्ति में जो परिवर्तन होता है उसे विकास कहते हैं।"

विकास का अर्थ अधिक व्यापक है। जब शैशव से बाल्य और किशोरावस्था तक पहुँचते-पहुँचते हाथ तथा अन्य अंगों के आकार में परिवर्तन अर्थात् लम्बाई-चौड़ाई में वृद्धि दिखाई देती है, तब हम कहते हैं कि बालक का शरीर बढ़ रहा है। इससे स्पष्ट है कि अभिवृद्धि को मापा या तौला जा सकता है। प्राय: हमें यह भी दिखाई देता है कि बालक के हाथ-पैरों के आकार में वृद्धि हो जाने पर भी उसी अनुपात में उसकी कार्य-क्षमता या कार्य-कुशलता में प्रगति नहीं होती, तब हम यह कहते हैं– अभिवृद्धि हो गई है किन्तु उसका विकास नहीं हुआ। विकास अवयवों की कार्य-क्षमता की ओर संकेत करता है। जैसा कि बताया जा चुका है कि अभिवृद्धि का मापन किया जा सकता है, किन्तु विकास व्यक्ति की क्रियाओं में निरन्तर होने वाले परिवर्तनों में दिखाई देता है। अत: विकास शरीर के गुणात्मक परिवर्तनों का नाम है, जिसके कारण व्यक्ति की कार्य-क्षमता, कार्य कुशलता और व्यवहार में प्रगति या अवनति होती है।

मनोविज्ञान के क्षेत्र में विकास का अर्थ केवल अभिवृद्धि (Growth) अर्थात् शारीरिक आकार और अंगों में परिवर्तन होना ही नहीं है, विकास का तात्पर्य व्यक्ति में नई-नई विशेषताओं और क्षमताओं का विकसित होना है जो कि प्रारम्भिक जीवन से आरम्भ होकर क्रमश: परिपक्व अवस्था (Maturity) तक चलती रहती है। **हरलॉक** के शब्दों में, "विकास अभिवृद्धि तक ही सीमित नहीं है, इसके बजाय, इसमें प्रौढ़ावस्था के लक्ष्य की ओर परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम निहित रहता है। विकास के परिणाम स्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषताएँ और नवीन योग्यताएँ प्रकट होती हैं।" (Development is not limited to growing larger. Instead, it consists of a progressive series of changes towards the goal of maturity. "Development results in new characteristics and new abilities on the part of the individual.)

नोट

हरलॉक की इस परिभाषा के अनुसार तीन बातें स्पष्ट होती है–

(1) विकास परिवर्तन की ओर संकेत करता है।

(2) विकास में एक निश्चित क्रम होता है।

(3) विकास की एक निश्चित दिशा और लक्ष्य होता है।

हरलॉक के कथानानुसार विकास की प्रक्रिया जीवन–पर्यन्त एक क्रम से चलती रहती है तथा प्रत्येक अवस्था का प्रभाव विकास की दूसरी अवस्था पर पड़ता रहता है।

गेसेल (Gesell) ने भी विकास का अर्थ इस प्रकार दिया है– "विकास केवल एक प्रत्यय (विचार) ही नहीं है, इसे देखा, जाँचा और किसी सीमा तक तीन विभिन्न दिशाओं शरीर अंग विश्लेषण, शरीर ज्ञान तथा व्यवहार में मापा जा सकता है।..... इन सब में व्यवहार ही सबसे अधिक विकासात्मक स्तर तथा विकासात्मक शक्तियों को व्यक्त करने का माध्यम है।" (Development is more than a concept. It can be observed, appraised, and to some extent even 'measured' in the three major manifestations- (*a*) anatomic, (*b*) physiologic, (*c*) Behavioral..... behaviour signs, however, constitute a most comprehensive inex of developmental status and development potentials.)

मेरीडिथ (Meredith) **का विचार है**– 'कुछ लेखक अभिवृद्धि का प्रयोग केवल आकार की वृद्धि के अर्थ में करते हैं और कुछ विकास का भेदीकरण या विशिष्टीकरण के अर्थ में।" (Some writers reserve the use of 'growth' to designate increments in size and of 'development' of mean differentiation.)

यहाँ हम विकास और अभिवृद्धि को एक ही अर्थ में प्रयोग करेंगे। विकास और अभिवृद्धि से तात्पर्य गर्भावस्था से लेकर जीवन–पर्यन्त तक की स्थिति से है। गर्भावस्था से लेकर परिपक्वावस्था तक जिन परिवर्तनों से व्यक्ति गुजरता है सब विकास के अन्तर्गत आते हैं। अभिवृद्धि और विकास के साथ व्यक्ति में परिपक्वता आती है। परिपक्वता का अर्थ है अभिवृद्धि और विकास को प्राप्त करना।

परिपक्वता अभिवृद्धि और विकास में परस्पर निकट सम्बन्ध है। परिपक्वता, अभिवृद्धि एवं विकास का अर्थ आगे स्पष्ट किया गया है।

4.2. परिपक्वता (Maturity)

व्यक्ति के विकास का क्रम गर्भावस्था में भ्रूण निर्माण के साथ प्रारम्भ हो जाता है और जीवन के प्रारम्भिक भाग में बहुत तीव्र गति से प्रगतिशील रहता है। गर्भावस्था में बच्चा एक निश्चित सीमा तक परिपक्व होकर जन्म लेता है। जन्म के पश्चात् वह विकसित होता हुआ परिपक्वता को ही प्राप्त करता है। विकास में क्रमबद्ध रूप से परिवर्तन होता है जो परिपक्वता की ओर निर्देशित रहता है। परिपक्वता की एक स्थिति प्राणी को सामान्य रूप से विकसित होने में सहायक होती है। जन्म के पूर्व प्राणी के विकास पर अधिकांशत: परिपक्वता का ही प्रभाव पड़ता है। अभिवृद्धि एवं विकास का प्रत्येक क्रम एक प्रकार से परिपक्वता पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ जब बालक की माँसपेशियाँ और हड्डियाँ चल पाने की आवश्यकता के अनुसार परिपक्व हो जाती हैं तो वह पैरों के बल चलने में समर्थ हो पाता है। इस प्रकार परिपक्वता अभिवृद्धि एवं विकास को गति प्रदान करती है। अभिवृद्धि एवं विकास का लक्ष्य भी परिपक्वता को ही प्राप्त करना होता है।

नोट

क्या आप जानते हैं मनोवैज्ञानिकों ने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि जन्म के पूर्व गर्भावस्था में व्यक्ति का विकास बड़ी तीव्र गति से होता है और परिपक्वता तक यह प्रगतिशील क्रम जारी रहता है।

एक परिपक्वता की स्थिति में आगे की अभिवृद्धि एवं विकास की गति धीमी हो जाती है यही कारण है कि गर्भावस्था, जो कि व्यक्ति के विकास का प्रथम चरण है, में परिपक्वता प्राप्त करने हेतु अभिवृद्धि एवं विकास की गति सर्वाधिक होती है। जबकि उत्तर किशोरवस्था, जो कि व्यक्ति के विकास का आखिरी चरण है, में परिपक्वता प्राप्त करने हेतु अभिवृद्धि एवं विकास की गति न्यून होती है। परिपक्वता स्वाभाविक विकास का लक्ष्य है। व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के परिपक्वीकरण की प्रक्रिया एक निश्चित अवधि तक ही चलती है। किशोरवस्था के अन्तिम भाग में, अर्थात् 21 वर्ष के लगभग, यह प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। व्यक्ति के व्यक्तित्व के दो पक्ष शारीरिक तथा मानसिक हैं। इन्हीं पक्षों की अभिवृद्धि एवं विकास की स्वाभाविक और पूर्ण अवस्था परिपक्वता है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने की अवस्था को प्रौढ़ावस्था कहते हैं। अत: विकास की प्रत्येक गति का लक्ष्य है। प्रौढ़ावस्था प्राप्त करना।

परिपक्वता तथा प्रौढ़ावस्था पर वातावरण तथा अधिगम का प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि विभिन्न भौगोलिक एवं सामाजिक वातावरण के प्रभाव में रहने वाले व्यक्तियों में परिपक्वता की अवस्था भिन्न-भिन्न आयु में दिखाई देती है। परिपक्वता वस्तुत: विकास का करण है। दोनों की पारस्परिक क्रियाओं के फलस्वरूप ही विकास सम्भव होता है। परिपक्वता के अभाव में अधिगम सम्भव नहीं हो सकता। अधिगम के लिए परिपक्वता की एक स्थिति आवश्यक होती है। इस प्रकार विकास एवं अधिगम दोनों परिपक्वता पर निर्भर करते हैं।

परिपक्वता, विकास एवं अधिगम में प्रगाढ़ पारस्परिक सम्बन्ध होते हुए भी परिपक्वता, विकास और अधिगम में अन्तर है। परिपक्वता का अर्थ है स्वाभाविक विकास। व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक गुणों का विकास जब बिना किसी प्रकार के अधिगम अथवा प्रशिक्षण के कारण स्वाभाविक रूप से होता है तो उसे हम परिपक्वीकरण कहते हैं, जबकि विकास वांछित तथा प्रगतिशील परिवर्तन के द्वारा अर्जित किया जाता है।

विकास में परिपक्वीकरण के प्रभाव का अध्ययन **गेसेल** (Gesell) तथा **थाम्पसन** (Thompson) ने 1929 ई. में किया था। इस अध्ययन के लिए 'सम-यमज-नियंत्रण विधि' (Co-Twin Control Method) का प्रयोग किया गया है। इस अध्ययन में समयमज दो लड़कियाँ ली गईं। इनमें से एक को 46 सप्ताह की आयु से लेकर 52 सप्ताह की आयु तक सीढ़ी पर चढ़ने के लिए प्रशिक्षण दिया गया। दूसरी लड़की को इस अवधि में कोई प्रशिक्षण न देकर नियंत्रित रखा गया। प्रशिक्षण से प्राप्त विकास के आधार पर पहली लड़की को सीढ़ी चढ़ने में 26 सेकेण्ड लगे। बिना प्रशिक्षण के नियंत्रित लड़की को 52वें सप्ताह में सीढ़ी चढ़ने में 45 सेकेण्ड लगे। 53 सप्ताह की आयु से नियंत्रित लड़की को 2 सप्ताह तक सीढ़ी चढ़ने का अभ्यास कराया गया। इसके बाद 55 वें सप्ताह में केवल 2 सप्ताह के अभ्यास के फलस्वरूप दूसरी लड़की को सीढ़ी चढ़ने में कुल सात सेकेण्ड लगे। इस अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि परिपक्वीकरण के कारण पहली लड़की की तुलना में बहुत कम अभ्यास करने पर भी दूसरी लड़की को बहुत कम समय में सीढ़ी पर चढ़ने में सफलता मिली।

4.3 विकास के सिद्धान्त (Principles of Development)

विकास के सिद्धान्त का क्या तात्पर्य है यह जानना भी आवश्यक है।

गैरीसन तथा अन्य (Garrison and others) **के अनुसार–** "जब बालक विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में प्रवेश करता है, तब हम उसमें कुछ परिवर्तन देखते हैं। अध्ययनों ने सिद्ध कर दिया है कि इन परिवर्तनों

नोट

में पर्याप्त निश्चित सिद्धान्तों का अनुसरण करने की प्रवृत्ति होती है। इन्हीं को 'विकास का सिद्धान्त' कहा जाता है। विकास के निम्नलिखित सिद्धान्त हैं जिनके अनुसार विकास की प्रक्रिया नियंत्रित होती है–

(1) विकास की दिशा का सिद्धान्त (Principle of Developmental Direction)– इस सिद्धान्त के अनुसार शिशु के शरीर का विकास सिर से पैर की दिशा में होता है। मनोवैज्ञानिकों ने इस विकास को मस्तकेधोमुखी या 'शिर:पुच्छीय दिशा' (Cephalocaudal Direction) कहा है, जिसके अनुसार पहले शिशु का सिर, फिर धड़ और बाद में हाथ-पैरों का विकास होता है।

(2) निरन्तर विकास का सिद्धान्त (Principle of Continuous Growth)– स्किनर के अनुसार "विकास प्रक्रियाओं की निरन्तरता का सिद्धान्त केवल इस तथ्य पर बल देता है कि व्यक्ति में कोई आकस्मिक परिवर्तन नहीं होता है।" विकास एक समान गति से नहीं होता, बल्कि अविराम गति से निरन्तर चलता रहता है। विकास की गति कभी तेज कभी धीमी रहती है।

टास्क विकास अविराम गति से चलता रहता है। हालांकि उसकी गति कभी धीमी तो कभी तेज होती रहती है। आप अपने अनुमान के आधार पर बताइए कि किस आयु में विकास तेज होता है और किस आयु में उसकी गति धीमी रहती है?

(3) विकास की गति में व्यक्तिगत भिन्नता का सिद्धान्त (Principle of Individual Difference in Rate of Growth)– वैज्ञानिक अध्ययनों से यह निश्चित हो गया है कि विभिन्न व्यक्तियों के विकास की गति में विभिन्नता होती है। जो व्यक्ति जन्म के समय लम्बा होता है बाद में बड़ा होने पर लम्बा होगा। एक ही आयु के दो बालकों में शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास में वैयक्तिक विभिन्नताएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान की पूर्ति करें–

1. व्यक्ति के स्वाभाविक विकास को ..... कहते हैं।
2. गैसेल तथा थॉम्प्सन ने विकास में परिपक्वीकरण के प्रभाव का अध्ययन करने हेतु ..... विधि का प्रयोग किया।
3. विकास शरीर के ..... परिवर्तनों का नाम है।
4. अभिवृद्धि एवं विकास की स्वाभाविक एवं पूर्ण अवस्था ..... है।

(4) विकास-क्रम का सिद्धान्त (Principle of Development Sequences)– इस सिद्धान्त के अनुसार विकास एक व्यवस्थित तथा निश्चित क्रम से होता है। बालक का गामक (Motor) अर्थात् गति सम्बन्धी और भाषा सम्बन्धी विकास एक क्रम (Sequence) में होता है, तीसरे माह से वह गले से एक विशेष प्रकार की आवाज निकालता है, छठे माह में आनन्दध्वनि (खिलखिला कर हँसना) और सातवें माह में वह 'पा', 'बा', 'मा,' 'दा' आदि शब्दों को बोलने का प्रयत्न करने लगता है।

(5) परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त (Principle of Interrelation)– बालक के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक पक्ष के विकास में परस्पर सम्बन्ध होता है। शारीरिक विकास के साथ-साथ उसकी रुचि, ध्यान तथा व्यवहार में परिवर्तन होता जाता है और इस प्रकार उसका गामक (Motor) तथा भाषा सम्बन्धी विकास होता है। शारीरिक विकास बौद्धिक विकास को प्रभावित करता है। **गैरीसर तथा अन्य** के अनुसार- "शरीर सम्बन्धी दृष्टिकोण व्यक्ति के विभिन्न अंगों के विकास में सामंजस्य और परस्पर सम्बन्ध पर बल देता हैं।"

(6) समान प्रतिमान का सिद्धान्त (Principle of Uniform Pattern)– इस सिद्धान्त के अनुसार मानव जाति के शिशुओं के विकास का प्रतिमान एक ही है अर्थात् उनके विकास में किसी प्रकार का अन्तर नहीं होता। हरलॉक

नोट

ने इस सिद्धान्त का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया है- "प्रत्येक जाति, चाहे वह पशु जाति हो या मानव जाति, अपनी जाति के अनुरूप विकास के प्रतिमान का अनुसरण करती है।" (Every species, whether animal or human, follows, a pattern of development peculiar to that species.)

(7) सामान्य से विशिष्ट प्रतिक्रियाओं का सिद्धान्त (Principle of General to Specific Responses)– विकास के सभी पक्षों में चाहे वह गति सम्बन्धी (Motor) या मानसिक हो, बालक पहले सामान्य प्रतिक्रिया करता है तब बाद में विशिष्ट प्रतिक्रिया करता है अर्थात् सामान्य प्रतिक्रियाओं से वह विशिष्ट प्रतिक्रिया की ओर बढ़ता है। नवजात शिशु पहले अपने पूरे शरीर का संचालन करता है तब बाद में किसी विशेष अंग का। किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए सामान्य रूप से केवल हाथ ही नहीं बल्कि अन्य अंगों को भी हिलाता है किन्तु धीरे-धीरे वह उसे प्राप्त करने के लिए विशिष्ट रूप से हाथ बढ़ाता है। **हरलॉक** का कथन है- "विकास की सब अवस्थाओं में बालक की प्रतिक्रियाएँ विशिष्ट बनने से पूर्व सामान्य प्रकार की होती हैं।"

(8) वंशानुक्रम व वातावरण का अंतःक्रिया का सिद्धान्त (Principle of Interaction of Heredity and Environment)– बालक का विकास वंशानुक्रम तथा वातावरण की अन्तःक्रिया के कारण होता है अर्थात् "वंशानुक्रम उन सीमाओं को निश्चित करता है, जिनके आगे बालक का विकास नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार यह प्रमाणित किया जा चुका है कि जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में दूषित वातावरण और गम्भीर रोग, जन्मजात योग्यताओं को कुंठित या निर्बल बना सकते हैं।" ये विचार स्किनर ने व्यक्त किये हैं।

4.4 सारांश (Summary)

- बालक के विकास की प्रक्रिया जन्म पूर्व जब वह माता के गर्भ में आता है तभी से आरम्भ हो जाती है और जन्म के बाद शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था तथा क्रमशः चलती रहती है।
- विकास एक बहुमुखी प्रक्रिया है। इसमें बहुत-सी बातों का समावेश होता है। शिक्षा-मनोविज्ञान के अध्ययन में बालक का केवल बौद्धिक पक्ष ही नहीं, बल्कि उसके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए शारीरिक, मानसिक सामाजिक तथा संवेगात्मक अवस्थाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं।
- व्यक्ति के स्वाभाविक विकास को अभिवृद्धि (Growth) कहते हैं। गर्भाशय में भ्रूण बनने के पश्चात् जन्म होते समय तक उसमें जो प्रगतिशील परिवर्तन होते हैं वह अभिवृद्धि है।
- शिक्षा-मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन करता है और उसका लक्ष्य बालक के व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन करना है। अतः शिक्षक को बालक की अभिवृद्धि एवं विकास के विषय में तथा इनके परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तनों को जानना भी आवश्यक है।
- विकास शरीर के गुणात्मक परिवर्तनों का नाम है, जिसके कारण व्यक्ति की कार्य-क्षमता, कार्य कुशलता और व्यवहार में प्रगति या अवनति होती है।
- विकास में क्रमबद्ध रूप से परिवर्तन होता है जो परिपक्वता की ओर निर्देशित रहता है।
- अभिवृद्धि एवं विकास का प्रत्येक क्रम एक प्रकार से परिपक्वता पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ जब बालक की माँसपेशियाँ और हड्डियाँ चल पाने की आवश्यकता के अनुसार परिपक्व हो जाती हैं तो वह पैरों के बल चलने में समर्थ हो पाता है। इस प्रकार परिपक्वता अभिवृद्धि एवं विकास को गति प्रदान करती है।
- परिपक्वता का अर्थ है स्वाभाविक विकास। व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक गुणों का विकास जब बिना किसी प्रकार के अधिगम अथवा प्रशिक्षण के कारण स्वाभाविक रूप से होता है तो उसे हम परिपक्वीकरण कहते हैं, जबकि विकास वांछित तथा प्रगतिशील परिवर्तन के द्वारा अर्जित किया जाता है।

4.5 शब्दकोश (Keywords)

नोट

1. **अभिवृद्धि**–विशेष वृद्धि, सफलता, उन्नति
2. **वंशानुक्रम**–वंशावली

4.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. अभिवृद्धि से आप क्या समझते हैं? अभिवृद्धि और विकास में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
2. परिपक्वता से आप क्या समझते हैं? उदाहरण सहित समझाइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. अभिवृद्धि
2. सम-यमज
3. गुणात्मक
4. परिपक्वता

4.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
2. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
3. बच्चों में शिक्षा का महत्त्व एवं जानकारियाँ–*सीमा चोपड़ा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
4. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.एच. सिन्हा और रचना शर्मा, अटलांटिक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 5: विकास की अवस्थाएँ (Stages of Development)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

5.1 शैशवावस्था का महत्त्व (Importance of Infancy)

5.2 विकास की अवस्थाएँ: बाल्यवस्था (Stages of Development: Childhood)

5.3 विकास की अवस्थाएँ: किशोरावस्था (Stages of Development: Adolescence)

5.4 सारांश (Summary)

5.5 शब्दकोश (Keywords)

5.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

5.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शैशवावस्था के महत्त्व को समझने में।
- विकास की विभिन्न अवस्थाएँ–बाल्यावस्था, किशोरावस्था में होने वाले महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

मानव एक विकासशील प्राणी के रूप में जन्म लेता है और जन्म से लेकर जीवन के अन्त तक उसका विकास होता रहता है। बालक जब इस संसार में प्रवेश करता है तब तक उसका शारीरिक और मानसिक विकास नहीं हो पाता है। शिक्षा-मनोविज्ञान में विकसित होते हुए बालक का अध्ययन किया जाता है। शिक्षा-मनोविज्ञान की दृष्टि से बाल-विकास को विभिन्न अवस्थाओं में विभाजित करके, प्रत्येक अवस्था का अलग-अलग अध्ययन करना आवश्यक समझा गया है। मनोवैज्ञानिकों ने शैक्षिक दृष्टि से बाल-विकास को निम्नलिखित तीन भागों में बाँटा है–

(1) शैशवावस्था (Infancy)

(2) बाल्यावस्था (Childhood)

(3) किशोरावस्था (Adolescence)

5.1 शैशवावस्था का महत्त्व (Importance of Infancy)

नोट

मानव-जीवन में विकास की सभी अवस्थाओं में शैशव का महत्त्व सबसे अधिक बनाएँ हैं। मनोवैज्ञानिक **न्यूमैन** (J.Newman) के अनुसार- "पाँच वर्ष तक की अवस्था शरीर तथा मस्तिष्क के लिए बड़ी ग्रहणशील रहती है।" इस समय जो कुछ किया या सिखाया जाता है, उसका प्रभाव तुरंत (तत्काल) पड़ता है। मनोविश्लेषणवादियों (Psycho-analysists) ने भी शैशव पर विशेष ध्यान देने के लिए ज़ोर दिया है। **फ्रायड** का कथन है, "मनुष्य को जो कुछ बनना होता है, प्रारम्भ के चार-पाँच वर्षों में ही बन जाता है।" (The little human being is frequently a finished product in his fourth or fifth year.)

मनोवैज्ञानिकों ने अपने परीक्षणों के आधार पर इस बात को अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है। **एडलर** (Adler) ने कहा है "शैशवावस्था द्वारा जीवन का पूरा क्रम निश्चित होता है।"

बीसवीं शताब्दी में मनोवैज्ञानिकों ने बालक और उसके विकास की अवस्थाओं का विस्तृत और गंभीर अध्ययन किया है। **क्रो और क्रो** ने कहा है- "बीसवीं शताब्दी को बालक की शताब्दी कहा जाता है।" (The twentieth century has come to be designated as the century of the child.)

मनोवैज्ञानिकों के इन विचारों के अनुसार, "इस अवस्था को जीवन का आधार कहा जा सकता है, जिस पर बालक के भावी जीवन का निर्माण होता है।"

शैशवावस्था का अर्थ (Meaning of Infancy)

साधारणत: शिशु के जन्म के बाद प्रथम 6 वर्ष की आयु उसकी शैशवावस्था कहलाती है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है–

हरलॉक (Hurlock)–"यह जन्म से लेकर दो सप्ताह तक चलती है। दो सप्ताह बाद बालपन (Babyhood) आरम्भ होता है और दो वर्ष तक रहता है। दो वर्ष बाद प्रारम्भिक बाल्यावस्था आती है और 6 वर्ष तक की आयु तक रहती है।" (Early childhood extends from two to six years of age.)

उपर्युक्त विचार महिला मनोवैज्ञानिक हरलॉक ने व्यक्त किये है, जो कि शैशव के सम्बन्ध में सूक्ष्म एवं व्यापक अर्थ की ओर संकेत करते हैं। सामान्य रूप से सभी मनोवैज्ञानिकों ने जन्म से पाँच या छ: वर्ष तक की अवस्था को शैशवावस्था माना है। जैसा कि **क्रो और क्रो** ने लिखा है शैशवावस्था औसतन जन्म से पाँच या छ: वर्ष तक चलती है, जिसमें इन्द्रियाँ काम करने लगती हैं और बालक रेंगना, चलना और बोलना सीखता है।" (Infancy (on the avaerge from birth to five six years of age) during which the sensory channels begin to function and the child learns to creep, walk and speak.)

उपर्युक्त विचारों के फलस्वरूप यहाँ पर शैशवावस्था का अध्ययन जन्म से पाँच या छ: वर्ष की आयु तक मान कर किया जायेगा।

शैशवावस्था की प्रमुख विशेषताएँ (Chief Characteristics of Infancy)

शैशवावस्था में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा संवेगात्मक विकास से सम्बन्धित कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. शारीरिक विकास में तीव्रता (Repidity in Physical Growth)– बालक के जीवन के प्रथम तीन वर्षों में शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है। प्रथम वर्ष में लम्बाई तथा भार दोनों में तीव्र वृद्धि होती है। उसकी कर्मेन्द्रियों, आन्तरिक अंगों, माँसपेशियों आदि का भी उत्तरोत्तर (Gradual) विकास होता है।

2. अपरिपक्वता (Immaturity)– इस समय शिशु शारीरिक तथा बौद्धिक रूप से अपरिपक्व होता है। धीरे-धीरे स्वाभाविक रूप से वह पालन-पोषण द्वारा परिपक्व होता है।

नोट

3. पर-निर्भरता (Dependancy)– जन्म के बाद कुछ समय तक वह बड़ी असहाय स्थिति में रहता है। उसे भोजन तथा अन्य शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तथा स्नेह और सहानुभूति प्राप्त करने के लिए दूसरे पर आश्रित रहना पड़ता है।

4. मूल प्रवृत्तयात्मक व्यवहार (Instinctive Behaviour)– इस समय शिशु का अधिकांश व्यवहार मूल-प्रवृत्तियों पर आधारित होता है। भूख लगने पर वह रोता, क्रोधित होता है और जो भी वस्तु उसके पास होती है उसी को मुँह में डाल लेता है।

5. मानसिक क्रियाओं की तीव्रता (Rapidity in Mental Process)– शिशु की मानसिक क्रियाओं के अन्तर्गत ध्यान, स्मृति, कल्पना, संवेदना, प्रत्यक्षीकरण आदि का विकास तेजी से होता है। इस सम्बन्ध में **गुडएनफ** का विचार है- "व्यक्ति का जितना भी मानसिक विकास होता है। उसका आधा तीन वर्ष की आयु तक हो जाता है। (One helf of an individual's ultimate mental status has been attained by the age of three years.)

6. सीखने की प्रक्रिया में तीव्रता (Rapidity in Learning Process)– इस समय सीखने की गति बहुत तेज होती है। गेसेल (Gesell) का कथन है- "बालक प्रथम छः वर्षों में, बाद के बारह वर्षों से दूना सीख लेता है।"

7. कल्पनाशीलता (Imaginativeness)– इस समय शिशु में कल्पना की मात्रा अधिक पाई जाती है और वह कल्पना जगत में विचरण करने लगता है। थार्नडाइक का विचार है कि–"3 से 6 वर्ष तक के बालक प्रायः अर्द्धस्वप्नों की हालत में रहते हैं।" वे सत्य-असत्य में अन्तर नहीं कर पाते हैं। फलस्वरूप वे कल्पना की अधिकता के कारण झूठ बोला करते हैं। **रॉस** ने कहा है कि– "शिशु कल्पना में स्वयं नायक बन जाता है और कल्पना के द्वारा ही वह जीवन की कठोरता को दूर करता है।" इस अवस्था में शिशु में किसी क्रिया या शब्दों को दोहराने की विशेष प्रवृत्ति होती है।

8. दोहराने की प्रवृत्ति (Attiude of Repetition)– ऐसा करने में उसे आनन्द मिलता है। इसी आधार पर किन्डरगार्टन तथा मान्टेसरी स्कूलों में बच्चों से गीत और रचना की आवृत्ति कराई जाती है।

9. अनुकरण द्वारा सीखने की प्रवृत्ति (Attitude of Learning Imitation)– शिशु सबसे अधिक और जल्दी अनुकरण विधि से सीखते हैं। परिवार में माता-पिता, भाई-बहनों तथा अन्य सदस्यों के व्यवहार का वह अनुकरण करता है और सीखता है।

10. प्रत्यक्षात्मक अनुभव द्वारा सीखना (Learning Perceptual Experience)– मानसिक रूप से परिपक्व न होने के कारण वह प्रत्यक्ष और स्थूल वस्तुओं के सहारे सीखता है। किन्डरगार्टन तथा मान्टेसरी प्रणाली में उपहारों तथा शिक्षा उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। इनका निरीक्षण वह करता है और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभव प्राप्त करता है।

11. संवेगों को प्रदर्शन (Emotional Expression)– शिशु जन्म से ही संवेगात्मक व्यवहार का प्रदर्शन करता है। रोना, चिल्लाना, हाथ-पैर पटकना आदि क्रियाएँ संवेगपूर्ण ही होती हैं। बाल-मनोवैज्ञानिकों के अनुसार आरम्भ में शिशु में मुख्य रूप से चार संवेग पाए जाते हैं- भय क्रोध प्रेम और पीड़ा।

12. आत्म प्रेम की भावना (Feelinig of self love)– शैशवावस्था में शिशु में आत्म-प्रेम की भावना प्रबल होती है। इस समय वह यह चाहता है कि केवल उसे ही माता-पिता एवं भाई-बहनों का पूर्ण स्नेह मिले। ऐसा न होने पर वह अन्य भाई-बहनों से ईर्ष्या करने लगता है। जो वस्तु या खिलौना उसे दिया जाता है, उसे वह दूसरों को न देकर, अपने पास ही रखना चाहता है।

13. काम प्रवृत्ति (sex Instinct)– **फ्रायड तथा अन्य मनोविश्लेषणवादियों** का कहना है कि इस अवस्था में शिशु की प्रेम भावना काम-प्रवृत्ति पर आधारित होती है, और यह प्रवृत्ति बड़ी प्रबल होती है, किन्तु उसका प्रकाशन

नोट

वयस्कों की भांति नहीं होता। शिशु का अपने अंगों से प्रेम करना, माता का स्तनपान करना, हाथ पैर का अंगूठा चूसना आदि काम-प्रवृत्ति के सूचक हैं।

14. नैतिक भावना का अभाव (Absence of Moral Feeling)– इस समय शिशु का नैतिक विकास नहीं हो पाता है। उसे अच्छी बुरी, उचित और अनुचित बातों का ज्ञान नहीं होता है। वह वही कार्य करता है जिसमें उसे आनन्द आता है भले ही वह नैतिक रूप से अवांछनीय हो। जिन कार्यों से उसे दु:ख होता है उन्हें वह छोड़ देता है। **रॉस** ने कहा है- "आगे चलकर सामाजिक वातावरण इस आनन्द और दु:ख प्रेरक को कुछ-कुछ व्यवस्थित रूप से, पारितोषिक और दण्ड देकर पुन: बल देता है।" (Later on the social environment reinforces this pleasure pain motive by adminis-trating rewards and punishment more or less systematically.)

15. अकेले व साथ खेलने की प्रवृत्ति (Tendency of Playing Alone and Together)– यदि हम शिशु के व्यवहार का भली-भाँति निरीक्षण करें तो हम देख सकते हैं कि उसमें पहले एकांत में खेलने और फिर बाद में दूसरों के साथ खेलने की प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्ति का **क्रो** और **क्रो** ने इस प्रकार वर्णन किया है- "बहुत ही छोटा शिशु अकेले खेलता है। धीरे-धीरे वह दूसरे बालकों के समीप खेलने की अवस्था से गुजरता है। अन्त में, वह अपनी आयु के बालकों के साथ खेलने में महान् आनन्द का अनुभव करता है।"

16. सामाजिक भावना का विकास (Development of Social feeling)– शैशवावस्था के अन्तिम वर्षों में सामाजिक भावना का विकास होता है। **वैलेन्टाइन** (Valentine) का विचार है- "चार या पाँच वर्ष के बालक में अपने छोटे भाई-बहनों या साथियों की रक्षा करने की प्रवृत्ति होती है। वह दो से पाँच वर्ष तक के बच्चों के साथ खेलना पसंद करता है। वह अपनी वस्तुओं में दूसरों को साझीदार बनाता है। वह दूसरे बच्चों के अधिकारों की रक्षा करता है और दु:ख में उनको सांत्वना देने का प्रयास करता है। शिक्षा की दृष्टि से मानव जीवन में शैशवकाल का बहुत महत्त्व है। **वैलेन्टाइन** ने इसे सीखने का आदर्शकाल" (Ideal period of Learning) कहा है। इसी प्रकार **वाटसन** ने भी अपने विचार प्रस्तुत किये हैं–

"शैशवावस्था में सीखने की सीमा और तीव्रता, विकास की और किसी अवस्था की तुलना में बहुत अधिक होती है।" (The scope and intensity of learning during infancy exceeds that of any other period of development.)

अत: इस काल में शिशु की शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का ध्यान देना आवश्यक है–

1. पालन-पोषण– सर्वप्रथम शिशु के पालन-पोषण में पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए। शारीरिक विकास के लिए पौष्टिक व संतुलित भोजन की व्यवस्था करनी चाहिये।

2. स्वच्छ वातावरण– स्वस्थ विकास के लिये घर तथा विद्यालय में शांत और स्वच्छ वातावरण मिलना चाहिए।

3. व्यक्तिगत स्वच्छता पर ध्यान– जब वे थोड़ा समझने लगें तो उन्हें व्यक्तिगत स्वच्छता के लिये शिक्षा देनी चाहिए।

4. स्नेह पूर्ण व्यवहार– माता-पिता को शिशु का पालन बड़े प्रेम और स्नेह से करना चाहिए। प्रेम और स्नेह का शिशु के नाड़ी मंडल पर अच्छा प्रभाव पड़ता है, इससे उसका विकास उचित दिशा में होता है।

5. मूल प्रवृत्तियों की प्रोत्साहन– शिशु की मूल-प्रवृत्तिशों का दमन न किया जाये, बल्कि इनका मार्ग निर्देशन (guidance) होना चाहिए। मूल-प्रवृत्ति को दबाने का प्रभाव शारीरिक और मानसिक विकास पर पड़ता है।

6. जिज्ञासा की संतुष्टि– शिशु की जिज्ञासा-प्रवृत्ति को संतुष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए। उनके प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर देना चाहिए।

7. आत्म प्रदर्शन के लिये अवसर– शिशु में आत्म-प्रदर्शन (Self-assertion) की प्रवृत्ति होती है। अत: माता-पिता, अभिभावक तथा शिक्षकों को ऐसे कार्य करवाने चाहिए जिससे उसे आत्म-प्रदर्शन का अवसर मिले।

नोट

8. क्रिया तथा खेल द्वारा शिक्षा– शिशु जन्म से ही क्रियाशील होता है। खेल में उसकी सहज रुचि होती है। अत: उसे खेल द्वारा तथा करके सीखने (Learning by doing) का पूर्ण अवसर देना चाहिए। इस सम्बन्ध में **स्ट्रैंग** (Strang) ने कहा है- 'शिशु अपने और संसार के बारे में अधिकांश बातें खेल द्वार, सीखता है।"

9. कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों का प्रशिक्षण– शिशु की कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के विकास के लिए घर तथा विद्यालय में शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। किन्डरगार्टन तथा मान्टेसरी प्रणाली में कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों तथा मांसपेशियों के प्रशिक्षण पर ध्यान दिया जाता है। इनके अनुसार "ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान का द्वार हैं।" इसका समर्थन करते हुए शिक्षाशास्त्री **रूसो** ने भी कहा है- "बालक के हाथ, पैर और नेत्र उसके प्रारम्भिक शिक्षक हैं। इन्हीं के द्वारा वह पाँच वर्ष में ही पहचान सकता है, सोच सकता है और याद कर सकता है।"

10. आत्माभिव्यक्ति के लिए अवसर–आत्माभिव्यक्ति (Self-Expression) का सबसे उत्तम साधन मातृभाषा है। अत: अभिभावकों और शिक्षकों को उन्हें छोटी-छोटी कहानियाँ, कविताएँ सुनानी तथा याद करवानी चाहिए तथा सरल भाषा में वार्तालाप करना चाहिए।

11. शिक्षा में संगीत का स्थान– शिशु आरम्भ से ही संगीत-प्रिय होता है। वह लोरी सुनकर जल्दी सो जाता है। शिशु-विद्यालय में शिक्षा-कार्य के लिए गीतों का प्रयोग किया जाता है। गीतों की सहायता से मानसिक तथा शारीरिक विकास होता है।

12. मानसिक विकास के लिए अवसर– शिशु को सोचने-विचारने के लिए अधिक से अधिक अवसर देना चाहिए। इसके लिए बातचीत, निरीक्षण, संवेदन, प्रत्यक्षीकरण, कल्पना और स्मृति के विकास की ओर अधिक ध्यान देना आवश्यक है।

13. व्यक्तिगत विभिन्नता पर ध्यान– शिशु के स्वाभविक विकास के लिए शिक्षा देते समय व्यक्तिगत विभिन्नता पर ध्यान देना आवश्यक है।

14. पाठ्यक्रम रुचिकर हो– पाठ्यक्रम रुचि, क्रिया तथा खेल के सिद्धान्तों पर आधारित हो इसके लिए किन्डरगार्टन और मान्टेसरी प्रणाली के सिद्धान्तों का अनुकरण करना चाहिए।

15. शिक्षण-विधि क्रियात्मक हो– इस समय सीखने की प्रक्रिया पर विशेष ध्यान देना चाहिए। शिशु को क्रिया, खेल तथा वस्तुओं के माध्यम से शिक्षा देना चाहिए।

16. सामाजिक भावना का विकास– शैशव के अन्तिम दिनों में इस भावना का उदय होने लगता है। अत: अभिभावकों तथा शिक्षकों को दूसरे बालकों से मिलने जुलने तथा खेलने के लिए उचित अवसर देना चाहिए ताकि उसमें, सामाजिक भावना का विकास भली-भाँति हो।

17. अच्छी आदतों के निर्माण के लिए अवसर– अभिभावकों तथा शिक्षकों को आरम्भ से ही शिशु में सत्य बोलने, बड़ों का आदर करने, समय पर काम करने, स्वच्छता सफाई रखने तथा अन्य अच्छी आदतों का निर्माण करने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि ये आदतें ही हमारे भावी जीवन का निर्माण करती हैं। जैसा कि **ड्राइडेन** (Dryden) महोदय ने कहा- पहले हम अपनी आदतों का निर्माण करते है और फिर हमारी आदतें हमारा निर्माण करती है।

18. नैतिक तथा चारित्रिक विकास के लिये शिक्षा– इसके लिए माता-पिता तथा शिक्षकों को बालकों के सामने अच्छे आदर्श तथा आचरण प्रस्तुत करने चाहिए क्योंकि बालक अनुकरणशील होते है। इसके अतिरिक्त उन्हें आदर्श चरित्र, वीरों, नेताओं और महापुरुषों की छोटी-छोटी कथाएँ सुनानी चाहिए।

19. भय तथा दंड से दूर रखना– शिशु को छोटी-छोटी बातों पर भय न दिखाना चाहिए और न ही उन्हें दंड देना चाहिए। भय तथा दण्ड का शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास पर प्रभाव पड़ता है। अनुशासन में रखने के लिए दण्ड के हानिप्रद रूप को न अपनाना चाहिए, बल्कि पुरस्कार और दण्ड का उचित प्रयोग किया जाये।

नोट

20. संवेगात्मक सुरक्षा– शिशु के संवेगात्मक विकास में सबसे महत्त्वपूर्ण त्तव स्नेह होता है जो कि उसे दूसरों से मिलता है तथा वह भी दूसरों को देने का प्रयत्न करता है। अत: अभिभावकों तथा सामाजिक के अतिरिक्त शिक्षकों को भी उसके साथ स्नेह पूर्ण व्यवहार करना है ताकि शिशु में भी दूसरों के प्रति स्नेह अनुभव करने की आवश्यक क्षमता उत्पन्न हो सके। मानसिक स्वास्थ्य के लिए स्नेह अत्यन्त आवश्यक है।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए शिशु-शिक्षा के स्वरूप का आयोजन करना चाहिए।

5.2 विकास की अवस्थाएँ: बाल्यावस्था (Stages of Development: Childhood)

मानव-विकास की दूसरी अवस्था बाल्यावस्था है। शैशवावस्था के बाद बालक बाल्यावस्था में प्रवेश करता है। शैशवकाल में बालक अपने चारों ओर की परिस्थितियों से अपरिचित होता है। उसका शरीर और मन दोनों अविकसित दशा में होते हैं। बाल्यावस्था में प्रवेश करते-करते उसका पर्याप्त विकास हो जाता है और वह अपने वातावरण से परिचित होने लगता है। इस अवस्था में वह जिस वैयक्तिक और सामाजिक व्यवहार को तथा शिक्षा-सम्बन्धी बातों को सीखना आरम्भ करता है वह उसके भावी जीवन की आधारशिला होती है। अत: बाल्यावस्था की प्रमुख विशेषताओं तथा शारीरिक, मानसिक संवेगात्मक तथा मानसिक विकास के सम्बन्ध में विचार करना आवश्यक है।

बाल्यावस्था का महत्त्व (Importance of Childhood)

शैशवावस्था के बाद बाल्यावस्था का आरम्भ होता है। बाल्यावस्था में प्रवेश करने पर बालक का इतना विकास हो चुका होता है कि वह अपने वातावरण की परिस्थितियों से कुछ परिचित-सा होने लगता है।

मनोवैज्ञानिकों ने इस अवस्था को "बालक का निर्माणकारी" काल कहा है। इस काल में बालक जिन व्यक्तिगत, सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी आदतों, व्यवहार, रुचियों एवं इच्छाओं के प्रतिरूपों (Patterns) का निर्माण कर लेता है, उनको रूपान्तरित करना सरल नहीं होता है। जीवन में बाल्यावस्था के महत्व पर प्रकाश डालते हुए **ब्लेयर, जोन्स** व **सिम्पसन** के विचार इस प्रकार हैं- शैक्षिक दृष्टिकोण से जीवन-चक्र में बाल्यावस्था से अधिक महत्त्वपूर्ण और कोई अवस्था नहीं है। जो अध्यापक इस अवस्था के बालकों को शिक्षा देते हैं उन्हें बालकों का, उनकी आधारभूत आवश्यकताओं का, उनकी समस्याओं का और उन परिस्थितयों की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए, जो उनके व्यवहार को रूपान्तरित और परिवर्तित करती है।" (No period during the life-cycle is more important than childhood from an educational point of view. Teachers who work at this level should understand children, their fundamental need, their problems, and the forces which modify and produce behaviour change.)

उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि शैक्षिक दृष्टि से बाल्यावस्था जीवन की महत्त्वपूर्ण अवस्था है। अत: इस काल के व्यक्तिगत-विकास के लिए अभिभावकों तथा शिक्षकों को विशेष रूप से सतर्क होकर उन सभी साधनों और विधियों का उपयोग करना चाहिए जो उसके स्वाभाविक और संतुलित विकास में सहायक सिद्ध हों।

बाल्यावस्था का अर्थ (Meaning of Childhood)

सामान्य रूप से सभी वैज्ञानिकों ने लगभग 6 वर्ष से 12 वर्ष के बीच की आयु को बाल्यावस्था माना है। इस अवस्था में बालक के जीवन में स्थायित्व (Stability) आने लगता है और आगे आने वाले जीवन की तैयारी करता है। **हरलॉक** के शब्दों में, "उत्तर-बाल्यावस्था 6 वर्ष की आयु से लेकर यौवनारम्भ होने तक ग्यारह और बारह वर्षों के बीच होती है।" (Late childhood extends from the age of six years to the onset of puberty, between eleven and twelve years.)

इससे स्पष्ट है कि बाल्यावस्था 6 वर्ष से 12 वर्ष तक चलती है। इस अवस्था में बालक में अनेक परिवर्तन होते हैं। शिक्षा आरम्भ करने के लिए यह आयु सबसे अधिक उपयुक्त मानी गई है। इसीलिए शिक्षाशास्त्रियों ने इसे

नोट

'प्रारम्भिक विद्यालय की आयु' (Elementary School Age) कहा है। इस काल में सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने की भावना बालक-बालिकाओं में प्रबल दिखाई देती है। वे अपना अलग-अलग समूह बनाते हैं। इसलिए मनोवैज्ञानिक ने इस अवस्था को 'समूह की आयु' (Gang Age) भी कहा है।

नोट्स

कुछ लोगों ने बाल्यावस्था को 'चुस्ती की आयु' (Smart Age) भी कहा है क्योंकि इस समय बालक में स्फूर्ति अधिक दिखाई देती है। चूँकि इस अवस्था में बालक खेल-कूद एवं भागदौड़ में लगे रहने के कारण गंदा और लापरवाह दिखाई देता है, इसे 'गंदी आयु' (Dirty Age) भी कहा गया है।

बाल्यावस्था की प्रमुख विशेषताएँ (Chief Characteristics of Childhood)

विकास की दृष्टि से बाल्यावस्था की निम्नलिखित विशेषताएँ है–

(1) शारीरिक और मानसिक विकास में स्थिरता (Stability in physical and mental growth)– बाल्यावस्था में विकास की गति में मन्थरता (धीमापन) आ जाती है। विकास की दृष्टि से इस अवस्था को दो भागों में बाँटा जा सकता है- 6 से 9 वर्ष तक संचयकाल (Conservation Period) और 10 से 12 वर्ष तक परिपाक काल (Consolidation Period)।

शैशवावस्था और पूर्व-बाल्यकाल में (6 से 9 वर्ष) जो विकास हो जाता है वह प्राकृतिक नियमों के अनुसार उत्तर-बाल्यकाल (10 से 12 वर्ष की आयु) में दृढ़ होने लगता है। उनकी चंचलता शैशवकाल की अपेक्षा कम हो जाती है, और वह वस्यकों के समान व्यवहार करता दिखाई देता है, इसीलिए **रॉस** (Ross) ने बाल्यावस्था को 'मिथ्या परिपक्वता' (Pseudo Maturity) का बताते हुए कहा है– "शारीरिक और मानसिक स्थिरता बाल्यावस्था की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है।"

(2) मानसिक योग्यताओं में वृद्धि (Growth in Mental Abilities)– इस समय बालक की मानसिक योग्यताओं में वृद्धि होती रहती है। संवेदना प्रत्यक्षीकरण और स्मरण शक्ति का विकास द्रुतगति से होता है, स्थायी स्मृति में वृद्धि होती है, वस्तुओं के प्रति रुचि और अवधान बढ़ने लगता है।

(3) जिज्ञासा की प्रबलता (Intensity of Curiosity)– बालक जिन वस्तुओं के सम्पर्क में आता है उन सबके विषय में जानना चाहता है। इस समय वह यह नहीं पूछता कि "यह क्या है?" बल्कि वह यह पूछता है कि "यह ऐसा क्यों है?" **रॉस** ने बालक की इस प्रवृत्ति के सम्बन्ध में कहा है, 'उत्तर-बाल्याकाल में बालक ऐसी बातों के प्रति अत्यधिक जिज्ञासु (Curious) होता है कि अमुक बातें कैसे होती हैं, अमुक चीज किस प्रकार कार्य करती है, इत्यादि। वह विभिन्न विषयों पर ढेरों सूचनाएँ एकत्रित करता है, जिन्हें देखकर उसके बड़ों को आश्चर्य होता है।

(4) आत्मनिर्भरता की भावना (Feeling of Self-dependence)– इस समय शैशवावस्था की भाँति बालक शारीरिक एवं दैनिक कार्यों के लिए पराश्रित नहीं रहता। वह अपने व्यक्तिगत कार्य जैसे नहाना-धोना, कपड़ा पहनना, स्कूल जाने की तैयारी आदि स्वयं कर लेता है।

(5) रचनात्मक कार्यों में रुचि (Interest in Constructive Work)– बालक को रचनात्मक कार्यों में विशेष आनन्द मिलता है जैसे बगीचे में कार्य करना, लकड़ी, कागज या अन्य किसी वस्तु से कुछ बनाना। बालिका भी घर में कोई-न-कोई कार्य करना चाहती है जैसे सिलाई, बुनाई, कढ़ाई आदि।

(6) संग्रह प्रवृत्ति का विकास (Development of Acquisition Instinct)– रचनात्मक प्रकृति के साथ-साथ संग्रह करने की प्रवृत्ति भी जाग्रत होती है। बालक विशेष रूप से पुराने, गोलियाँ, खिलौने, मशीनों के कल-पुर्जे और पत्थर के टुकड़े और बालिकाएँ विशेष रूप से खिलौने, गुड़िया, कपड़े के टुकड़े आदि संग्रह करती देखी जाती हैं।

(7) सामूहिक प्रवृत्ति की प्रबलता (Intensity of Gregariousness)– इस समय बालक अपना अधिक-से-अधिक समय दूसरे बालकों के साथ व्यतीत करने का प्रयास करता है। सामूहिक भावना की अधिकता

नोट

के कारण देह नैतिक मान्यताओं को जिनसे उसका आचरण नियंत्रित होता है, समझने लगता है। **रॉस** (Ross) ने कहा है– 'बालक प्राय: अनिवार्य रूप से किसी-न-किसी समूह का सदस्य बन जाता है, जो अच्छे खेल खेलने और ऐसे कार्य करने के लिए नियमित रूप से एकत्र होते हैं, जिसके बारे में बड़ी आयु के लोगों को कुछ भी नहीं बताया जाता है।"

(8) बहिर्मुखी प्रवृत्ति का विकास (Development of Extrovert Tendency)– शैशवकाल में बालक अन्तर्मुखी (Introvert) होता है। यह केवल अपने में ही रुचि रखता है और एकान्तप्रिय होता है। किन्तु इस अवस्था में बालक बाहर घूमने, बाहर की वस्तुओं को देखने, दूसरों के विषय में जानने आदि में रुचि दिखाता है। बहिर्मुखी होने के कारण वह समाज में अपने को समायोजित (Adjust) कर लेता है।

(9) सामूहिक खेलों में विशेष रुचि (Interest in Group Play)– इस अवस्था में सामूहिक खेलों में भाग लेने की प्रवृत्ति बहुत अधिक विकसित हो जाती है। खेल इस अवस्था की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है। इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों के विचार इस प्रकार हैं–

कार्लग्रूस (Karlgroos)– "खेलों के द्वारा व्यक्ति अपने भावी जीवन की तैयारी करता है।"

स्टेनले हॉल (Stanely Hall)–"बालकों के खेल उन कार्यों की पुनरावृत्ति हैं, जो सृष्टि के प्रारम्भ से उनके पूर्वज करते आये हैं।"

स्पेन्सर (Spencer)–"बालक खेल के द्वारा अपनी अतिरिक्त शक्ति का व्यय करता है।"

इस समय बालक बालकों के साथ और बालिकाएँ बालिकाओं के साथ खेलना पसन्द करती हैं और उनमें सखा-भाव विकसित होता दिखाई देता है। बालक एवं बालिका के खेलों में भी अन्तर होता है।

(10) सामाजिक एवं नैतिक विकास (Social and Moral Development)– इस समय बालक अपने समूह के सदस्यों के साथ अधिक समय बिताता है। समूह द्वारा प्राप्त आज्ञा मानने के लिए सदा तैयार रहता है। उसका व्यवहार दूसरों की प्रशंसा तथा निंदा पर आधारित रहता है। उसमें अनेक सामाजिक गुणों का विकास होता है जैसे आज्ञाकारिता, सहयोग, सद्भावना, सहनशीलता आदि। नैतिक गुणों के विकास के सम्बन्ध में **स्ट्रैंग** (Strang) का विचार है– "छ:, सात और आठ वर्ष के बालकों में अच्छे बुरे के ज्ञान का एवं न्यायपूर्ण व्यवहार, ईमानदारी और सामाजिक मूल्यों की भावना का विकास होने लगता है।"

(11) सुषुप्त काम प्रवृत्ति (Dormant Sex Impluse)– मनोविश्लेषणवादियों के अनुसार शिशु में जन्म से ही कामभावना विकसित होने लगती है, किन्तु इस समय आत्मप्रेम तथा पितृ एवं मातृ विरोधी भावना-ग्रंथियाँ समाप्त हो जाती हैं और बालक बालिका में समलिंगीय प्रेम भावना का उदय होता है। बालक में सखाभाव और बालिका में सखी-भाव विकसित होता है।

बाल्यावस्था में शिक्षा का स्वरूप (Nature of Education in Childhood)

बाल्यकाल बालक के जीवन की आधारशिला है। अत: यह आवश्यक है कि बालक के विकास के सभी पक्षों की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा का स्वरूप निर्धारित किया जाये। शिक्षा और विकास का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। शिक्षा विकास की प्रक्रिया है जो कि शिक्षा का शाब्दिक अर्थ तथा दी गई विभिन्न परिभाषाओं से स्पष्ट है। बालक की शिक्षा का उत्तरदायित्व माता-पिता, शिक्षक तथा समाज पर है। अत: उसकी शिक्षा के स्वरूप को निध र्रित करते समय निम्नांकित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

(1) शारीरिक विकास पर ध्यान–कहा गया है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है। इस दृष्टि से बालक के शारीरिक विकास पर उचित ध्यान देना आवश्यक है। उन्हें स्वस्थ रखने के लिए पौष्टिक भोजन तथा खेल-कूद का अवसर देना चाहिए।

शिक्षा-मनोवैज्ञानिकों ने बालक की शिक्षा में क्रियाशीलता को प्रधानता दी है। अत: विद्यालय में शारीरिक क्रियाओं, खेल-कूद तथा व्यायाम को प्रमुख स्थान देना चाहिए।

नोट

(2) बाल-मनोविज्ञान–माता-पिता, अभिभावकों तथा शिक्षकों को बाल-विज्ञान का ज्ञान होना चाहिए ताकि वे बालक को उचित शिक्षा दे सकें।

(3) भाषा-विकास पर ध्यान–बालक के भाषा-ज्ञान पर आरम्भ से ही ध्यान देना चाहिए। इसके लिए उनसे उपर्युक्त विषयों पर वार्तालाप करना, कहानियाँ सुनाना तथा बाल-पत्रिकाएँ पढ़ने के लिए देना चाहिए। विद्यालय में वाद-विवाद, सम्भाषण, कहानी-प्रतियोगिता तथा कविता पाठ आदि में भाग लेने के लिए उत्साहित करना चाहिए।

(4) पाठ्यक्रम–पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों को रखना चाहिए जो बालक की रुचि एवं आवश्यकताओं के अनुकूल हों तथा जीवन से सम्बन्धित हों। पाठ्यक्रम नीरस तथा यंत्रवत् न हो, बहुत से विषयों और पुस्तकों का बोझ उस पर न लादा जाए अन्यथा वह किसी प्रकार रट-रटाकर परीक्षा में किसी तरह पास करने का प्रबन्ध कर लेता है किन्तु उसका मानसिक विकास नहीं हो पाता।

(5) शिक्षण-विधि–बाल्यावस्था में शिक्षण-विधि रुचिकर तथा क्रिया और खेल के सिद्धान्त पर आधारित होनी चाहिए। बालक की रुचि के अनुसार शिक्षण-विधि में आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी करते रहना चाहिए। आधुनिक शिक्षा-प्रणालियों में किन्डरगार्टन, मान्टेसरी, बेसिक, प्रोजेक्ट, डाल्टन आदि क्रिया, खेल तथा स्वानुभव पर आधारित शिक्षा प्रणालियाँ हैं।

(6) खेल तथा क्रिया द्वारा शिक्षा–खेल बालक की सहज और स्वाभाविक प्रवृत्ति है। शिक्षा-मनोवैज्ञानिकों ने बालक की शिक्षा में खेल और क्रिया को महत्त्व दिया है। खेल के द्वारा किया जाने वाला कार्य, बालक के शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक विकास में सहायता देता है। खेल-विधि बालक को उत्साह एवं प्रसन्नतापूर्वक सीखने की क्षमता प्रदान करती है।

(7) मानसिक स्तर पर ध्यान–मानसिक विकास के लिए बालकों को बौद्धिक वातावरण मिलना चाहिए। घर में तथा विद्यालय में उन्हें आवश्यकतानुसार सभी साधन तथा सामग्री मिलनी चाहिए जो मानसिक विकास में सहायता दे सके। बालक अनुकरण द्वारा बहुत जल्दी सीखता है। इसके लिए माता-पिता एवं शिक्षक को अच्छे आदर्श और आचरण व्यवहार प्रस्तुत करने चाहिए। मानसिक विकास के अंतर्गत बुद्धि की मानसिक योग्यताएँ, स्मृति, कल्पना, चिन्तन, तर्क, निर्णय आदि का विकास सम्मिलित है। मानसिक विकास के लिए उन्हें यथासम्भव अवसर देना चाहिए तथा उनकी जिज्ञासा को प्रोत्साहित करना चाहिए। उनके समक्ष नई समस्याओं को प्रस्तुत करना चाहिए ताकि वे अपनी स्मृति, कल्पना, चिन्तन, तर्क व निर्णय शक्तियों का प्रयोग कर सकें।

(8) संवेगात्मक विकास का ध्यान–बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास के लिए उसकी मूल प्रवृत्तियों की ओर उचित ध्यान देना आवश्यक है। संवेगों का शारीरिक तथा मानसिक विकास पर प्रभाव पड़ता है। इसी समय से अवांछित संवेगों जैसे ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि को नियंत्रित करने की शिक्षा देनी चाहिए। इसके लिए माता-पिता तथा शिक्षकों को उनसे प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। उनके संवेगों का दमन न करना चाहिए। इससे उनमें भावना-ग्रंथियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। **स्ट्रैंग** (Strang) के अनुसार–"बालकों को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त अपने संवेगों का दमन करने के बजय तृप्त करने में सहायता दी जानी चाहिए, क्योंकि संवेगात्मक भावना और प्रदर्शन उनके सम्पूर्ण जीवन का आधार होता है।"

(9) जिज्ञासा प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देना– इस समय बालक में जिज्ञासा की प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल होती है। वह प्रत्येक नई वस्तु के बारे में जानने को उत्सुक रहता है तथा 'कैसे', आदि प्रश्न बहुत करता है। अत: माता-पिता तथा शिक्षकों को उसकी प्रत्येक बात का समुचित एवं उपयुक्त उत्तर देना चाहिए ताकि उसकी जिज्ञासा की सन्तुष्टि हो जाये। उसकी जिज्ञासा को उद्दीप्त करके नई-नई लाभप्रद बातें सिखाई जा सकती हैं। इस प्रकार वह स्वयं ज्ञानार्जन करता रहता है।

नोट

(10) रचनात्मक प्रवृत्ति के विकास पर ध्यान देना– यह प्रवृत्ति बालकों में प्रारम्भ से ही स्पष्ट दिखाई देती है। जैसे मिट्टी और बालू के घर बनाना, लकड़ी के गुटकों से खेल-खेल में कई वस्तुओं को बनाना आदि। अत: विद्यालय में विभिन्न प्रकार के रचनात्मक कार्यों की व्यवस्था होनी चाहिए जैसे रचनात्मक क्रियाओं के अन्तर्गत कागज, दफ्ती, लकड़ी, मिट्टी आदि के खिलौने या कोई अन्य वस्तु बनाना तथा पाठ्य-विषयों में क्राफ्ट तथा गृहकला की शिक्षा देना।

(11) संचय की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना– बालक में वस्तुओं को संग्रह करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। उसे जो वस्तु अच्छी लगती है उसे वह संचय कर लेता है। अत: माता-पिता तथा शिक्षकों को शिक्षाप्रद वस्तुएँ एकत्रित करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, जैसे डाक टिकट, सिक्के, खिलौने, चित्र, पुस्तकें तथा अन्य प्राकृतिक वस्तुएँ आदि।

(12) सामूहिक प्रवृत्ति की सन्तुष्टि– बाल्यावस्था में समूह में रहने की प्रवृत्ति प्रबल हो जाती है। वह अकेले रहना नहीं पसन्द करता। वह अन्य बालकों तथा मित्रों के साथ मिलना-जुलना और उनके साथ कार्य करना अधिक पसन्द करता है तथा इससे प्रसन्न भी रहता है। अत: सामूहिक प्रवृत्ति के विकास के लिए उन्हें बालसभा का सदस्य बनने, सामाजिक कार्यों में तथा ब्वाय स्काउट, गर्ल गाइड में भाग लेने की अनुमति तथा अवसर प्रदान करना चाहिए। विद्यालय में सामूहिक कार्यों खेलों की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

(13) सहपाठ्यक्रम क्रियाओं की व्यवस्था– बालक की मानसिक एवं सामाजिक शक्तियों के विकास के लिए विद्यालय में पाठ्य-विषयान्तर कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए। इसके अंतर्गत प्रकृति-निरीक्षण, भ्रमण, सरस्वती यात्राएँ, नाटक तथा अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रमों की व्यवस्था समय-समय पर की जानी चाहिए।

(14) सामाजिक गुणों का विकास– बाल्यावस्था में परिवार के बाद विशेष रूप से बालक का समाजीकरण विद्यालय में होता है। अत: शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह कक्षा, विद्यालय तथा खेल के मैदान में ऐसा वातावरण उपस्थित करे जिससे बालक का स्वस्थ सामाजिक विकास हो सके। विद्यालय में ऐसी क्रियाओं का आयोजन होना चाहिए जिनमें भाग लेकर बालक में अनुशासन, आत्मसंयम, उत्तरदायित्व, आज्ञाकारिता, विनय, सहयोग, सहानुभूति, प्रतिस्पर्धा आदि सामाजिक गुणों का विकास हो सके।

(15) नैतिक शिक्षा– समाज के नैतिक मूल्यों, मान्यताओं और नियमों का ज्ञान देने के लिए नियमित रूप से नैतिक शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए।

5.3 विकास की अवस्थाएँ: किशोरावस्था (Stages of Development : Adolescence)

मानव-विकास की तीसरी अवस्था किशोरवस्था है। यह बाल्यावस्था के अन्त में आरम्भ होती है और प्रौढ़ावस्था के आरम्भ में समाप्त होती है। इस अवस्था में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा संवेगात्मक परिवर्तन होते हैं। वे व्यक्तिव विकास दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। अत: शैक्षिक दृष्टि से किशोरावस्था की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करना तथा किशोरावस्था में शिक्षा के स्वरूप पर विचार करना आवश्यक है।

किशोरवस्था का महत्त्व (Significance of Adolescence)

मानव-जीवन के विकास की अवस्थाओं में किशोरावस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह जीवन का सबसे कठिन काल है। यह समय बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य का सन्धिकाल (Transitional Period) है अर्थात् बालक दोनों अवस्थाओं में रहता है अत: उसे न तो बालक समझा जाता है और न प्रौढ़। इस परिवर्तन काल में माता-पिता, अभिभावक, शिक्षक तथा अन्य लोग जो कि बालक के वर्तमान और भविष्य के कल्याण और हित में रुचि रखते

नोट

हैं तथा समाज की प्रगति चाहते हैं, उन सबको किशोरों के स्वस्थ विकास पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए जैसा कि **क्रो** और **क्रो** ने कहा है– "किशोर ही वर्तमान की शक्ति और भावी आशा को प्रस्तुत करता है।" (Youth represents the energy of the present and the hope of future.)

अत: स्पष्ट है कि अभिभावकों तथा शिक्षकों को विकासमान (Growing) किशोरों की प्रमुख विशेषताओं, आवश्यकताओं, रुचियों तथा विकास की सम्भावित शक्तियों (Growth Potentialities) के विषय में पूर्ण जानकारी होनी चाहिए ताकि वे उनके विकास में समुचित योग दे सकें। शैक्षिक दृष्टि से किशोरावस्था के महत्त्व पर इंग्लैड की **हैडो कमेटी रिर्पार्ट** में लिखा गया है– "ग्यारह या बारह वर्ष की आयु में बालक की नसों में ज्वार उठना आरम्भ हो जाता है, इसे किशोरावस्था के नाम से पुकारा जाता है। यदि इस ज्वार का बाढ़ के समय ही उपयोग कर लिया जाए एवं इसकी शक्ति और धारा के साथ-साथ नई यात्रा आरम्भ कर दी जाए, तो सफलता प्राप्त की जा सकती है। (There is a tide which begins to rise in the veins of you that the age of eleven or twelve. It is called by the name of adolescence. If that tide can be taken at the flood, and a new voyage begun in the strength and along the flow of its current, we think that it will move on to fortune.)

आज विद्यालयों में माध्यमिक, उच्चतर माध्मिक तथा स्नातक कक्षाओं के अधिकांश विद्यार्थी किशोरावस्था में होते हैं। वर्तमान युग में विद्यार्थियों से सम्बन्धित अनुशासन की समस्या ने एक व्यापक रूप धारण कर लिया है। अत: इन किशोरों की शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक और नैतिक शक्तियों को उचित दिशा देने के लिए तथा उनकी शिक्षा का स्वरूप निर्धारित करने के लिए उनकी प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है।

किशोरावस्था का अर्थ (Meaning of Adolescence)

किशोरावस्था को अंग्रेजी भाषा में 'एडोलसेन्स' (Adolescence) कहते हैं। यह शब्द लैटिन भाषा की 'एडोलेसियर' (Adolescere) क्रिया से बना है जिसका अर्थ है 'परिपक्वता की ओर बढ़ना' (To Grow to Maturity)। **ब्लेयर जोन्स तथा सिम्पसन** के अनुसार "किशोरावस्था प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में वह काल है, जो बाल्यावस्था के अन्त में प्रारम्भ होता है और प्रौढ़ावस्था के आरम्भ में समाप्त होता है।" किशोरावस्था की परिभाषा अन्य पाश्चात्य-मनौवैज्ञानिकों ने इस प्रकार की है–

जरसील्ड के अनुसार– "किशोरावस्था वह समय है जिसमें विकासशील व्यक्ति बाल्यावस्था से परिपक्वता की ओर संक्रमण करता (बढ़ता) है।" (Adolescence is a period through, which a growing person makes transition from childhood to maturity.)

स्टेनले हॉल के अनुसार–"किशोरावस्था बड़े संघर्ष, तनाव, तूफान तथा विरोध की अवस्था है।" (Adolescence is period of great stress and strain storm and strike.)

स्पष्ट है कि किशोरावस्था विकास की वह अवस्था है, जो तारुण्य से प्रारम्भ होती है और परिपक्वता के उदय होने पर समाप्त होती है।

सामान्य रूप से यह अवस्था 12 वर्ष की आयु से 18 वर्ष की आयु तक मानी जाती है, किन्तु विभिन्न देशों में व्यक्तिगत भेद, संस्कृति, जलवायु आदि के कारण किशोरावस्था के विकास की अवधि में कुछ अन्तर पाया जाता है। गर्म प्रदेशों में शीत-प्रधान प्रदेशों की अपेक्षा किशोरावस्था का आरम्भ शीघ्र होता है। बालकों की तुलना में बालिकाओं में किशोरावस्था का आरम्भ लगभग 2 वर्ष पूर्व हो जाता है।

कुछ मनोवैज्ञानकों ने किशोरावस्था को दो भागों में विभाजित किया है–

(1) पूर्व-किशोरावस्था (Early Adolescence) 12 से 16 वर्ष की आयु तक।

नोट

(2) उत्तर-किशोरावस्था (Late Adolescence) 17 से 19 वर्ष की आयु तक।

17 वर्ष की आयु को दोनों का विभाजक बिन्दु बताया है। जैसे कि **हरलॉक** ने कहा है, "पूर्व और उत्तर-बाल्यकाल के मध्य की विभाजन रेखा लगभग 17 वर्ष की आयु के आस-पास है.....।" (The dividing line between early and late adolescence is placed around seventeen years.)

उत्तर-बाल्यकाल तथा किशोरावस्था के बीच की अवधि को पूर्व-किशोरावस्था माना जाता है। इस समय बालक पूर्ण किशोर नहीं बनता, किन्तु उसके व्यवहार, मनोवृत्ति तथा दृष्टिकोण में परिवर्तन दिखाई देने लगता है। पूर्व किशोरावस्था को **'एक बड़ी उलझन की अवस्था'** कहा गया है, क्योंकि इस समय प्रायः माता-पिता, अभिभावक तथा शिक्षक उसे बात-बात पर डाँटते, रोकते या टोकते रहते हैं। वह सदा उलझनपूर्ण स्थिति में रहता है कि वह क्या करे?

पूर्व-किशोरावस्था को **'अत्यन्त द्रुत एवं तीव्र विकास का काल'** भी कहा गया है। शारीरिक विकास के साथ-साथ इस समय विकास के सभी पक्षों में तेजी आ जाती है।

स्टेनले हॉल ने पूर्व-किशोरावस्था को 'एक अत्यन्त संवेगात्मक उथल-पुथल, झंझा और मानव तनाव की अवस्था' कहा है। कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार यह अवस्था **'एक अटपटी तथा समस्यावस्था'** (Problem Age) भी कही गई है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अध्ययन की सुविधा एवं सरलता के लिए किशोरावस्था को 12, 13 वर्ष आयु से 18, 19 वर्ष की आयु तक मानना चाहिए।

क्या आप जानते हैं ठंडे देशों की अपेक्षा गर्म देशों में किशोरावस्था का आरंभ शीघ्र होता है। बालकों की तुलना में बालिकाओं में किशोरावस्था की शुरुआत 2 वर्ष पूर्व ही हो जाती है।

किशोरावस्था के विकास के सिद्धान्त (Theories of Development of Adolescence)

किशोरावस्था के विकास के दो सिद्धान्त हैं–

(1) त्वरित विकास का सिद्धान्त (Theory of Saltatory Development)– इस सिद्धान्त का समर्थन **स्टेनले हॉल** ने अपनी 'एडोलसेन्स' नामक पुस्तक में किया है। इनका कहना है कि किशोरों में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन आकस्मिक रूप से होते हैं जिनका शैशव या बाल्यकाल से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। **स्टेनले हॉल** के शब्दों में, "किशोर अथवा किशोरी में जो शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन होते हैं, वे एकदम छलांग मारकर आते हैं।"

(2) क्रमिक विकास का सिद्धान्त (Theory of Gradual Development)– इस सिद्धान्त के समर्थक **थार्नडाइक, किंग और हालिंगवर्थ** (Thorndike, King and Hollingworth) हैं। इनका कथन है कि किशोरावस्था में शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक परिवर्तनों के फलस्वरूप जो नवीनताएँ दिखाई देती हैं, वे एकदम न आकर धीरे-धीरे क्रमशः आती हैं। इस सम्बन्ध में **किंग** महोदय का कथन है, "जिस प्रकार एक ऋतु के आगमन के चिह्न दिखाई देने लगते हैं, उसी प्रकार बाल्यावस्था और किशोरावस्था एक दूसरे से सम्बन्धित रहती हैं।"

किशोरावस्था की मुख्य विशेषताएँ (Chief Characterstics of Adolescence)

किशोरावस्था की प्रमुख विशेषता के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक **बिग्गी** व **हन्ट** ने लिखा है– "किशोरावस्था की विशेषताओं को सर्वोत्तम रूप से व्यक्त करने वाला एक शब्द है– परिवर्तन। परिवर्तन शारीरिक, सामाजिक और

नोट

मनोवैज्ञानिक होता है।" (The one word best characterises adolescence is changae. The change is physiological, sociological and psychological.)

उपर्युक्त परिभाषा में दिये गए परिवर्तनों से सम्बन्धित किशोरावस्था की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) शारीरिक परिवर्तन (Bodily Changes)– किशोरावस्था में अनेक प्रकार के महत्त्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तन होते हैं। इस समय शारीरिक दृष्टि से यौवनारम्भ के लक्षण प्रकट होते हैं। बालिकाएँ स्त्रीत्व को तथा पुरुष पुरुषत्व को प्राप्त करते हैं। शारीरिक दृष्टि से बालकों और बालिकाओं में परिपक्वता आ जाती है।

(2) मानसिक विकास (Mental Development)– किशोरावस्था में शारीरिक विकास के साथ मानसिक योग्यताओं में वृद्धि होती है। विशेष रूप से उनमें ये मानसिक गुण पाये जाते हैं– जैसे कल्पना, स्मृति, दिवास्वप्नों की अधिकता, तर्क, निर्णय-शक्ति में वृद्धि तथा विरोधी मानसिक दशाएँ (Moods) आदि।

(3) स्थायित्व एवं समायोजन का अभाव (Lack of Stability and Adjustment)– इस समय किशोर की मन:स्थिति शिशु की भाँति अस्थिर होती है। रॉस ने किशोरावस्था को **'शैशवावस्था की पुनरावृत्ति'** (Recapitulation) कहा है। इस समय उसमें इतनी तेजी से परिवर्तन होते हैं कि वह कभी कुछ विचार करता है और कभी कुछ। उसकी मनोदशा अस्थिर होती है। परिणामस्वरूप वह अपने को पर्यावरण से समायोजित (Adjust) करने में असमर्थ होता है।

(4) संवेगात्मक जीवन (Emotional Life)– किशोर का जीवन बहुत ही भावात्मक होता है। संवेगात्मक आवेश में वह असम्भव एंव असाधारण कार्य करने का संकल्प कर डालता है। कभी वह अदम्य उत्साह से भरा होता है, कभी वह बहुत हतोत्साहित दिखाई देता है।

(5) विरोधी मानसिक दशाएँ (Contrasting Mental Moods)– किशोर में विरोधी मानसिक दशाएँ उसे कभी स्वार्थी तथा कभी स्वार्थरहित बना देती हैं। इसका कारण संवेगात्मक जीवन में अपने को समायोजित न कर सकना है। किशोरावस्था उच्च स्तर पर (On Higher Level) प्रारम्भिक बाल्यकाल का पुनरावर्तन है। बौद्धिक रूप से वह अवश्य बालक से श्रेष्ठ होता है। पर संवेगात्मक रूप से वह अधिक उलझनयुक्त और अव्यवस्थित रहता है। प्राय: वह छोटी-छोटी बातों को लेकर शीघ्र ही अप्रसन्न हो जाता है। वह कभी अत्यन्त प्रसन्न और हँसता हुआ दिखाई देता है तो दूसरे क्षण ही दु:खी, चिन्तित और उदासीन दिखाई देता है।

(6) मानसिक स्वतंत्रता तथा अधिकारियों के प्रति विद्रोह की भावना (Mental Independence and Revolt to Authority)– इस अवस्था में मानसिक स्वतंत्रता की भावना प्रबल होती है। किशोर बड़ों के आदेशों, विभिन्न परम्पराओं, रीति-रिवाजों और अन्धविश्वासों के बन्धन में नहीं रहना चाहता। क्या है, यह उसे सन्तुष्ट नहीं करता वरन् 'कैसे है' इसकी संतुष्टि वह करना चाहता है। इस समय उनमें बिना तर्क किए किसी भी बात को न स्वीकार करने की प्रवृत्ति (No taken for granted attitude) दिखाई देती है।

(7) बुद्धि का अधिकतम विकास (Maximum Development of Intelligence)– किशोरावस्था में बौद्धिक विकास अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि 16 वर्ष की अवस्था तक सामान्यत: मानसिक आयु में वृद्धि होती है। बुद्धि-परीक्षण द्वारा मानसिक आयु ज्ञात होती है। बौद्धिक-विकास की पूर्णता के कारण किशोर में निम्नांकित बौद्धिक कार्यों को करने की क्षमता आ जाती है।

(1) प्रत्ययों (Concepts) के आधार पर अमूर्त्त चिन्तन (Abstract Thinking) की क्षमता।

(2) तर्क तथा निर्णय करने की क्षमता।

(3) ध्यान-केन्द्रित करने की क्षमता।

(4) स्मृति विस्तार (Memory Span) की क्षमता।

(5) रचनात्मक कल्पना (Creative Imagination) की क्षमता।

नोट

(8) रुचियों में परिवर्तन (Change in Interests)–किशोरावस्था में शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों के साथ उनकी रुचियों में भी निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। किशोर और किशोरियों की रुचियों में समानता भी होती रहती है तथा विभिनता भी पाई जाती है। दोनों में पत्र-पत्रिकाएँ, कहानियाँ, नाटक और उपन्यास पढ़ना, संगीत, कला, अभिनय में भाग लेना, सिनेमा देखना, रेडियों सुनना, अपने शरीर को सुन्दर बनाने का प्रयत्न करना आदि प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं। किशोरों में खेलकूद, व्यायाम, दौड़-धूप करना, साहस के कार्य करना आदि में विशेष रुचि होती है। किशोरियों में कढ़ाई-बुनाई, नृत्य और संगीत तथा शरीर को वस्त्राभूषणों से अलंकृत करने में रुचि दिखाई देती है।

(9) काम-भावना का विकास (Development of Sex Instinct)– किशोरावस्था में काम-प्रवृत्ति क्रियाशील हो उठती है। मनोवैज्ञानिक **रॉस ने स्लाटर** (Slaughter) के कथन का समर्थन किया है, "काम समस्त जीवन का नहीं तो किशोरावस्था का अवश्य ही मूल तथ्य है ..... एक विशाल नदी के अति प्रवाह के समान यह जीवन की भूमि के बड़े भागों को सींचता है एवं उपजाऊ बनाता है।" (Sex is the fundamental fact of adolescence, if not of all life. Like the overflow of great river, it irrkigates and fertilizes great tracks of life's territory.)

नि:संन्देह किशोरावस्था का केन्द्रीय तथ्य यौनिक विकास (Sexual Development) है। **डॉ. जोन्स** (Jones) का विचार है कि किशोरावस्था से शैशवकाल के यौनिक इतिहास का पुनरावर्तन होता है अर्थात् शैशव का दबा हुआ (दमित) यौन आवेग (Repressed Sex Impulse) जो बाल्यकाल में सुप्त अवस्था में रहता है, पुन: जागृत हो जाता है। इस भावना के विकास के कारण किशोरों से बेचैनी, हाथ के नाखून चबाना, पेंसिल मुँह में देना, लड़कियों का बार-बार अपने आँचल को उंगलियों से लपेटना आदि व्यवहार दिखाई देते हैं। इस प्रवृत्ति का विकास तीन क्रमों में आगे बढ़ता है–

(क) आत्म-प्रेम (Auto-Eroticism)– प्रारम्भ में यह भावना आत्म-प्रेम के रूप में दिखाई देती है। इस अवस्था में वह अपने को यथासम्भव आकर्षक बनाने का प्रयास करता है। अपने को ही देखता, संवारता रहता है तथा अपने समान किसी को नहीं समझता, अपने में ही मस्त रहता है और अपने से ही प्रेम करता है। फ्रायड ने इस स्थिति को नर्सीसिज्म (Narcissism) कहा है।

(ख) समलिंगीय काम-भावना (Homo-Sexul Feeling)– आत्म-प्रेम की स्थिति के बाद बालक बालकों से और बालिका बालिकाओं से मित्रता एवं घनिष्ठता स्थापित करते तथा आकर्षित होते हैं। यह घनिष्ठता साथ-साथ घूमने-फिरने तथा घंटों बातचीत करने में देखी जा सकती है।

(ग) विषमलिंगीय काम-भावना (Hetro-sexual Feeling)– अंत में, उत्तर-किशोरावस्था में इस भावना के फलस्वरूप किशोर-किशोरी एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते तथा रुचि रखते हैं। वे परस्पर मिलने-जुलने बातचीत करने, घूमने-फिरने तथा साथ रहने की इच्छा रखते हैं।

यहाँ यह कहना भी उचित प्रतीत होता है कि यह आवश्यक नहीं है कि यौनिक विकास की ये तीनों अवस्थाएँ क्रमानुसार एक दूसरे के बाद निश्चित समय पर आएँ वरन् ये साथ-साथ भी रह सकते हैं।

(10) निर्भरता व अधीनता की प्रवृत्ति (Attitude of Dependence)– शैशव अवस्था में शिशु प्रत्येक कार्य के लिए माता-पिता पर निर्भर रहता है। उनके अभाव में वह अपने को आरक्षित समझता है। शैशवावस्था की भाँति इस समय किशोर में निर्भरता की प्रवृत्ति फिर से दिखाई देती है। यह निर्भरता आवश्यक नहीं कि माता-पिता के ही प्रति हो वरन् यह प्रवृत्ति प्राय: उन वीरों के प्रति होती है जो वास्तविक जीवन में, साहित्य में तथा इतिहास में पाये जाते हैं। वह इन नेताओं और महापुरुषों के आदर्श गुणों से प्रभावित होकर इनके आदर्शों का अनुयायी हो जाता है। इनके प्रति श्रद्धा भक्ति रखता है तथा इनकी पूजा करने लगता है। इसलिए किशोरावस्था 'वीर पूजा की अवस्था'

नोट

(Hero-Worship Age) कही जाती है। वीर पूजा की प्रवृत्ति का लाभ उठाकर किशोर बालक-बालिकाओं के चरित्र का निर्माण किया जाता है।

(11) धार्मिक भावना का उदय (Religious Feeling)– उपर्युक्त वर्णित निर्भरता की प्रवृत्ति के फलस्वरूप धार्मिक चेतना का उदय होता है। किशोर ईश्वर के किसी-न-किसी रूप से प्रभावित होकर ईश्वर की सत्ता में विश्वास करने लगता है। धार्मिक चेतना का प्रकाशन, आत्मसंयम, आत्मनियंत्रण, कर्त्तव्य-पालन तथा समाजसेवा के रूप में होता है।

(12) समाज सेवा की भावना (Feeling of Social Service)– इस अवस्था में समाज सेवा की भावना प्रबल हो जाती है। इस सम्बन्ध में **रॉस** महोदय का कथन है, "किशोर, समाज-सेवा के आदर्शों का निर्माण और पोषण करता है। उसका उदार हृदय मानव जाति के प्रेम से ओत-प्रोत होता है और वह आदर्श समाज का निर्माण करने में सहायता देने के लिये उद्विग्न रहता है।"

(13) कल्पना का बाहुल्य (Exuberance of Imagination)– किशोर अत्यधिक कल्पनाशील होता है। व्यावहारिक जीवन में किशोर अपनी सभी अभिलाषाओं को पूरा करने में अपने को असमर्थ पाता है। फलस्वरूप इन अभिलाषाओं की पूर्ति वह वास्तविक जीवन में न करके कल्पना जगत में करने लगता है। छोटी-छोटी बातों को लेकर वह कल्पना में डूब जाता है। कल्पना की प्रबलता के कारण इस आयु में दिवास्वप्न (Day-Dream) देखने की प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्ति की अधिकता के कारण वह आत्मकेन्द्रित तथा अन्तर्मुखी बन जाता है। इस प्रवृत्ति से कभी-कभी हानि भी होती है। कुछ किशोरों में समाज-विरोधी भावनाओं की उत्पत्ति हो जाती है, वे असामाजिक तथा अनैतिक व्यवहार करने लगते हैं तथा प्रायः बाल अपराधी हो जाते हैं। किन्तु कभी-कभी कल्पना तथा दिवास्वप्नों के कारण किशोर साहित्य, संगीत और ललित कलाओं में सौन्दर्यात्मक और रचनात्मक-कल्पना शक्ति का प्रकाशन करते हैं। वे कहानियाँ, नाटक लिखने तथा अभिनय करने में रुचि दिखाते हैं। कल्पना-प्रवृत्ति के उन्नयन (Sublimation) द्वारा उनमें कलात्मक शक्ति का विकास सम्भव होता है और वे कवि, कलाकार, कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, चित्रकार तथा संगीतज्ञ बनाये जा सकते हैं।

(14) परमार्थ की भावना (Altruism)– शैशवास्था की स्वार्थ-भावना, किशोरावस्था में परमार्थ भावना अर्थात् दूसरों का उपकार करने की भावना का रूप ले लेती है। इस समय किशोर में त्याग व बलिदान की भावना प्रबल दिखाई देती है। यह देश और समाज के कल्याण के लिए प्राणों की बाजी लगा देने में भी संकोच नहीं करता है। इस समय उनमें अदम्य उत्साह एवं शक्ति होती है जो कि परमार्थ भावना को जन्म देती है। विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है कि किशोरों ने इस भावना से प्रेरित होकर राष्ट्र और समाज के लिए तथा उसकी बुराइयों को दूर करने के लिए मृत्यु तक को चुनौती दे दी।

(15) आत्म-सम्मान की भावना (Feeling of Self Respect)– किशोरों में आत्मसम्मान की भावना प्रबल होती है। वे शीघ्र ही छोटी-छोटी बातों से अपने को अपमानित एवं तिरस्कृत समझने लगते हैं। अतः इस समय उनके साथ अमनोवैज्ञानिक व्यवहार न करके प्रेम और सहानुभूति द्वारा उचित बातों की शिक्षा देनी चाहिए। इस आत्मसम्मान की भावना के फलस्वरूप किशोरों में आत्मनिर्भर तथा स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने की भावना जागृत हो जाती है। कभी-कभी उनके आत्मसम्मान को ठेस लगने के कारण, उनमें घर से भागने की प्रवृत्ति भी उत्पन्न हो जाती है और उन्हें अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार के उदाहरण भी दिये जा सकते हैं कि घर से भागने की प्रवृत्ति के कारण कुछ लोग जीवन में बहुत उन्नति करते देखे गये हैं।

(16) अपराध प्रवृत्ति का विकास (Development of Criminal Tendency)– इस अवस्था में इच्छापूर्ति में बाधा, निराशा और असफलता मिलने के कारण अपराध प्रवृत्ति का विकास होता है। इस सम्बन्ध में **वैलेन्टाइन**

नोट

(Valentine) का विचार है– "किशोरावस्था अपराध-प्रवृत्ति के विकास का नाजुक समय है। पक्के अपराधियों की एक विशाल संख्या किशोरवस्था में ही अपने व्यावसायिक जीवन को गम्भीरतापूर्वक आरम्भ करती है।"

(17) समूह प्रवृत्ति का विकास (Development of Gregarious Tendency)– किशोर बालक-बालिकाएँ अपने साथियों एवं मित्रों के साथ रहना अधिक पसन्द करते हैं। प्राय: वे किसी समूह के सदस्य होते हैं। अपने समूह को परिवार एवं विद्यालय से अधिक महत्त्व देते हैं। जिन समूहों से उनका सम्बन्ध होता है उनसे लगभग सभी कार्य प्रभावित होते हैं। समूह के अनुसार वे भाषा, नैतिक मूल्यों, वस्त्र पहनने की आदतों और भोजन करने की विधियों को अपनाते हैं। समूह के किशोर की विशिष्ट स्थिति (Status) होती है और उसी के अनुसार वे कार्य करते हैं। समूह की स्थिति और कार्य (Roles) उनके भावी जीवन को निर्धारित करने में योग देते हैं।

(18) बहिर्मुखी प्रवृत्ति (Extrovert tendency)– किशोरावस्था में किशोर पुन: बहिर्मुखी हो जाता है। उसकी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक रुचियों का विकास व्यापक क्षेत्र में होता है। वह अपने चारों ओर के वातावरण तथा क्रियाओं में रुचि लेता है। विद्यालय तथा समाज के विभिन्न कार्यक्रमों में वह भाग लेना चाहता है। बहिर्मुखी प्रवृत्ति के कारण उसमें आत्मनिर्भरता, आत्म-नियंत्रण, सहयोग, अनुशासन, परोपकार की भावना आदि गुणों का विकास होता है।

(19) व्यवसाय चुनाव की चिन्ता (Anxiety for Vocational Selection)– इस अवस्था में ही किशोर अपने भावी व्यवसाय को चुनने के लिए चिन्ता करने लगता है। वह एक कुशल डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, शिक्षक, कलाकार या सफल किसान बनकर जीवन व्यतीत करने की कल्पना और चिन्ता किया करता है तथा व्यवसाय के अनुसार ही पाठ्य-विषयों का चुनाव भी करता है।

उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि किशोरावस्था में बालक की अनेक नवीन विशेषताएँ दिखाई देती हैं। इस सम्बन्ध में **स्टेनले हॉल** का कथन है– "किशोरावस्था एक नया जन्म है, क्योंकि इसी में उच्चतर और श्रेष्ठतर मानव विशेषताओं के दर्शन होते हैं।" (Adolescence is a new birth, for the higher and more completely human traits are new born.)

किशोरावस्था में व्यवहार का निरीक्षण (Observation of the Behaviour in Adolescence)

किशोरावस्था एक संक्रमण की अवस्था है जिसमें बालक न बालक रहता है न ही प्रौढ़। इसे सामान्यत: दो भागों में विभक्त किया जा सकता है– पूर्व किशोरावस्था और उत्तर किशोरावस्था। पूर्व किशोरावस्था जीवन का वह काल है जिसे प्राय: तूफान और तनाव का काल कहा जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस आयु में नवकिशोर का माता-पिता, शिक्षकों और मित्रों के साथ अनेक बार संघर्ष हो जाता है। उसकी संवेगशीलता, बाल्यावस्था की अपेक्षा बढ़ जाती है तथा उसके साथ रहना या काम करना मुश्किल होता है। वे समझते हैं प्रौढ़ उन्हें सामूहिक रूप से निन्दा, आलोचना और तिरस्कार का लक्ष्य बनाते हैं। नव किशोर के व्यवहार का अध्ययन करने के पश्चात् निम्न लक्षण सामने आते हैं जैसे–

1. नव किशोर अस्थिर होते हैं।
2. नव किशोर के सामने अनेक समस्याएँ होती हैं।
3. नव किशोर दु:खी और असन्तुष्ट होते हैं।
4. नव किशोरों में विभिन्न संवेगों यथा– क्रोध, भय, आकुलता, ईर्ष्या, स्पर्धा, स्नेह, जिज्ञासा आदि की प्रमुखता रहती है।
5. अब सामाजिक व्यवहार परिवर्तित होता है।

नोट

6. वे समूह निर्माण, मंडलियाँ, भीड़ और मित्र मण्डली आदि बनाने में अग्रसर रहते हैं।
7. उनमें विषम लिंगीय प्यार पाया जाता है।
8. उनमें समलिंगीय काम भावना भी पायी जाती है।
9. नवकिशोर में कल्पना का बाहुल्य होता है।
10. उनमें आत्म-सम्मान की भावना प्रबल होती है।

उनके व्यवहार का अध्ययन करने के लिए उनसे सम्बन्धित प्रश्नावली बनाकर उसका निरीक्षण किया जा सकता हैं जैसे– उनका संक्षिप्त परिचय, उनकी प्रमुख समस्याएँ आदि।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सही विकल्प चुनिए–

1. "शैशवावस्था द्वारा जीवन का पूरा क्रम निश्चित होता है।" शैशवावस्था की यह परिभाषा किसने दी है–
   (क) फ्रॉयड (ख) हरलॉक (ग) एडलर
2. "बालक प्रथम छः वर्षों में, बाद के बारह वर्षों से दूना सीख लेता है।" सीखने की प्रक्रिया के संबंध में ये विचार किसके हैं–
   (क) गेसेल (ख) क्रो और क्रो (ग) हरलॉक
3. शैशवावस्था को 'सीखने का आदर्श' किसने कहा है–
   (क) जे. एस. रॉस (ख) वैलेंटाइन (ग) स्ट्रैंग

किशोरावस्था में शिक्षा का स्वरूप (Nature of Education in Adolescence)

किशोरावस्था की प्रमुख विशेषताओं तथा विकास सम्बन्धी परिवर्तनों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो गया है कि यह जीवन का सबसे कठिन और नाजुक समय है। इस समय किशोर में शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से क्रांतिकारी परिवर्तन होते हैं। इसी अवस्था में वह अच्छा बुरा, देश-प्रेमी व देशद्रोही, धार्मिक या अधार्मिक, परिश्रमी या अकर्मण्य, सभ्य, शिष्ट व सामाजिक या असभ्य, अशिष्ट, असामाजिक आदि बन सकता है। अतः किशोरों को उचित मार्ग-प्रदर्शन करना अनिवार्य है। शैक्षिक दृष्टि से यह काल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसलिए किशोरों के भावी जीवन के निर्माण में माता-पिता, अभिभावकों तथा शिक्षकों का उनके लिए उपयुक्त एवं सुनियोजित शिक्षा की व्यवस्था करना, परम कर्त्तव्य है। इस सम्बन्ध में **वैलेन्टाइन** का यह वाक्य उल्लेखनीय है– "मनोवैज्ञानिकों द्वारा बहुत समय तक उपदेश दिये जाने के बाद अन्त में यह बात व्यापक रूप से स्वीकार की जाने लगी है कि शैक्षिक दृष्टि से किशोरावस्था का अत्यधिक महत्त्व है। (After long preacing on the part of psychologist, the great importance of the period of adolescence from an educational point of veiw is at last being widely recognised.)

किशोरावस्था में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा का स्वरूप निर्धारित होना चाहिए। इस सम्बन्ध में निम्नांकित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

(1) शारीरिक विकास के लिए शिक्षा– किशोरावस्था में शारीरिक विकास द्रुत गति से होता है इसलिए सर्वप्रथम इस समय स्वास्थ्य पर ध्यान देना चाहिए। शरीर को सबल तथा स्वस्थ रखने के लिए घर तथा विद्यालय दोनों की व्याख्या करनी चाहिए। उनके लिए पौष्टिक भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा, विभिन्न प्रकार के शारीरिक व्यायाम तथा खेलकूद का प्रबन्ध करना आवश्यक है। किशोरों के शारीरिक एंव गति (Motor) विकास में विद्यालयों में व्यायाम

नोट

तथा खेलकूद सम्बन्धी क्रियाओं जैसे कसरत, कुश्ती, फुटबाल, हॉकी, वालीबॉल, कबड्डी, तैरना तथा अन्य व्यायाम की व्यवस्था होनी चाहिए। इन सबसे उसमें अच्छा शरीरिक स्वास्थ्य तथा स्वच्छता सम्बन्धी आदतों का निर्माण एवं विकास होता है। स्वस्थ शारीरिक विकास पर ही उसके अन्य पक्षों का विकास आधारित है। किशोरों को भ्रमण, यात्रा, पिकनिक, प्रकृति निरीक्षण आदि के लिए भी ले जाना चाहिए।

(2) मानसिक विकास के लिए शिक्षा– किशोरावस्था में मानसिक विकास की विशेषताओं के अनुसार किशोरों की बुद्धि, निरीक्षण शक्ति, तर्क-शक्ति, चिन्तन शक्ति, स्मृति तथा कल्पना-शक्ति का विकास उनकी रुचि, रुझान, योग्यता एवं क्षमता के अनुसार किया जा सकता है। इसके लिए शिक्षा में इन बातों को स्थान देना चाहिए।

(क) पाठ्यक्रम में कक्षा, विज्ञान, साहित्य, इतिहास, भूगोल तथा विद्यालय के पाठ्य विषयान्तर विषयों को रखना चाहिए।

(ख) विद्यालय में पुस्तकालय, वाचनालय, प्रयोगशाला, संग्रहालय आदि साधन प्रदान किए जाएँ।

(ग) किशोर की जिज्ञासा प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिए तथा निरीक्षण शक्ति को प्रशिक्षित करने के लिए पाठ्य विषयों को पढ़ाने के अलावा प्राकृतिक तथा ऐतिहासिक स्थानों पर भ्रमण के लिए ले जाना चाहिए।

(घ) उसकी रुचियों, कल्पनाओं, दिवास्वप्नों तथा भावुकता का लाभ उठाकर उसे साहित्य, संगीत, कला तथा वैज्ञानिक शोध-कार्यों में लगाया जा सकता है। इसके लिए पर्यटन, वाद-विवाद, साहित्यिक गोष्ठी आदि पाठ्य विषयान्तर क्रियाओं का आयोजन करना चाहिए।

(ङ) भाषा-ज्ञान का मानसिक विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अत: विद्यालय में उन्हें शुद्ध बोलने तथा लिखने का अभ्यास कराया जाए तथा उनके शुद्ध उच्चारण पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाए।

(3) संवेगात्मक विकास के लिए शिक्षा– किशोरावस्था में संवेगात्मक जीवन में उथल-पुथल-सी मच जाती है। किशोर पूर्व विकसित स्थायी भावों तथा नई-नई भावनाओं एवं संवेगों पर नियंत्रण पाने में असमर्थ दिखाई पड़ते हैं। वह अनेक प्रकार के संवेगों से संघर्ष करते रहते हैं। इन संवेगों कुछ अच्छे और कुछ निकृष्ट संवेग होते हैं। कभी-कभी उन्हें ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है कि वह अपने कर्त्तव्य को नहीं समझ पाते। ऐसी स्थिति में वह प्राय: उदास तथा हताश दिखाई देते हैं और मानसिक ग्रंथियों का शिकार हो जाते हैं। अत: शिक्षा द्वारा उनके निकृष्ट एवं दुखद संवेगों का दमन या मार्गान्तरीकरण करके उचित एवं उत्तम संवेगों का विकास किया जाए। संवेगात्मक विकास के लिए इन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(क) संवेगों और मूल-प्रवृत्तियों का शोधन (Sublimation) करने की शिक्षा दी जाए। संवेगों को प्रशिक्षित करने की यह उत्तम विधि है। इस विधि के द्वारा संवेगों के प्रकाशन का स्वरूप बदल दिया जाता है। इसके लिए उनमें साहित्य, संगीत तथा सांस्कृति कार्यक्रमों के प्रति रुचि जागृत करनी चाहिए। संवेग-शोधन का उदाहरण महाकवि कालिदास के काम-प्रवृत्ति के संवेग का साहित्य प्रेम में परिवर्तन होना। काम-प्रवृत्ति का लाभ उठाकर किशोरों में शिष्टाचार, कलात्मक रुचि तथा सुन्दर आदतों का निर्माण किया जा सकता है।

(ख) वीर पूजा भाव तथा आदर्शवाद की प्रवृत्ति का लाभ उठाकर चरित्र गठन तथा सुन्दर स्थायी भावों का निर्माण किया जा सकता है। इसके लिए उन्हें महापुरुषों की जीवनियाँ तथा अच्छा साहित्य पढ़ने के लिए देना चाहिए।

(ग) नैतिक और धार्मिक शिक्षा देने के लिए उन्हें उचित पर्यावरण प्रदान किया जाए।

(घ) संवेगात्मक शिक्षा देने के लिए अभिभावकों तथा अध्यापकों को किशोरों के संवेगों का भी अध्ययन करना आवश्यक है।

(4) सामाजिक विकास के लिए शिक्षा– शिक्षा का एक मुख्य कार्य सामाजिक भावना का विकास करना है। सामाजिक विकास के बिना व्यक्ति अपने वातावरण में समायोजन स्थापित नहीं कर सकता। किशोरों के सामाजिक विकास में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक विकास पर पाठ्य विषयान्तर कार्यक्रमों, खेलकूद, स्काउटिंग,

नोट

स्कूल का वातावरण, पत्र-पत्रिकाएँ, आकाशवाणी आदि का प्रभाव पड़ता है। सामाजिक विकास को दृष्टि में रखते हुए शिक्षा में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

(क) सामाजिक-समायोजन (Social Adjustment)– करने का ज्ञान देना।

(ख) समूह-नैतिकता (Group Morality) पर बल देना। उनमें नेतृत्व, उत्साह, सहयोग, सहानुभूति, सद्भावना आदि गुणों के विकास के लिए प्रयत्न करना।

(ग) मैत्री-भाव विकसित करना।

(घ) स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना का विकास करना।

(ङ) सामूहिक रूप से पाठ्य विषयान्तर कार्यक्रमों का आयोजन करना तथा उनमें भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना।

(च) अपने देश, समाज तथा मानव-संस्कृति से परिचित करना।

(5) धार्मिक और नैतिक शिक्षा– नैतिक विकास के लिए उनके सामने अच्छे आदर्श, व्यवहार एवं आचरण प्रस्तुत किए जाएँ। **रॉस** ने कहा है, "नैतिक चरित्र का उच्चतम विकास तब होता है जबकि व्यवहार, सामाजिक प्रशंसा अथवा दोष से नहीं वरन् आदर्शों से निर्देशित होता है।" किशोरावस्था में मस्तिष्क में निरन्तर विरोधी विचार उठा करते हैं। किशोर उचित-अनुचित व्यवहार में अन्तर नहीं कर पाता। अत: उसे विद्यालय में धार्मिक और नैतिक शिक्षा अवश्य देनी चाहिए।

(6) व्यक्तिगत विभिन्नता के अनुसार शिक्षा– किशोरावस्था में किशोरों की शिक्षा के लिए विद्यालयों में उनकी रुचि रुझान, क्षमता एवं योग्यता के अनुसार विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करनी चाहिए। इसके साथ ही विद्यालयों में शैक्षिक निर्देशक (Educational Guidance) तथा व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance) की भी व्यवस्था हो तथा पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों का समावेश हो जिनके द्वारा वह भविष्य में अपनी रुचि एवं आवश्यकतानुसार किसी व्यवसाय का चुनाव कर सकें।

(7) उपयुक्त शिक्षण-विधि का प्रयोग– किशोरावस्था में स्वयं परीक्षण, तर्क, विचार एवं चिन्तन करने की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। किशोर परम्परागत शिक्षा देने की विधियों से न तो सन्तुष्ट होता है और न लाभान्वित ही। अत: **रॉस** महोदय का विचार है कि "विषयों का शिक्षण व्यावहारिक ढंग से होना चाहिए और उनका दैनिक जीवन की बातों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए।"

(8) यौन-शिक्षा की आवश्यकता– किशोरावस्था में अधिकांश समस्याओं का सम्बन्ध उनक इसी प्रवृत्ति से होता है। भारतीय परिवारों में इस प्रकार की शिक्षा देने पर जरा भी ध्यान नहीं दिया जाता, क्योंकि इस विषय पर बात करने में लज्जा और संकोच का अनुभव किया जाता है। फलस्वरूप इस विषय की अज्ञानता का प्रभाव किशोरों और किशोरियों पर अधिक बुरा पड़ता है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि किशोरावस्था में काम-प्रवृत्ति को उचित दिशा में ले जाने के लिए, उन्हें उपयुक्त ढंग से शिक्षा देना आवश्यक है। **रॉस** महोदय ने भी इस शिक्षा की आवश्यकता एवं विधि पर अपना मत प्रकट करते हुए कहा है– "यौन शिक्षा की परम आवश्यकता को कोई भी अस्वीकार नहीं करता है। इस बात की आवश्यकता है कि किशोर को एक ऐसे वयस्क द्वारा गोपनीय शिक्षा दी जाए जिस पर उसे पूर्ण विश्वास हो।"

(9) सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार– किशोरावस्था में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होने के कारण, किशोर हर समय किसी-न-किसी समस्या को लेकर एक उलझनपूर्ण स्थिति में रहता है। उनकी कठिनाइयों तथा समस्याओं का समाधान करने के लिए माता-पिता, अभिभावकों तथा शिक्षकों को उससे सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। इस अवस्था में किशोर बड़ों द्वारा लगाये गये नियंत्रणों और बन्धनों को पसन्द नहीं करता। वह अपने कार्यों को करने के लिए स्वतंत्रता चाहता है। अत: उसे उत्तरादायित्व देकर स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने का अवसर देना चाहिए।

किशोरावस्था में शिक्षक की भूमिका (Role of teacher in Adolescence)

नोट

किशोरावस्था को तनाव और तूफान की अवस्था कहा गया है। यही अवस्था है जब किशोर न तो बालक रहता है और न पूर्ण प्रौढ़ बन पाता है। इसे परिवर्तन की अवस्था भी कहा गया है। इस अवस्था में परिवर्तन का अंबार–सा लगा रहता है। उसमें अनेक शारीरिक और मानसिक परिवर्तन होते हैं। उनके संवेगात्मक, सामाजिक और नैतिक जीवन का स्वरूप बदल जाता है।

मानव जीवन के विकास में इस अवस्था का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस अवस्था में किशोर में क्रांतिकारी परिवर्तन होते है। **बिग्गी और हन्ट** (Bigge and Hunt) के अनुसार, "किशोरावस्था की विशेषताओं को सर्वोत्तम रूप से प्रकट करने वाला एक शब्द है– परिवर्तन। परिवर्तन शारीरिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक होता है।" (The one word which best characterize Adolescence is change. The change is philosophical, sociological and psychological.)

किशोरावस्था में किशोर और किशोरियों में एक नवीन शक्ति और एक अभूतपूर्व स्फूर्ति उत्पन्न हो जाती है। नवीन अभिलाषाएँ उनमें नवीन रूप से उठने लगती हैं। नई–नई उमंगे और भावनाएँ उन्हें आंदोलित करती हैं। तन मन विकसित होने से उनकी रुचियाँ बदलने लगती हैं और कल्पनाएँ उनके मस्तिष्क को भर–सा देती हैं। उनमें प्रौढ़तासूचक चिह्न प्रकट होने लगते हैं। शारीरिक परिवर्तन के कारण उनका संवेगात्मक सन्तुलन समाप्त हो जाता है। बेचैनी और अस्थायित्व आ जाता है, तनाव और संघर्ष पैदा हो जाता है। अत: ऐसी स्थिति में शिक्षक का दायित्व बनता है कि वह अपना पूर्ण सहयोग देकर उनका सही मार्गदर्शन करें। एक मित्र के रूप में व्यवहार कर उनकी जिज्ञासाओं को शान्त करें और अनेक प्रकार की शिक्षा दें।

(1) शारीरिक शिक्षा की व्यवस्था– किशोरावस्था में किशोर एवं किशोरियों के शरीर में अनेक क्रान्तिकारी बदलाव आते हैं। अत: ऐसी स्थिति में शिक्षकों का कर्त्तव्य है कि वह उनके सन्तुलित शारीरिक विकास के लिए सचेत रहें। इसके लिए शारीरिक शिक्षा को अनिवार्य विषय बनाया जाना चाहिए। साथ ही अभिभावकों और उनके माता–पिता को अच्छे पौष्टिक आहार देने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

(2) सामाजिकता की शिक्षा– किशोरावस्था में सामाजिकता की प्रवृत्ति व समाज के प्रत्येक काम में सहभागिता की प्रवृत्ति अत्यन्त तीव्र रूप में पाई जाती है। अत: यहाँ शिक्षक का दायित्व बनता है कि ऐसी स्थिति में उनको सहयोग, प्रेम, अनुशासन, कर्त्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी, सहानुभूति जैसे उत्तम गुणों का विकास करें। विद्यालय में ऐसे समूहों को संगठित करें जिनके सदस्य के रूप में वह उपरोक्त गुणों को ग्रहण कर सकें। इसमें सामूहिक खेल, स्काउटिंग, पर्यटन, एनसीसी, एनएनएस आदि की सक्रिय भूमिका सराहनीय है। अत: विद्यालय में किशोर को स्वाभाविक, प्रभावशाली और प्रजातंत्रीय वातावरण दिया जाना चाहिए तभी उचित ढंग से समाजीकरण सम्भव है। योग्य, शिष्ट, संयत, सहानुभूतिपूर्ण, सहयोगी, स्नेहमय, कोमल स्वभाव वाला और अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक शिक्षक किशोरों के स्वस्थ सामाजिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है। स्ट्रैंग (Strang) के अनुसार– "वास्तविक सामाजिक ग्रहणशीलता और योग्यता वाले शिक्षकों से दैनिक सम्पर्क बालक के सामाजिक विकास में बहुत अधिक योग देता है।"

(3) संवेगात्मक शिक्षा– किशोरावस्था में संवेगों की बहुत प्रबलता होती है। वह विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करता है। **बी.एन.झा** (B. N.Jha) के अनुसार, "किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास में इतनी विभिन्नता होती है कि किशोर एक ही परिस्थिति के विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करता है। जो परिस्थिति एक अवसर पर उसे आनन्दमय बनाती है, वही परिस्थिति दूसरे अवसर पर उसे दुखी बनाती है।" इसके साथ ही किशोरावस्था में काम भावना की प्रबलता के कारण प्रेम का संवेग अत्यधिक तीव्र होता है। **बी. एन. झा** के अनुसार, "किशोरावस्था में किशोर बालक–बालिकाओं में काम प्रवृत्ति बहुत ही तीव्र हो जाती है जो उनके संवेगात्मक व्यवहार पर असाधारण प्रभाव डालती है।" बालक के सन्तुलित संवेगात्मक विकास में शिक्षक

नोट

महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परिवार के बाद शिक्षक ही वह महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है जो बालक के संवेगात्मक व्यवहार को सबसे अधिक प्रभावित करता है। शिक्षक किशोर के समक्ष अच्छे उदाहरण प्रस्तुत करके, अच्छे आदर्शों का अनुसरण करने की इच्छा उत्पन्न करके और उपयुक्त वातावरण का निर्माण करके उसमें वांछनीय संवेगों का विकास कर सकता है और अवांछनीय संवेगों को बढ़ने से रोक सकता है। इस प्रकार शिक्षक उनमें अच्छी आदतों को विकसित कर आदर्श चरित्र का निर्माण कर सकता है। अत: आवश्यक है कि शिक्षक का व्यवहार किशोर के प्रति अत्यन्त प्रेमपूर्ण, सहानुभूतिपूर्ण, कोमल एवं मधुर होना चाहिए।

(4) मानसिक विकास– किशोरावस्था में शारीरिक परिवर्तन की तरह मानसिक परिवर्तन भी बड़ी द्रुत गति से होते हैं। **वुडवर्थ** का मानना है कि व्यक्ति का मानसिक विकास पन्द्रह से बीस वर्ष की अवस्था में अपनी उच्चतम सीमा पर पहुँच जाता है। किशोरावस्था में बुद्धि का अधिकतम विकास हो जाता है। **बी. एन. झा** के अनुसार "जहाँ तक बुद्धि के विकास का सम्बन्ध है, यह किशोरावस्था के अन्तर्गत अपनी उच्चतम सीमा पर पहुँच जाता है।" अत: शिक्षक को किशोर के मानसिक विकास का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। शिक्षक को बालक के शारीरिक स्वास्थ्य का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। उसके द्वारा उन्हें स्वास्थ्य और शरीर निर्माण के विषय में विशेष रूप से शिक्षा दी जानी चाहिए। खेलों की व्यवस्था, अच्छे व्यायाम का अभ्यास आदि भी कराया जाना चाहिए। शिक्षक द्वारा अनुकरण, संग्रह, जिज्ञासा आदि प्रवृत्तियों को बढ़ावा देकर किशोरों में अच्छी आदतों का विकास करना चाहिए। मानसिक योग्यताओं, झुकावों और रुचियों के आधार पर व्यक्ति को व्यावसायिक निर्देश देना चाहिए जिससे वह भविष्य सुनिश्चित कर सके।

(5) भाषा विकास– भाषा भावनाओं की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। इसके माध्यम से ही व्यक्ति अपने विचारों एवं भावों को दूसरों तक पहुँचाता है। भाषा विकास किशोर के सामाजिक और संवेगात्मक विकास में बहुत सहायक होता है। किशोरावस्था में किशोर का शब्दकोष अत्यन्त व्यापक हो जाता है। 'स्टैनफोर्ड बिने' मापदण्ड (Stanford Binet Scale) द्वारा प्रतिपादित प्रतिमानों के अनुसार किशोर का शब्द चयन विस्तार इस क्रम में बढ़ता है– 14 वर्ष की आयु पर नौ हजार शब्द, 16 वर्ष की आयु पर ग्यारह हजार सात सौ शब्द और 18 वर्ष की आयु पर तेरह हजार पाँच सौ शब्द। उच्च सामाजिक और आर्थिक स्थिति वाले परिवारों के बालकों के शब्द चयन का विकास निम्न सामाजिक और आर्थिक स्थिति वाले परिवारों के किशोरों की अपेक्षा अच्छा होता है। इस अवस्था में कल्पना के बाहुल्य के कारण कहानी, कविता, साहित्य आदि के अध्ययन में विशेष रुचि उत्पन्न होती है जिससे भाषा विकास में बहुत अधिक सहायता मिलती है। अत: शिक्षक को चाहिए कि उन्हें अच्छे साहित्य का ज्ञान कराएँ और उसके अध्ययन के लिए उन्हें प्रेरित करें ताकि उनमें न सिर्फ भाषा का अच्छा विकास हो वरन् उनमें स्वस्थ विचार शक्ति उत्पन्न हो। यह स्वस्थ विचार शक्ति ही उनके भावी जीवन की तैयारी का प्रतीक है।

(6) बौद्धिक क्रियाओं के आयोजन की व्यवस्था– किशोरावस्था में किशोर और किशोरियों का सर्वाधिक विकास होता है। अत: उनके बौद्धिक विकास के लिए शिक्षकों को सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। जिस प्रकार शारीरिक विकास के लिए शारीरिक व्यायाम आवश्यक है, उसी प्रकार बौद्धिक विकास के लिए बौद्धिक व्यायाम अर्थात् विद्यालय में बौद्धिक गतिविधियाँ और बौद्धिक कार्यक्रम यथा– प्रश्न मंच, पहेली, वाद-विवाद, तर्क-भाषण कविता-लेखन, निबन्ध लेखन आदि विभिन्न क्रियाओं का आयोजन किया जाना चाहिए। बुद्धि परीक्षणों के प्रयोग से भी इनमें सहयोग दिया जा सकता है। प्राय: सभी विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि बुद्धि परीक्षाओं से सीखने की क्षमता के विषय में उपयोगी जानकारियाँ मिलती हैं। ये परीक्षाएँ किशोरों की विभिन्न विषयगत क्षमताओं का ज्ञान करने के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। एक सफल शिक्षक को इन सभी का विस्तृत ज्ञान होना आवश्यक है।

(7) यौन शिक्षा– यौन शिक्षा किशोरावस्था में एक आवश्यक शिक्षा है क्योंकि इस अवस्था में शारीरिक परिवर्तन होते हैं जिनके परिणामस्वरूप किशोरावस्था में काम प्रवृत्ति का ज्वार-सा आता है। किशोर की अनेक समस्याओं की

नोट

जड़ में काम प्रवृत्ति ही होती है। इसी कारण उनके संवेग, व्यवहार, रुचि आदि में अस्थिरता रहती है। अत: शिक्षकों को चाहिए कि वह किशोरों को यौन शिक्षा दें, जिससे उनमें काम के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित हो। किशोरावस्था की शुरुआत ही किशोर और किशोरियों में भय एवं उद्वेग उत्पन्न कर देती है। किशोरों में स्वप्नदोष होता है जिसके कारण उसके वीर्य का स्राव होता है। किशोरियों में मासिक धर्म होता है जिसमें रक्तस्राव होता है। इनका ज्ञान न होने से ऐसी दशा में दोनों ही बहुत घबराते हैं। इसको एक प्रकार की बीमारी मानते हैं। अत: ऐसी अवस्था में वीर्यपात होने से पूर्व लड़कों और रजस्वला होने से पूर्व लड़कियों को यौन अंगों की सरंचना उनके कार्य, वीर्य सम्बन्धी तथा रजोदर्शन सम्बन्धी ज्ञान देना आवश्यक है। इस शिक्षा द्वारा किशोरों-किशोरियों में विषमलिंगी के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण पैदा करना चाहिए। उनको सन्तानोत्पत्ति की प्रक्रिया का भी ज्ञान होना चाहिए। परन्तु शिक्षा का स्वरूप उत्तेजक नहीं होना चाहिए। शिक्षकों को चाहिए कि ऐसे रचनात्मक कार्यों में किशोरों को लगाएँ जिससे उनमें कामशक्ति का मार्ग परिवर्तित हो सके, जैसे- साहित्य, कला, संगीत, समाजसेवा आदि।

टास्क

पिछली शताब्दी के अंतिम वर्षों में बौद्धिक परिचर्चाओं के उपरांत सरकार ने यौन-शिक्षा को स्कूलों में लागू करने पर ज़ोर दिया है। इसके सकारात्मक अथवा नकारात्मक परिणामों पर चर्चा करते हुए यौन-शिक्षा के संबंध में आप अपनी राय प्रस्तुत करें।

(8) उपयुक्त शिक्षण-प्रविधियों का प्रयोग– किशोरावस्था में शारीरिक और बौद्धिक विकास चरम सीमा पर होता है। अत: शिक्षक को ऐसी शिक्षण-प्रविधियों का उपयोग करना चाहिए जिससे कि छात्र-छात्राओं को स्वयं परीक्षण, निरीक्षण, विचार और तर्क करने की शक्ति का अभ्यास करने का अवसर मिल सके। इस अवस्था में भी करके सीखने पर बल देना चाहिए। इस प्रकार किशोर की कल्पना शक्ति भी विकसित होती है। अतएव शिक्षक अपने शिक्षण में उसका भी उपयोग कर सकता है। उसे आत्म-प्रदर्शन के अवसर दिए जाने चाहिए। इसके लिए कक्षा में पाठ्य सहगामी क्रियाओं के संगठन पर ध्यान दिया जाना चाहिए। उपयुक्त शिक्षण प्रविधियों के प्रयोग से इस अवस्था का सही मार्गदर्शन किया जा सकता है। उनमें स्वानुशासन और आत्म नियंत्रण की भावना का भी विकास करना अध्यापक का ही दायित्व है।

(9) शिक्षक का उचित व्यवहार– शिक्षक छात्र के लिए आदर्श होता है। उसके व्यवहार का छात्रों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। किशोर के साथ बालक या शिशु जैसा व्यवहार नहीं करना चाहिए। अधिकांश माता-पिता या अभिभावक और शिक्षक उन्हें शिशु या बालक ही समझते हैं जिस व्यवहार से वे चिढ़ जाते हैं। अत: शिक्षक को चाहिए कि उनके साथ सहानुभूति पूर्ण और वयस्क जैसा व्यवहार करें, जिससे उनमें सांवेगिक व्यवहार में स्थिरता बनी रहे। उनमें उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व की स्थिति में उन्हें नैतिक शिक्षा की जानकारी देना आवश्यक है। नैतिकता की शिक्षा सैद्धान्तिक न होकर व्यावहारिक होनी चाहिए। इसको लिए अध्यापकों को उपदेश के स्थान पर उदाहरण प्रस्तुत करने चाहिए।

(10) शैक्षिक पर्यटन और जीवन दर्शन की शिक्षा– इस अवस्था में शिक्षक द्वारा शैक्षिक पर्यटनों का आयोजन अवश्य किया जाये जिससे किशोरों का ज्ञानवर्द्धन, मानसिक, सामाजिक और नैतिक विकास हो सके। किशोरावस्था में प्रारम्भ में किशोर के जीवन का प्रति कोई निश्चित दृष्टिकोण नहीं होता। वह सुख-दुख, उत्साह-उदासीनता, नैतिक-अनैतिक आदि परस्पर विरोधी भावनाओं का अनुभव करता रहता है। इस प्रकार से मानसिक संघर्षों के बाद वह अपने जीवन दर्शन का निर्माण करना चाहता है। अत: शिक्षक को चाहिए कि वह जीवन दर्शन की उन्हें जानकारी दे।

नोट

5.4 सारांश (Summary)

- मानव एक विकासशील प्राणी के रूप में जन्म लेता है और जन्म से लेकर जीवन के अन्त तक उसका विकास होता रहता है।
- शिक्षा-मनोविज्ञान में विकसित होते हुए बालक का अध्ययन किया जाता है। शिक्षा-मनोविज्ञान की दृष्टि से बाल-विकास को विभिन्न अवस्थाओं में विभाजित करके, प्रत्येक अवस्था का अलग-अलग अध्ययन करना आवश्यक समझा गया है। मनोवैज्ञानिकों ने शैक्षिक दृष्टि से बाल-विकास को निम्नलिखित तीन भागों में बाँटा है–(1) शैशवावस्था, (2) बाल्यावस्था, (3) किशोरावस्था।
- मानव-जीवन में विकास की सभी अवस्थाओं में शैशव का महत्त्व सबसे अधिक हैं। मनोवैज्ञानिकों ने कहा है कि "शैशवावस्था द्वारा जीवन का पूरा क्रम निश्चित होता है।" शैशवावस्था में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा संवेगात्मक विकास तीव्र गति से होता है। शैशवावस्था के अन्तिम वर्षों में सामाजिक भावना का विकास होता है। शिक्षा की दृष्टि से मानव जीवन में शैशवकाल का बहुत महत्त्व है।
- मानव-विकास की दूसरी अवस्था बाल्यावस्था है। शैशवावस्था के बाद बालक बाल्यावस्था में प्रवेश करता है। शैशवकाल में बालक अपने चारों ओर की परिस्थितियों से अपरिचित होता है। उसका शरीर और मन दोनों अविकसित दशा में होते हैं। बाल्यावस्था में प्रवेश करते-करते उसका पर्याप्त विकास हो जाता है और वह अपने वातावरण से परिचित होने लगता है। इस अवस्था में वह जिस वैयक्तिक और सामाजिक व्यवहार को तथा शिक्षा-सम्बन्धी बातों को सीखना आरम्भ करता है, वह उसके भावी जीवन की आधारशिला होती हैं।
- मानव-विकास की तीसरी अवस्था किशोरवस्था है। यह बाल्यावस्था के अन्त में आरम्भ होती है और प्रौढ़ावस्था के आरम्भ में समाप्त होती है। इस अवस्था में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा संवेगात्मक परिवर्तन होते हैं। वे व्यक्तित्व विकास दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। यह जीवन का सबसे कठिन काल है। यह समय बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य का सन्धिकाल है।

5.5 शब्दकोश (Keywords)

1. **कर्मेंद्रियाँ**–काम करने वाली इंद्रियाँ (हाथ, पैर, वाणी आदि)।
2. **ज्ञानेंद्रियाँ**–विषय का ज्ञान कराने वाली इंद्रियाँ (जैसे–आँख, नाक, कान, जीभ एवं त्वचा आदि)।

5.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. 'शैशवावस्था द्वारा जीवन का पूरा क्रम निश्चित होता है' इस कथन के प्रकाश में शैशवावस्था के महत्त्व का विवेचन कीजिए।
2. शिशु की शिक्षा के संबंध में किन-किन महत्त्वपूर्ण बातों पर ध्यान देना आवश्यक है?
3. किशोरावस्था में शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन के महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (ग) 2. (क) 3. (ख)

5.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

नोट

पुस्तकें

1. मनोविज्ञान–*डॉ. सरयू प्रसाद, आगरा बुक स्टोर, आगरा।*
2. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
3. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
4. मनोविज्ञान–*मानव व्यवहार का अध्ययन–ब्रजकुमार मिश्र, पी.एच.आई. लर्निंग, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 6: अधिगम (Learning)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

6.1 अधिगम का स्वरूप (Nature of Learning)

6.2 अधिगम की परिभाषा (Definition of Learning)

6.3 अधिगम की प्रक्रिया (Process of Learning)

6.4 अधिगम प्रक्रिया की विशिष्टताएँ (Features of Learning Process)

6.5 अधिगम के प्रकार (Types of Learning)

6.6 सारांश (Summary)

6.7 शब्दकोश (Keywords)

6.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

6.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अधिगम के स्वरूप को समझने में।
- अधिगम की प्रक्रिया एवं उसकी विशिष्टताओं को जानने में।
- अधिगम के विभिन्न प्रकारों को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

मनुष्य एक अधिगमशील प्राणी है और अधिगम प्रक्रिया उसके जन्म से ही नहीं बल्कि माँ के गर्भ से ही प्रारम्भ हो जाती है। महाभारत में वीर अभिमन्यु ने माँ के गर्भ में ही चक्रव्यूह तोड़ने का ज्ञान प्राप्त किया था। यह अधिगम का एक प्रत्यक्ष उदाहरण है। अधिगम जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। मनुष्य जीवन भर कुछ-न-कुछ सीखता ही रहता है। प्रारम्भ में शिशु बिल्कुल असहाय और पराश्रित होता है। किन्तु धीरे-धीरे वह अपने को वातावरण के अनुकूल समायोजित करने का प्रयत्न करता है। इस समायोजन में जिस क्रिया से वह अनुभवों से अधिक लाभ उठाने की चेष्टा करता है, उसे मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम कहा है। शिक्षा-मनोविज्ञान में अधिगम प्रमुख अध्ययन-विषय है। पहले अधिगम के लिए 'सीखना' शब्द का प्रयोग होता था।

6.1 अधिगम का स्वरूप (Nature of Learning)

नोट

अधिगम एक व्यापक शब्द है। अधिगम जन्मजात प्रतिक्रियाओं पर आधारित होता है। व्यक्ति जन्मजात प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर जो भी क्रियाएँ करता है, वह अपनी परिस्थितियों से समायोजन स्थापित करने के लिए होती हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अधिगम एक मानसिक प्रक्रिया है। मानसिक प्रक्रिया की अभिव्यक्ति व्यवहारों के द्वारा होती है। मानव-व्यवहार अनुभवों के आधार पर परिवर्तित और परिमार्जित होता रहता है। अधिगम की प्रक्रिया में दो तत्व निहित हैं– परिपक्वता और पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता। उदाहरणार्थ यदि बालक के सामने एक जलती अंगीठी रखी है तो वह उसे जिज्ञासावश छूता है और छूते ही उसका हाथ जल जाता है, इसलिए वह अपने हाथ को तेजी से हटा लेता है और फिर कभी उसके पास नहीं जाता, क्योंकि उसने अपने अनुभव से सीख लिया कि आग उसे जला देगी। इस प्रकार अधिगम पूर्व अनुभव द्वारा व्यवहार में प्रगतिशील परिवर्तन है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि अधिगम ही शिक्षा है। अधिगम और शिक्षा एक ही क्रिया की ओर संकेत करते हैं। दोनों क्रियाएँ जीवन में सदा और सर्वत्र चलती रहती हैं। बालक परिपवक्ता (Matuirty) की ओर बढ़ता हुआ, अपने अनुभवों से लाभ उठाता हुआ, वातावरण के प्रति जो उपयुक्त प्रतिक्रिया करता है, वही अधिगम है। जैसे कि ब्लेयर, जोन्स और सिम्पसन ने कहा है– "व्यवहार में कोई परिवर्तन जो अनुभवों का परिणाम है और जिसके फलस्वरूप व्यक्ति आने वाली स्थितियों का भिन्न प्रकार से सामना करता है– अधिगम कहलाता है।" (Any change of behaviour which is a result of experience and which causes people to face later situation differently may be called learning.)

अधिगम के स्वरूप एवं अर्थ को अधिक स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई परिभाषाओं का अध्ययन करना आवश्यक है।

6.2 अधिगम की परिभाषा (Definition of Learning)

(1) मॉर्गन और गिलीलैण्ड के अनुसार– "अधिगम, अनुभव के परिणामस्वरूप प्राणी के व्यवहार में कुछ परिमार्जन है,, जो कम-से-कम कुछ समय के लिए प्राणी द्वारा धारण किया जाता है।" (Learning is some modification in the behaviour of the organism as a result of experience which is retained for at least a certain period of time.)

(2) गेट्स व अन्य– "अधिगम, अनुभव और प्रशिक्षण के परिणामस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन है।" (Learning is the modification of behaviour through experience and training.)

(3) वुडवर्थ– "नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया अधिगम की प्रक्रिया है।" (The process of acquiring new knowledge and new responses is the process of learning.)

(4) स्किनर– "प्रगतिशील व्यवहार-व्यवस्थापन की प्रक्रिया को अधिगम कहते है।" (Learning is process of progressive behaviour adoption.)

(5) क्रानबैंक– "अधिगम अनुभव के परिणामस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन द्वारा व्यक्त होता है।" (Learning is shown by a change in behaviour as a result of experience.)

(6) क्रो और क्रो–"अधिगम आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है।"(Learning is the acquisition of habits, knowledge and attitudes.)

(7) थार्नडाइक–"अधिगम उपयुक्त अनुक्रिया का चयन करना तथा उसे उत्तेजना से जोड़ना है।" (Learning is selecting the appropriate response and connecting it with the stimulus.)

नोट

(8) कुप्पूस्वामी–"अधिगम वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक जीव, एक परिस्थिति में उसके अन्त:क्रिया के परिणाम के रूप में, व्यवहार का एक नवीन प्रतिरूप अर्जित करता है, जो कुछ अंश तक स्थिरोन्मुख रहता है तथा जीव के सामान्य व्यवहार प्रतिमान को प्रभावित करता है।" (Learning is the process by which an organism, as a result of its interaction in a situation, acquires a new mode of behaviour, which tends to persist and affect the general behaviour pattern of the organism, to some degree.)

(9) पारीक–"अधिगम ज्ञानात्मक, गामक अथवा व्यावहारगत निवेशों को आवश्यकता पड़ने पर उनके प्रभावात्मक एवं विभिन्न प्रयोग हेतु अधिग्रहण, आत्मीकरण व आन्तरीकरण करने तथा आगामी स्वचालित अधिगम को बढ़ी हुई क्षमता की ओर ले जाने वाली प्रक्रिया है।" (Learning is the process of acquiring assimilating and internalizing cognative, motor or behavioural inputs for their effective and varied use when required and leading to enhanced capability of further self-monitered learning.)

(10) गैने–"अधिगम मानव प्रवृत्तियों, योग्यताओं अथवा क्षमताओं में लाया गया वह परिवर्तन है जो बना रहता है तथा जिसका श्रेय मात्र अभिवृद्धि प्रक्रिया को नहीं जाता है। परिवर्तन का वह रूप जिसे अधिगम कहते हैं वह स्वयं को व्यवहार में परिवर्तन के रूप में प्रदर्शित करता है तथा अधिगम का अनुमान इस तुलना से लगाया जाता है कि किसी व्यक्ति विशेष का व्यवहार किसी अधिगम परिस्थिति में जाने से पूर्व कैसा था और अधिगम सम्बन्धी अभिक्रिया देने के पश्चात् वह कैसा व्यवहार प्रदर्शित करता है।" (Learning is a change in human disposition or capibility which can be retained and which is not simply abscribed to the process of growth. The kind of change called learning eshibits itself as a change in behaviour and the inference of learning is made by comparing what behaviour was possible before the individual was placed in a Learning Situation.)

(11) ब्राउने एवं एक्सटैण्ड–"अधिगम ज्ञान, दक्षता तथा चाहना की मूलभूत व्यावहारिक विशिष्टताओं से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।" (Learning is intimately related to the basic behavioural characteristics of knowledge.)

अधिगम की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम की परिभाषाएँ दी हैं, उदाहरणस्वरूप कुछ परिभाषाएँ ऊपर प्रस्तुत की गई हैं। वस्तुत: उक्त परिभाषाओं का संग्रहण इस आधार पर किया गया है जिससे बहुकोणीय दृष्टि से अधिगम का विचार स्पष्ट हो सके। उपर्युक्त परिभाषाएँ स्वतंत्र रूप से पूर्ण होते हुए एक दूसरे की पूरक हैं। अत: अनेक परिभाषाओं के संयोग से अधिगम घटक की निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं–

(1) अधिगम की क्रिया द्वारा व्यवहार में परिवर्तन होता है, जैसे आग से जल जाने पर बालक फिर उसके पास नहीं जाता।

(2) व्यवहार में जो परिवर्तन होता है वह कुछ समय तक बना रहता है, जैसे वह जल्दी यह नहीं भूलता कि आग से जल जाने पर बहुत कष्ट होता है।

(3) व्यवहार में परिवर्तन पूर्व अनुभवों पर आधारित होता है, जैसे यदि बालक कभी आग से जल गया है तो वह आग के साथ कार्य करते हुए ऐसा व्यवहार करेगा कि वह आग से जलने न पाए।

(4) अधिगम के द्वारा व्यवहार में होने वाला परिवर्तन बाह्य रूप से दिखाई देने वाला या न दिखाई देने वाला अथवा आंशिक रूप से दिखाई या न दिखाई देने वाला हो सकता है।

(5) अधिगम सम्बन्धात्मक रूप से व्यवहार या कृत कार्य में स्थाई परिवर्तन होता है। कृत कार्य के रूप में व्यवहार में होने वाले परिवर्तन में वे परिवर्तन नहीं सम्मिलित किये जा सकते जो परिपक्वता, नशावृत्ति, थकान तथा मूल-प्रवृत्ति व्यवहार से उत्पन्न होते हैं।

नोट

(6) अधिगम व्यवहार का परिमार्जन है। एक बार व्यवहार में परिवर्तन होने के पश्चात् नवीन परिस्थिति में उस परिवर्तित व्यवहार का संशोधन हो सकता है।

(7) अधिगम के द्वारा अधिगमी ज्ञानात्मक, भावनात्मक तथा मनोचालकों (Congnative, Affective and Conative or Psychomotor) के क्षेत्रों में वृद्धि एवं पुनर्वृद्धि प्राप्त करता है, जिससे उसके व्यवहार में विकासात्मक परिवर्तन होता है।

6.3 अधिगम की प्रक्रिया (Process of Learning)

उपर्युक्त परिभाषाओं में अधिगम की प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है। अधिगम की क्रिया चेतन या अचेतन रूप में जीवनपर्यन्त चलती रहती है। व्यक्ति का विकास अधिगम प्रक्रिया द्वारा ही होता है। इसका आधार है परिपक्वता। अधिगम की प्रक्रिया में प्रेरणा का होना आवश्यक है।

गुथरी (Guthrie) **के अनुसार–** "अधिगम किसी परिस्थिति में भिन्न ढंग से कार्य करने की क्षमता है जो कि परिस्थिति के अनुसार पूर्व अनुभवों के कारण आती है।" (Ability to learn is to respond differently to situation because of past experience to a situation.)

पील के अनुसार–"अधिगम व्यक्ति में एक परिवर्तन है जो उसके वातावरण के परिवर्तन के अनुसरण में होता है। **पील** ने अधिगम की प्रक्रिया को संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया है–

(1) अधिगम के द्वारा व्यक्ति में स्थायी और अस्थायी दोनों ही प्रकार के परिवर्तन आते हैं।

(2) अधिगम व्यक्ति की सहज स्वाभाविक क्रियाओं जैसे पलकें झपकाना, हाथ खींच लेना आदि से भिन्न है।

(3) अधिगम सामाजिक और जैविक अनुकूलन या चेतन उद्देश्य से हो सकता है।

(4) अधिगम व्यक्ति में सामाजिक या असामाजिक दोनों प्रकार के व्यवहार पैदा कर सकता है।

(5) अधिगम त्रुटि रहित या त्रुटि पूर्ण हो सकता है।

मनोवैज्ञानिक बोआज (Boaz) ने कहा है– "अधिगम एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न आदतें, ज्ञान एवं ("Learning is the process which the individual acquires various habits, knowledge and attitudes that are necessary to meet the demand of life in general.)

वुडवर्थ के अनुसार–"जब किसी नये कार्य का करना सबलीकृत (reinforced) हो जाता है और कालान्तर की क्रियाओं में वह पुन: प्रकट होता है, तो उस नये कार्य का करना अधिगम कहलाता है।" (Learning consists in doing something new provided the new activity is rein-forced and reappears in latter activities.)

यह परिभाषा **स्किनर** द्वारा चूहों पर किये गये प्रयोग से स्पष्ट हो जाती है।

6.4 अधिगम प्रक्रिया की विशिष्टताएँ (Features of Learning Process)

अधिगम की परिभाषाओं में अधिगम को एक विशिष्ट प्रकार की प्रक्रिया का स्वरूप मनोवैज्ञानिकों ने दिया है। यदि अधिगम की विशिष्ट प्रक्रिया का विश्लेषण किया जाए तो अधिगम प्रक्रिया की निम्नलिखित विशिष्टताएँ प्रकाशित होती हैं–

(1) अधिगम सार्वभौमिक है (Learning is universal)–अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है जो सभी समयों और स्थानों में तथा सभी जीवों के द्वारा घटित रहती है। जहाँ प्राणी है, स्थान है व समय है वहाँ अधिगम की प्रक्रिया अवश्य होगी। प्राणी प्रत्येक समय कुछ न कुछ क्रिया करता ही रहता है।

नोट

(2) अधिगम परिवर्तन है (Learning is change)–बालक के व्यवहार में होने वाला परिवर्तन अधिगम है। अधिगम वह प्रक्रिया है जिससे बालक में परिवर्तन परिलक्षित होंगे। अधिगम द्वारा परिवर्तन और पुनर्परिवर्तन की शृंखला चलती रहती है जिससे बालक परिवर्तनों का परिणाम बन जाता है।

(3) अधिगम विकास है (Learning is development)–बालक का विकास अधिगम प्रक्रिया के द्वारा ही होता है। बालक के सर्वांगीण विकास में अधिगम का इतना अधिक योगदान होता है कि विकास अधिगम का पर्याय बन जाता है। वैसे भी मनोवैज्ञानिकों ने माना है कि प्रगतिशील परिवर्तन और संशोधन के रूप में बालक के व्यक्तिव का विकास होता है जो अधिगम की प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न होती है। विकास के रूप में अधिगम दृष्टिगोचर होता है।

(4) अधिगम अनुकूलन है (Learning is adjustment)–अधिगम प्रक्रिया द्वारा बालक समाज व वातावरण के साथ अनुकूलन स्थापित करता है। अनुकूलन की प्रक्रिया अधिगम की प्रक्रिया से इतनी सन्निकट हो जाती है कि हम अधिगम को अनुकूलन समझ लेते हैं। वास्तव में प्राणी को जीवित रहने के लिए वातावरण के साथ अनुकूलन करना ही होता है। अत: जीवित रहने के लिए उसे अधिगम की प्रक्रिया करनी पड़ती है। गेट्स तथा अन्य ने अधिगम को अनुकूलन के रूप में स्वीकार किया है।

(5) अधिगम प्रयोजनपूर्ण है (Learning is Purposesive)–अधिगम के लिए किसी प्रयोजन का होना आवश्यक है। प्रयोजनपूर्वक ही अधिगम का लक्ष्य होता है। प्रयोजन अधिगम का लक्ष्य निर्धारित करता है और अनुक्रियाओं को दिशा प्रदान करता है।

(6) अधिगम निरन्तर है (Learning is continuous)– अधिगम किसी आयु तक सीमित नहीं रहता और न ही किसी काल विशेष तक सीमित रहता है। अपितु यह सतत् आजीवन चलता रहता है।

(7) अधिगम रचनात्मक है (Learning is creative)–मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह कुछ रचनात्मक कार्य करे। इस प्रकार के कार्य को करना अधिगम है जिसे वह विचारों एवं कार्यों के रूप में साकार करता है। रचनात्मकता व्यक्ति को स्वक्रिया के द्वारा अधिगम की ओर उन्मुख करती है।

(8) अधिगम पूर्ण परिस्थिति के प्रति अनुक्रिया है (Learning is response to total situation)–व्यक्ति विभिन्न प्रकार की पारिस्थितियों को पूर्णता के आधार पर परख कर उसके साथ समायोजन स्थापित करता है। व्यक्ति परिस्थितियों के साथ अनुकूलन करने के लिए सही अनुक्रियाओं को सीखता रहता है। अत: अधिगम व्यक्ति की पूर्ण परिस्थिति के प्रति सही अनुक्रियाओं का प्रतिपादन है।

(9) अधिगम उत्तेजना तथा अनुक्रिया के मध्य एक सम्बन्ध है (Learning is a relationship between stimulous and response)–किसी उत्तेजना के साथ सही अथवा वांछित अनुक्रिया का सम्बन्ध स्थापित करना ही अधिगम है। इसी बात के आधार पर मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम के अध्ययन में 'सम्बन्धवाद' का प्रतिपादन किया है।

क्या आप जानते हैं अधिगम की प्रक्रिया आजीवन सतत् चलती रहती है।

(10) अधिगम ज्ञानात्मक, प्रभावात्मक तथा क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित है (Learning is related with cognative, affective and conative domains)–मनुष्य जो कुछ सीखता है उसका क्षेत्र ज्ञानात्मक, प्रभावात्मक और क्रियात्मक होता है। अत: अधिगम ज्ञानात्मक, प्रभावात्मक तथा क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित होता है। वह ज्ञान संग्रह करता है, भावनाओं को ग्रहण करता है तथा क्रियाओं को करने हेतु दक्षताओं को भी संकलित करता है।

(11) अधिगम स्थानान्तरणीय है (Learning is transferable)–एक प्रकार की परिस्थिति में सीखे गये कौशलों अथवा समस्या के समाधानों का उपयोग व्यक्ति मिलती-जुलती दूसरी परिस्थितियों में कर लेता है, अर्थात् अधिगम का स्थानान्तरण हो जाता है। इस प्रकार अधिगम स्थानान्तरणीय है।

नोट

(12) अधिगम प्रक्रिया है (Learning is a process)–मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अधिगम एक प्रक्रिया है जो जीव वातावरण के मध्य चलती रहती है। यह प्रक्रिया उत्तेजक-अनुक्रिया की दशाओं में आवश्यकता की पूर्ति, लक्ष्य की प्राप्ति, समायोजन में सफलता की प्राप्ति, व्यावहारिक परिवर्तन तथा सही व्यवहारों के स्थायीकरण में दिखाई देती है। इससे स्पष्ट है कि अधिगम की प्रक्रिया में चार प्रमुख चरण होते है। इन्हें निम्नांकित चित्र के द्वारा समझा जा सकता है।

चित्र 6.1 अधिगम प्रक्रिया का चित्रण

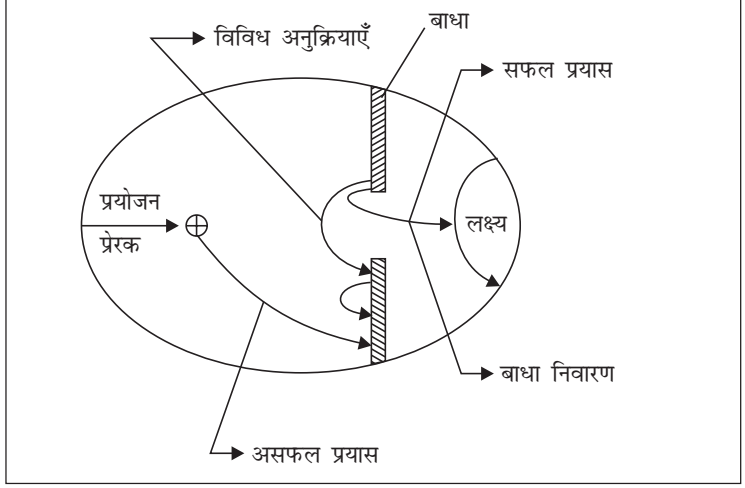

उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट है कि एक प्रयोजन से प्रेरित होकर व्यक्ति अधिगम की प्रक्रिया प्रारम्भ करता है। प्रयोजन प्रेरक के न होने से अधिगम की प्रक्रिया प्रारम्भ नहीं होती। अधिगम की प्रक्रिया में व्यक्ति सर्वप्रथम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विविध प्रयास करता है जिसमें कुछ सफल तथा कुछ असफल प्रयास होते हैं। असफल प्रयास लक्ष्य प्राप्त करने में बाधाओं को भेद नहीं पाते। सफल प्रयास बाधा भेद कर लक्ष्य प्राप्त कराते हैं। अधिगम प्रक्रिया के निम्नलिखित चार चरण हैं–

***(i)* आवश्यकता अथवा प्रयोजन** (Need or Purpose)–अधिगम की प्रक्रिया में सर्वप्रथम आवश्यकता अथवा प्रयोजन या प्रेरक (Motive) उत्पन्न होती है। आवश्यकता वह शारीरिक शक्ति है जो शक्ति को उसकी पूर्ति के लिए क्रियाशील बना देती है।

***(ii)* लक्ष्य** (Goal)–आवश्यकता लक्ष्य-उन्मुखी होती है जो व्यक्ति को एक लक्ष्य प्राप्त कर लेने तक क्रियाशील बनाए रखती है। लक्ष्य-बोध के अभाव में अधिगम की प्रक्रिया प्रभावशाली नहीं होती है।

***(iii)* समायोजन** (Adjustment)–व्यक्ति लक्ष्य प्राप्त करने हेतु परिस्थितियों के साथ समायोजन स्थापित करता है। वह बाधा भेदने के लिए अनेक प्रयास करता है जिसमें बाधा भेदकर लक्ष्य प्राप्त कराने वाले प्रयास सफल प्रयास कहलाते हैं, शेष असफल प्रयास।

***(iv)* परिवर्तन** (Change)–अधिगम की प्रक्रिया से व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है जो पहले के व्यवहार से भिन्न होता है या पहले से उसके व्यवहार में नहीं होता। यह परिवर्तन स्थायी होकर व्यक्ति के अर्जित व्यवहार का एक भाग बन जाता है यद्यपि इसमें भी परिवर्तन सम्भावित होता है। इसे सबलीकरण की प्रक्रिया कहते हैं।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

दिए गए कथन के सामने सही (✓) और गलत (×) का निशान लगाइए–

1. अधिगम की प्रक्रिया शैशवावस्था के पश्चात् समाप्त हो जाती है। ☐
2. अधिगम त्रुटि रहित अथवा त्रुटिपूर्ण हो सकता है। ☐
3. क्रो और क्रो के अनुसार–"अधिगम आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है।" ☐
4. अधिगम व्यक्ति में नकारात्मक व्यवहार विकसित करता है। ☐

अधिगम की प्रक्रिया में सोपान

अधिगम की परिभाषा एवं प्रक्रिया का विश्लेषण करने पर सीखने के सोपानों का पता चलता है। मनोवैज्ञानिक **मिलर** तथा **डोलार्ड** ने अधिगम के सोपानों पर इस प्रकार विचार व्यक्त किये हैं–

"अधिगम के लिए व्यक्ति को किसी वस्तु की आवश्यकता का अनुभव होना चाहिए, उसे कुछ देखना-भालना चाहिए, उसे कुछ करना चाहिए और अन्त में उसे कुछ प्राप्त करना चाहिए।" (In order to learn one must want something, notice something, do something and get something.)

डेशील (Dashiell) ने अधिगम प्रक्रिया के सोपनों को अधिक स्पष्टता से व्यक्त किया है। इन सोपानों में (1) अभिप्रेरणा, (2) उद्देश्य, (3) बाधा, (4) उद्देश्य प्राप्ति के लिए विभिन्न अनुक्रियाएँ, (5) सबलीकरण, (6) सामान्यीकरण या एकीकरण प्रमुख हैं। अधिगम की प्रक्रिया में व्यक्ति में अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए प्रेरक उत्पन्न हो जाता है, जिसका कोई प्रयोजन होता है। प्रयोजन से प्रेरित होकर वह क्रियाशील होता है। व्यक्ति के प्रत्येक क्रिया या व्यवहार का एक निश्चित उद्देश्य होता है। अर्थात् उसकी क्रिया सप्रयोजन होती है। अधिगम की प्रक्रिया में तीसरा सोपान है– उद्देश्य की पूर्ति में बाधा उत्पन्न होना। बाधा उत्पन्न होने पर वह उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार की सम्भावित अनुक्रियाएँ या व्यवहार करता है। वह प्रयत्न एवं भूल या सूझ द्वारा बाधा को हटाने के लिए जो व्यवहार करता है उसमें अधिगम की क्रिया निहित रहती है। अनेक प्रकार की सम्भावित अनुक्रियाओं में से जिस अनुक्रिया द्वारा उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है वह सबलीकृत (Reinforced) हो जाती है और वह उसी सफल क्रिया की विशेष परिस्थिति आने पर पुनरावृत्ति करता है। इस प्रकार अधिगम की प्रक्रिया में सबलीकरण (Reinforcement) एक प्रमुख सोपान है। इस सिद्धान्त का वर्णन आगे किया गया है। इसके बाद वह नवीन सफल अनुक्रिया का पूर्व ज्ञान या क्रियाओं से समन्वय करता है। इस प्रकार नवीन अनुभवों का पूर्व अनुभवों से जब समन्वय या सम्बन्ध होता है तो वह उसके ज्ञान का एक अंग बन जाता है, इसे शिक्षा शास्त्री **हरबर्ट** ने **पुर्वानुवर्ती प्रत्यक्ष** कहा है अधिगम की प्रक्रिया उपर्युक्त सोपानों द्वारा सम्पन्न होती है।

अधिगम और परिपक्वता– अधिगम की क्रिया पर परिपक्वता का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। परिवक्ता का सम्बन्ध शारीरिक क्षमता के विकास से है। शारीरिक विकास के साथ-साथ मानसिक योग्यता का विकास भी होता जाता है, इस विकास के फलस्वरूप व्यक्ति के व्यवहार में भी परिवर्तन होता रहता है। व्यवहार में परिवर्तन परिपक्वता के कारण और अधिगम के कारण होता है। अधिगम की क्रिया जीवन भर चलती है और इस प्रकार व्यक्ति का विकास होता रहता है। परिपक्वता भी विकास की सतत् प्रक्रिया है। परिपक्वता का अर्थ है कि विकास की एक निश्चित अवस्था में बच्चे वे कार्य करने के योग्य हो जाते हैं जो वे इससे पूर्व करने में समर्थ नहीं होते। परिपक्वता और अधिगम की क्रिया में घनिष्ठ सम्बन्ध है। सीखने के शारीरिक उपकरणों जैसे केन्द्रीय स्नायुमण्डल, ज्ञानेन्द्रियों आदि की सहायता से ही हम सीखते हैं। जैसे-जैसे बालक का शरीर परिपक्वता की ओर बढ़ता जाता है वह अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग करने लगता है और उसके व्यवहार में परिवर्तन होता रहता है, इस परिवर्तन के लिये शारीरिक,

नोट

माँसपेशीयों, गामक तथा मानसिक परिपक्वता की आवश्यकता होती है। अधिगम और परिपक्वता के सम्बन्ध में **बोरिंग, लॉगफील्ड और वेल्ड** का विचार है– "परिपक्वता का अर्थ उस अभिवृद्धि और विकास से है जो किसी विशेष प्रकार के व्यवहार के अधिगम के पहले आवश्यक होता है।" अत: अधिगम के लिए मानसिक एवं शारीरिक परिपक्वता आवश्यक है। इस सम्बन्ध में **मनोवैज्ञानिक डेनिस** (Dannis), **मैक-ग्रो** (Mc Grow), **स्ट्रेयर** (Strayer) आदि ने जुड़वाँ बालक, बालिकाओं पर प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला कि अधिगम के लिए परिपक्वता आवश्यक है। जिस कार्य को सीखने के लिए शारीरिक और मानसिक परिपक्वता की आवश्यकता है, उस पर पहले से ही अधिगम के लिए जोर देना मनोवैज्ञानिक एवं लाभप्रद नहीं होता है। **डेनिस** महोदय ने दो जुड़वाँ बालिकाओं पर एक प्रयोग किया। एक बालिका को उसने पाँच माह बाद ही सीढ़ियों पर चढ़ने का प्रशिक्षण दिया और दूसरी कि किसी प्रकार का प्रशिक्षण नहीं दिया गया। एक साल बाद देखा कि दोनों की सीढ़ियों पर चढ़ने की क्षमता समान थी। इस प्रयोग से यह स्पष्ट है कि किसी कार्य के अधिगम के लिए शारीरिक और मानसिक परिपक्वता दोनों आवश्यक हैं। अपरिपक्वावस्था में दिया गया प्रशिक्षण व्यर्थ सिद्ध होता है और इस प्रकार आरम्भ में बालक को जबरदस्ती लिखना, पढ़ना, गणित या किसी भी विषय का ज्ञान हानिकारक होता है। अपरिपक्वता में अधिगम से बालक पर मानसिक बोझ पड़ता है और उसके शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार उसके स्वाभाविक विकास में बाधा पड़ती है। अत: अधिगम की क्रियाओं में परिपक्वता के स्तर पर ध्यान रखना आवश्यक है। परिपक्वता और अधिगम दोनों क्रियाएँ एक दूसरे पर आश्रित हैं।

नोट्स अधिगम के लिए मानसिक एवं शारीरिक परिपक्वता आवश्यक है। अपरिपक्वता में दिया गया प्रशिक्षण व्यर्थ सिद्ध होता है। बचपन में बच्चे को जबरदस्ती, लिखना, पढ़ना, सिखाना हानिकारक होता है।

6.5 अधिगम के प्रकार (Types of Learning)

अधिगम के प्रकारों को बताना सरल नहीं है क्योंकि इसका वर्गीकरण कई दृष्टि से किया जा सकता है जैसे अधिगम के सिद्धान्तों, विधियों, अधिगम के ढंग एवं विषय वस्तु आदि बातों को ध्यान में रखकर अधिगम के प्रकारों का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है–

(1) संवेदन गति अधिगम (Sensory motor Learning)–इसमें कौशल अर्जन सम्बन्धी ज्ञान आता है। इस प्रकार के अधिगम में विभिन्न प्रकार की कुशलता अर्जित की जाती है। इसमें विभिन्न कौशल (Skills) आते हैं जैसे तैरना, साइकिल चलाना, टाइपिंग, चित्र बनाना आदि। इसमें संवेदन क्रियाओं का अधिगम आता है। बालक दैनिक व्यवहार में आने वाली बातों का अनुकरण करके सीखता है। जैसे निरर्थक शब्दों को बार-बार सुनकर व दोहराकर वह बोलना सीखता है।

(2) गामक अधिगम (Motor Learning)–विकास की प्रारम्भिक अवस्था में बालक शरीर के अंगों के संचालन एवं गति पर नियंत्रण करना सीखता है।

(3) बौद्धिक अधिगम (Intellectual Learning)–इसके अन्तर्गत ज्ञानोपार्जन सम्बन्धी समस्त क्रियाएँ आती हैं जो कि निम्नांकित हैं–

(क) प्रत्यक्षीकरण अधिगम (Perceptual Learning)–इसमें बालक प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक स्तर पर ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से सम्पूर्ण परिस्थिति को प्रत्यक्ष देखकर व सुनकर प्रतिक्रिया करता है और सीखता है।

नोट

(ख) प्रत्यात्मक अधिगम (Conceptual Learning)–इस प्रकार के सीखने में उसे तर्क, कल्पना और चिन्तन का सहारा लेना पड़ता है। इस विषय पर 'चिन्तन' और 'तर्क' अध्याय में विस्तृत रूप से विचार किया गया है।

(ग) साहचर्यात्मक अधिगम (Associative Learning)–प्रत्यात्मक अधिगम इसी अधिगम की सहायता से सम्पन्न होता है। इस प्रकार का अधिगम स्मृति के अन्तर्गत आता है। इसका वर्णन 'स्मृति' अध्याय में किया गया है।

(घ) रसानुभूतिपूरक अधिगम (Appreciational Learning)–इस प्रकार के सीखने में बालकों में संवेगात्मक या भावुकतापूर्ण वर्णन या घटना से प्रभावित होकर मूल्यांकन करने अर्थात् गुण-दोष विवेचन करने तथा सौन्दर्यबोध की क्षमता आ जाती है।

अधिगम-प्रक्रिया के उपर्युक्त प्रकारों के विवेचन से अधिगम के उद्देश्य स्पष्ट हो जाते हैं। इन प्रकारों का उल्लेख पुस्तक में यथास्थान विस्तार से किया गया है।

(ङ) कार्यक्रमित अधिगम– इसका उल्लेख एक अलग अध्याय में आगे किया गया है।

टास्क वर्तमान शिक्षा प्रणाली में बच्चों का बचपन छिन-सा गया है। प्राइमरी शिक्षा में बच्चे की आयु और अधिगम की प्रक्रिया के प्रकाश में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कीजिए।

यदि हम अधिगम घटित होने की दशाओं का विश्लेषण करें तो अधिगम के निम्नलिखित प्रकार दिखाई पड़ते हैं–

(1) सरल अधिगम–बालक स्वतंत्र रूप से कार्य करते-करते जब कुछ सीख जाता है तो उसे सरल अधिगम कहते हैं, जैसे यदि बालक खेलते-खेलते आग से छू जाता है तो वह या सीख जाता है कि आग से दूर रहना चाहिए। इसी प्रकार की स्वक्रिया के परिणामों से नये अनुभवों के रूप में वह सरलतापूर्वक सीखता जाता है, उसकी किसी प्रकार की संगठित क्रिया नहीं होती।

(2) कठिन अधिगम–कठिन अधिगम में संगठित एवं जटिल क्रियाएँ होती हैं तथा कठिनता का स्तर बढ़ता जाता है, जैसे बालक जब संगीत सीखता है तो उसे सुर, ताल, भाव आदि का ज्ञान आवश्यक हो जाता है और आगे चलकर राग, आलाप आदि की और भी कठिन क्रिया सीखनी होती है। कठिन अधिगम में बालक को विभिन्न ज्ञान एवं क्रिया में सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है।

(3) आकस्मिक अधिगम–आकस्मिक अधिगम अनायास घटित हो जाता है, जैसे बालक पारस्परिक बातचीत में कोई नई बात सीख जाता है। इसमें बालक सीखने के लिए सचेत नहीं होता और न ही कुछ सीखने के लिए संगठित रूप से कोई प्रयास करता है। वह आकस्मिक रूप से सीख जाता है।

(4) उद्देश्यपूर्ण अधिगम–उद्देश्यपूर्ण अधिगम सायास रूप से घटित होता है। बालक को कुछ सीखने के लिए जान-बूझकर और सचेत रूप से प्रयास करने पड़ते हैं। अधिगम का उद्देश्य पहले से निर्धारित कर संगठित रूप से बालक क्रियाशील होता है। जैसे- यदि बालक गणित सीखना चाहता है तो वह ऐसे व्यक्ति के पास जायेगा जो उसे गणित के सिद्धान्त और व्यवहार सिखा सके। इसके अतिरिक्त वह स्वयं अभ्यास आदि करता है।

6.6 सारांश (Summary)

- अधिगम जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। मनुष्य जीवन भर कुछ-न-कुछ सीखता ही रहता है। शिक्षा-मनोविज्ञान में अधिगम प्रमुख अध्ययन-विषय है।

नोट

- अधिगम एक व्यापक शब्द है। अधिगम जन्मजात प्रतिक्रियाओं पर आधारित होता है। व्यक्ति जन्मजात प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर जो भी क्रियाएँ करता है, वह अपनी परिस्थितियों से समायोजन स्थापित करने के लिए होती हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अधिगम एक मानसिक प्रक्रिया है। मानसिक प्रक्रिया की अभिव्यक्ति व्यवहारों के द्वारा होती है। मानव-व्यवहार अनुभवों के आधार पर परिवर्तित और परिमार्जित होता रहता है।
- अधिगम की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम की परिभाषाएँ दी हैं। जैसे क्रो और क्रो के अनुसार–"अधिगम आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है।"
- अधिगम की प्रक्रिया में प्रेरणा का होना आवश्यक है। अधिगम व्यक्ति में सामाजिक या असामाजिक दोनों प्रकार के व्यवहार पैदा कर सकता है।
- अधिगम की क्रिया पर परिपक्वता का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। परिवक्ता का सम्बन्ध शारीरिक क्षमता के विकास से है। शारीरिक विकास के साथ-साथ मानसिक योग्यता का विकास भी होता जाता है, इस विकास के फलस्वरूप व्यक्ति के व्यवहार में भी परिवर्तन होता रहता है। व्यवहार में परिवर्तन परिपक्वता के कारण और अधिगम के कारण होता है। अधिगम की क्रिया जीवन भर चलती है और इस प्रकार व्यक्ति का विकास होता रहता है। परिपक्वता भी विकास की सतत् प्रक्रिया है।
- सीखने के शारीरिक उपकरणों जैसे केन्द्रीय स्नायुमण्डल, ज्ञानेन्द्रियों आदि की सहायता से ही हम सीखते हैं। जैसे-जैसे बालक का शरीर परिपक्वता की ओर बढ़ता जाता है वह अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग करने लगता है और उसके व्यवहार में परिवर्तन होता रहता है, इस परिवर्तन के लिये शारीरिक, माँसपेशीयों, गामक तथा मानसिक परिपक्वता की आवश्यकता होती है।
- अपरिपक्वता में अधिगम से बालक पर मानसिक बोझ पड़ता है और उसके शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार उसके स्वाभाविक विकास में बाधा पड़ती है। अत: अधिगम की क्रियाओं में परिपक्वता के स्तर पर ध्यान रखना आवश्यक है। परिपक्वता और अधिगम दोनों क्रियाएँ एक दूसरे पर आश्रित हैं।

6.7 शब्दकोश (Keywords)

1. **अधिगम**–जानकारी प्राप्त करना, सीखना।
2. **परिपक्वता**–यहाँ परिपक्वता का संबंध शारीरिक क्षमता के विकास से है।

6.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. उपयुक्त परिभाषाओं के साथ अधिगम का अर्थ एवं उसका स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
2. अधिगम की प्रक्रिया से आप क्या समझते हैं? अधिगम प्रक्रिया की विशेषताएँ समझाइए।
3. अधिगम के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. (×) 2. (✓) 3. (✓) 4. (×)

नोट

6.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. मनोविज्ञान–*मानव व्यवहार का अध्ययन–ब्रजकुमार मिश्र, पी.एच.आई. लर्निंग, नई दिल्ली।*
2. मनोविज्ञान–*डॉ. सरयू प्रसाद, आगरा बुक स्टोर, आगरा।*
3. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
4. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 7: शिक्षण सिद्धान्त की प्रकृति (Nature of Teaching Theory)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

7.1 शिक्षण क्या है? (What is Teaching?)

7.2 अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक (Factors of Influencing Learning)

7.3 अध्यापक के लिए अधिगम का महत्त्व (Importance of learning for Teachers)

7.4 सारांश (Summary)

7.5 शब्दकोश (Keywords)

7.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

7.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शिक्षण क्या है? यह जानने में।
- अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक तत्वों को समझने में।
- अध्यापक के लिए अधिगम के महत्त्व को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षण शिक्षा प्रक्रिया का एक प्रमुख अंग है। इसके द्वारा व्यक्ति नवीन ज्ञान अर्जित करने में सफल और सक्षम होता है। शिक्षण प्रक्रिया का संचालन मानव व्यवहार और उसकी संवेदनाओं से होता है। शिक्षण के क्षेत्र में शैक्षिक प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से शिक्षण को उद्देश्य केन्द्रित बनाया जाने लगा। यही नही मनोविज्ञान के क्षेत्र में शिक्षा की प्रक्रिया पूर्णत: मनोवैज्ञानिक मानी गई और इसके विभिन्न अंगो यथा- शिक्षक, शिक्षार्थी, पाठ्यक्रम और शिक्षा प्रक्रिया को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। आज यह सिद्ध हो चुका है कि अधिगम को महत्त्व दिया जाए।

शिक्षण के सिद्धान्त और स्वरूप पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक है कि शिक्षण के अर्थ को समझ लिया जाए।

7.1 शिक्षण क्या है? (What is Teaching?)

अधिकांश व्यक्तियों की शिक्षण के विषय में भ्रमपूर्ण धारणा है। उनका मानना है कि शिक्षण का आशय रटने या ज्ञान को मस्तिष्क में ठूँसने से है परन्तु वास्तव में यह गलत है। शिक्षण एक सामाजिक घटना (Phenomena) है। इसका अर्थ स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित परिभाषाओं को देखा जा सकता है।

नोट

डॉ. माथुर– वर्तमान समय में शिक्षण से यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि बालक के मस्तिष्क को थोथे, अव्यावहारिक ज्ञान से भर दिया जाए.... अब तो शिक्षण का अर्थ है कि बालक को ऐसे अवसर प्रदान किए जाए जिससे बालक अपनी अवस्था एवं प्रकृति के अनुरूप समस्याओं को हल करने की क्षमता प्राप्त कर लें। वह अपने आप योजना बना सके, प्रदत्त सामग्री एकत्र कर सके, उसे सुसंगठित कर सके और फल को प्राप्त कर सके जिसे वह फिर प्रयोग में ला सके।"

थामस ई. क्लेटन (Thomes E.Clayton)–"शिक्षण वह कौशल है जो छात्रों में रुचि तथा धारणा को उद्दीप्त करने एवं ज्ञान वर्धन करने हेतु प्रयुक्त किया जाता है। वह दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य सम्प्रेषण है। इसमें एक व्यक्ति दूसरे से सीखने में संलग्न रहता है। यह विद्यालय में किया जाने वाला अभ्यास है जिसमें पहले से शिक्षित व्यक्ति बच्चों को शिक्षा देता है।"

बी. एफ. स्किनर–"शिक्षण उन आवश्यक परिस्थितियों की व्यवस्था है जिसके अंतर्गत छात्र सीखते हैं, वे स्वाभाविक वातावरण में शिक्षण के बिना ही सीखते हैं। शिक्षक उन विशेष परिस्थितियों की व्यवस्था करते हैं जो सीखने के कार्य को तेज करे। ये व्यवहार की अभिव्यक्ति में तेजी लाती है, उसे निश्चित करती है।" (Teaching is he arrangement of contingencies under which students learn. They learn without teaching in their natural environment, but teachers arrange special contingencies which expedite learning, hastening the appearance of behaviour, which would otherwise be acquired slowly or making sure of the appearance of behaviour which might otherwise occur.)

क्लार्क (Clarke)–"छात्र के व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए दी जाने वाली क्रिया शिक्षण है।" (Teaching acivities are performed to produce change in students behaviour)

बी. ओ. स्मिथ–"अधिगम को अभिप्रेरित करने वाली क्रिया शिक्षण है।" (Teaching is a system of actions intended to produce learning.)

गेट्स–"प्रशिक्षण एवं अनुभव द्वारा व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों को अधिगम कहते है।" (Learning is the modification of behaviour through experience & training.)

बर्टन–"शिक्षण, अधिगम हेतु प्रेरणा पथ प्रदर्शन, पथ निर्देशन और प्रोत्साहन है।" (Teaching is the stimulation, guidance, direction and encouragement of learning.)

उपरोक्त परिभाषाओं से निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं–

1. शिक्षण एक सामान्य विचार की व्याख्या करता है।
2. यह एक सामाजिक प्रक्रिया है।
3. यह मानव प्रकृति पर आधारित है।
4. यह उद्देश्यपूर्ण और वर्णनात्मक क्रिया है।
5. यह औपचारिक और अनौपचारिक दोनों ही है।
6. इसके तीन पक्ष होते हैं-शिक्षक, शिक्षार्थी और पाठ्यक्रम।
7. इसकी अपनी निजी शिक्षण शैली होती है और ये अनेक विधियों, प्रविधयों द्वारा संचालित होता है।
8. इसमें मार्गदर्शन तथा निर्देश दोनों ही शामिल रहते हैं।

अच्छे शिक्षण अधिगम की विशेषताएँ–(Characteristics of teaching) नोट

अच्छे शिक्षण की निम्न विशेषताएँ होती हैं–

1. निर्देशात्मक (Suggestive) होता है।
2. प्रेरणादायक (Stimulating) होता है।
3. सुव्यवस्थित और सुनियोजित होता है।
4. प्रगति पर आधारित होता है।
5. सहानुभूतिपूर्ण होता है।
6. सहयोग पर आधारित होता है।
7. बाल-केंन्द्रित एवं मनोवैज्ञानिक होता है।
8. बालक में आत्मविश्वास उत्पन्न करता है।
9. निदानात्मक और उपचारात्मक होता है।
10. बालक के पूर्व ज्ञान को ध्यान में रखकर दिया जाता है।

7.2 अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक (Factors of Influencing Learning)

अधिगम की प्रक्रिया का अध्ययन करने के उपरान्त शिक्षा में अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों का भी अध्ययन करना आवश्यक है। चूँकि मनुष्य का व्यवहार परिवर्तनशील होता है इसलिए उसका अधिगम भी जटिल होता है। उसके अधिगम में व्यक्तिगत भिन्नता पाई जाती है।

मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के आधार पर ऐसे कारकों का अध्ययन किया है, जो सामान्य रूप से सभी व्यक्तियों के अधिगम को प्रभावित करते हैं। अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों का समुचित ज्ञान हो जाने पर ही अधिगम की प्रक्रिया में उन्नति की जा सकती है। इन कारकों में प्रेरणा, रुचि, ध्यान, बुद्धि, स्वास्थ्य, विषय का स्वरूप और अधिगम की विधियाँ प्रमुख हैं। इन कारकों का अध्ययन अधिगम की प्रक्रिया में सहायक तथा बाधक, दोनों रूपों में किया जा सकता है। किसी कारक का विपरीत होना अधिगम में बाधक होता है किन्तु उनका अनुकूल और उचित होना सहायक सिद्ध होता है। अधिगम के कारकों या दशाओं (Conditions) का उल्लेख करते हुए मनोवैज्ञानिक **सिम्पसन** का कथन है–''अन्य दशाओं के साथ-साथ अधिगम की कुछ दशाएँ हैं–उत्तम स्वास्थ्य, रहने की अच्छी आदतें, शारीरिक दोषों से मुक्ति, अध्ययन की अच्छी आदतें, संवेगात्मक सन्तुलन, मानसिक योग्यता, कार्य-सम्बन्धी परिपक्वता, वांछनीय दृष्टिकोण और रुचियाँ, उत्तम सामाजिक अनुकूलन, रूढ़िवादिता और अन्धविश्वास से मुक्ति।''

उपर्युक्त विचारों के आधार पर अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(क) शारीरिक कारक, (ख) मनोवैज्ञानिक कारक, (ग) पर्यावरण सम्बन्धी कारक, (घ) अन्य कारक।

(क) शारीरिक कारक

(1) ज्ञानेन्द्रियाँ–अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावित करने में शारीरिक तत्वों का बहुत महत्त्व है। प्रथम शारीरिक तत्व, जो अधिगम की क्रिया में निहित हैं वे ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ के पाँच प्रकार दृष्टि, श्रवण, स्वाद, सूँघना और स्पर्श हैं। हमारे सम्पूर्ण ज्ञान का आधार प्रत्यक्षीकरण है।

नोट

क्या आप जानते हैं यदि हमारा कोई संवेदन अंग दोष-पूर्ण है तो इस अंग से सम्बन्धित ज्ञान पाना कठिन है। उदाहरण के लिए एक बालक जिसके नेत्र में दोष है वह किसी चीज का पढ़ना आसानी से नहीं सीख सकता है। इसी प्रकार अन्य संवेदन-अंगो में दोष के कारण अधिगम की क्रिया में अवरोध पड़ता है।

(2) शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य–अधिगम के लिए शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का ठीक होना आवश्यक है। जो बालक शारीरिक और मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होते हैं, वे अधिगम में रुचि लेते है और शीघ्र सीख जाते हैं। अस्वस्थ बालक अधिगम में रुचि नहीं लेते हैं वे बहुत जल्दी थक जाते हैं, फलस्वरूप वे विषय को देर से और कम सीख पाते हैं। थकान के कारण भी अधिगम में बाधा पड़ती है। थका हुआ व्यक्ति रुचि और प्रेरणा होने पर भी कार्य ठीक से नहीं कर सकता। अत: शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना अवाश्यक है।

(3) परिपक्वता–(Maturity) अधिगम का परिपक्वता से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। बालक आयु में जैसे-जैसे वृद्धि होती है, उसके शारीरिक विकास के साथ-साथ मानसिक योग्यता का भी विकास होता जाता है। इस प्रकार अधिगम की क्रिया पर शारीरिक और मानसिक परिपक्वता का प्रभाव पड़ता है। इस दृष्टि से परिपक्व बालकों को अधिगम में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती उनकी अधिक शक्ति और समय अपव्यय (नष्ट) होता है।

टास्क अधिगम का परिपक्वता से घनिष्ठ संबंध है। उपयुक्त उदाहरण के माध्यम से समझाइए।

(ख) मनोवैज्ञानिक कारक

(1) प्रेरणा तथा अधिगम–अधिगम की क्रिया में प्रेरणा का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। अधिगम की क्रिया में प्रेरणा के स्थान, महत्त्व तथा उसकी उपयोगिता पर एक अलग अध्याय में विवेचन किया गया है। अधिगम में प्रेरकों का होना आवश्यक है। प्रेरक एक आन्तरिक शक्ति है जो व्यक्ति को क्रिया करने के लिए बाध्य करती है। आन्तरिक प्रेरणा से जो कार्य किया जाता है, उसमें अधिक उत्साह एवं सक्रियता दिखार्द देती है। शिक्षक को बालकों की आवश्यताओं, रुचियों और प्रयोजनों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। आवश्यकता (Need), प्रयोजन और प्रोत्साहन (Incentive) प्रेरणा से सम्बन्धित है। यदि शिक्षण प्रेरणा के इन तत्वों को भली-भाँति नहीं समझ पाता तो वह प्रेरणा की प्रक्रिया में सफलता नहीं प्राप्त कर पाता। प्रोत्साहन (Incentive) मिलने पर ही बालक विशेष रूप से अधिगम के लिए प्रोत्साहित होता है। आवश्यकता (Need) उसे अधिगम की प्रेरणा देती है। मनोवैज्ञानिकों ने प्रेरणा से सम्बन्धित पशुओं तथा मनुष्यों पर किये गये प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि जब अधिगम की प्रेरणा रहती है और साथ ही प्रोत्साहन या प्रलोभन मिलता है, तब वे शीघ्रता तथा सरलता से सीखते हैं। बालक की शिक्षा में प्रशंसा, प्रोत्साहन, पुरस्कार आदि द्वारा उसे अधिगम के लिए प्रेरित किया जा सकता है। इसी प्रकार उचित निन्दा और दण्ड से वह खराब आचरण और व्यवहार को नहीं दुहराता। शिक्षा में पुरस्कार तथा दण्ड दोनों ही क्रमश: अच्छे व्यवहारों को अधिगम और गलत व्यवहारों को त्यागने में सहायता करते हैं।

(2) रुचि और रुझान (Interest and Aptitude)– अधिगम व्यक्ति की रुचि पर निर्भर होता है। यदि बालक को किसी विषय में रुची होती है तो वह अधिगम करते समय सरलता और आनन्द का अनुभव करता है। शिक्षक का प्रथम कर्त्तव्य बालक में विषय के प्रति रुचि एवं जिज्ञासा को जाग्रत करना है। बालक को जब अपनी रुचि और रुझान (अभिक्षमता) के अनुकूल कार्य का अवसर मिलता है, तब वह अपनी योग्यता का पूरा प्रदर्शन करता है और उसे कुशलतापूर्वक सीख लेता है। विद्यालयों में बालकों की रुचि और रुझान की जाँच करके उसी के अनुसार शिक्षा देने की व्यवस्था करना आवश्यक है ताकि वे सफलतापूर्वक विभिन्न परिस्थितियों में अपने को समायोजित कर सकें।

नोट

(3) अधिगम की इच्छा (Will to Learn)–अधिगम में व्यक्ति की इच्छा का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि अधिगम करने की इच्छा होती है तो व्यक्ति प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अधिगम कर लेता है। जिस व्यक्ति को अधिगम की इच्छा नहीं होती उसे किसी भी प्रकार से सिखाया नहीं जा सकता। जैसा कि एक मनोवैज्ञानिक का कथन है–''घोड़े को पानी के तालाब तक तो ले जाया जा सकता है किन्तु उसकी इच्छा के विरुद्ध उसको पानी नहीं पिलाया जा सकता है।'' अत: शिक्षक को चाहिए कि वह रुचि और जिज्ञासा को जाग्रत करकें बालकों की इच्छाशक्ति को दृढ़ करें।

(4) बुद्धि–बुद्धि और अधिगम की क्षमता में घनिष्ठ सम्बन्ध है। बालकों में बुद्धि का वितरण समान नहीं होता, इसलिए भिन्न-भिन्न बालकों में अधिगम की क्षमता भी भिन्न होती है। अधिगम विशेष रूप से अधिगम करने वाले की बौद्धिक योग्यता पर निर्भर है। तीव्र-बुद्धि बालक विषय को जल्दी सीख लेता है, कम-बुद्धि बालक समझने और अधिगम में अधिक समय लगाता है। विचार, कल्पना, तर्क, चिन्तन और निर्णय-शक्तियाँ बुद्धि से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार अधिगम में प्रगति लाने का महत्त्वपूर्ण कारक बुद्धि है।

(ग) पर्यावरण सम्बन्धी कारक

वातावरण–अधिगम की प्रगति अधिकांश रूप में अनुकूल वातावरण पर निर्भर होती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में अधिगम का कार्य सरलतापूर्वक नहीं सम्पन्न हो सकता। कक्षा का 'मनोवैज्ञानिक' वातावरण अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। **मान्टेसरी** ने कहा है कि अधिगम के लिए 'मनोवैज्ञानिक क्षण' (Psychological Moment) उत्पन्न करना शिक्षक के लिए अत्यन्त अवाश्यक है। पढ़ने का स्थान, स्वच्छ वायु और प्रकाशयुक्त होना चाहिए, जिससे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहे। पढ़ने का स्थान चाहे वह घर हो या विद्यालय उसका वातावरण शांतिपूर्ण हो। एकान्त शान्त वातावरण में ही पढ़ने की ओर ध्यान एकाग्र किया जा सकता है। कक्षा में विषय की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए तीव्र उद्दीपनों का प्रयोग करना चाहिए, जैसे सहायक सामग्री, उपयुक्त उदाहरण आदि। कक्षा का वातावरण सरल, रोचक तथा जिज्ञासापूर्ण होना चाहिए। इस प्रकार उपयुक्त वातावरण में ही अधिगम में उन्नति होती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सही विकल्प चुनिए–

1. "छात्र के व्यवहार में परिवर्तन के लिए दी जाने वाली क्रिया शिक्षण है।" शिक्षण के संबंध में यह परिभाषा किसने दी है–

   (क) क्लेटन (ख) स्किनर (ग) क्लार्क

2. "घोड़े को पानी के तालाब तक तो ले जाया जा सकता है किन्तु उसकी इच्छा के विरुद्ध उसको पानी नहीं पिलाया जा सकता।" प्रस्तुत उदाहरण अधिगम के किस कारक के लिए है–

   (क) बुद्धि (ख) इच्छा (ग) वातावरण

3. निम्नलिखित परिभाषा किस मनोवैज्ञानिक ने दी है– "शिक्षण, अधिगम हेतु प्रेरणा, पथ प्रदर्शन, पथ निर्देशन और प्रोत्साहन" है।

   (क) स्मिथ (ख) बर्टन (ग) सिम्पसन

4. यह कथन किसका है–

   अधिगम के लिए शिक्षक को 'मनोवैज्ञानिक क्षण' उत्पन्न करना अत्यन्त आवश्यक है।

   (क) किंडरगार्टन (ख) गेट्स (ग) मांटेसरी

नोट

(घ) अन्य कारक

(1) विषय-सामग्री का स्वरूप (Nature of Subject Matter)– किसी विषय का अधिगम विषय-सामग्री के स्वरूप पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ- पाठ्य-पुस्तक में कठिन और आलोचनात्मक निबन्ध के पाठ की अपेक्षा, रोचक कहानी का पाठ सरलता से और रुचि से सीख लिया जाता है। इस सम्बन्ध में शिक्षक के 'सरल से कठिन की और' (From Simple to Difficult of Complex) का सिद्धान्त सहायक होता है। अर्थात् सरल बातों को सिखाते हुए कठिन की ओर बढ़ना चाहिए।

(2) अधिगम की विधियाँ–अधिगम में उन्नति विशेष रूप से अधिगम की विधियों पर निर्भर करती है। इनका उल्लेख यथा-स्थान किया गया है। अधिगम की विधि बालक की अवस्था के अनुकूल जितनी रुचिकर और उपयुक्त होगी, अधिगम उतना ही सरल होगा। इस दृष्टि से ही प्रारम्भिक कक्षाओं में 'खेल विधि' और करके सीखने की विधि' या 'क्रिया विधि' का प्रयोग किया जाता है। उच्च कक्षाओं में 'सामूहिक सहसम्बन्ध व्याख्यान' तथा अन्य विधियों का प्रयोग किया जाता है।

(3) अभ्यास–अधिगम में उन्नति लाने का महत्त्वपूर्ण कारण अभ्यास अधिगम को बहुत अधिक प्रभावित करता है। यह 'अभ्यास के नियम' में बताया जा चुका है।

(4) शिक्षक और अधिगम की प्रक्रिया–अधिगम की प्रक्रिया में शिक्षक का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा की द्विमुखी प्रक्रिया में, शिक्षक के आचार-विचार, व्यवहार, व्यक्तित्व, ज्ञान और शिक्षण-विधि का विद्यार्थी पर तथा अधिगम की प्रक्रिया पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। **मान्टेसरी, फ्रोबेल तथा अन्य शिक्षाशास्त्रियों** ने शिक्षक को एक पथ-दर्शक, माली तथा कलाकार की संज्ञा दी है। शिक्षक अपनी योग्यता तथा विभिन्न साधनों द्वारा बालक के लिए अधिगम की प्रक्रिया को सरल और तीव्रगामी बना सकता है।

पढ़ने की जगह हमेशा साफ-सुथरी और स्वच्छ वायु एवं प्रकाशयुक्त होनी चाहिए। शांत वातावरण में मना एकाग्रचित होता है, जो पढ़ाई की दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त है।

नोट्स पढ़ने की जगह हमेशा साफ-सुथरी और स्वच्छ वायु एवं प्रकाशयुक्त होनी चाहिए। शांत वातावरण में मन एकाग्रचित होता है, जो पढ़ाई की दृष्टि से उपयुक्त है।

(5) सफलता या परिणाम का ज्ञान (Knowledge of Results)– किसी कार्य अधिगम करते समय यदि समय-समय पर अधिगम की प्रगति का ज्ञान होता रहता है, तो अधिगम करने वाले को आगे अधिगम में उत्साह और प्रेरणा मिलती है। यदि अधिगम में गलतियाँ या असफलता मिलती है, तो भी इसका ज्ञान करना आवश्यक होता है। इससे सीखने वाले को बार-बार प्रयत्न करने और सुधार करने की भी प्रेरणा मिलती है। अत: विद्यार्थी को उसके अधिगम की प्रगति और सफलता या परिणाम का ज्ञान कराते रहना चाहिए।

उपरोक्त महत्त्वपूर्ण कारकों के **अतिरिक्त शिक्षण अधिगम** की दृष्टि से कुछ विशेष वर्गीकरण के आधार पर निम्नलिखित कारकों का अवलोकन किया जा सकता है।

(1) शिक्षार्थी से सम्बन्धित कारक (Factors belonging to the Learner)– यूँ तो परिवार बालक की प्रथम पाठशाला है परन्तु जब बालक औपचारिक रूप से विद्यालय में प्रवेश लेता है तो उसके मन में अनेक तरह की जिज्ञासाएँ उठती हैं जिन्हें वह शान्त करना चाहता है और उसे नवीन वातावरण में समायोजन करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में अधिगम क्रिया अनेक कारकों से प्रभावित होती है जैसे– बालक (जो शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का आधार है), अधिगम की इच्छा, आकांक्षा का स्तर, शैक्षिक पृष्ठभूमि, स्वास्थ्य, परिपक्वता, अभिप्रेरणा, सीखने वाले की अभिवृत्ति, सीखने का समय, सीखने की अवधि, बुद्धि और अधिगम प्रक्रिया आदि। इन प्रमुख कारकों से प्रभावित होकर शिक्षार्थी आसानी से कुछ भी सीखकर जीवन को सफलता के पथ पर अग्रसित कर सकता है।

नोट

(2) शिक्षक सम्बन्धी कारक (Factor belonging to the Teacher)–अधिगम को प्रभावित करने वाले शिक्षक से सम्बन्धित अनेक कारक हैं जैसे– शिक्षक को विषय को ज्ञान, मनोविज्ञान का ज्ञान, शिक्षण विधियाँ, व्यक्तिगत भेदों का ज्ञान, उचित व्यवहार, बाल केन्द्रित शिक्षा, समय-सारिणी, पाठ्य-सहगामी क्रियाएँ और अनुशासन इत्यादि। ये ऐसे प्रमुख कारक हैं जिससे शिक्षक को सिखाने में सहायता मिलती है। किसी एक कारक के अभाव में अधिगम सही तरीके से नहीं हो पाएगा।

(3) पाठ्यवस्तु से सम्बन्धित कारक (Factors belonging to the subject Matter)–अधिगम को प्रभावित करने वाले पाठ्यवस्तु से सम्बन्धित कुछ मुख्य कारक अग्रलिखित है। यथा– विषयवस्तु की प्रकृति, आकार, भाषा-शैली, क्रम; उदाहरण प्रस्तुतीकरण, दृश्य-श्रव्य सामग्री, रुचिकर विषय वस्तु, की उद्देश्यपूर्णता, विभिन्न विषयों का कठिनाई स्तर और उसकी संरचना आदि। इन प्रमुख कारकों से अधिगम प्रक्रिया अत्यधिक प्रभावित होती है और यदि इनका निर्माण करने में कुछ बातों का विशेष ध्यान रखा जाए तो अधिगम स्थायी होगा।

(4) अधिगम व्यवस्था से सम्बन्धित कारक (Factor related to Management to Learning)–अधिगम को प्रभावित करने वाले अधिगम व्यवस्था से सम्बन्धित अनेक कारक हैं। इस व्यवस्था को बनाये रखने के लिए अनेक विधियों को अपनाया जाना चाहिए- यथा सम्पूर्ण बनाम खण्ड विधि, उप-विषय बनाम सकेन्द्रीय विधि, संकल्पित बनाम वितरित विधि, आयोजित बनाम प्रासंगिक विधि और संक्रिय बनाम निष्क्रिय विधि।

(5) वातावरण से सम्बन्धित कारक (Environmental Factors)–वातावरण के बहुत से कारक अधिगम को प्रभावित करते हैं जैसे– वंशानुक्रम, सामाजिक वंशानुक्रम का ज्ञान, वातावरण का प्रभाव, सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण, शिक्षा के अनौपचारिक कारण, व्यक्तित्व का विकास, पारिवारिक और मनोवैज्ञानिक वातावरण, कक्षा का भौतिक वातावरण और सम्पूर्ण परिस्थिति आदि।

(6) समूह की विशेषताएँ तथा अन्तः क्रियात्मक प्रक्रिया (Group characteristics, Internal process)–मानव एक सामाजिक प्राणी है, इसके अभाव में उसका कोई अस्तित्व नहीं माना जाता। इसके लिए अनेक समूह या समुदाय से अपना सम्पर्क बना लेता है और उसे उस समूह के नियम, रीति-रिवाज, मान्यताएँ, परम्पराएँ आदि प्रभावित करते हैं। अधिगम प्रक्रिया को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए अध्यापक को समूह मनोविज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है।

7.3 अध्यापक के लिए अधिगम का महत्त्व (Importance of Learning for Teachers)

अधिगम सम्बन्धी उपर्युक्त ज्ञान की सामग्री शिक्षण कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। एक अध्यापक उनका उपयोग करके शिक्षण को प्रभावशाली बना सकता है। अध्यापक के लिए अधिगम के महत्त्व को निम्नलिखित रूप से व्यक्त किया जा सकता है-

(1) बालक के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाने के लिए अध्यापक अधिगम के सिद्धान्तों के ज्ञान का प्रयोग कर सकता है।

(2) अध्यापक अध्यापन में कुशलता प्रदर्शित करने के लिए शिक्षण प्रविधियों, अधिगम प्रविधियों तथा अधिगम कुशलता के विकल्पों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

(3) अध्यापक वैयक्तिक भिन्नताओं के अनुसार प्रत्येक बालक की उन्नति के लिए उपयुक्त अधिगम विधियों एवं नियमों का चयन कर उनका उपयोग कर सकता है।

(4) अध्यापक अधिगम ज्ञान से अधिगम में अभिप्रेरणा के महत्त्व को समझ जाता है। वह बालकों के उचित अभिप्रेरणा के द्वारा बालकों को अधिगम के लिए प्रेरित कर सकता है।

नोट

(5) अधिगम सम्बन्धी ज्ञान अध्यापक को अधिगम को सुगम बनाने वाले तथा बाधक तत्वों से अवगत कराता है जिससे अध्यापक बाधक तत्वों से सावधान रहते हुए प्रभावात्मक तत्वों का उपयोग कर सके।

(6) अधिगम के ज्ञान से अध्यापक अधिगम की दशाओं तथा अधिगम के स्थानान्तरण के सिद्धान्तों का उपयोग कर अधिगम को रोचक तथा सुगम बना सकता है।

(7) अधिगम के ज्ञान को प्राप्त कर अध्यापक कक्षा की अधिगम-शिक्षण परिस्थिति को नियंत्रित व उपयोगी बना सकता है। आवश्कतानुसार वह कक्ष-कक्ष परिस्थिति में सुधार करने का उपाय कर सकता है।

(8) अध्यापक छात्र में होने वाले परिवर्तनों की अपेक्षाओं की तुलना में अपने अध्यापन की सार्थकता का मूल्यांकन कर सकता है या छात्रों के मूल्यांकन परिणाम के आधार पर अधिगम विधियों की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता का निर्धारण कर सकता है।

7.4 सारांश (Summary)

- शिक्षण प्रक्रिया का संचालन मानव व्यवहार और उसकी संवेदनाओं से होता है। शिक्षण के क्षेत्र में शैक्षिक प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से शिक्षण को उद्देश्य केन्द्रित बनाया जाने लगा है–

  शिक्षण एक सामाजिक घटना (Phenomena) है। इसका अर्थ स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित परिभाषाओं को देखा जा सकता है।

- **डॉ. माथुर–** "वर्तमान समय में शिक्षण से यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि बालक के मस्तिष्क को थोथे, अव्यावहारिक ज्ञान से भर दिया जाए....। अब तो शिक्षण का अर्थ है कि बालक को ऐसे अवसर प्रदान किए जाएँ जिससे बालक अपनी अवस्था एवं प्रकृति के अनुरूप समस्याओं को हल करने की क्षमता प्राप्त कर ले। वह अपने आप योजना बना सके, प्रदत्त सामग्री एकत्र कर सके, उसे सुसंगठित कर सके और फल को प्राप्त कर सके जिसे वह फिर प्रयोग में ला सके।"
- मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के आधार पर ऐसे कारकों का अध्ययन किया है, जो सामान्य रूप से सभी व्यक्तियों के अधिगम को प्रभावित करते हैं। अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों का समुचित ज्ञान हो जाने पर ही अधिगम की प्रक्रिया में उन्नति की जा सकती है। इन कारकों में प्रेरणा, रुचि, ध्यान, बुद्धि, स्वास्थ्य, विषय का स्वरूप और अधिगम की विधियाँ प्रमुख हैं।
- अधिगम संबंधी ज्ञान सामग्री शिक्षण कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। एक अध्यापक उनका उपयोग करके शिक्षण को प्रभावशाली बना सकता है।
- अध्यापक छात्र में होने वाले परिवर्तनों की अपेक्षाओं की तुलना में अपने अध्यापन की सार्थकता का मूल्यांकन कर सकता है या छात्रों के मूल्यांकन परिणाम के आधार पर अधिगम विधियों की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता का निर्धारण कर सकता है।

7.5 शब्दकोश (Keywords)

1. **प्रेरणा–**मन में उत्पन्न भाव या विचार।
2. **ज्ञानेन्द्रियाँ–**विषयों का ज्ञान कराने वाली इंद्रियाँ।

7.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

नोट

1. शिक्षण से आप क्या समझते हैं? अच्छे शिक्षण की विशेषताएँ बताइए।
2. अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों का उल्लेख कीजिए।
3. 'प्रेरणा' तथा 'रुचि' अधिगम की प्रक्रिया में किस प्रकार सहायक हैं?
4. अध्यापक के लिए अधिगम का महत्त्व समझाइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (ग) 2. (ख) 3. (ख) 4. (ग)

7.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.एच. सिन्हा और रचना शर्मा, अटलांटिक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।*
2. बच्चों में शिक्षा का महत्त्व एवं जानकारियाँ–*सीमा चोपड़ा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
3. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
4. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 8: अधिगम के सिद्धान्त : थॉर्नडाइक का अधिगम सिद्धांत एवं उसके शैक्षिक निहितार्थ (Theories of Learning : Thorndike's Theory of Learning and its Educational Implications)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

8.1 अधिगम के सिद्धांत (Theories of Learning)

8.2 थार्नडाइक का उद्दीपक–अनुक्रिया अनुबन्ध सिद्धान्त (Thorndike's Stimulus–Response Bond Theory)

8.3 सारांश (Summary)

8.4 शब्दकोश (Keywords)

8.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

8.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अधिगम के सिद्धांत को समझने में।
- थॉर्नडाइक के उद्दीपक-अनुक्रिया अनुबंध सिद्धांत को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

किसी मनोवैज्ञानिक अथवा मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय के द्वारा अधिगम की अवधारणा का स्पष्टीकरण ही अधिगम सिद्धान्त है। इसके अंतर्गत अधिगम सम्बन्धी समस्याओं का व्यापक समाधान प्रस्तुत किया गया है। अधिगम सिद्धान्तों में एकरूपता आवश्यक नहीं है। अलग-अलग सिद्धान्तों में अधिगम के अलग-अलग उपागम (approach) हो सकते हैं। Hilgard ने अपनी पुस्तक 'Theories of learning' में दस से भी अधिक सीखने के सिद्धांतों का वर्णन किया है। इनके सम्बन्ध में यह निर्धारित करना कठिन है कि कौन-सा सिद्धान्त उचित है और कौन-सा अनुचित। इस सम्बन्ध में **फ्रैंडसन** (Frandsen) का कथन सराहनीय है "सिद्धान्त न तो ठीक होते हैं और न गलत। वे केवल कुछ विशेष कार्यों के लिए कम या अधिक लाभप्रद होते हैं।"

नोट

किसी अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए प्रस्तुत व्याख्यात्मक कथन, जो मूर्त प्रयोगों के निष्कर्षों पर आधारित हो, को सिद्धान्त की संज्ञा दी जा सकती है। अधिगम के घटित होने की स्थितियों का मनोवैज्ञानिकों ने वैज्ञानिक पद्धति से निरीक्षण विश्लेषण तथा संश्लेषण के आधार पर और प्रयोगों के द्वारा अध्ययन कर एक संगठित विचार प्रस्तुत किये हैं, यही अधिगम के सिद्धान्त हैं। **प्रो. चौहान** के शब्दों में–"अधिगम के सिद्धान्त अधिगम प्रक्रिया में सम्मिलित व्यवहार के यांत्रिकों की व्याख्या करने का प्रयास करते हैं।" (Theories of learning attempt to explain the mechanisms of behaviour involved in learning process.)

नोट्स सिद्धांत के संबंध में 'फ्रैंडसन' का कथन सराहनीय है कि सिद्धांत न तो ठीक होते हैं और न गलत। वे केवल कुछ विशेष कार्यों के लिए कम या अधिक लाभप्रद होते हैं।

8.1 अधिगम के सिद्धान्त (Theories of Learning)

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम के भिन्न-भिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं, कुछ सिद्धान्तों में समान विचार निहित हैं तो कुछ में भिन्नता दिखाई देती है। समानताओं एवं भिन्नताओं के आधार पर अधिगम के सिद्धान्तों का वर्गीकरण किया जा सकता है। शिक्षा मनोविज्ञान की पुस्तकों में विभिन्न आधारों पर अधिगम के सिद्धान्तों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। अत: स्पष्ट है कि अधिगम के सिद्धान्तों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों में मतभेद है। अध्ययन को सीमित तथा सरल बनाने की दृष्टि से यहाँ निम्नलिखित रूप में अधिगम के सिद्धान्तों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है–

(अ) समीपता सिद्धान्त (Contiguity Theories)–इसके अन्तर्गत निम्नलिखित सिद्धान्त प्रमुख रूप से सम्मिलित हैं–

(1) पावलोव का अनुकूलित प्रत्यावर्तन का सिद्धान्त (Pavlov's Conditioned Reflex Theory)

(2) वाट्सन का अधिगम सिद्धान्त (Watson's Theory of Learning)

(3) गुथरी का सामीप्य अनुकूलन सिद्धान्त (Gutherie's Contiguous Conditioning Theory)

(ब) सबलीकरण सिद्धान्त (Theories of Reinforcement)–इस वर्ग के अन्तर्गत निम्नलिखित समूह के अधिगम सिद्धान्त प्रमुखतया सम्मिलित हैं–

(1) हल एवं उनकी परम्परा के सिद्धान्त (Hull's Theory and Theories of Hull's Tradition)

(2) यांत्रिक सबलीकरण सिद्धान्त (Instrumental Reinforcement Theories)

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित सिद्धान्त सम्मिलित हैं–

(*i*) थॉर्नडाइक का उत्तेजना-अनुक्रिया अनुबन्ध सिद्धान्त (Thorndike's S-R Bond Theory)

(*ii*) वुडवर्थ का उत्तेजना-प्राणी-अनुक्रिया सिद्धान्त (Woodworth's S-O-R Theory)

(*iii*) स्किनर का सक्रिय अनुकूलन सिद्धान्त (Skinner's Operant Conditioning Theory)

(स) ज्ञानात्मक सिद्धान्त (Cognative Theories)–इस वर्ग के अन्तर्गत निम्नलिखित समूह के प्रमुख सिद्धान्त सम्मिलित हैं–

(1) चिह्न अधिगम सिद्धान्त (Sign Learning Theories)–इसमें मुख्यत: टॉलमैन का चिह्न अधिगम सिद्धान्त (Tolman's Sign Learning Theory) है।

नोट

(2) गेस्टाल्ट अधिगम सिद्धान्त (Gestalt Learning Theories)–इसमें मुख्यत: कोहलर का सूझ सिद्धान्त (Kohler's Insight Theory) तथा कोफ्का का पदांक सिद्धान्त (Koffka's Trace Theory) सम्मिलित है।

(3) गत्यात्मक सिद्धान्त (Dynamic Theories)–इसमें मुख्यत: लेविन का क्षेत्र सिद्धान्त (Levin's Field Theory) तथा अधिगम का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त (Psycho-analytical Theory of learning) सम्मिलित है।

(4) बन्दूरा का प्रतिरूपण सिद्धान्त (Bandura's Modelling Theory)

(5) पियाजे का अधिगम का विकसात्मक सिद्धान्त (Piget's Development of Learning Theory) उपर्युक्त अधिगम के सिद्धान्तों के अतिरिक्त भी अनेक सिद्धान्तों का उल्लेख मनोविज्ञान की पुस्तकों में मिलता है, किन्तु उन्हें यहाँ स्थान देना समीचीन नहीं है। पुस्तक के उद्देश्यों एवं सीमाओं को ध्यान में रखते हुए यहाँ सभी अधिगम-सिद्धान्तों का निरूपण न करते हुए केवल निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण अधिगम-सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है।

अधिगम के प्रमुख सिद्धान्त

(1) थॉर्नडाइक का उद्दीपक-अनुक्रिया अनुबन्ध सिद्धान्त (Thorndike's S-R Bond Theory)

(2) पावलोव का अनुकूलित प्रत्यावर्तन का सिद्धान्त (Pavlov's Conditioned Reflex Theory)

(3) स्किनर का संक्रिय अनुकूलन सिद्धान्त (Skinner's Operant Conditioning Theory)

(4) कोहलर का सूझ सिद्धान्त (Kohler's Insight Theory)

8.2 थॉर्नडाइक का उद्दीपक-अनुक्रिया अनुबन्ध सिद्धान्त (Thorndike's Stimulus-Response Bond Theory)

एडवर्ड एल. थॉर्नडाइक (Edward L. Thorndike) ने अपनी पुस्तक 'एनीमल इन्टेलीजेन्स' (Animal Intelligence), 1898 में प्रसिद्ध 'सम्बन्धवाद' (Connectionism) का प्रतिपादन किया। अधिगम मनोविज्ञान के क्षेत्र में 'सम्बंधवाद' का तात्पर्य है उद्दीपक के साथ अनुक्रिया का सम्बन्ध बनाना। सम्बन्धवाद में उद्दीपक तथा अनुक्रिया के मध्य सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। अत: इसे 'उद्दीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त' के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त में व्यक्ति के जन्मजात कारकों के साथ-साथ उद्दीपक अनुक्रिया के बाह्य तथा आन्तरिक उद्दीपकों के मध्य व्यवहार रहता है। 'उद्दीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त' अधिगम मनोविज्ञान में एक व्यापक सिद्धान्त है, जिसके प्रणेताओं में **थॉर्नडाइक, वुडवर्थ, पैवलव, वॉटसन, गुथरी, टॉलमैन** तथा **हल** के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। इन मनोविज्ञानकों के विचार से प्रत्येक क्रिया के पीछे एक उद्दीपक होता है जिसका प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है और वह उसी के अनुरूप अनुक्रिया करता है। इस प्रकार उद्दीपक अनुक्रिया से सम्बन्धित होते है। इस विचारधारा के प्रमुख प्रवर्तक थॉर्नडाइक ने अधिगम के लिए उद्दीपक तथा अनुक्रिया के मध्य अनुबन्ध स्थापित करने पर बल दिया है। इसी सम्बन्ध (Bond) पर बल देने के कारण थॉर्नडाइक का अधिगम सिद्धान्त उद्दीपक-अनुक्रिया अनुबन्ध सिद्धान्त (S-R Bond Theory) कहलाता है। थॉर्नडाइक का सिद्धान्त सम्बन्धवाद के अन्तर्गत ही आता है और यह 'साहचर्य-सिद्धान्त' का एक अंग है। थॉर्नडाइक के अनुसार दो या अधिक अनुभवों के मध्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। किसी भी कार्य की क्रिया के लिए उद्दीपक (S) होता है जिसके कारण अनुक्रिया (R) होती है। उद्दीपक प्राणी पर प्रभाव डालता है जिसके परिणाम स्वरूप वह अनुक्रिया (R) करता है। इस प्रकार एक विशिष्ट उद्दीपक एक अनुक्रिया से सम्बन्धित हो जाता है, अर्थात् उद्दीपक और अनुक्रिया में अनुबन्ध (S-R bong) हो जाता है। इस सिद्धान्त की परिभाषा **रेन** (Wren) ने निम्नलिखित रूप में दी है–

नोट

"सम्बन्धवाद वह सिद्धान्त है जो समस्त मानसिक प्रक्रियाओं की परिस्थितियों तथा अनुक्रियााओं के बीच एवं अर्जित सम्बन्ध का कार्य मानता है।" (Conectionism is the doctrine that all mental processes consitst of the functioning of the native and acquired connection between situations and responeses.)

थॉर्नडाइक का सिद्धान्त निम्नलिखित तीन तत्वों पर आधारित है–

(1) उद्दीपक (Stimulus or S) तत्व जो वातावरण की परिस्थितियों में सम्मिलित रहता है।

(2) अनुक्रिया (Response or R) तत्व जो व्यवहार की क्रिया को प्रदर्शित करता है।

(3) उद्दीपक (उ0), अनुक्रिया (अनु0), अनुबन्धन तत्व जो उद्दीपक एवं अनुक्रिया में सम्बन्ध स्थापित करता है अथवा एक उ0 के साथ अनु0 को बाँधता है। उ0 और अनु0 में अनुबन्धन का निर्माण ही थार्नडाईक के सिद्धान्त की मुख्य बात है।

थॉर्नडाइक के अनुसार, "अधिगम स्नायु मण्डल में परिस्थितियों और अनुक्रियाओं के मध्य संयोग सम्बन्धों के बनने तथा सबलित होने की बात है।"

थार्नडाईक के सिद्धान्त के अनुसार उद्दीपक तथा अनुक्रिया में संयोग स्थापित होता है। इनको संकेत रूप में उ0→अनु0 (S→R) द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। (S→R) अनुबन्धनों के आधार पर अधिगम के नियमों को थॉर्नडाइक ने प्रस्तुत किया है। अपनी पुस्तक Educational Psychology में उसने शैक्षिक क्षेत्र में इस सिद्धान्त का व्यापक उल्लेख किया है।

क्या आप जानते हैं अमेरिका में लगभग 50 वर्षों तक थॉर्नडाइक के सिद्धान्त को प्रसिद्धि मिली तथा अनेक मनोवैज्ञानिकों को अधिगम सिद्धान्तों को विकसित करने हेतु आधार बिन्दु प्राप्त हुए।

थॉर्नडाइक ने अपने सिद्धान्तों को स्थापित करने के लिए मुर्गियों, बिल्लियों, मछलियों, कुत्तों, बन्दरों तथा मानव पर अनेक प्रयोग किए। बिल्लियों पर किए गए प्रयोग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। बिल्लियों पर किए गए प्रयोगों के आधार पर थॉर्नडाइक ने मूलभूत अधिगम के प्रकार के रूप में 'प्रयास एवं त्रुटि' (Trial and Error) का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। थॉर्नडाइक ने अधिगम प्रक्रिया की व्याख्या में प्रयास एवं त्रुटि के द्वारा उत्तेजक के साथ सही अनुक्रिया अनुबन्धित करने या सम्बन्धित करने पर बल दिया है अत: थॉर्नडाइक का सिद्धान्त 'प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त' (Theory of Trial and Error) के नाम से अधिक जाना जाता है। चूँकि प्रयास त्रुटि के द्वारा (S-R) में अनुबन्धन स्थापित किया जाता है इसलिए मौलिक रूप से थार्नडाईक के अधिगम सिद्धान्त को उद्दीपक–अनुक्रिया अनुबन्ध सिद्धान्त (Stimulus-Response Bond Theory) के नाम से जाना जाता है।

उद्दीपक–अनुक्रिया अनुबन्ध सिद्धान्त की मुख्य विशेषताएँ

(1) उद्दीपक तथा अनुक्रिया के मध्य अनुबन्धन स्थापित हो जाना ही अधिगम है।

(2) उद्दीपक तथा अनुक्रिया में अनुबन्धन की प्रक्रिया प्रयास तथा त्रुटि के द्वारा ही घटित होती है। अधिगमी सही अनुक्रिया का अधिगम करने के लिए अनेक प्रयास एंव त्रुटियाँ करता है किन्तु अनेक प्रयासों में त्रुटियों को कम करते–करते त्रुटिहीन प्रयास कर सही अनुक्रिया करना सीख जाता है।

(3) प्रयास एवं त्रुटि के द्वारा अधिगमी निश्चित उद्दीपक के लिए निश्चित अनुक्रिया करने में दक्ष हो जाता है। इसके लिए वह अन्य सम्भावित अनुक्रियाओं में से सही अनुक्रिया को छाँटता है, इसलिए थॉर्नडाइक के इस सिद्धान्त को **'चयन एवं सम्बन्धन का सिद्धान्त'** भी कहते हैं। स्वयं **थॉर्नडाइक** के अनुसार–

नोट

"अधिगम सही अनुक्रियाओं का चयन (Selecting) और उसे उद्दीपक से सम्बन्धित (Connecting) करने के परिणामस्वरूप होता है।"

(4) अधिगम की यह प्रक्रिया यांत्रिक (Mechanistic) होती है, क्योंकि सही अनुक्रिया का चयन करना धीरे-धीरे त्रुटियों को हटाने के बाद ही सम्भव हो पाता है।

(5) उद्दीपक के अनुरूप ही अनुक्रिया होती है और उसी के अनुरूप जीव के व्यवहार का निर्धारण होता है। इस प्रकार यह सिद्धान्त बताता है कि उद्दीपक ही व्यवहार का एकमात्र निर्धारण एवं नियंत्रण करता है तथा साथ ही एक विशिष्ट अनुक्रिया के लिए विशिष्ट उद्दीपक की आवश्यकता होती है।

(6) थॉर्नडाइक के सिद्धान्त ने शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में अधिगम प्रक्रिया को एक वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है।

(7) यह सिद्धान्त साहचर्य सिद्धान्त का ही एक रूप है।

उद्दीपक-अनुक्रिया अनुबन्ध सिद्धान्त की सीमाएँ

उद्दीपक-अनुक्रिया अनुबन्ध सिद्धान्त की अनेक विशेषताओं के होते हुए भी, अनेक सीमाएँ भी हैं, जो निम्नलिखित रूप में व्यक्त की जा सकती हैं–

(1) इस सिद्धान्त में उद्दीपक तथा अनुक्रिया की उपयुक्त व्याख्या नहीं की गई है।

(2) **'मिलर'** महोदय ने परिहास करते हुए कहा है कि इस सिद्धान्त को हाइफन सिद्धान्त कहना गलत न होगा, क्योंकि इसमें उद्दीपक तथा अनुक्रिया के मध्य जो सम्बन्ध होता है उसका जितना निरूपण किया गया है उतना उद्दीपक अथवा अनुक्रिया का नहीं किया गया है।

(3) इस सिद्धान्त में व्यक्तित्व की सरचनाओं का विशेष वर्णन नहीं किया गया। यही कारण है कि इस सिद्धान्त को मानने वालों ने अपने विचार और अनुसंधानों में मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त को लाभप्रद बनाया है।

(4) समग्रवादियों ने इस सिद्धान्त को आणुविक तथा खण्डमय सिद्धान्त कहा है।

(5) इस सिद्धान्त में किसी क्रिया को सीखने के लिए व्यर्थ के प्रयासों पर बल दिया जाता है।

(6) व्यवहारवादियों ने प्रभाव या परिणाम के नियम की आलोचना करते हुए कहा है कि इसमें अधिगम की प्रक्रिया की अपूर्ण व्याख्या की गई है।

(7) गेस्टाल्टवादियों के अनुसार अनुभव में स्वयं सम्बन्ध समाहित होता है, इसे हम समग्र रूप में पाते हैं, अत: किसी प्रकार के सम्बन्ध-निर्माण की आवश्यकता नहीं होती है।

थॉर्नडाइक के सिद्धान्त की विशेषताओं एवं सीमाओं पर प्रकाश डालने के पश्चात् थॉर्नडाइक की अधिगम सम्बन्धी व्याख्या का और निरूपण करने के लिए उसके द्वारा किये गये मुख्य प्रयोग, प्रयास एवं त्रुटि द्वारा अधिगम की विधि तथा अधिगम के नियमों पर प्रकाश डालना समीचीन होगा।

प्रतिनिधिक प्रयोग (The Representative Experiment)

थॉर्नडाइक ने अपने अधिगम सम्बन्धी सिद्धान्त की व्याख्या करने के लिए अनेक पशुओं, जैसे- कुत्ते, बिल्ली, बन्दर, मुर्गी आदि पर प्रयोग किए। किन्तु उनकी पुस्तक 'Animal Intelligence' में वर्णित बिल्ली पर किया गया प्रयोग और उसके अवलोकन बहुत महत्वपूर्ण हैं। इसे उनके प्रयोगों का एक प्रतिनिधिक प्रयोग मानते हुए उसका विवरण निम्नवत् प्रस्तुत है–

थॉर्नडाइक का शास्त्रीय प्रयोग एक बिल्ली को एक पिंजड़े, जिसे 'पहले पेटी' (Puzzle Box) कहा गया है, मैं रखकर किया गया। यह एक सरल प्रयोग था। पिंजड़ा इस प्रकार बनाया गया था कि एक डोरी के खींचने या एक

नोट

बटन के दबाने से पिंजड़े का दरवाजा खुल जाता था। पिंजड़े के बाहर मछली रखी गई थी। एक भूखी बिल्ली को पिंजड़े में रखा तो वह मछली को देख उसे पाने के लिए उसने कई ऐसे प्रयास किये जिससे कि वह बाहर आकर मछली खा सके। बाहर निकलने के प्रयास में बिल्ली ने कई व्यवहार किये, जैसे उछल-कूद, पंजे चलाना, इधर-उधर घूमना, छपटाना आदि। इस उछल-कूद में अचानक किसी प्रकार बिल्ली का पंजा डोरी पर पड़ गया और पिंजड़े का दरवाजा खुल गया। बिल्ली बाहर निकल अपनी भूख मिटाने में सफल हो गई। थॉर्नडाइक ने पुनः बिल्ली को पिंजड़े में बन्द कर दिया। बिल्ली पुनः मछली खाने के लिए बाहर आने का प्रयास करने लगी, किन्तु इस बार उसने पहले की अपेक्षा कम उछल-कूद करते हुए और कम समय में डोरी खींचकर बाहर आने में सफलता प्राप्त कर ली। इस प्रकार के प्रयोग के कई क्रम में थॉर्नडाइक ने यह देखा कि अगले क्रमों में बिल्ली के निरर्थक प्रयास कम होते गये और कम समय में वह बाहर निकलने और मछली खाने में सफल होने लगी। त्रुटियाँ कम होती गई। एक बार यह देखा गया कि बिल्ली को पिंजड़े मे रखते ही बिल्ली ने बिना त्रुटि किए डोरी खींची और बाहर आ गईं और मछली खा गर्ह। प्रयोग के निरीक्षणों से **थॉर्नडाइक** ने यह निष्कर्ष निकाला कि उद्दीपक के प्रति सही अनुक्रिया के साथ सम्बन्ध (Connection) का प्रत्यक्ष निर्माण कर बिल्ली ने पिंजड़े से बाहर निकलना सीख लिया।

थॉर्नडाइक के अनुसार बिल्ली द्वारा बाहर निकलने की विधि का अधिगम करने के लिए दो बातों का होना आवश्यक था–(*i*) बिल्ली का भूखा होना–यह इसलिए आवश्यक था कि बिल्ली अधिगम हेतु अभिप्रेरित रहे जिससे वह प्रयास कर सके, और (*ii*) भोजन (मछली) का होना- जिससे वह भूख मिटा सके। **थार्नडाईक** ने इस प्रयोग के आधार पर अधिगम के नियमों का प्रतिपादन किया जो पशु तथा मानव दोनों के अधिगम में उ0 - अनु0 अनुबन्ध सरंचना (S-R Bond Structure) के निर्माण की व्याख्या करते हैं।

थार्नडाइक के अधिगम के नियम (Thorndike's Laws of Learning)–विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला विधि द्वारा पशुओं पर परीक्षण करके अधिगम के नियमों की खोज की है। किन्तु अधिगम के नियमों को क्रमबद्ध करने का श्रेय **थार्नडाइक** को ही है। **थार्नडाइक** के अधिगम के नियम उद्दीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त या सम्बन्ध वाद सिद्धान्त पर आधारित हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार जब व्यक्ति के सामने एक उद्दीपक होता है तो वह उसे विशेष प्रकार की अनुक्रिया करने के लिए प्रेरित करता है। इसमें एक विशिष्ट उद्दीपक एक विशिष्ट अनुक्रिया से सम्बन्धित हो जाता है। उसकी इस अनुक्रिया में अधिगम की क्रिया निहित होती है। थार्नडाइक के अनुसार अधिगम उ0 और अनु0 में सम्बन्ध स्थापित करता है। सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य मस्तिष्क करता है। अधिगम की प्रक्रिया में शारीरिक और मानसिक क्रियाओं में सम्बन्ध होना आवश्यक है। उसने उद्दीपन और अनुक्रिया के अनुबन्धों का अध्ययन किया और अधिगम के मुख्य तथा गौड़ नियमों की रचना की। ये नियम निम्नलिखित हैं–

(अ) अधिगम के मुख्य नियम (Primary Laws of Learning)–

(1) तत्परता का नियम (Law of Readiness)

(2) अभ्यास का नियम (Law of Exercise)

(3) प्रभाव का नियम (Law of Effect)

(ब) अधिगम के गौण नियम (Secondary Laws of Learning)–

(1) बहु अनुक्रिया का नियम (Law of Multiple Response)

(2) मानसिक स्थिति अथवा मनोवृत्ति का नियम (Law of Mental Set or Attitude)

(3) तत्वों की पूर्व समर्थता का नियम (Law of Prepotancy of Elements)

(4) सादृश्यता द्वारा अनुक्रिया का नियम (Law of Response by Analogy)

(5) साहचर्य परिवर्तन का नियम (Law of Associative Shifting)

नोट

(अ) अधिगम के मुख्य नियम (Primary Laws of Learning)–

थार्नडाइक ने अधिगम के प्रमुख रूप से निम्नलिखित तीन नियम बताए हैं–

(1) तत्परता का नियम (Law of Readiness)–इस नियम का अर्थ है कि जब अधिगम करने वाला अधिगमी (Learner) अधिगम के लिए तत्पर या तैयार (Ready) होता है, तभी अधिगम कर सकता है, अन्यथा नहीं। अधिगम के लिए उसे तैयार करना पड़ता है। बालक को शिक्षा देते समय शिक्षक को सर्वप्रथम अधिगम के लिये ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी चाहिए जिससे कि बालक में रुचि और जिज्ञासा जाग्रत हो सके और वह अधिगम के लिए तैयार हो जाए। इसके लिए शिक्षक कई विधियों द्वारा बालक को अधिगम क्रिया करने के लिए तत्पर कर सकता है। कुशल शिक्षक नवीन पाठ को प्रारम्भ करने के पूर्व पाठ से या पूर्व ज्ञान से उसे सम्बन्धित करके या प्रश्न पूछकर शिक्षा की नवीन विधियों द्वारा बालक में रुचि जाग्रत कर देते हैं। शिक्षक प्राय: आवश्यकतानुसार बालक को पाठ पढ़कर भी आने के लिए कहते हैं। इस प्रकार कई बातों से अधिगम करने के लिए उसकी मानसिक तैयारी हो जाती है। अधिगम के लिए तत्परता ध्यान केन्द्रित करने में सहायता देती है। बालक इस प्रकार किसी भी कार्य को शीघ्र सीख लेता है और उसे सीखने में संतोष प्राप्त होता है।

(2) अभ्यास का नियम (Law of Exercise)–अभ्यास का नियम यह बताता है कि एक परिस्थिति में सही अनुक्रिया को दृढ़ करने के लिए उस अनुक्रिया को बार-बार दुहराया जाए। जिस अधिगम क्रिया की हम कई बार पुनरावृत्ति करते हैं उसे हम शीघ्र ही अधिगम कर लेते हैं। अभ्यास से अधिगम को सुगम बनाया जा सकता है। **डॉ. जे. एन. सिन्हा** के अनुसार, " अन्य बातों के समान होते हुए जब कभी एक परिस्थिति और एक अनुक्रिया के मध्य परिवर्तनीय सम्बन्ध का अभ्यास किया जाता है तो वह दृढ़ हो जाता है। यही अभ्यास का नियम कहलाता है।

अभ्यास के नियम के दो रूप हैं–

(*i*) उपयोग का नियम (Law of Use)

(*ii*) अनुपयोग का नियम (Law of Disuse)

***(i)* उपयोग का नियम** (Law of Use)–जिस कार्य का अभ्यास बार-बार किया जाता है, वह सरलातापूर्वक शीघ्र सीख लिया जाता है। कविता याद करने के लिए उसे बार-बार दुहराना पड़ता है। इसी प्रकार साईकिल चलाना सीखने के लिए बालक को अनेक बार प्रयास करने पड़ते हैं, वह गिरता भी है चोट भी खाता है। अन्त में अभ्यास के द्वारा वह बिना गिरे साईकिल चलाने लगाता है। चित्रकारी, टाइप करना, संगीत सीखना, कोई खेल खेलना आदि को अभ्यास और उपयोग करके ही सीखा जा सकता है।

***(ii)* अनुपयोग का नियम** (Law of Disuse)–यह नियम उपयोग के नियम के विपरीत है। यदि सीखे हुए कार्य का अभ्यास या उपयोग नहीं किया जाता है जो व्यक्ति उसे भूल जाता है। उदाहरणार्थ- गाने और बजाने का अभ्यास छोड़ देने पर व्यक्ति नहीं गा-बजा सकता। खिलाड़ी बहुत दिनों बाद यदि खेल के मैदान में खेलने आता है तो वह ठीक से खेल नहीं पाता। यही बात पढ़ने-लिखने के लिए भी कही जा सकती है, जैसे- गणित का नित्य अभ्यास करने पर ही सफलता मिलती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जिस कार्य को बहुत समय तक किया या दुहराया नहीं जाता, वह याद नहीं रहता है- इसी को अनुपयोग का नियम कहते हैं। शिक्षकों को चाहिए कि वह बालकों को विभिन्न विषयों में लगातार अभ्यास देते रहें। अन्यथा पढ़ाया हुआ ज्ञान अभ्यास के अभाव में अथवा अनुपयोग के कारण उन्हें याद न रह सकेगा।

नोट

टास्क थॉर्नडाइक के अधिगम सिद्धांत से संबंधित प्रयोग पर एक नोट लिखिए।

(3) प्रभाव का नियम (Law of Effect)–इस नियम को सन्तोष या असन्तोष का नियम भी कहा जाता है। जिस कार्य को करने के उपरान्त हमें संतोष या सुख मिलता है, उसे हम बार-बार करना चाहते हैं। शिक्षा में पुरस्कार और दण्ड देने का नियम इसी ओर संकेत करता है। जिस कार्य को करने से बालक को पुरस्कार मिलता है, उसे वह बार-बार करना चाहता है। किन्तु जिस कार्य को करने के लिए दण्ड मिलता है उसे वह नहीं करना चाहता, अत: उसे वह नहीं सीखता। इस नियम का प्रयोग शिक्षा में मनोवैज्ञानिक ढंग सें किया जा सकता है। शिक्षक को चाहिए कि वह बालक के लिए अधिगम की ऐसी परिस्थिति का निर्माण करे जिससे उसे सफलता प्राप्त हो सके और संतोष व सुख की अनुभूति हो। बालकों को जिस कार्य के लिए प्रशंसा मिलती है, उसे वे शीघ्र सीख जाते हैं। अधिगम के उपर्युक्त सभी नियम एक दूसरे पर आधारित तथा आन्तरिक रूप से सम्बन्धित हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सही विकल्प चुनकर रखिए–

1. थॉर्नडाइक ने अपने सिद्धांत में उद्दीपक तथा अनुक्रियों में संबंध स्थापन के लिए संकेत का प्रयोग किया है, संकेत हैं–

   (क) $(T \rightarrow R)$ (ख) $(S \rightarrow R)$ (ग) $(R \rightarrow S)$

2. थॉर्नडाइक का सिद्धांत आधारित है–

   (क) परिवर्तनवाद (ख) प्रकृतिवाद (ग) संबंधवाद

3. एनीमल इंटेलिजेंस (Animal Intelligence) के रचयिता हैं–

   (क) कोहलर (ख) स्किनर (ग) थॉर्नडाइक

4. थॉर्नडाइक ने अपने सिद्धांत के प्रतिपादन हेतु महत्त्वपूर्ण प्रयोग किए–

   (क) बिल्लियों पर (ख) चूहों पर (ग) मुर्गियों पर

(ब) अधिगम के गौण नियम (Scondary Laws of Learning)–

उपर्युक्त तीन प्रमुख अधिगम नियमों के अतिरिक्त थॉर्नडाइक ने अधिगम के पाँच गौण नियम भी प्रतिपादित किये हैं, जो निम्नलिखित हैं–

(1) बहुअनुक्रिया का नियम (Law of Multiple Response)–थॉर्नडाइक के अनुसार जब कोई उद्दीपक जीव को उत्तेजित करता है तो सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए वह अनेक प्रकार की अनुक्रियाएँ करता है अर्थात् सही अनुक्रिया के पूर्व बहु अनुक्रियाएँ होती हैं जिनमें से प्राय: अनेक अनुक्रियाएँ निरर्थक भी रहती हैं। किन्तु यदि अनुक्रियाएँ बहुरूपी न हों तो अधिगमी सही अनुक्रिया करना नहीं सीख सकता। इस नियम के आधार पर अधिगम के विभिन्न उपायों और विधियों की खोज में प्रयासरत् अधिगमी के अधिगम मार्ग में अवरोधक बनने के स्थान पर उसे त्रुटियों में सुधार के द्वारा अधिगम का अवसर देना चाहिए अथवा उसे किसी निश्चित एवं प्रभावी उपाय के सम्बन्ध में निर्णय लेने में निर्देशक प्रदान करना चाहिए जिससे वह कम-से-कम निरर्थक प्रयास करे।

(2) मानसिक स्थिति अथवा मनोवृत्ति का नियम (Law of Mental Set or Attitude)–अधिगम में मानसिक स्थिति अथवा मनोवृत्ति का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। अनुकूल मनोवृत्ति आती है। यदि अधिगमी में अधिगम क्रिया के प्रति उपेक्षित मनोवृत्ति या मानसिक स्थिति का अभाव है तो वह अधिगम नहीं कर सकता,

नोट

शिक्षण चाहे कितना ही प्रभावशाली क्यों न हो। थॉर्नडाइक के अनुसार व्यक्ति किसी उद्दीपन के प्रति किस प्रकार प्रतिक्रिया करेगा यह उसके समाज से समायोजन करने के पूर्व अनुभवों, उसके विचार, संस्कृति आदि पर निर्भर करता है। प्रतिक्रिया करने पर प्राय: सामाजिक प्रवृत्तियाँ अधिक प्रभावशाली रहती हैं। अधिगम हेतु बालक की तत्परता का विकास व वांछित स्थिति का निर्माण करना आवश्यक होता है। अत: इस नियम के अनुसार यह आवश्यक है कि शिक्षण-क्रिया से पूर्व बालक को मानसिक रूप से पहले तैयार किया जाए।

(3) तत्वों की पूर्व समर्थता का नियम (Law of Perpotancy of Elements)–इस नियम को चयनकारी अनुक्रिया का नियम (Law of Selective Response) भी कहते हैं। इस नियम का तात्पर्य यह है कि अधिगमी समस्याजनक परिस्थिति के सभी तत्वों के प्रति अनुक्रिया न कर कुछ चुने हुए तत्वों के प्रति अनुक्रिया करने में समर्थ रहता है। जिस स्थिति के प्रति अधिगमी अनुक्रिया करने में समर्थ होता है उसे समर्थता का तत्व कहते हैं जो अधिगमी में पहले से विद्यमान रहती हैं। इन्हीं पूर्व समर्थता के तत्वों के आधार पर प्रतिक्रिया की जाती है। अधिगम परिस्थिति में इन तत्वों को पहचानना अधिगमी की बुद्धि पर निर्भर करता है। इन तत्वों को पहचानने की समर्थता से अधिगम को विश्लेषणात्मक और अन्तर्दृष्टिपूर्ण बनाना सम्भव होता है।

(4) सादृश्यता द्वारा अनुक्रिया का नियम (Law of Response by Analogy)–सादृश्यता द्वारा अनुक्रिया के नियम का तात्पर्य यह है कि अनुक्रिया दो परिस्थितियों की समानता अथावा सादृश्यता के आधार पर होती है। इसमें पूर्व-ज्ञान या पूर्व अनुभव का उपयोग नवीन अधिगम परिस्थितियों में कर लिया जाता है। यहाँ अन्तरण का सिद्धान्त कार्य करता है। जब किसी ज्ञान या अनुभव को अच्छी तरह से धारण कर लिया जाता है या उसका आत्मसात् (Assimilation) कर लिया जाता है तो किसी दूसरी या नवीन अधिगम परिस्थितियों में उसका सरलता से अन्तरण (Transfer) किया जा सकता है। इसीलिए इस नियम को आत्मीकरण का नियम (Law of Assimilation) भी कहते हैं। ज्ञान या अनुभव को सम्बद्ध करने की क्रिया है। बालक को यह समझना चाहिए कि जो कुछ उसे वर्तमान में सिखाया जा रहा है, वह उसके द्वारा भविष्य में प्राप्त किए जाने वाले ज्ञान की एक कड़ी है तथा वह नवीन ज्ञान के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानता है ऐसा अनुभव करेगा। इसके आधार पर अधिगमी पूर्व ज्ञान का नवीन ज्ञान से सम्बन्ध स्थापित करके, प्रदत्त ज्ञान को अपने कोष का स्थाई अंग बना लेता है।

(5) साहचर्य परिवर्तन का नियम (Law of Associative Shifting)–थॉर्नडाइक के साहचर्य परिवर्तन के नियम से यह अभिप्राय है कि अधिगमी की अनुक्रिया का स्थान परिवर्तित होता है, यह पूर्व तथा पश्चात् की परिस्थिति के रूप में होता है, जिनमें समानता होती है। यदि नवीन ज्ञान को प्रदान करते समय वही परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी जाएँ जो अभिप्राय को पूर्व ज्ञान प्रदान करते समय विद्यमान थीं तो अधिगमी पूर्वानुसार ही अनुक्रिया करेगा। पूर्व एवं नवीन परिस्थितियों में इस प्रकार की सहचारी समानता स्थापित करना ही साहचर्य परिवर्तन कहलाता है। अत: जहाँ तक हो सके अधिगम से पूर्व सहचारी परिस्थितियों का निर्माण किया जाना चाहिए जिससे अधिगामी ज्ञान का स्थान परिवर्तन कर सके।

थॉर्नडाइक के अधिगम नियमों की आलोचना–थॉर्नडाइक के द्वारा प्रतिपादित नियमों को व्यवहारवादी तथा अवयवीवादी मनोवैज्ञानिकों ने कटु आलोचना की हैं। उनके कुछ विचार निम्नलिखित हैं–

(क) अवयवीवादियों के अनुसार–"अधिगम का सार खोज में निहित है।" अत: बालक को रचनात्मक कार्यों के आधार पर स्वयं अनुभव करने तथा अधिगम के लिए प्रेरित करना चाहिए। केवल प्रभाव के नियम पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। उन्होंने प्रभाव के नियम की कटु आलोचना करते हुए कहा है कि अधिगम के लिए प्रत्येक अधिगमी को पुरस्कार या प्रभाव अथवा परिणाम के फल की आवश्यकता नहीं होती। फल बाद में प्राप्त होता है और अधिगम की क्रिया पहले ही सम्पन्न हो जाती है। किन्तु यहाँ कहना भी आवश्यक हो जाता है कि इस नियम से अधिगम में प्रेरणा को महत्त्वपूर्ण स्थान मिल जाता है।

नोट

(ख) इसी प्रकार सभी प्रकार के अधिगमों में केवल अभ्यास के नियम पर ही आश्रित नहीं रहा जा सकता। यह नियम रटने पर अधिक बल देता है। अधिगम की क्रिया में अधिगमी की रुचि अवधान, मनोवृत्ति का भी महत्त्व होता है। प्राय: हम बहुत-सी बातों को केवल एक बार के अनुभव या निर्देश से सीख जाते हैं और अभ्यास की आवश्यकता नहीं होती है।

(ग) थॉर्नडाइक के अधिगम नियम में किसी क्रिया को सीखने के लिए व्यर्थ के प्रयासों पर बल दिया जाता है।

(घ) निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि केवल अभ्यास के नियम या प्रभाव के नियम पर निर्भर रहने पर अधिगमी की अधिगम-प्रक्रिया में अपेक्षित उन्नति नहीं होती वरन् इन तीनों नियमों के अतिरिक्त व्यक्ति नवीनता, स्पष्टता और सहचारिता के आधार पर अधिगम करता है।

(ङ) अधिगम से सम्बन्धित अन्य गौण नियम विचार साहचर्य पर आधारित हैं, जिनका सम्बन्ध स्मृति के मनोविज्ञान से है। विचार साहचर्य का विस्तृत अध्ययन 'स्मृति और विस्मृति' अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

उपर्युक्त आलोचनओं के रहते हुए भी थॉर्नडाइक के मुख्य नियमों एंव गौण नियमों का शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये नियम बालकों के शिक्षण में महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं। थॉर्नडाइक के द्वारा प्रतिपादित प्रयास एवं त्रुटि द्वारा अधिगम विधि में उपर्युक्त नियमों की प्रासंगिकता प्रकाशित होती है।

नोट्स अधिगम का सार खोज में निहित है। अत: बालक को रचनात्मक कार्यों के आधार पर स्वयं अनुभव करने तथा अधिगम के लिए प्रेरित करना चाहिए।

प्रयास एवं त्रुटि द्वारा अधिगम (Learning by Trial and Error)–जानवरों पर अनेक प्रयोग करने के पश्चात् थॉर्नडाइक ने सर्वप्रथम प्रयास एवं त्रुटि द्वारा अधिगम विधि का निरूपण किया। थॉर्नडाइक के शास्त्रीय प्रयोग (Classical Experiment), जिसे उसने एक भूखी बिल्ली को एक पहेली पेटी (Puzzle Box) में रखकर किया था, के आधार पर प्रयास एवं त्रुटि द्वारा अधिगम विधि की व्याख्या की जा सकती है। इसी प्रयोग का वर्णन पूर्व के पृष्ठों में किया जा चुका है। थॉर्नडाइक के अनुसार जब प्राणी के सामने कोई नई समस्या उत्पन्न होती है तो उसका समाधान करने के लिए वह किसी-न-किसी प्रकार की प्रतिक्रिया करने लगता है। प्रारम्भ में ये प्रतिक्रियाएँ त्रुटिपूर्ण होती हैं किन्तु प्रतिक्रियाओं को करते-करते प्रतिक्रिया में संयोगवश सफलता मिल जाती है। अधिगम के सम्बन्ध में प्रयास तथा त्रुटि का अर्थ है कि किसी को सीखते समय आरम्भ मे सफलता नहीं मिलती, कुछ-न-कुछ त्रुटियाँ या भूलें हो ही जाती हैं, किन्तु जब कई बार प्रयास किए जाते हैं तो प्रत्येक प्रयास के पश्चात् त्रुटियाँ कम हो जाती हैं। जैसें-जैसे प्रयास किया जाता है, वैसे-वैसे त्रुटियों या भूलों की संख्या कम होती है और अन्त में ऐसा समय भी आता है कि व्यक्ति ठीक ढंग से सही कार्य करने में सफल हो जाता है। वुडवर्थ (Wood Worth) ने अपनी पुस्तक 'Psychology' में प्रयास एवं त्रुटि द्वारा अधिगम विधि के निम्नलिखित सोपान बताए है–

(क) किसी लक्ष्य तक पहुँचने की तत्परता,

(ख) लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग स्पष्ट रूप से दिखाई न देना,

(ग) परिस्थितियों का जायजा लेना तथा सम्भावित मार्ग को ढूँढ़ना और उनको आजमाना, और

(घ) अन्त में सही मार्ग को पा लेना,

नोट

प्रयास एवं त्रुटि द्वारा अधिगम की परिथितियाँ–प्रयास एवं त्रुटि द्वारा अधिगम की क्रिया में निम्नलिखित परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं–

(1) सीखने वाले, अर्थात् अधिगामी में अन्तर्नोद (Drive) का होना आवश्यक है। अन्तर्नोद ही अधिगम की प्रेरणा देता है। और उसे क्रियाशील बनाता है। भूख एक अन्तर्नोद (चालन) है। थॉर्नडाइक के प्रयोग में हमने देखा कि भूख ने ही बिल्ली को अधिगम (पिंजड़े का दरवाजा खोलना सीखना) के लिए प्रेरित किया।

(2) अन्तर्नोद की सन्तुष्टि में जब बाधा पड़ती है, तब व्यक्ति प्रयास करता है। प्रयास और त्रुटि होते-होते वह अन्त में सीख जाता है।

(3) अन्तर्नोद की सन्तुष्टि के लिए प्रयोजन (अन्दाज) से अनावश्यक क्रियाएँ (Random Activities) होती हैं, क्योंकि अधिगमी को सही क्रिया का ज्ञान नहीं होता- जैसे, बिल्ली की अनावश्यक उछल-कूद।

(4) अनावश्यक क्रियाओं द्वारा संयोग से सही क्रियाओं के होने पर अचानक सफलता मिल जाती है।

थॉर्नडाइक के अनुसार प्रयास एवं त्रुटि द्वारा अधिगम विधि में निम्नलिखित व्यवहारिक अवस्थाएँ पाई जाती हैं–

(1) लक्ष्य–अधिगम के लिए किसी लक्ष्य का होना आवश्यक है। लक्ष्य का ज्ञान होने पर ही अधिगम क्रिया करने में तत्परता दिखाई देगी।

(2) मानसिक स्थिति का ठीक होना–व्यक्ति की मानसिक स्थिति ठीक होने पर ही वह समस्या का समाधान करने का प्रयास करता है और समस्या के समाधान के लिए सम्भव मार्गों को खोजता है। यदि मार्ग में बाधा आती है तो वह दूसरे मार्ग को अपनाता है।

(3) लक्ष्य-प्राप्ति में बाधा–बाधा उत्पन्न होने पर ही समस्या उत्पन्न होती है और समस्या समाधान करने के लिए ही व्यक्ति प्रयास करता है।

(4) प्रयास–बाधाएँ आने पर व्यक्ति प्रयास करता है। असफलता मिलने पर, एक के बाद दूसरा प्रयास किया जाता है। यह प्रयास तब तक जारी रहता है जब तक कि लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए।

(5) आकस्मिक सफलता–बार-बार प्रयास करने पर बीच-बीच में संयोगवश सफलता मिलती है।

(6) सही क्रिया का स्थायीकरण–अनेक बार प्रयास करने में जब अचानक सही क्रिया की जानकारी होती है तब लक्ष्य-प्राप्ति के लिए उस सही क्रिया को चुन लिया जाता है। सही क्रिया को बार-बार दुहराकर उसका स्थायीकरण किया जाता है।

(7) सही क्रिया का चुनाव–यह अधिगम की अन्तिम अवस्था है। इसमें सही क्रिया का चुनाव होने पर प्रयास सफल हो जाता है और त्रुटि नहीं होती।

प्रयास एवं त्रुटि अधिगम विधि की शैक्षिक उपयोगिता–प्रयास एवं त्रुटि अधिगम विधि की शिक्षा में महत्त्वपूर्ण उपयोगिताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) यह विधि एक प्रकार से सुधार की विधि है। इसके द्वारा बालक अपनी पहले की, की गई गलतियों से जो अनुभव प्राप्त करता है, उससे लाभ उठाता है।

(2) बालकों में निरन्तर प्रयत्न करने से धैर्य और परिश्रम के गुणों का विकास होता है।

(3) इस विधि में जो क्रियाएँ बालक को सफल प्रतीत होती हैं, उसे वह दुहराता है। ये क्रियाएँ उद्दीपक के रूप में अधिगम के लिए उसे प्रेरणा प्रदान करती हैं। वह सफल क्रियाओं के चुनाव द्वारा सीखता है। इसलिए कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इस विधि को 'सफल प्रतिक्रियाओं के चुनाव द्वारा अधिगम' (Learning by Selection of the Successful Variation) भी कहा है।

नोट

(4) यह विधि अभ्यास पर आधारित है। इसलिए सीखा हुआ कार्य स्थाई हो जाता है। अत: शिक्षक को, यदि बालक किसी कार्य में असफल हो जाता है तो उसे कई बार प्रयास करने के लिए, प्रोत्साहित करना चाहिए। यह विधि गम्भीर विषयों जैसे- गणित, विज्ञान, व्याकरण आदि के लिए बहुत उपयोगी है। गणित के प्रश्नों का समाधान, प्रयास और त्रुटि द्वारा करने का अवसर प्रदान करना चाहिए। इस विधि से बालक को अधिक लाभ होता है। बार-बार प्रयास करके जो सफलता मिलती है, वह स्थाई होती है।

(5) इस विधि के द्वारा जब बालक को लक्ष्य ज्ञात रहता है किन्तु लक्ष्य प्राप्ति का तरीका नहीं ज्ञात होता है, तब वह स्वयं प्रयास करता है। इससे उसमें आत्म-निर्भरता और आत्मविश्वास के गुण उत्पन्न हो जाते हैं। यह गुण भावी जीवन में आने वाली उन परिस्थितियों और समस्याओं का सरलतापूर्वक समाधान ढूँढने में योग्यता प्राप्त करेंगे, जिनका लक्ष्य तो उन्हें ज्ञात होगा किन्तु उसे प्राप्त करने का मार्ग नहीं।

(6) यह विधि बहुत छोटे बालकों के लिए उपयोगी नहीं है।

(7) यह विधि मंद-बुद्धि बालकों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है।

थॉर्नडाइक के अधिगम सम्बन्धी विचार का विस्तृत अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि उसके सिद्धान्त, प्रयोग, विधि एवं नियम आदि अधिगम मनोविज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं, जिनका शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है।

8.3 सारांश (Summary)

- अधिगम के कुछ प्रमुख सिद्धांतों के अंतर्गत पावलोव, थॉर्नडाइक, कोहलर एवं स्किनर के सिद्धांत उल्लेखनीय हैं।
- किसी मनोवैज्ञानिक अथवा मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय के द्वारा अधिगम की अवधारणा का स्पष्टीकरण ही अधिगम सिद्धान्त है। इसके अंतर्गत अधिगम सम्बन्धी समस्याओं का व्यापक समाधान प्रस्तुत किया गया है। अधिगम सिद्धान्तों में एकरूपता आवश्यक नहीं है।
- विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम के भिन्न-भिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं, कुछ सिद्धान्तों में समान विचार निहित हैं तो कुछ में भिन्नता दिखाई देती है। समानताओं एवं भिन्नताओं के आधार पर अधिगम के सिद्धान्तों का वर्गीकरण किया जा सकता है।

8.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **अंतर्नोद**–प्रेरति करना
2. **साहचर्य**–संग, साथ।

8.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. थॉर्नडाइक के 'उद्दीपक–अनुक्रिया अनुबंध सिद्धांत' पर प्रकाश डालिए।
2. थॉर्नडाइक द्वारा वर्णित अधिगम के मुख्य तथा गौण नियमों को समझाइए।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. (ग) 2. (ख) 3. (ग) 4. (ख)

8.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
2. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.एच. सिन्हा और रचना शर्मा, अटलांटिक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।*
3. बच्चों में शिक्षा का महत्त्व एवं जानकारियाँ–*सीमा चोपड़ा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
4. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 9: पावलोव का अनुकूलित प्रत्यावर्तन सिद्धान्त एवं उसके शैक्षिक निहितार्थ (Povlov's Conditioned Theory and its Educational Implications)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

9.1 पावलोव का अनुकूलित प्रत्यावर्तन सिद्धान्त (Pavlov's Conditioned Relflex Theory)

9.2 शिक्षा में अनुकूलित प्रत्यावर्तन सिद्धान्त की उपयोतिगता एवं महत्त्व (Utility and Importance of Conditioned Reflex Theory in Education)

9.3 सारांश (Summary)

9.4 शब्दकोश (Keywords)

9.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

9.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अधिगम संबंधी पावलोव के अनुकूलित प्रत्यावर्तन के सिद्धांत को समझने में।
- अनुकूलित प्रत्यावर्त सिद्धांत के शैक्षिक निहितार्थ को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

अनुकूलित प्रत्यावर्तन सिद्धान्त का प्रतिपादन आई. पी. पावलोव (1849–1936) ने किया। वह रूस का निवासी एवं प्रसिद्ध शरीर वैज्ञानिक था। उसे 1904 में पाचन प्रक्रिया पर किये गये कार्यों के लिए नोबुल पुरस्कार प्रदान किया गया था। वास्तव में वह कुत्तों के पाचन में लार के स्राव की भूमिका का अध्ययन कर रहा था, तभी उसने यह देखा कि कुत्ते के लार स्राव में उस समय वृद्धि हो जाती है जब भोजन आता है और भोजन लाने वाले का पदचाप सुनाई देता है। इसी घटना के अवलोकन के पश्चात् उसने अधिगम सम्बन्धी सिद्धांत प्रतिपादित किया। इस प्रकार वह 50 वर्ष की आयु में मनोवैज्ञानिक बन गया। अपने इस सिद्धान्त का प्रसार करने के लिए उसने दो पुस्तकें Conditioned Reflexes तथा Lactures on Conditioned Reflexes प्रकाशित कराई। इस सिद्धान्त को सम्बद्ध प्रत्यावर्तन, सम्बन्ध प्रतिक्रिया, अनुकूलित अनुक्रिया आदि नामों से जाना जाता है, किन्तु पावलोव द्वारा किये

नोट

गये कुत्ते पर प्रयोग के उदाहरण पर आधारित सिद्धान्त को **'शास्त्रीय अनुकूलन सिद्धान्त'** का नाम दिया गया है। इस सिद्धान्त के स्वरूप के आधार पर इसे 'अनुक्रियात्मक अनुबन्धन सिद्धान्त' का भी नाम दिया गया है। यहाँ मुख्य बात है पावलोव द्वारा कुत्ते पर प्रयोग करके उसके निष्कर्षों को अधिगम के क्षेत्र में मानव व्यवहार पर लागू करने का विचार व्यक्त करना। अत: सर्वप्रथम पावलोव के शास्त्रीय प्रयोग को समझना आवश्यक है।

9.1 पावलोव का अनुकूलित प्रत्यावर्तन सिद्धान्त (Pavlov's Conditioned Relflex Theory)

पावलोव का शात्रीय प्रयोग–पावलोव ने अपना प्रयोग एक प्रयोगशाला में एक कुत्ते पर किया। उसने कुत्ते की लार ग्रन्थि में आपरेशन करके एक नली लगा दी, जो एक बीकर में गिरती थी, जिससे लार के गिरने का अवलोकन किया जा सके। इस परीक्षण में एक कुत्ते को प्रतिदिन एक निश्चित समय पर भोजन दिया जाता था। भोजन को देखकर कुत्ते की लार टपकने लगती थी। भोजन की प्रस्तुति एक स्वाभाविक उत्तेजक और इस उत्तेजक से लार का टपकना स्वाभाविक अनुक्रिया थी। पावलोव ने दूसरे समय में घंटी बजाई जो एक अस्वाभाविक उत्तेजक ओर इस उत्तेजना से कुत्ते का चौकन्ना होना, कान खड़ा करना आदि अस्वाभाविक अनुक्रिया थी। इसके पश्चात् पावलोव ने भोजन की प्रस्तुति और घंटी की आवाज एक साथ की अर्थात् स्वाभाविक और अस्वाभाविक उत्तेजक एक साथ प्रस्तुत किये गये जिससे अनुक्रिया के रूप में कुत्ते ने लार टपकाई। यह दोनों उत्तेजकों की एक अनुक्रिया थी। यह क्रम पावलोव ने प्रयोगशाला में कई बार दुहराया जिसके द्वारा भोजन और घण्टी अथवा स्वाभाविक उत्तेजक और अस्वाभाविक उत्तेजक सम्बद्ध प्रत्यावर्तित अथवा अनुकूलित (Conditioned) हो गई। अब तीसरे चरण में पावलोव ने केवल घण्टी की आवाज की अर्थात् केवल अस्वाभाविक उत्तेजक प्रस्तुत नहीं किया, भोजन प्रस्तुत नहीं किया, तो भी कुत्ते ने लार टपका दी। यहाँ यह बात महत्त्वपूर्ण है कि भोजन रूपी उत्तेजक घण्टी रूपी उत्तेजक में स्थानापन्न(Substitute) हो गई। यही स्थानापन्न Substitution) अधिगम है जिसे पावलोव ने अनुकूलित प्रत्यावर्तन (Conditioned Reflex) का नाम दिया। आज के मनोवैज्ञानिकों ने पावलोव के अनुकूलित प्रत्यावर्तन को शास्त्रीय अनुकूलिन(Classical Conditioning) की संज्ञा दी है।

पावलोव के प्रयोग के उपर्युक्त वर्णन को निम्नांकित तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है–

तालिका सं. 1-शास्त्रीय अनुकूलन के मूल तत्व

अनुकूलन के पहले की स्थिति
स्वाभाविक उत्तेजक-भोजन.....स्वाभाविक अनुक्रिया-लार का स्राव
अस्वाभाविक उत्तेजक-घण्टी.....अस्वाभाविक अनुक्रिया-कान खड़े करना
अनुकूलन की मध्य की स्थिति
स्वाभाविक उत्तेजक-भोजन एवं
अस्वाभाविक उत्तेजक-घण्टी.....स्वाभाविक अनुक्रिया-लार का स्राव
(यह स्थिति कई बार दुहराई गई)
अनुकूलन के बाद की स्थिति
अस्वाभाविक उत्तेजक-घण्टी.....स्वाभाविक अनुक्रिया-लार का स्राव

(इस स्थिति में स्वाभाविक उत्तेजक-भोजन का लोप होने पर भी लार का स्राव हुआ)

नोट

पावलोव ने अपने सभी प्रयोग नियंत्रित दशाओं के अन्तर्गत किसी बाधा से मुक्त ध्वनिरोधी कक्ष में किये। पावलोव का अनुकूलित प्रत्यावर्तन का सिद्धान्त अधिगम के यांत्रिक उपागम पर आधारित है। पावलोव के उपर्युक्त प्रयोग तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि–"शास्त्रीय अनुकूलन एक प्रक्रिया है जिसमें अस्वाभाविक उत्तेजक स्वाभाविक उत्तेजक के साथ मिलकर उसकी सभी विशेषताओं को प्राप्त कर लेता है।" (Classical Conditioning may be defined as "A process in which an unnatural stimulus by pairing with a natural stimulus, acquires all the characteristics of natural stimulus).

पावलोव के प्रयोग में हम देखते हैं कि पहले घण्टी की ध्वनि पर लार का स्राव नहीं होता था, लार का स्राव भोजन प्रस्तुत करने पर ही होता था। तत्पश्चात् भोजन के साथ घण्टी की ध्वनि की जाती थी जिसकी अनुक्रिया में लार का स्राव होता था, इस स्राव का मापन किया जाता था। यह प्रयोग कई बार दुहराया गया और यह देखा गया कि घण्टी की ध्वनि और भोजन की प्रस्तुति एक साथ करने पर लार की मात्रा भी बढ़ने लगी और फिर केवल घंटी की ध्वनि की अनुक्रिया से स्रावित लार की मात्रा बढ़ने लगी। यहाँ स्पष्ट है कि सबलीकरण द्वारा एक अनुक्रिया अनुकूलित अथवा अनुबन्धित (Conditioned) होती है। यहाँ भोजन देने के पूर्व लार स्रावण क्रिया (Salivating Process) को मानसिक या कल्पना प्रसूत स्राव (Psychic Secretion) कह सकते हैं जो कि शास्त्रीय अनुकूलन (Classical Conditioning) का आधार है। पावलोव ने प्रत्यावर्तन (Reflex) को दो भागों में वर्गीकृत किया है–शारीरिक तथा मानसिक (Physiological and Psychic Reflexes)। मानसिक प्रत्यावर्तन क्रिया किसी विशेष अनुभव का ही परिणाम होती है। इसी को प्राय: अनुकूलित अथवा सम्बद्ध सहज क्रिया (Conditioned Reflex Action) कहते हैं। जब किसी परिस्थिति के साथ किसी अनुक्रिया (Response) को, जिनका पहले से कोई पारस्परिक सम्बन्ध नहीं होता, उसे संबद्ध किया जाता है तो उस स्थिति को अनुकूलन, सम्बन्धीकरण या सबलीकरण (Conditioning) कहा जाता है। इस प्रकार सम्बन्धीकरण एक साधारण क्रिया है। जिसमें एक उत्तेजक का दूसरे के साथ यांत्रिक स्थानापन्न (Mechanical Substitution) होता है। यद्यपि सहज क्रियाओं (Reflex Action) में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता, किन्तु उन्हें सम्बद्ध किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, उन्हें मूल उत्तेजक के अतिरिक्त एक अन्य उत्तेजक से भी प्रकाश में लाया जा सकता है, जैसे–भोजन को घण्टी के साथ सम्बद्ध कर लार के स्रावित होने की क्रिया।

इसी कारण पावलोव ने भोजन को भी अनुकूलित उत्तेजक कहा है। घण्टी की ध्वनि दो बातें प्रस्तुत करती हैं–प्रशिक्षण के प्रारम्भ में वह अनुकूलन उत्तेजक था क्योंकि इसका उपयोग लार अनुक्रिया को अनुकूलित करने के लिए किया गया था। जब अनुबन्धन या अनुकूलन हो गया तो इसे अनुकूलित या अनुबन्धित उत्तेजना कहा गया,क्योंकि इसमें एक प्रभाव था जो पहले इसमें नहीं था, अर्थात् लार स्राव अनुक्रिया को जाग्रत करना। अनुकूलन के बाद इसे अनुकूलित अनुक्रिया का नाम दिया गया क्योंकि अब वह घण्टी ध्वनि के प्रति अनुबन्धित हो गई थी। अनुबन्धित उत्तेजक(भोजन) और अनुबंधन उत्तेजक (घण्टी) को मिलाकर अनुबन्ध क्रिया कहा गया।

पावलोव ने सामान्य रूप में ऐसे उत्तेजक और अनुक्रिया को स्वाभाविक अनुक्रिया कहा है। भोजन को देखकर लार टपकाने की अनुक्रिया में भोजन को एक स्वाभविक उत्तेजक कहेंगे और लार स्राव को एक स्वाभविक अनुक्रिया। कभी–कभी स्वाभविक उत्तेजक की अनुक्रिया के समय वहाँ कुछ अन्य उत्तेजक, जिन्हें अस्वाभविक उत्तेजक कहते हैं, रहते हैं जैसे –भोजन के साथ उपस्थित व्यक्ति। इस सिद्धान्त के अनुसार जब कोई अन्य अस्वाभाविक उत्तेजक कई बार स्वाभाविक उत्तेजक के साथ प्रस्तुत होता है तो व्यक्ति उस अन्य अस्वाभाविक उत्तेजक (भोजन के उपस्थित व्यक्ति) के प्रति भी स्वाभविक अनुक्रिया करने लगता है। इस प्रकार के अनुबन्धन को उच्च श्रेणी अनुकूलन (Higher Order Conditioning) कहा जाता है।

क्या आप जानते हैं भोजन को देखकर लार टपकाने की अनुक्रिया में भोजन एक स्वाभाविक उत्तेजक है और लार स्राव एक स्वाभाविक अनुक्रिया।

नोट

उच्च श्रेणी अनुकूलन (Higher Order Conditioning)–पावलोव ने अपने प्रयोग को आगे बढ़ाते हुए पाया कि एक अस्वाभविक उत्तेजक के साथ किसी दूसरे अस्वाभाविक उत्तेजक को काल सामीप्य में प्रस्तुत करने पर दूसरा अस्वाभाविक उत्तेजक भी सबलीकरण का कार्य करता है। दूसरे अस्वभाविक उत्तेजक से स्वाभाविक अनुक्रिया जाग्रत करना ही उच्च श्रेणी का अनुकूलन है। पावलोव ने इस प्रयोग में, जब कुत्ते ने घण्टी की ध्वनि सुनकर लार स्राव प्रारम्भ कर दिया तो घण्टी के साथ दूसरे अस्वाभाविक उत्तेजक प्रकाश की किरणों को भी प्रस्तुत किया। ऐसा कई बार किया गया कुछ दिनों बाद देखा गया कुत्ते ने प्रकाश की किरण (दूसरा अस्वाभाविक उत्तेजक) देखकर लार टपकाया। इस प्रयोग में प्रकाश की किरण देखकर लार देखकर लार टपकाने की अनुक्रिया ही उच्च श्रेणी अनुकूलन है, क्योंकि प्रारम्भिक सबलन या स्वाभाविक उत्तेजक(भोजन) के साथ कभी भी दूसरे अस्वाभाविक उत्तेजक (प्रकाश की किरण) प्रस्तुत नहीं किया गया था।

उच्च श्रेणी अनुकूलन के अतिरिक्त पावलोव एवं उनके सहयोगियों ने कुत्ते पर अनेक प्रकार के प्रयोग किये तथा उनके निष्कर्षों के आधार पर और भी महत्त्वपूर्ण अवधारणाएँ प्रस्तुत कीं जो अनुकूलन अधिगम सिद्धान्त को और अधिक विस्तार प्रदान करते हैं। ये अवधारणाएँ निम्नलिखित हैं-

अनुकूलित उत्तेजना एवं अनानुकूलित उत्तेजना के मध्य सम्बन्ध (Temporal Relationship between Conditioned Stimulus and Unconditioned Stimulus)–कुत्ते पर किए गए प्रयोगों में पाया गया कि अनु० * उ०* (CS) और अना० * उ०* (UCS) के माध्य तभी सम्बन्ध स्थापित होता है जब कि एक निश्चित मात्रा में काल सामीप्य हो। पावलोव के प्रयोग मे CS तथा UCS में 5 सेकेण्ड की समीपता से अनुकूलन अधिगम देखा गया। काल समीपता की तीन स्थितियाँ हैं–

(अ) समकालिक अनुकूलन (Simultanious Conditioning)–जब अनुकूलित उत्तेजना (CS) तथा अनानुकूलित उत्तेजना (UCS) एक साथ प्रस्तुत किया जाये, जैसे-

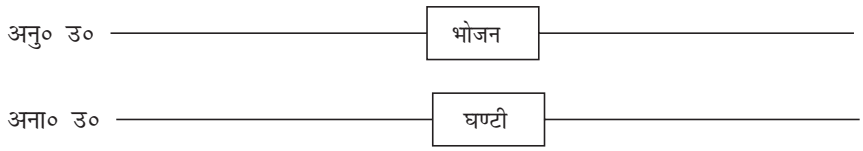

(ब) विलम्ब अनुकूलन (Delayed Conditioning)–जब अनुकूलित उत्तेजना प्रस्तुत करने के कुछ क्षण पश्चात् अनानुकूलित उत्तेजना प्रस्तुत की जाए, जैसे

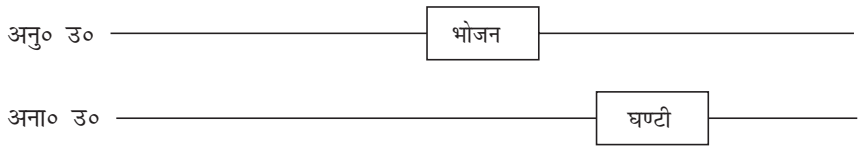

प्रयोगों में पाया गया कि विलम्ब अनुकूलित क्रिया सर्वाधिक प्रभावशाली होती है, इस काल सामीप्य में दोनों उत्तेजनाओं में शीघ्र सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

(स) अनुमार्गी अनुकूलन (Trace Conditioning)–जब अनुकूलित उत्तेजना के, विलम्ब अनुकूलन की स्थिति से, बहुत समय पश्चात् अनानुकूलित उत्तेजना प्रस्तुत की जाए, जैसे–

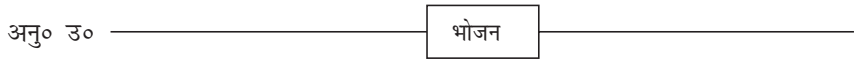

*अनु० = अनुकूलित, आन० = अनानुकूलित, उ० = उत्तेजना।

नोट

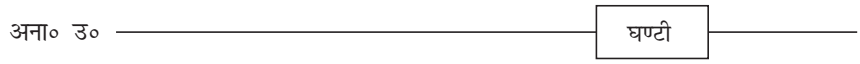

इस स्थिति में दोनों उत्तेजनाओं के मध्य यदि लम्बी काल दूरी होती है तो अनुकूलन दुष्कर हो जाता है।

(द) पृच्छोन्मुख अनुकूलन (Backward Conditioning)– पृच्छोन्मुख अनुकूलन वह स्थिति होती है जब कि अनानुकूलित उत्तेजना (UCS) अनुकूलित उत्तेजना (CS) से पूर्व प्रस्तुत की जाती है, जैसे–

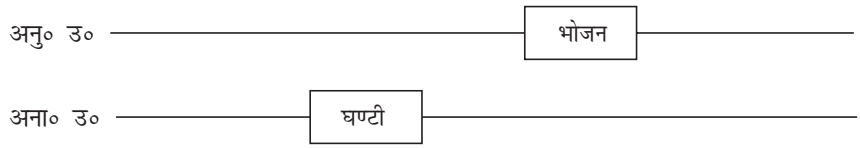

इस स्थिति में प्राय: अनुकूलन घटित नहीं हो पाता।

विलोपन (Extinetion)–पावलोव ने अपने आगे के प्रयोगों में अनुकूलित तथा अनानुकूलित उत्तेजनाओं को काल सामीप्य के आधार पर एक साथ प्रस्तुत करना बन्द कर दिया। अर्थात् केवल घण्टी बजाई जाती थी और भोजन नहीं प्रस्तुत किया जाता था जिससे कुछ दिनों के पश्चात् घण्टी की ध्वनि पर कुत्ते ने लार टपकाना बन्द कर दिया। इसे पावलोव ने विलोपन प्रक्रिया (Exinction) की संज्ञा दी है। केवल घण्टी की ध्वनि पर कुत्ते के लार स्राव का प्रत्येक प्रयास के पश्चात् मापन करने पर पाया गया कि लार की मात्रा बराबर कम होती गई। अत: विलोपन अनुकूलन के कार्य को समाप्त कर देता है और यह घण्टी की ध्वनि और लार-अनुक्रिया के साहचर्य को दुर्बल कर देता है, जिस प्रकार अनुकूलन उस साहचर्य को सबलित कर देता है।

तात्कालिक पुनराप्ति (Spontaneous Recovery)–विलोपन सम्बन्धी प्रयोगों के निरीक्षणों में देखा गया कि अनुकूलन पूर्णत: समाप्त नहीं हो जाता, बल्कि अनुकूलित प्रक्रिया में प्रतिरोधन क्षमता का विकास हो जाता है। **मॉर्गन एवं किंग** (Morgan and King) के अनुसार "विलोपन अनुकूलन द्वारा अधिगृहीत अनुक्रिया का प्रतिरोधन करने की अधिगम प्रक्रिया है।" (Extinction is a process of learining to inhibit the response acquired in conditioning.)

यदि उसी अनुकूलित और अनानुकूलित उत्तेजनाओं को पुन: कई बार प्रस्तुत किया जाए तो शीघ्र ही काल सामीप्य के आधार पर दोनों उत्तेजनाओं में सम्बन्ध स्थापित कर अनुकूलन स्थापित हो जाता है। जैसे कि एक घटना का ओझल हो जाने पर उसे विस्मृत और पुन: घटित होने पर स्मृत हो जाने की क्रिया। उदाहरण के लिए जब कुछ दिनों तक भोजन और घण्टी-ध्वनि साथ-साथ प्रस्तुत नहीं किए गये तो यह देखा गया कि केवल घण्टी की ध्वनि पर कुत्ते का लार स्राव बन्द हो जाता है- यह क्रिया विलोपन है। किन्तु पुन: भोजन और घण्टी-ध्वनि को काल सामीप्य में प्रस्तुत करने पर, कुत्ते ने केवल घण्टी की ध्वनि होने पर लार टपकाना प्रारम्भ कर दिया- यह क्रिया तात्कालिक पुनराप्ति है।

प्रतिरोधन (Inhibition)–प्रतिरोधन, अनुकूलन स्थापित करने की क्रिया में, वह प्रक्रिया है जिसमें कोई अन्य उत्तेजना अनुकूलित अनुक्रिया में प्रतिरोध उत्पन्न कर दे। प्रतिरोधन दो कारणों से हो सकता है- (क) आन्तरिक कारण- जिसमें कोई आन्तरिक प्रतिरोधक तत्व क्रियाशील होता है, तथा (ब) बाह्य कारण- जिसमें वातावरण का बाहरी कोई प्रतिरोधक तत्व क्रियाशील होता है।

सामान्यीकरण (Generalization)–सामान्यीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें अनुकूलित अनुक्रिया से सम्बन्धित उत्तेजना से मिलती जुलती उत्तेजना उसी के समान प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ यदि कुत्ता घण्टी की ध्वनि पर लार टपकाना सीख गया है तो वह मेट्रानोम की ध्वनि पर भी लार टपकाता है, क्योंकि घण्टी और मेट्रोनोम की ध्वनि मिलती-जुलती है।

नोट

सबलीकरण (Reinforcement)–अनुकूलन प्रक्रिया और विलोपन प्रक्रिया में जो अन्तर है वह घण्टी की ध्वनि के बाद अनुकूलित उत्तेजक (भोजन) के प्रस्तुत करने का है। इस अन्तर से स्पष्ट होता है कि साहचर्य दृढ़ (सबल) हो रहा है, या दुर्बल। अनुकूलित अनुक्रिया को बनाने के लिए **सबलीकरण** का होना आवश्यक है। पावलोव के प्रयोग से अधिगम के एक प्रसिद्ध सिद्धान्त **'सबलीकरण के सिद्धान्त'** का निर्माण हुआ। मनोवैज्ञानिक **स्किनर** और **हल** महोदय ने अधिगम के इसी पक्ष (प्रबल या सबलीकरण) पर जोर दिया है, इसलिए उनके सिद्धान्तों को सबलीकरण का सिद्धान्त कहा गया है।

अनुकूलित प्रत्यावर्तन द्वारा अधिगम (Learning by Conditioned Reflex)–अनुकूलित प्रत्यावर्तन द्वारा अधिगम को पावलोव के शास्त्रीय प्रयोगों द्वारा समझा जा सकता है जिसका उल्लेख पिछले पृष्ठों पर किया जा चुका है। यह अनुकूलित प्रर्त्यावर्तन द्वारा अधिगम का एक प्रारम्भिक एवं उपयुक्त उदाहरण है जिसे विद्यार्थियों को समझाने के लिए अवश्य निरूपित करना चाहिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सही विकल्प चुनिए–

1. 'अनुकूलित प्रत्यावर्तन' सिद्धांत के प्रणेता हैं–
   (क) थॉर्नडाइक (ख) कोहलर (ग) पावलोव
2. सन् 1904 में 'पाचन क्रिया' पर किए गए विशेष कार्यों हेतु नोबल पुरस्कार विजेता थे–
   (क) कोहलर (ख) पावलोव (ग) स्किनर
3. अधिगम से संबंधित पावलोव की रचना है–
   (क) एनीमल इंटेलिजेंस (Animal Intelligence)
   (ख) कंडीशन्ड रिफलेक्सेस (Corditional Reflexes)
   (ग) डायनमिक थ्योरीज (Dynamic Theories)

जी. एस. एंडरसन ने अनुकूलित प्रत्यावर्तन द्वारा अधिगम प्रक्रिया का उल्लेख इस प्रकार किया है- "अनुकूलित प्रत्यावर्तन अनुक्रिया में एक विशिष्ट उत्तेजक के फलस्वरूप जो अनुक्रिया साधारणत: होती है उसका चयन कर लिया जाता है कि यह उत्तेजक अनुक्रिया प्राणी की मूल प्रवृत्ति के कारण एक प्रकार का अधिगम है। इसके बाद मूल उत्तेजक के साथ एक नया उत्तेजक दिया जाता है और तब यह देखा जाता है कि इस नये उत्तेजक से भी वही अनुक्रिया होती है जो मूल उत्तेजक से होती थी। इस प्रकार अनुकूलित प्रत्यावर्तित अनुक्रिया द्वारा होने वाले अधिगम में अनुकुलित अनुक्रिया नये उत्तेजक के साथ अनुकूलित हो जाती है।"

इसी प्रकार व्यक्ति अनुकूलित प्रत्यावर्तन क्रिया द्वारा अधिगम करते हैं। बालकों में भय, घृणा, प्रेम तथा आदतों का कारण यह सम्बन्धीकरण होता है। उदाहरणार्थ- बालक का अंधेरे या जानवर से भयभीत होना स्वाभाविक नहीं है, बल्कि अस्वाभाविक उत्तेजकों से सम्बन्धित या अनुकूलित होने के कारण है। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक **वाटसन** (Watson) ने एक शिशु पर यह परीक्षण किया, जो जानवरों से नहीं डरता था और खरगोश के साथ खेलने से बड़ा प्रसन्न होता था। एक दिन जब वह खरगोश के साथ खेल रहा था तो एक डराने वाली ध्वनि की गई। इससे बालक डर गया। इस ध्वनि को जब वह खरगोश के साथ खेलता था तो कई बार दुहराया गया। कुछ दिनों के पश्चात् वह खरगोश को देखकर उस समय भी डरने लगा जबकि डरावनी ध्वनि नहीं की जाती थी।

नोट

अनुकूलित प्रत्यावर्तन सिद्धान्त का मूल्यांकन–अधिगम के उपर्युक्त सिद्धान्त पर अनुकूलित अनुक्रिया विधि आधारित है, जो कि आलोचना से परे नहीं है, क्योंकि कुछ मनोवैज्ञानिकों को यह सिद्धान्त इस रूप में आज मान्य नहीं है। इस सम्बन्ध में निम्नांकित विचार प्रस्तुत हैं–

(1) सम्बद्धीकरण द्वारा अधिगम केवल पशुओं में आसान है। मनुष्य आयु वृद्धि के साथ इस क्रिया के सहारे कम ही सीखता है। जटिल विषयों को सीखने में इसकी उपयोगिता नहीं है।

(2) सम्बद्धीकरण अथवा अनुकूलीकरण विशेष परिस्थितियों में ही सम्भव होता है। ये परिस्थितियाँ अस्वाभाविक होती हैं, जबकि अधिगम प्रायः स्वाभाविक परिस्थितियों में होता है।

(3) इस विधि में अधिगम स्थाई नहीं होता।

(4) यह विधि अभ्यास पर तथा एक प्रकार से प्रलोभन पर अधिक बल देती है। अस्वाभाविक उत्तेजक को बार-बार उपस्थित करके अधिगम की क्रिया यांत्रिक बन जाती है, जिसमें कोई नवीनता नहीं होती।

इससे यह स्पष्ट होता है कि यह विधि अथवा सिद्धान्त अधिगम की समुचित व्याख्या नहीं कर पाती किन्तु कुछ शिक्षा-मनोवैज्ञानिकों के अनुसार शिक्षा में इस विधि की अत्यधिक उपयोगिता है और शिक्षण में यह महत्त्वपूर्ण पद्धति है।

टास्क अनुकूलित प्रत्यावर्तन क्रिया द्वारा अधिगम की प्रक्रिया समझाइए।

9.2 शिक्षा में अनुकूलित प्रत्यावर्तन सिद्धान्त की उपयोगिता एवं महत्त्व (Utility and Importance of Conditioned Reflex Theory in Education)

अनुकूलित प्रत्यावर्तन क्रिया (Conditioned Reflex Action), सम्बद्ध प्रत्यावर्तन, अनुकूलित अनुक्रिया, सम्बद्ध अनुक्रिया अथवा सम्बन्धीकरण की क्रिया के नाम से विख्यात पावलोव द्वारा मुल रूप से प्रतिपादित अधिगम सिद्धान्त एवं विधि शिक्षा में बहुत उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है क्योंकि व्यक्ति के अधिगम का प्रारम्भ अपेक्षित अनुक्रिया करने के द्वारा होता है। शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में अनुकूलित प्रत्यावर्तन सिद्धान्त की उपयोगिता एवं महत्त्व पर निम्नलिखित रूप से प्रकाश डाला जा सकता है–

(1) बालकों की शिक्षा में सम्बद्धीकरण की क्रिया द्वारा अधिक लाभ उठाया जा सकता है। बाल्यावस्था में बहुत सी क्रियाएँ किसी विशेष वस्तु से सम्बद्ध हो जाती हैं और बड़े होने पर भी वह रहती हैं, उदाहरणार्थ- यदि बालक में किसी विशेष वस्तु या व्यक्ति के प्रति किसी कारणवश अरुचि, घृणा या भय उत्पन्न हो जाता है तो बड़े होने पर भी बालक उस प्रकार की वस्तु या व्यक्ति के प्रति उसी प्रकार की प्रतिक्रिया करता है। बालकों को सदैव अच्छी बातें सिखाने के लिए सम्बद्धीकरण का प्रयोग सतर्कता से करना चाहिए।

(2) यह विधि बुरी आदतों के निवारण, आचरण तथा व्यवहार बदलने में सहायता करती है।

(3) इस विधि की सहायता से भय सम्बन्धी मानसिक रोगों का उपचार किया जा सकता है।

(4) अनुशासन स्थापित करने के दण्ड एवं पुरस्कार के सिद्धान्त इसी विधि पर आधारित हैं।

(5) यह विधि बालकों के समाजीकरण में तथा वातारण में समायोजन करने में सहायता देती है।

(6) सामाजिक तथा असामान्य मनोविज्ञान के विद्वानों ने इस सिद्धान्त के आधार पर अनेक विषयों की व्याख्या की है। समूह निर्माण में तथा व्यक्ति के असामान्य व्यवहार की व्याख्या करने में इस सिद्धान्त से सहायता

नोट

ली जा सकती है। क्रो तथा क्रो का विचार है, "यह विधि उन विषयों की शिक्षा के लिए उपयोगी है, जिनमें चिन्तन की आवश्यकता नहीं होती, जैसे, सुलेख और अक्षर विन्यास।"

(7) यह अधिगम की स्वाभाविक विधि है। बालक को इस विधि से अधिगम का सदैव अवसर मिलता रहता है।

(8) शिक्षण से दृश्य-श्रव्य उपकरणों का जो प्रयोग किया जाता है, वह भी इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

(9) इस विधि की सहायता से घर तथा विद्यालय से होने वाली अधिगम की क्रियाओं को सरलतापूर्वक स्पष्ट किया जा सकता है।

(10) बालकों से अनुकूलन कार्य करने के लिए इस विधि का ठीक से प्रयोग करना चाहिए। इस विधि की शिक्षण-कार्य में बहुत उपयोगिता है।

नोट्स

स्किनर ने इस विधि के महत्त्व पर इन शब्दों में प्रकाश डाला है–"सम्बद्ध सहज क्रिया एक आधारभूत सिद्धान्त है, जिस पर अधिगम निर्भर रहता है।"

(11) **प्रो. एंडरसन** का विचार है कि–"अनुकूलित अनुक्रिया का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उसमें हमें एक ऐसी बुनियादी वैज्ञानिक आधार सामग्री प्राप्त हुई है जिससे हम अधिगम के एक सिद्धान्त का निर्माण कर सकते हैं।"

9.3 सारांश (Summary)

- पावलोव द्वारा किये गये कुत्ते पर प्रयोग के उदाहरण पर आधारित सिद्धान्त को **'शास्त्रीय अनुकूलन सिद्धान्त'** का नाम दिया गया है। इस सिद्धान्त के स्वरूप के आधार पर इसे 'अनुक्रियात्मक अनुबन्धन सिद्धान्त' का भी नाम दिया गया है। यहाँ मुख्य बात है पावलोव द्वारा कुत्ते पर प्रयोग करके उसके निष्कर्षों को अधिगम के क्षेत्र में मानव व्यवहार पर लागू करने का विचार व्यक्त करना।
- **एडवर्ड एल. थॉर्नडाइक** (Edward L. Thorndike) ने अपनी पुस्तक 'एनीमल इन्टेलीजेन्स' (Animal Intelligence), 1898 में प्रसिद्ध 'सम्बन्धवाद' (Connectionism) का प्रतिपादन किया। अधिगम मनोविज्ञान के क्षेत्र में 'सम्बंधवाद' का तात्पर्य है उद्दीपक के साथ अनुक्रिया का सम्बन्ध बनाना। सबंधवाद में उद्दीपक तथा अनुक्रिया के मध्य संबंध स्थापित किया जाता है। अत: इसे 'उद्दीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त' के नाम से जाना जाता है।

9.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **प्रत्यावर्तन**–वापस आना, लौट आना
2. **विलोपन**–भंग करना, अलग करना, नष्ट करना, लूटना, लुप्त करना।

9.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. पावलोव के 'अनुकूलित प्रत्यावर्तन' के सिद्धांत पर प्रकाश डालिए।
2. शिक्षा में अनुकूलित प्रत्यावर्तन सिद्धांत की उपयोगिता एवं महत्त्व समझाइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment) नोट

1. (ग) 2. (ख) 3. (ग) 4. (ख)

9.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
2. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.एच. सिन्हा और रचना शर्मा, अटलांटिक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।*
3. बच्चों में शिक्षा का महत्त्व एवं जानकारियाँ–*सीमा चोपड़ा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
4. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली*

नोट

इकाई 10: स्किनर का सक्रिय अनुकूलन सिद्धांत (Skinner's Operant Conditioning Theory)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

10.1 स्किनर का सक्रिय अनुकूलन सिद्धांत (Skinner's Operant Conditioning Theory)

10.2 सक्रिय अनुकूलन का शैक्षिक महत्त्व (Educational Importance of Conditioning Theory)

10.3 सारांश (Summary)

10.4 शब्दकोश (Keywords)

10.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

10.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- स्किनर के अधिगम संबंधी सक्रिय अनुकूलन सिद्धांत को समझने में।
- सक्रिय अनुकूलन सिद्धांत के शैक्षिक महत्त्व को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

किसी अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए व्याख्यात्मक कथन, जो मूर्त प्रयोगों के निष्कर्षों पर आधारित हो, को सिद्धांत की संज्ञा दी जा सकती है। अधिगम के घटित होने की स्थितियों का मनोवैज्ञानिकों ने निरीक्षण, विश्लेषण तथा संश्लेषण के आधार पर और प्रयोगों के द्वारा अध्ययन कर एक संगठित विचार प्रस्तुत किए हैं, यही अधिगम के सिद्धांत हैं। यहाँ स्किनर के सक्रिय अनुकूलन के सिद्धांत को विस्तार से बताया गया है।

10.1 स्किनर का सक्रिय अनुकूलन सिद्धान्त (Skinner's Operant Conditioning Theory)

'सक्रिय अनुकूलन' अधिगम की एक पद्धति है, जिसका विकास अमेरिकी मनोवैज्ञानिक **बी. एफ. स्किनर (B. F. Skinner)** ने किया। उनके अधिगम सम्बन्धी विचारों का प्रसार 1932 ई. के लगभग होने लगा था। उनकी दो पुस्तकें 'The behaviour of Organism' तथा 'Beyond Freedom and Dignity' प्रसिद्ध हैं।

व्यवहारिवादियों की श्रेणी में स्किनर का नाम प्रमुख रूप से जाना जाता है। **स्किनर** ने दो प्रकार के व्यवहारों का वर्णन किया है यथा–

नोट

व्यवहार के प्रकार

प्रतिक्रियात्मक व्यवहार (Respontent Behaviour)	**सक्रिय व्यवहार** (Operent Behaviour)

(1) प्रतिक्रियात्मक व्यवहार–इस प्रकार का व्यवहार उत्तेजना के नियंत्रण में रहता है। उदाहरण के लिए मुँह में भोजन देने से लार का स्रावित होना प्रतिक्रियात्मक व्यवहार है। पावलोव के प्रयोग से इस उदाहरण के अतिरिक्त प्रतिक्रियात्मक व्यवहार के अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं, जैसे- प्रकाश पड़ने से आँखों का बन्द होना, हाथ में पिन चुभने से हाथ का हट जाना। गर्म चीज पर हाथ पड़ने से हाथ का हटा लेना आदि।

(2) सक्रिय व्यवहार–इस प्रकार का व्यवहार उपर्युक्त से कुछ अलग होता है। यह व्यवहार उत्तेजना के प्रत्यक्ष नियंत्रण में नही होता है। इसमें प्रयोज्य की स्वेच्छा निहित होती है। जब तक व्यक्ति स्वेच्छा पूर्वक इस प्रकार के व्यवहार को करने के लिए तत्पर नहीं होगा, आपरेन्ट व्यवहार घटित नहीं होगा। उदाहरण के लिए स्किनर के प्रयोग में चुहे का व्यवहार आपरेन्ट है। इसी प्रकार घण्टी बजने पर दरवाजा खोलना या न खोलना किसी व्यक्ति की स्वेच्छा पर निर्भर करता है। अत: घण्टी बजने पर दरवाजा खोलने से सम्बन्धित व्यवहार आपरेन्ट व्यवहार है। स्किनर के प्रयोग में चूहा पुरस्कार प्राप्त करने के लिए लीवर को Operate करता है। इसी कारण इस प्रकार के अधिगम को नैमित्तिक अधिगम (Instrumental Conditioning) कहा जाता है।

अन्य व्यवहारवादियों के समान वह अधिगम को व्यवहार में होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया मानता था। उसने अधिगम का कारण अनुकूलन बताया, किन्तु उसके अनुकूलन की प्रक्रिया सर्वथा भिन्न रूप में है। वास्तव में उसने अपने अधिगम सिद्धान्त का प्रतिपादन करने से पूर्व पहले से किये गये अधिगम सम्बन्धी अध्यनों का ऐतिहासिक सर्वेक्षण किया और प्रत्यावर्तन (Reflex) के संप्रत्यय (Concept) का क्रियात्मक विश्लेषण किया। उसके अनुसार व्यक्ति के व्यवहार का मूल आधार उत्तेजक-अनुक्रिया सम्बन्धों का निरीक्षित सह-सम्बन्ध है। मानव-व्यवहार की व्याख्या करने में पूर्व मनोवैज्ञानिकों ने जिस सबलीकरण के संप्रत्यय (Concept) का प्रतिपादन किया था स्किनर ने उस 'सबलीकरण अनुसूची' (Schedules of Reinforcement) को और आगे बढ़ाया। उसने अपने एक आदर्शात्मक उपन्यास 'Walden Two' में एक ऐसे समाज के प्रारूप की कल्पना की है, जिसमें व्यक्ति के व्यवहार का रूप निर्धारण एवं नियंत्रण एक व्यवस्थित ढंग से पुरस्कार द्वारा किया जा सकता है।

स्किनर के अनुसार किसी प्रकार के व्यवहार के कारण को जानने के लिए हमें उसके पहले के वातावरण को भी देखना या उस पर विचार करना होगा। उदाहरणार्थ किशोर बालकों में अपराध प्रवृत्ति पर्यावरण की कुछ विशिष्टाओं के कारण उत्पन्न होती है। व्यवहार को परिवर्तित करने के लिए पर्यावरण से परिवर्तन आवश्यक है। स्किनर ने उत्सर्जित अनुक्रिया को प्रमुख माना है। उसने बाह्य निरीक्षण योग्य व्यवहार को ही मनोविज्ञान का मुख्य विषय माना है, क्योंकि उसे देखा, अनुमानित किया और मापा जा सकता है। अतएव इस व्यवहार की वैज्ञानिक ढंग से जाँच की जा सकती है। व्यक्ति का व्यवहार अधिगम के नियमों द्वारा नियंत्रित और रूपान्तरित किया जा सकता है। स्किनर ने दो प्रकार के व्यवहार बताए हैं–उद्दीपन प्रसूत व्यवहार तथा क्रिया प्रसूत व्यवहार। जो अनुक्रियाएँ ज्ञात उत्तेजकों के कारण होती हैं या उनसे उत्पन्न होती हैं वे उद्दीपन प्रसूत कहलाती हैं। क्रिया प्रसूत अनुक्रियाओं का किसी ज्ञात उत्तेजक से सम्बन्धित होना आवश्यक है (ये उत्सर्जित प्रतिक्रियाएँ होती हैं) उद्दीपन प्रसूत और क्रिया प्रसूत अनुक्रियाएँ दो प्रकार के अनुबन्धन (Conditioning) से सम्बन्धित होती हैं, जिन्हें हम S प्रकार तथा R प्रकार

नोट

कहते हैं। S प्रकार के अनुबन्धन का सम्बन्ध उद्दीपन प्रसूत व्यवहार से इसलिए होता है क्योंकि सबलीकरण का सम्बन्ध उत्तेजक से होता है। यह पावलोव के सिद्धान्त से स्पष्ट किया जा चुका है। S प्रकार में अनुकूलित उत्तेजक (घण्टी की ध्वनि) अनानुकूलित उत्तेजक (भोजन) के साथ प्रस्तुत किया गया है जो अनानुकूलित उत्तेजक के गुण (लार स्राव) प्राप्त कर लेता है। R प्रकार का अनुकूलन वह है जिसे क्रिया प्रसूत अनुकूलन कहा जाता है। क्रिया प्रसूत अनुकूलन को ही सक्रिय अनुकूलन (Operant Conditioning) के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ सक्रिय अनुकूलन नाम का ही प्रयोग किया गया है।

कुछ मनोवैज्ञानिक सक्रिय अनुकूलन (Operant Conditioning) को नैमित्तिक अधिगम (Instrumental Learning) अथवा नैमित्तिक अनुकूलन (Instrumental Conditioning) भी कहते हैं, क्योंकि इसमें ऐसी अनुक्रिया का अधिगम होता है जिसमें कुछ निष्पन्न प्राप्त होता है। यह भोजन की प्राप्ति में, दु:ख या दण्ड के निवारण में अथवा लक्ष्य की प्राप्ति में निमित्त या साधन रूप है। अत: कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसका हिन्दी रूपान्तरण 'साधन अनुकूलन' भी किया है। पावलोव के शास्त्रीय अनुकूलन से कुछ निष्पन्न नहीं होता, उसमें केवल एक अनुक्रिया का उद्दीपन से साहचर्य स्थापित होता है।

नोट्स कभी-कभी नैमित्तिक अधिगम में सन्निहित व्यवहार को 'परिचालक व्यवहार' कहा जाता है, क्योंकि यह पर्यावरण का परिचालन करता है।

नैमित्तिक अनुकूलन (Instrumental Conditioning)

स्किनर बक्सा (Skinner's Box)– प्रयोग, जिसका उल्लेख आगे किया गया है, नैमित्तिक अधिगम और वास्तव में व्यक्ति के अधिकांश अधिगम के बुनियादी लक्षणों को स्पष्ट करता है। प्राणी सर्वप्रथम, किसी अभिप्रेरणा से प्रेरित होता है। अभिप्रेरणा सामान्य समन्वेषी क्रिया के मध्य एक ऐसी अनुक्रिया घटित होती है, जो उपयुक्त लक्ष्य की उपलब्धि में साधन या निमित्त रूप होती है। इस प्रकार किसी विशेष लक्ष्य की प्राप्ति के निमित्त जो अधिगम होता है वह नैमित्तिक कहलाता है।

पावलोव के शास्त्रीय अनुकूलन (Classical Conditioning) के ही समान नैमित्तिक अधिगम के लिए भी सबलीकरण एक अनिवार्य तत्व है। सक्रिय अनुकूलन में शास्त्रीय अनुकूलन के सभी तत्व पाए जाते हैं। फिर भी दोनों में कुछ अन्तर है। पावलोव के शास्त्रीय अनुकूलन सिद्धान्त में कुत्ता मेज में बांधा गया था और कोई क्रिया नहीं करता था। स्किनर के प्रयोग में प्रयोज्य (चूहे) क्रियाशील रहते हैं। इसीलिए इस सिद्धान्त को सक्रिय (जो क्रिया मूलक या क्रिया से उत्पन्न हैं) सिद्धान्त कहा गया है। प्राणी सक्रिय रहते हुए निमित्ति की सम्प्राप्ति करता है और वह निमित्ति कराने वाली क्रिया को बार-बार कर उसे सबलित करता है। यह नाम इस बात पर आधारित है कि प्राणी अपने पर्यावरण में किसी सबलीकरण या पुरस्कार को प्राप्त करने के लिए क्रिया करता है। सबलीकरण उस लक्ष्य की प्राप्ति है, जो अभिप्रेरणा को सन्तुष्टि दे सकता है, जैसे- 'स्किनर-बाक्स' में भूखे-चूहे का भोजन प्राप्त करना सबलीकरण था। स्किनर, जिसने क्रिया प्रसूत अथवा सक्रिय (Operant) शब्द का प्रयोग किया है, के अनुसार-व्यवहार पर्यावरण के प्रति किसी परिणाम की उत्पत्ति के लिए क्रिया करना है, जैसे- भोजन, पानी या किसी पुरस्कार की प्राप्ति। इससे स्पष्ट है नैमित्तिक अधिगम या अनुकूलन का नाम सक्रिय अनुकूलन सिद्धान्त (Operant Conditioning Theory) का व्यावहारिक पक्ष है।

स्किनर के सिद्धान्त में 'सक्रिय' (Operant) मुख्य विचार है, अत: इसे समझना आवश्यक है।

नोट

सक्रिय (Operant) **का अर्थ**–स्किनर के सिद्धान्त में 'सक्रिय' (Operant) का अर्थ है क्रिया प्रसूत अनुक्रिया या अनुक्रियाओं का समूह जिससे प्राणी किसी लक्ष्य की प्राप्ति करता है अथवा उसे कुछ सम्प्राप्ति होती है। यह ऐसा अधिगम व्यवहार है जो कुछ परिणाम या पुरस्कार प्राप्ति का साधन बनता है। प्रोफेसर **के. पी. पाण्डेय** ने 'सक्रिय' की परिभाषा निम्नलिखित रूप में दी है–

"एक 'सक्रिय' को तकनीकी रूप से अनुक्रियाओं के समूह अथवा क्रियाओं के एक सेट, जो समान परिणामों से नियंत्रित होते हैं, के रूप में परिभाषित किया जाता है।" (An operant is technically defined as a group of responsee or set of acts which are controlled by similar consequences.)

प्रोफेसर एस. एस. चौहान ने 'सक्रिय' को निम्नवत् परिभाषित किया है–

"शब्द, 'सक्रिय' इस तथ्य पर बल देता है कि व्यवहार अपने स्वयं का परिणाम उत्पन्न करने के लिए पर्यावरण पर क्रियाशील रहता है।" (The term operant, emphasizes the fact that behaviour operates upon the environment to generate its own consequences.)

उपर्युक्त विचारों से यह निष्कर्ष निकलता है कि 'सक्रिय' एक प्रकार का व्यवहार ही होता है किन्तु यह व्यवहार अपने पूर्व के उद्दीपक से नियंत्रित नहीं होता। 'सक्रिय व्यवहार' (Operant behaviour) की विशेषता यह है कि यह पर्यावरण पर क्रियाशील रहता है और परिणाम उत्पन्न करता है। स्किनर के अनुसार सक्रिय व्यवहार प्राणी द्वारा उत्सर्जित होता है न कि उद्दीपक द्वारा प्रकाशित (उत्पन्न)। उसने प्रतिक्रिया शब्द का प्रयोग 'सक्रिय' के लिए ही किया है।

स्किनर ने S प्रकार के अनुकूलन के स्थान पर R प्रकार के अनुकूलन की अवधारणा को प्रस्तुत किया है जिसका अभिप्राय है अनुक्रिया का परिणाम सम्प्राप्ति के साथ सम्बद्धन या अनुकूलन। इसी से 'सक्रिय अनुकूलन'का सिद्धान्त बना। अत: अब 'सक्रिय अनुकूलन' की अवधारणा को भी समझ लेना चाहिए। सक्रिय अनुकूलन की अवधारणा निम्नलिखित है–

सक्रिय अनुकूलन (Operant Conditioning)

सक्रिय अनुकूलन को पावलोव के शास्त्रीय अनुकूलन के परिप्रेक्ष्य में सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। शास्त्रीय अनुकूलन में हमने देखा कि भोजन (एक उद्दीपक) के साथ घण्टी की ध्वनि (दूसरा उद्दीपक) अनुबन्धित अथवा अनुकूलित कर दी गयी। यह S प्रकार का अनुकूलन है जिसमें अनुक्रिया का सम्बन्ध S (Stimulus) से होता है। उ0- अनु0 (S-R) सिद्धान्त जिसे पावलोव, थार्नडाईक और वाटसन ने विकसित किया, के आगे बढ़कर स्किनर ने थॉर्नडाइक के उ0- अनु0 अनुबन्ध (S-R Bond) में व्यक्त अनुक्रिया (Respones) का अनुकूलन संप्राप्ति या पुरस्कार से किया जिससे एक अधिगम अनुक्रिया का सबलीकरण होता है। इसीलिए स्किनर का सिद्धान्त उ0- अनु0 अनुकूलन सबलीकरण के साथ (S-R Conditioning with Reinforcement) भी कहलाता है। इससे स्पष्ट होता है कि स्किनर के सिद्धान्त पर थॉर्नडाइक के 'प्रभाव के नियम' का प्रभाव पड़ा है क्योंकि उसका पुरस्कार थॉर्नडाइक के 'सुख या सन्तोष प्राप्त करने के अप्रत्यक्ष सबलीकरण' के समान है। प्राणी अनुक्रियाओं के द्वारा कुछ सुखद प्राप्त करना चाहता है, ये अनुक्रियाएँ 'सम्प्राप्ति' का साधन बन जाती हैं। साधन अनुक्रियाएँ प्राणी को परिणाम प्राप्त करने के लिए सक्रिय या गतिशील या क्रियाशील (Operant) बनाए रखती हैं। यही सक्रिय अनुकूलन (Operant Conditioning) है। चूँकि यह अनुकूलन अनुक्रिया (R) पर आधारित है। इसलिए यह R प्रकार अनुकूलन है। निम्नलिखित कथनों से सक्रिय अनुकूलन की अवधारणा और भी स्पष्ट हो जायेगी–

स्किनर–"व्यवहार प्राणी या उसके अंग की किसी सन्दर्भ में गति है, यह गति या तो प्राणी में स्वयं निहित होती है अथवा किसी बाहरी उद्देश्य या शक्ति के क्षेत्र में आती है।" (Behaviour is the movement of an

नोट

organism or of it part in a frame of reference provided by the organism itself.)

"सक्रिय अनुकूलन एक अधिगम प्रक्रिया है, जिनके द्वारा अधिगम अनुक्रिया को अधिक सम्भाव्य एवं अधिक बारम्बारी बनाया जाता है।" (Operant conditioning is the learning process where by a response is made more probable or more frequent.)

पाण्डेय–"एक सक्रिय अनुकूलन एक प्रक्रिया है जिसमें एक प्राणी का व्यवहार एक उत्पन्न होने के बजाय उत्सर्जित होता है और अधिक सम्भावित होने या सम्भाव्य या बारम्बारी रूप में घटित होने के अर्थ में सबलीकरण के द्वारा सुदृढ़ होता है।" (An operant conditioning is process in which the behaviour of an organism is an emitted rather than elicited one (operant behaviouar) and is strengthend, in the sense of becoming more likely or probable or frequent to occur, through reinforcement.)

सक्रिय अनुकूलन की प्रक्रिया को प्रदर्शित करने के लिए स्किनर ने चूहों तथा कबूतरों पर अनेक प्रयोग किये। उनके एक प्रमुख प्रयोग के द्वारा सक्रिय अनुकूलन सिद्धान्त को समझा जा सकता है।

चित्र 10.1

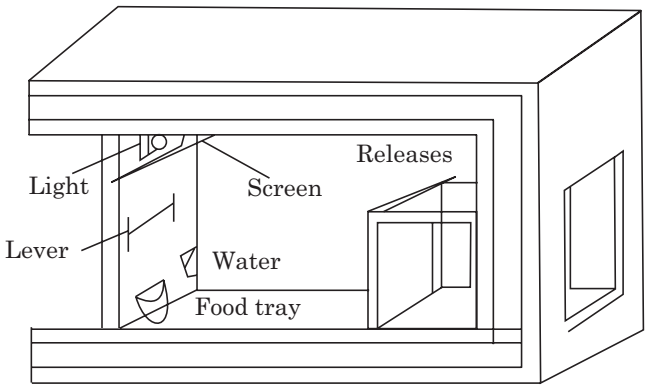

स्किनर का प्रयोग

स्किनर द्वारा चूहों पर किया गया एक प्रयोग निम्नलिखित है–

स्किनर ने प्रयोग हेतु एक बक्सा तैयार किया जिसे Skinner's Box कहते हैं। इस बक्से में एक लीवर लगा था जिसे एक प्याली से सम्बन्धित किया गया था तथा लीवर के पास चूहे को अन्दर करने के लिए एक छेद बना था। लीवर के दबने से 'खट' की आवाज होती थी और प्याली में खाना आ जाता था। इस बक्से में एक सफेद भूखा चूहा लीवर के पास बने मार्ग से अन्दर किया जाता है। चूहा इधर-उधर घूमता, उछलता-कूदता है। स्वाभाविक रूप से चूहे से लीवर दब जाता है जिससे खट की आवाज के साथ प्याली में खाना आ जाता है और चूहा खाना खा लेता है। स्वाभाविक रूप से एक बार फिर लीवर दब जाता है और खट की आवाज के साथ खाना आ जाता है जिसे वह फिर खा लेता है। बाद में, कई बार लीवर दब कर खाना मिल जाने पर देखा गया कि चूहा लीवर के आसपास ही रहने लगा और लीवर दबाकर प्याली में आए खाने को खाकर आराम से बैठ जाता है। इस प्रयोग की पुनरावृत्ति के पश्चात् स्किनर ने देखा कि भूख लगने पर चूहा लीवर को बार-बार दबाने लगा। इससे उसने यह निष्कर्ष निकाला कि "यदि किसी क्रिया के पश्चात् ही कोई बल प्रदान करने वाला उद्दीपक प्राप्त हो जाता है तो उस क्रिया की शक्ति में वृद्धि हो जाती है।"

नोट

स्किनर अपने प्रयोग में यह नहीं देखता कि लीवर किस परिस्थिति में दब जाता है, बल्कि वह लीवर दबाने की अनुक्रिया की घटना को देखता है। इस अनुक्रिया को वह उत्सर्जित अनुक्रिया (Emitted Response) मानता है। **मनोवैज्ञानिक स्टीफेन्स** के अनुसार इस सिद्धान्त को इस प्रकार समझा जा सकता है– "जिस प्रकार के अधिगम में ऐसी उत्सर्जित अनुक्रियाएँ निहित हैं उसकी व्याख्या के लिए स्किनर का सुझाव है कि, जिस किसी अनुक्रिया से सबलीकरण होता है वही सबल होगी। यह उक्त अनुक्रिया की सामान्य प्रवृत्ति है जो सबल होती है अर्थात् यह अनुक्रिया ही अधिक सबल होती है न कि कोई विशेष S-R प्रवृत्ति या बन्धन। चूहा लीवर दबाता है और खाना प्राप्त करता है। इस कारण चूहे की लीवर दबाने की सम्भावना बढ़ जाती है। इस अनुक्रिया का प्रबलन हो जाता है और चूहा कभी-कभी खाना समाप्त हो जाने पर भी लीवर दबाता रहता है।"

स्किनर के इस प्रयोग के वर्णन से स्पष्ट है कि चूहे को पुरस्कार (भोजन) या पुनर्बलन कुछ क्रियाएँ करने के लिए प्रेरित करती हैं। चूहे का बार-बार प्रयत्न करना पुनर्बलन के कारण होता है। इस प्रयोग से यह भी स्पष्ट है कि अधिगम एक क्रमिक प्रक्रिया है जो प्रयासों के साथ-साथ बढ़ती और अधिक शक्तिशाली होती जाती है।

दूसरा प्रयोग उन्होंने कबूतरों पर किया। कबूतरों पर प्रयोग करने के लिए स्किनर ने एक अन्य विशेष संयन्त्र का उपयोग किया जिसे कबूतर पेटिका (Pigeon Box) कहा जाता है। कबूतरों के साथ किए जाने वाले अपने इस प्रयोग में स्किनर ने यह लक्ष्य सामने रखा कि कबूतर दाहिनी ओर एक पूरा चक्कर लगाकर एक सुनिश्चित स्थान पर चोंच मारना सीख जाए। इस प्रयोग में कबूतर पेटिका में बन्द भूखे कबूतर ने जैसे ही दाहिनी ओर घूमकर सुनिश्चित स्थान पर चोंच मारी, उसे अनाज का एक दाना प्राप्त हुआ। इस दाने द्वारा कबूतर को अपने ही व्यवहार की पुनरावृत्ति के लिए पुनर्बलन प्राप्त हुआ और उसने फिर दाहिनी ओर घूमकर चोंच मारने की अनुक्रिया की। परिणामस्वरूप उसे फिर अनाज का एक दाना प्राप्त हुआ। इस प्रकार धीरे-धीरे कबूतर ने दाहिनी ओर सिर घुमाकर चोंच मारने की क्रिया द्वारा दाना (भोजन) प्राप्त करने का ढंग सीख लिया।

अपने इसी प्रकार के प्रयोगों द्वारा स्किनर ने अधिगम के क्षेत्र में एक नए सिद्धान्त अनुबन्धन को जन्म दिया। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि हमारे सीखने सम्बन्धी व्यवहार को सक्रिय अनुबन्धन (Operant Conditioning) संचालित करता है। हमारा व्यवहार और अनुक्रिया बहुत कुछ सीमा तक सक्रिय व्यवहार का ही रूप होती है।

स्किनर अपने प्रयोग मे सबलीकरण को बहुत महत्त्व देता है जिस पर उसका अधिगम सिद्धांत आधारित है। अत: सबलीकरण की अवधारणा समझना आवश्यक है।

क्या आप जानते हैं स्किनर ने सक्रिय अनुकूलन की प्रक्रिया को प्रदर्शित करने के लिए चूहों तथा कबूतरों पर अनेक प्रयोग किए।

सबलीकरण की अवधारणा (Concept of Reinforcement)

अधिगम में अनुक्रियाओं पर जो प्रभाव पड़ता है उसकी व्याख्या के लिए स्किनर सबलीकरण की अवधारणा का आश्रय लेता है। उसके अनुसार जो भी अनुक्रिया सबलीकरण तक पहुँचाएगी वही सुदृढ़ होगी। सबलीकरण उ0 अनु0 अनुबन्ध (S-R Bond) की सृदृढ़ता नहीं है, इसमें मुख्य भूमिका उत्सर्जित अनुक्रियाओं की और प्रत्येक सबलीकरण से अनुक्रियाओं के एक भण्डार (reserve) की संरचना होती है। सबलीकरण की प्रक्रिया सबलीकरण तत्वों के आधार पर घटित होती है, जैसे लीवर दबाने से खाना मिलना। खाना मिलना सबलीकारक है और लीवर दबाने की अनुक्रिया की शक्ति का बढ़ना सबलीकरण है। **हलसे, डीसे तथा एडिथ** (Hulse, Deese & Edeth) ने सबलीकरण की परिभाषा निम्नलिखित रूप से दी है–

नोट

"एक सबलीकारक एक उद्दीपक घटना है जो कि यदि यह एक अनुक्रिया के साथ उचित काल सम्बन्ध में घटित होता है तो, यह एक अनुक्रिया या एक उ0- अनु0 सम्बन्ध की शक्ति बढ़ाने या अनुरक्षण करने की ओर प्रवृत्त होता है।" (A reinforcement is a stimulus event which if it the proper temporal relation with a response, tends to maintain or to increase the strength of a response or of a stimulus response connection.)

सबलीकरण के प्रकार (Types of Reinforcement)–सबलीकरण के प्रकारों को दो वर्गों में रखा जा सकता है–

(अ) वर्ग में (1) धनात्मक सबलीकरण (Positive Reinforcement)

(2) ऋणात्मक सबलीकरण (Negative Reinforcement)

(ब) वर्ग में (1) प्राथमिक सबलीकरण (Primary Reinforcement)

(2) द्वैतीयक सबलीकरण (Secondary Reinforcement)

धनात्मक सबलीकरण–धनात्मक सबलीकरण में सबलीकारक वे उद्दीपक (Stimulus) होते है, जिनकी उपस्थिति से अनुक्रिया शक्ति बढ़ती है। जैसे- भूखे व्यक्ति के लिए भोजन धनात्मक सबलीकारक है। धनात्मक सबलीकारण में प्राणी कुछ पाने के लिए कुछ अनुक्रिया करता है। इसे S^+ से चिह्नित किया जाता है।

ऋणात्मक सबलीकरण–ऋणात्मक सबलीकरण में सबलीकारक वे उद्दीपक होते हैं, जिनकी अनुपस्थिति से अनुक्रिया शक्ति बढ़ती है। जैसे- यदि बालक कुत्ते के डर से भोजन नहीं करता और कुत्ते हो हटा लेने पर वह भोजन करने लगता है तो इस स्थिति में कुत्ते की अनुपस्थिति ऋणात्मक सबलीकरण है। इसे S^- से चिह्नित किया जाता है।

प्राय: दण्ड (Punishment) को ऋणात्मक सबलीकरण समझ लिया जाता है, किन्तु दोनों में अन्तर है। ऋणात्मक सबलीकारक अपनी अनुपस्थिति से किसी अनुक्रिया की शक्ति बढ़ाता है, जबकि दण्ड किसी अनुक्रिया की शक्ति को कमजोर करता है। दण्ड एक अनुक्रिया के घटित होने की सम्भावना को घटा देता है।

प्राथमिक सबलीकरण–प्राथमिक सबलीकरण में एक सबलीकारक वह उद्दीपक होता है जो उपस्थित किये जाने पर कोई अनुक्रिया शक्तिशाली बनाता है और इसका सम्बन्ध शारीरिक आवश्यक व्यवस्था जैसे–भूख, प्यास, काम और सुरक्षा के साथ स्थापित किया जाता है। उदाहणार्थ, चूहा लीवर दबाकर खाना प्राप्त कर लेता है।

द्वैतीयक सबलीकरण–द्वैतीयक सबलीकरण में सबलीकारक वे उद्दीपक होते हैं जो प्राथमिक सबलीकारक के साथ लगातार उपस्थित होने के कारण अनुक्रिया को सबल बनाने की शक्ति प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् द्वितीयक सबलीकारक के उद्दीपक होते हैं जिनमें स्वयं में सबलीकरण करने की क्षमता नहीं होती किन्तु प्राथमिक सबलीकारक के साथ जुड़ कर सबलीकरण करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। उदाहरणार्थ प्राथमिक सबलीकारक भोजन के साथ एक ध्वनि की जाए जो बिना भोजन के ध्वनि भी अनुक्रिया का सबलीकरण करने लगे। इसे अनुकूलित सबलीकारक भी कहते हैं।

सबलीकरण एक निश्चित योजना बनाकर किया जाता है। अत: इसके लिए एक अनुसूची बनाई जाती है जिसे सबलीकरण की अनुसूची (Schedules of Reinforcement) कहते हैं। इसका संक्षिप्त रूप निम्नलिखित है–

टास्क सबलीकरण की प्रक्रिया में सबलीकारक के प्रभावों का उल्लेख कीजिए।

सबलीकरण की अनुसूची (Schedules of Reinforcement) नोट

सबलीकरण प्रदान करने की प्रक्रिया अनुकूलन कहलाती है जिसे निरन्तर योजना बनाकर दिया जा सकता है। इस निरन्तर योजना को सबलीकरण की अनुसूचियाँ कहा जाता है। नियोजित सबलीकरण की अनुसूचियों द्वारा व्यवहार को अपेक्षित लक्ष्य के अनुसार ढाला जा सकता है। **फेर्स्टर तथा स्किनर** (Ferster and Skinner) ने सक्रिय अनुकूलन के प्रयोगों में प्रयुक्त सोलह विभिन्न सबलीकरण की अनुसूचियों का उल्लेख किया है। मोटे तौर से सबलीकरण की अनुसूचियाँ दो प्रकार से बनाई जाती हैं–

(क) निरन्तर अनुसूची (Continuous or Non-Intermittent Schedules)–जिसमें प्रत्येक उत्सर्जित अनुक्रिया सबलीकृत की जाती है और अनुक्रिया के सबलीकृत न होने पर विलोपन (Extinction) होता है।

(ख) आंशिक अनुसूची (Partial or Intermittent Schedules)–जिसमें सबलीकरण के द्वारा अनुक्रिया का केवल आंशिक अनुसरण किया जाता है।

उपर्युक्त अनुसूचियों के आधार पर निम्नलिखित चार प्रकार की अनुसूचियों का निर्माण किया जा सकता है–

(1) निश्चित अनुपात अनुसूची (Fixed-ratio schedule)–इसे संक्षेप में FR कहते हैं। इसमें व्यक्ति कई निश्चित अनुक्रिया के पश्चात् एक अनुक्रिया के लिए सबलीकृत किया जाता है। जैसे- प्रत्येक 5 अनुक्रिया के बाद 1 अनुक्रिया का सबलीकरण। यहाँ अनुपात 5 : 1 का है।

(2) परिवर्त्य अनुपात अनुसूची (Variable-Ratio Schedule)–इसे संक्षेप में VR कहते हैं। अनुसूची की इस व्यावस्था में सबलीकरण के लिए अपेक्षित अनुक्रिया की संख्या किसी औसत अनुपात में परिवर्तित हो जाती है। जैसे- एक बार चौथी अनुक्रिया को सबलीकृत किया तो दूसरी बार छठी और तीसरी बार पहली अनुक्रिया को सबलीकृत किया जाए।

(3) निश्चित समयान्तर अनुसूची (Fixed-Interval schedule)–इसे संक्षेप में FI कहते हैं। इसमें अनुक्रिया का सबलीकरण एक निश्चित समयान्तराल पर किया जाता है। जैसे प्रत्येक पाँच मिनट के बाद सबलीकरण करना।

(4) परिवर्त्य-समयान्तर अनुसूची (Variable-Interval Schedule)–इसे संक्षेप में VI कहते हैं। इसमें अनुक्रिया का सबलीकरण परिवर्तनशील समयान्तराल पर किया जाता है। जैसे कभी 2 मिनट, कभी 5 मिनट तो कभी 8 मिनट के बाद किसी अनुक्रिया को सबलीकृत करना।

सबलीकारक के प्रभाव–सबलीकरण की प्रक्रिया में सबलीकारकों के निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं–

(1) व्यवहार को सशक्त बनाना,

(2) किसी व्यवहार के घटित होने देने के लिए पक्षों की निश्चित सघनता,

(3) व्यवहार में शीघ्र परिवर्तन होता है, परिवर्तित व्यवहार एक समय तक स्थिर रहता है तथा आगामी सबलीकरण के अभाव में परिवर्तित व्यवहार कमजोर पड़ जाता है और शनैः-शनैः समाप्त प्रायः हो जाता है।

सबलीकरण सिद्धान्त का शिक्षा में प्रयोग–शिक्षा में सबलीकरण सिद्धान्त के निम्नलिखित प्रयोग हैं–

(1) इस सिद्धान्त का शिक्षण में बहुत उपयोग है क्योंकि यह बालकों की क्रियाशीलता पर बल देता है।

(2) यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि प्राप्य वस्तु को सम्प्राप्ति या पुरस्कार से सम्बन्धित कर पढ़ाया जाना चाहिए।

(3) इस सिद्धान्त को अपनाने से बालकों को सदा के लिए परिणाम की तृप्ति हेतु तत्पर किया जा सकता है।

(4) बालकों को शिक्षा देने में पुरस्कार देने तथा प्रशंसा करने का स्थान बढ़ा है।

(5) इस सिद्धान्त के प्रभाव से शिक्षण-विधियों को उनकी आवश्यकतानुसार परिवर्तित करके अध्ययन के प्रति उनकी रुचि जाग्रत की जा सकती है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

दिए गए कथन के सामने सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाएँ–

1. स्किनर ने अपने सिद्धांत को प्रदर्शित करने के लिए वनमानुषों पर प्रयोग किए। ☐
2. स्किनर ने बाह्य निरीक्षण योग्य व्यवहार को ही मनोविज्ञान का मुख्य विषय माना है, क्योंकि उसे देखा अनुमानित किया और मापा जा सकता है। ☐
3. सक्रिय अनुकूलन को नैमित्तिक अनुकूलन कहना असंगत है। ☐
4. स्किनर ने अपने प्रयोग चूहों और कबूतरों पर किए। ☐

10.2 सक्रिय अनुकूलन का शैक्षिक महत्त्व (Educational Importance of Conditioning Theory)

शिक्षा में सक्रिय अनुकूलन सिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस सिद्धान्त का प्रयोग कक्षा-शिक्षण में विभिन्न विषयों के अध्यापन में किया जाता है। स्किनर द्वारा प्रतिपादित शिक्षण मशीनों में पूर्व नियोजित निर्देशों का प्रयोग अधिगम के इसी सिद्धान्त पर आधारित है। शिक्षण मशीन में फ्रेम (Sets of Frams) में तैयार किये गये कथन क्रमानुसार प्रस्तुत किये जाते है। विद्यार्थी जब मशीन के यंत्र को दबाता है तो सही उत्तर उसके सामने आ जाता है। यह सबलीकरण धनात्मक या ऋणात्मक हो सकता है। सही उत्तर अधिगम को पुष्ट कर देता है और वह आगे अधि गम के लिए अनुप्रेरित हो जाता है और इस प्रकार सही उत्तर का सबलीकरण हो जाता है। प्रोग्राम अधिगम (Programmed Learning) इसी सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें विद्यार्थी स्वयं अपना सबलीकरण सही उत्तर पाकर करता है। स्किनर के इस सिद्धान्त के शैक्षिक महत्त्व के सम्बन्ध में निम्नलिखित बाते कही जा सकती हैं–

(1) माता-पिता एवं शिक्षक इस सिद्धान्त की सहायता से बालकों में वांछित व्यवहार का विकास कर सकते है। वांछित व्यवहार के सबलीकरण से बालकों को प्रोत्साहन मिलता है। कक्षा में शिक्षक वांछित क्रिया का सबलीकरण मुस्कान, प्रशंसा या अधिक अंक देकर कर सकता है।

(2) बालकों के अच्छे व्यवहार, गृह कार्य या अन्य सफलता प्राप्त करने का सबलीकरण तुरन्त पुरस्कार देकर करना चाहिए।

(3) विद्यालय के विभिन्न क्रिया-कलापों में बालकों की आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

(4) यह सिद्धान्त अभिप्रेरणा पर भी बल देता है, इसलिए कक्षा में पढ़ाई जाने वाली विषय वस्तु का उद्देश्य स्पष्ट करके, उन्हें अधिगम के लिए सदैव प्रेरित करना चाहिए।

(5) बालकों के गलत व्यवहार में सुधार लाने हेतु इस सिद्धान्त का उपयोग किया जा सकता है।

(6) बालकों के सामाजिक अधिगम, समायोजन तथा कौशल विकास में सबलीकरण का सिद्धान्त सहायक हो सकता है।

10.3 सारांश (Summary)

- 'सक्रिय अनुकूलन' अधिगम की एक पद्धति है, जिसका विकास अमेरिका मनोवैज्ञानिक **बी. एफ. स्किनर (B. F. Skinner)** ने किया। उनके अधिगम सम्बन्धी विचारों का प्रसार 1932 के लगभग होने लगा था। उनकी दो पुस्तकें 'The behaviour of Organism' तथा 'Beyond Freedom and Dignity' प्रसिद्ध हैं। व्यवहारिवादियों की श्रेणी में स्किनर का नाम प्रमुख रूप से जाना जाता है। **स्किनर** ने दो प्रकार के व्यवहारों का वर्णन किया है

नोट

- प्रतिक्रियात्मक व्यवहार उत्तेजना के नियंत्रण में रहता है। उदाहरण के लिए मुँह में भोजन देने से लार का स्रावित होना प्रतिक्रियात्मक व्यवहार है।
- सक्रिय व्यवहार उत्तेजना के प्रत्यक्ष नियंत्रण में नही होता है। इसमें प्रयोज्य की स्वेच्छा निहित होती है। जब तक व्यक्ति स्वेच्छा पूर्वक इस प्रकार के व्यवहार को करने के लिए तत्पर नहीं होगा, आपरेन्ट व्यवहार घटित नहीं होगा। उदाहरण के लिए स्किनर के प्रयोग में चुहे का व्यवहार आपरेन्ट है। इसी प्रकार घण्टी बजने पर दरवाजा खोलना या न खोलना किसी व्यक्ति की स्वेछा पर निर्भर करता है। अत: घण्टी बजने पर दरवाजा खोलने से सम्बन्धित व्यवहार आपरेन्ट व्यवहार है।
- 'सक्रिय अनुकूलन' अधिगम की एक पद्धति है, जिसका विकास अमेरिकी मनोवैज्ञानिक **बी. एफ. स्किनर** (B. F. Skinner) ने किया। **स्किनर** ने दो प्रकार के व्यवहारों का वर्णन किया है यथा–प्रतिक्रियात्मक व्यवहार, सक्रिय व्यवहार।
- व्यक्ति के व्यवहार का मूल आधार उत्तेजक-अनुक्रिया सम्बन्धों का निरीक्षित सह-सम्बन्ध है। मानव-व्यवहार की व्याख्या करने में पूर्व मनोवैज्ञानिकों ने जिस सबलीकरण के संप्रत्यय (Concept) का प्रतिपादन किया था स्किनर ने उस 'सबलीकरण अनुसूची' को और आगे बढ़ाया। उसने अपने एक आदर्शात्मक उपन्यास 'Walden Two' में एक ऐसे समाज के प्रारूप की कल्पना की है, जिसमें व्यक्ति के व्यवहार का रूप निर्धारण एवं नियंत्रण एक व्यवस्थित ढंग से पुरस्कार द्वारा किया जा सकता है।

10.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **अनुकूलन**–परिस्थिति के अनुसार ढालना।
2. **सबलीकरण**–मजबूती प्रदान करना।

10.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. पावलोव के 'अनुकूलित प्रत्यावर्तन' के सिद्धांत पर प्रकाश डालिए।
2. 'सक्रिय अनुकूलन' सिद्धांत की शिक्षा में उपयोगिता समझाइए।

उत्तर: स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (×) 2. (✓) 3. (×) 4. (✓)

10.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
2. मनोविज्ञान–*डॉ. सरयू प्रसाद, आगरा बुक स्टोर, आगरा।*
3. मनोविज्ञान–*मानव व्यवहार का अध्ययन–ब्रजकुमार मिश्र, पी.एच.आई. लर्निंग, नई दिल्ली।*
4. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 11: कोहलर का सूझ सिद्धांत (Kohler's Insight Theory)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

11.1 कोहलर का सूझ सिद्धान्त (Kohler's Insight Theory)

11.2 कोहलर के सूझ सिद्धांत का शैक्षिक महत्त्व (Educational Importance of Kohler's Insight Theory)

11.3 सारांश (Summary)

11.4 शब्दकोश (Keywords)

11.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

11.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अधिगम संबंधी कोहलर के सूझ के सिद्धांत को समझने में।
- कोहलर के 'सूझ सिद्धांत' के शैक्षिक महत्त्व को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

कोहलर का सूझ सिद्धान्त गेस्टाल्टवादी विचारों पर आधारित है। कोहलर स्वयं गेस्टाल्टवाद को विकसित करने वालों में एक विशिष्ट मनोवैज्ञानिक था। गेस्टाल्टवाद का प्रमुख प्रणेता मैक्सवर्दीमर (Max Wertheimer) है। कोहलर के सूझ सिद्धान्त को समझने के लिए गेस्टाल्टवाद के विचार को समझना आवश्यक है। गेस्टाल्ट (Gestalt) का अर्थ है पूर्णाकार। गेस्टाल्टवाद से तात्पर्य है आकृति को पूर्ण रूप या समग्र रूप में प्रत्यक्षीकरण करने का विचार। **वर्दीमर** के शब्दों में- "किसी भी पूर्णाकृति की विशेषताएँ केवल इसके वैयक्तिक तत्वों द्वारा नहीं अपितु इसके आन्तरिक संगठन या प्रकृति द्वारा निश्चित होती है।" गेस्टाल्ट विचारधारा के अन्तर्गत यह माना जाता है कि किसी वस्तु के आकार को छोटे-छोटे टुकड़ों में न देखकर उसे पूर्ण रूप में देखा जाता है जिसका कारण यह है कि सम्पूर्ण अंगों की अपेक्षा बड़ा होता है और प्रत्यक्षीकरण के प्रतिरूप के प्रति की गई प्रतिक्रिया वातावरण में स्थित सम्पूर्ण उत्तेजक दशाओं पर निर्भर रहती है, हम किसी नई बात को नवीन समग्राकृति की रचना करके सीखते हैं। यह संगठन-पुनर्गठन की क्रिया अपनी अनुक्रिया में होने वाले परिवर्तनों के रूप में व्यक्त होती है, जिन्हें अधिगम कहते हैं। गेस्टाल्टवादियों के अधिगम सम्बन्धी विचार निम्नलिखित हैं–

नोट

गेस्टाल्टवादियों के अनुसार अधिगम–गेस्टाल्टवाद, जो कि जर्मनी के मनोवैज्ञानकों (वर्दीमर, कोफ्का तथा कोहलर) द्वारा बौद्धिक आन्दोलन चलाने के फलस्वरूप विकसित हुआ। यह प्रमुख रूप से प्रत्यक्षीकरण से सम्बन्धित था, किन्तु बाद में इसके विस्तार में अधिगम मनोविज्ञान भी आ गया। गेस्टाल्ट सिद्धान्त साहचर्य सिद्धांत की प्रतिक्रिया स्वरूप विकसित हुआ। इसके अनुसार व्यक्ति किसी वस्तु को आंशिक रूप से समग्र या पूर्ण रूप को सीखता है, अर्थात् सीखने के लिए हम जो कुछ देखते-सुनते, अनुभव करते हैं उसकी समग्र आकृति इतनी बड़ी है और उसके विभिन्न अंगों को मिला देने पर वस्तु का एक बड़ा आकार मालूम होता है। गेस्टाल्टवादयों के अनुसार–"एक गेस्टाल्ट या आकृति पूर्ण होती है, जिसकी विशिष्टताएँ पूर्णता की आन्तरिक प्रकृति द्वारा निर्धारित होती हैं, न कि उसके वैयक्तिक तत्वों की विशेषताओं द्वारा।" (A Gestalt of form is whole characteristics are determined not by characteristics of its individual elements, but by the internal nature of the whole.)

अधिगम में व्यक्ति सम्पूर्ण परिस्थिति को अपनी दृष्टि में रखता है तब समस्या का हल ढूंढ़ पाता है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत अधिगम की क्रिया में सफलता प्राप्त करने के लिए या समस्या के समाधान में सूझ (अन्तर्दृष्टि) विद्यमान रहती है।

क्या आप जानते हैं सूझ के द्वारा अधिगम का विचार, अधिगम मनोविज्ञान के क्षेत्र में पावलोव के अनुकूलित प्रत्यावर्तन, थॉर्नडाइक के उद्दीपक-अनुक्रिया अनुबन्ध तथा स्किनर के सक्रिय अनुकूलन के सिद्धान्त का विकल्प है।

गेस्टाल्टवादी स्मृति-चिह्नों की बात करते हैं, ये स्मृति चिह्न संगठित समग्र होते हैं। ये स्मृति चिह्न एक परिस्थिति से दूसरी में परिवर्तित होते रहते हैं, ये परिवर्तन विचार या समयान्तराल के द्वारा भी हो सकते हैं। जिस प्रकार से ये पुनर्संगठित होते हैं उनका सम्बन्ध गेस्टाल्ट अधिगम से है। प्रमुख गेस्टाल्टवादी कोहलर ने अधिगम के सूझ सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, जिसके सम्बन्ध में प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं–

11.1 कोहलर का सूझ सिद्धान्त (Kohler's Insight Theory)

जर्मनी निवासी **उल्फगंग कोहलर** (Wolfgang Kohler) को एक संस्था "Prussian Academy of Sciences ने 1913 में मानव शास्त्रीय अध्ययन के लिए कैनारी द्वीप में स्थित टेनेरिफ (Teneriffe) में भेजा, जहाँ उसने प्रथम विश्व य ुद्ध प्रारम्भ होने की दशा में निर्जन हुए स्थान में वनमानुषों (Apes or Chipanzees) पर व्यापक रूप से अध्ययन किया। इस अध्ययन को उसने अपनी पुस्तक 'mentality of Apes' (1925) में प्रस्तुत किया है। इसी पुस्तक में उसने सूझ के सिद्धान्त का प्रतिपादन वनमानुषों पर अनेक प्रयोगों के परिणामों के आधार पर किया है। उसके सिद्धान्त का मुख्य तत्व सूझ है। अत: सूझ का अर्थ समझना आवश्यक है।

सूझ का अर्थ–जब किसी समस्या का निराकरण करते समय अचानक ही कोई हल दिमाग में आता है, तब प्रत्यक्षीकरण में तीव्र गति से होने वाला परिवर्तन सूझ कहलाता है। अधिगम के सन्दर्भ में सूझ सम्पूर्ण परिस्थिति की पकड़ है। सूझ वास्तव में परिस्थिति को एक संगठित समग्र के रूप में देखने में निहित होती है। अधिगम मनोविज्ञान में हम देखते हैं कि प्राणी प्रयास एवं त्रुटि के द्वारा अधिगम करता है या दूसरों के प्रयासों का अनुकरण करके अधिगम करता है। किन्तु कुछ ऐसे भी कार्य होते हैं जिन्हें प्राणी एकाएक बिना किसी के बताए अपनी तरकीब से सीख जाता है। यही एकाएक तरकीब सूझ है जिसके द्वारा प्राणी अधिगम करता है। **गुड** (Good) के अनुसार–"अन्तर्दृष्टि या सूझ वास्तविक स्थिति का आकस्मिक, निश्चित और तात्कालिक ज्ञान है।"

कोहलर के अनुसार, "एक से अधिक तकनीकी अर्थ में सूझ का अर्थ किसी समस्या के समाधान को एकाएक पकड़ लेना है जिससे एक ऐसी प्रक्रिया प्रारम्भ होती है जो परिस्थिति के अनुसार चलती है और समस्या का समाधान

नोट

प्रत्यक्ष ज्ञान के क्षेत्र संख्या के सन्दर्भ में लाता है।" उसका कहना है कि परिस्थिति की वास्तविक संरचना निरीक्षण हेतु ऊपर और खुली हुई होनी चाहिए।"

सूझ द्वारा अधिगम (Learning by Insight)–कोहलर के अनुसार व्यक्ति प्रयास एवं त्रुटि के द्वारा नहीं सीखता, बल्कि पहले वह अपनी मानसिक शक्ति और बुद्धि के द्वारा समस्यापूर्ण परिस्थिति का प्रत्यक्ष निरीक्षण करता है, तब किसी प्रकार की प्रतिक्रिया करता है। अधिगम की प्रक्रिया समग्र परिस्थिति के सविकल्प प्रत्यक्षीकरण के आधार पर घटित होती है। जब कोई प्राणी नई परिस्थिति में आता है, तब वह परिस्थिति के विभिन्न तत्वों या वस्तुओं के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है और परिस्थिति को भली-भाँति समझ कर अनुकूल प्रतिक्रिया करता है। समग्र परिस्थिति का समझ में आना तथा फिर प्रतिक्रिया करना सूझ का परिचायक है। इसीलिए इसे सूझ, जिसे हम अन्तर्दृष्टि का भी नाम देते हैं, द्वारा अधिगम कहते हैं।

नोट्स

सूझ की क्षमता मनुष्यों एवं पशुओं में पाई जाती है। सूझ का सम्बन्ध बुद्धि, चिन्तन और कल्पना से है। इस विधि से सीखने में मानसिक प्रयास किए जाते हैं।

सूझ द्वारा अधिगम की विशेषताएँ–सूझ द्वारा अधिगम की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) सूझ द्वारा अधिगम में व्यक्ति सर्वप्रथम समग्र परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण करता है और समस्या एवं परिस्थिति में सम्बन्ध स्थापित करता है।

(2) समस्या और परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण के पश्चात् कुछ प्रयास करने के पश्चात् एकाएक समाधान प्राप्त करता है, यद्यपि कि उसे प्रयास एवं त्रुटि के व्यवहार की अवधि के बाद ही सफलता मिलती है, किन्तु यह व्यवहार केवल निरर्थक प्रयास एवं त्रुटि के रूप में न होकर उद्देश्यपूर्ण, निश्चित एवं समस्या समाधान का प्रत्यक्ष प्रयास होता है।

(3) समस्या समाधान का प्रत्येक प्रयास एक दूसरे से सम्बन्धित होता है और पूर्ण व्यवहार को संगठित तथा परिवर्तित करने में सहायक होता है।

(4) कुछ प्रयासों के पश्चात् व्यक्ति में एकाएक समाधान की सूझ आ जाती है।

(5) सूझ के आने के पहले अधिगमी असहाय मालूम होता है किन्तु एक बार समस्या का समाधान सूझ द्वारा खोज लेने पर वह दक्ष हो जाता है। इस प्रकार सूझ द्वारा अधिगम असहायता से दक्षता की ओर होता है।

(6) सूझ द्वारा सीखी गयी दक्षता दोहराई जा सकती है तथा नई परिस्थिति में उस अधिगम का स्थानान्तरण भी होता है। व्यक्ति में समाधान की उच्च स्तर की धारणा और समझ के कारण अच्छे स्थानान्तरण की क्षमता आ जाती है।

(7) सूझ समझ पर आधारित होती है जिसका सम्बन्ध बौद्धिक स्तर से है। निम्न श्रेणी में प्राणियों की अपेक्षा उच्च श्रेणी के प्राणियों में अधिक सूझ दिखाई देती है।

(8) सूझ के द्वारा अधिगम पर आयु का भी प्रभाव पड़ता है।

(9) सूझ द्वारा अधिगम पर अनुभव का प्रभाव पड़ता है किन्तु अधिक अनुभव होने से सूझ का अधिक होना निश्चित नहीं है।

टास्क

गेस्टाल्ट सिद्धांत किस सिद्धांत की प्रतिक्रिया स्वरूप विकसित हुआ?

नोट

कोहलर के प्रयोग

कोहलर के प्रयोगों द्वारा उसके सूझ के सिद्धान्त को स्पष्टतया समझा जा सकता है। उसने टेनेरिफ द्वीप में वनमानुषों पर कई प्रयोग किए। छः भूखे वनमानुषों को एक लकड़ी के कटघरे में रखकर कोहलर ने प्रयोग प्रारम्भ किया। उन वनमानुषों में एक सबसे अधिक बुद्धिमान था जिसका नाम कोहलर ने 'सुल्तान' रखा और अधिकांश प्रयोग उसने 'सुल्तान' पर किए। अधिगम के लिए कोहलर ने 'सुल्तान' के सामने दो प्रकार की समस्याएँ प्रस्तुत कीं। छड़ी समस्या तथा बक्सा समस्या।

छड़ी समस्या सम्बन्धी प्रयोग–एक वनमानुष को एक कटघरे में बंद करके उसके पास एक नुकीली छड़ी रख दी तथा कटघरे के बाहर केले रखे गये जो कि हाथ फैलाकर नहीं पाया जा सकता था। केला पाने के लिए वनमानुष ने पहले हाथ पैर फैला कर केला पाने का प्रयास किया किन्तु वह केला न प्राप्त कर सका। थोड़ी देर बाद उसने कटघरे में पड़ी छड़ी को उठाया और उसके सहारे केले खींच लिए। केला प्राप्त कर वह सन्तुष्ट हो गया। छड़ियों को जोड़कर वनमानुष ने केला प्राप्त कर लिया, यह उसकी सूझ का ही परिणाम था।

इसके पश्चात् कोहलर ने कटघरे में दो छड़ियाँ रखीं जो एक दूसरे में फिट होकर लम्बी हो सकती थीं। कटघरे के बाहर अधिक दूरी पर केले रखे गये। भूखे वनमानुष ने पुनः हाथ निकालकर केला प्राप्त करना चाहा किन्तु असफल होने पर एक छड़ी के द्वारा केला प्राप्त करने का प्रयास किया- इससे भी वह सफल नहीं हो सका। तब वह दोनों छड़ियों से खेलने लगा तो एकाएक छड़ी का सिरा दूसरी छड़ी में फिट हो गया। एक छड़ी से दूसरी छड़ी जुड़कर लम्बी हो गई जिससे पहले की तरह वह केला खींचकर पाने में सफल हो गया। दूसरे दिन फिर वनमानुष को उसी स्थिति में रखा गया तो देखा गया कि बिना अधिक समय लगाए छड़ियों को जोड़कर शीघ्र केले को खींच लिया। वनमानुष को यह सूझ एकाएक मिली। सूझ मिलने के पहले वनमानुष ने कटघरे की स्थिति, केले की दूरी, छड़ी की लम्बाई आदि में सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया और सूझ द्वारा समस्या का समाधान करके लक्ष्य की प्राप्ति की।

चित्र 11.1

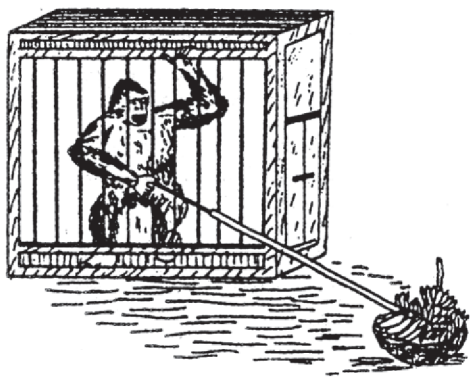

बक्सा समस्या सम्बन्धी प्रयोग–बक्से सम्बन्धी प्रयोग में कोहलर ने 'सुल्तान' को एक कटघरे में रखा। कटघरे की छत से केले का गुच्छा लटकाया गया तथा कटघरे में एक लकड़ी का बक्सा रखा गया। केले उसकी पहुँच से ऊपर थे। पहले वनमानुष ने उछल-कूद कर केले प्राप्त करने का प्रयास किया किन्तु वह सफल नहीं हुआ। थोड़ी देर कटघरे में वह इधर-उधर घूमता रहा और बक्से को भी देखता रहा। एकाएक उसने बक्से को खींचकर लटके केले के नीचे रखा और बक्से पर चढ़कर केले प्राप्त करने में वह सफल हो गया।

नोट

चित्र 11.2. बाक्स सम्बन्धी प्रयोग

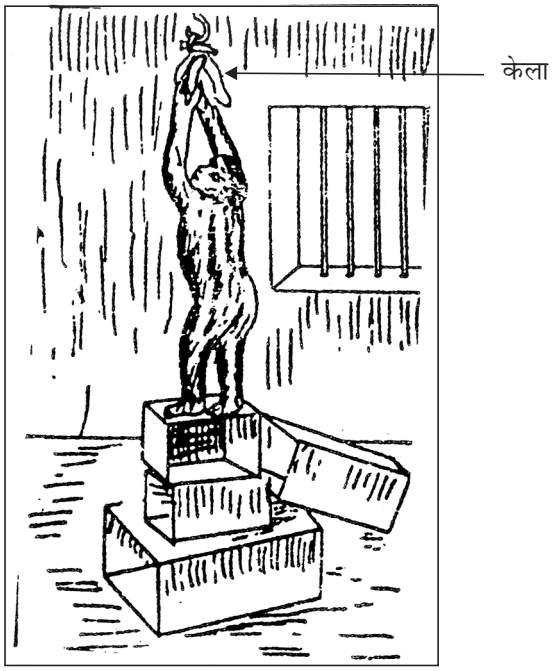

दूसरे दिन फिर भूखे वनमानुष को कटघरे में रखा गया किन्तु इस बार केले अधिक ऊँचाई पर थे और कटघरे में दो बक्से थे। थोड़ी देर इधर-उधर घूमने के पश्चात् फिर वह बक्से के पास आया और एक बक्सा को खींचकर केले के नीचे लाया और उस पर खड़ा होकर केले को पकड़ना चाहा किन्तु वह केले तक नहीं पहुँच सका तब उसने पहले बक्से के ऊपर दूसरे बक्से को भी रख दिया और उस पर चढ़ कर केला प्राप्त कर लिया। यहाँ वनमानुष ने एक बक्से तथा दूसरे बक्से में सम्बन्ध स्थापित किया। इसी प्रकार तीन बक्से एक दूसरे पर रखकर भी वनमानुष ने केला प्राप्त करना सीख लिया था।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान की पूर्ति करें–

1. कोहलर का सूझ का सिद्धांत ..... विचारों पर आधारित है।
2. कोहलर के अधिगम सिद्धांत को ..... का सिद्धांत कहते हैं।
3. कोहलर ने अपने प्रयोग ..... पर किए।
4. कोहलर ने अपने चिंपाजी का नाम ..... रखा था।

प्रयोगों से निष्कर्ष–कोहलर के उपर्युक्त प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकलता है कि सूझ के सिद्धान्त के अनुसार किसी कार्य के अधिगम की क्रिया मस्तिष्क के दो स्तरों पर होती है–

(1) प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक स्तर पर अधिगम (Learning at Perceptual Level)

(2) प्रत्ययात्मक स्तर पर अधिगम (Learning at Conceptual level)

नोट

प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक स्तर पर प्राणी ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से समग्र परिस्थिति का प्रत्यक्ष ज्ञान होने पर प्रतिक्रिया करता है, तब वह सीखता है। मनुष्य सूझ से युक्त विचारशील और विवेकशील होता है। अत: वह समस्यापूर्ण स्थिति का समग्र रूप से प्रत्यक्षीकरण करता है और सूझ से अपनी समस्या का समाधान शीघ्र निकाल लेता है। हम कह सकते हैं कि कोहलर ने बक्से सम्बन्धी प्रयोग में अधिगम की क्रिया प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक स्तर पर हुई।

प्रत्यात्मक स्तर पर अधिगम की क्रिया में मस्तिष्क तब सहायता करता है जब किसी के सामने जटिल परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और उसे शारीरिक क्षमताओं के साथ बुद्धि का सहारा लेना पड़ता है। कोहलर का छड़ी सम्बन्धी प्रयोग इसी ओर संकेत करता है।

सूझ उत्पन्न करने के सहायक कारक–उपर्युक्त प्रयोगों के निष्कर्षों से यह ज्ञात होता है कि सूझ उत्पन्न करने वाले सहायक कारक निम्नलिखित हैं–

(1) समग्र परिस्थिति तथा समस्या का प्रत्यक्षीकरण–सम्पूर्ण बातों का अध्ययन करने के बाद पूर्ण परिस्थिति या अवयवी (Whole) का ज्ञान हो जाता है।

(2) बुद्धि–तीव्र बुद्धि वालों में सूझ की क्षमता अधिक होती है और कम बुद्धि वालों में कम क्षमता पाई जाती है।

(3) प्रयास एवं त्रुटि–प्रयास एवं त्रुटि करने की क्रिया में एकाएक सूझ उत्पन्न हो जाती है।

(4) अनुभव–इस सिद्धान्त के अनुसार अधिगम में अनुभवों का स्थानान्तरण होता रहता है। यह अनुभव संगठित होकर गेस्टाल्ट या अवयवी का रूप धारण कर लेते हैं जैसा कि वनमानुष ने केले को प्राप्त करने के लिए एक बक्स पर चढ़कर उसे प्राप्त करने में जब कई असफल प्रयास किये और फिर सफल न हुआ तो उस बक्स पर दूसरा बक्स रखकर सफलता प्राप्त कर लिया है। इसी प्रकार व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण, प्रयास एवं त्रुटि तथा गत समग्र अनुभवों के आधार पर नियम बनाता है और अनुभवों के संगठित होने पर गेस्टाल्ट बन जाते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सूझ द्वारा अधिगम उच्च कोटि का होता है क्योंकि इसमें मानसिक प्रयास किया जाता है और बुद्धि तथा कल्पना का प्रयोग होता है। इसमें व्यक्ति उच्च बौद्धिक स्तर पर स्थिति का अवलोकन करके समस्या को समग्र रूप में समझकर प्रतिक्रिया कर अधिगम करता है। यहाँ पर यह कहना भी उचित है कि सूझ द्वारा अधिगम विधि में प्रयास एवं त्रुटि द्वारा अधिगम की विधि छिपी हुई है। समस्या को सुलझाने में केवल सूझ ही काम नहीं करती बल्कि सोचना-विचारना और प्रयास करना पड़ता है, उदाहरणार्थ गणित के प्रश्न हल करते समय प्रयास एवं सूझ दोनों कार्य करते हैं तब सही हल निकलता है।

'प्रयास एवं त्रुटि' 'सूझ' अधिगम विधि में अन्तर–संक्षेप में, इन दोनों अधिगम विधियों में निम्नलिखित अन्तर पाया जाता है–

(1) प्रयास एंव त्रुटि विधि शारीरिक स्तर पर आधारित होने के कारण शारीरिक कुशलता (Motor Skill) पर अधिक बल देती है जबकि सूझ द्वारा अधिगम में मस्तिष्क के प्रयोग पर या बौद्धिक-कुशलता पर अधिक बल दिया जाता है।

(2) प्रयास एवं त्रुटि विधि का सभी प्रयोग कर सकते हैं किन्तु सूझ विधि का प्रयोग करने के लिए सामान्य बौद्धिक स्तर की आवश्यकता होती है।

(3) प्रयास एवं त्रुटि विधि अभ्यास, प्रेरणा तथा संवेदन पर विशेष रूप से निर्भर है, जबकि सूझ विधि प्रत्यक्षीकरण पर निर्भर है।

नोट

(4) प्रयास एवं त्रुटि विधि अभ्यास और परिश्रम पर निर्भर है, जबकि सूझ विधि में समस्या का हल एकाएक प्राप्त होता है।

(5) प्रयास एंव त्रुटि विधि में प्रत्येक बार नई समस्या पर नये सिरे प्रयास करना पड़ता है, जबकि सूझ-विधि से अभ्यास के अभाव में भी समस्याएँ सुलझ जाती हैं।

(6) प्रयास एवं त्रुटि विधि में व्यक्ति का ध्यान सदा लक्ष्य की ओर रहता है, जबकि सूझ-विधि में अचेतन मस्तिष्क अधिक सक्रिय रहता है- चेतन क्रियाएँ कम होती हैं।

(7) प्रयास एवं त्रुटि विधि में दक्षता (Mastery) धीरे-धीरे आती है, जबकि सूझ विधि में दक्षता एकाएक मिल जाती है।

(8) प्रयास एवं त्रुटि विधि का प्रयोग किसी दक्षता को क्रमबद्ध ढंग से सीखने में उपयोगी होता है, जबकि किसी समस्या के समाधान में सूझ विधि का प्रयोग अधिक उपयोगी होता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार प्रयास एवं त्रुटि विधि सभी स्तर के अधिगम में सहायता नहीं कर सकती, उसी प्रकार सूझ विधि पूर्ण रूप से दोष रहित नहीं है। वास्तव में अधिगम में परिस्थितियों के अनुसार दोनों विधियों का उपयोग करना चाहिए।

11.2 कोहलर के सूझ सिद्धान्त का शैक्षिक महत्त्व (Educational Importance of Kohler's Insight Theory)

गेस्टाल्टवाद और सूझ के सिद्धान्त का शिक्षा में निम्नलिखित महत्त्व है–

(1) यह विधि बालकों की कल्पना, तर्क, विचार-शक्ति के विकास के लिए उचित अवसर प्रदान करती है।

(2) यह विधि रचानात्मक कार्यों में अधिक सहायता दे सकती है।

(3) इस विधि द्वारा बालक स्वयं खोजकर ज्ञान अर्जित करने के लिए तत्पर रहता है। उसे किसी विशेष परिस्थितियों में जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसे वह सामान्यीकरण (Generalization) द्वारा उचित ढंग से मष्तिष्क में व्यवस्थित कर लेता है और यही क्रिया उसे अधिगम में सहायता देती है। उदाहरणार्थ- हरे कच्चे आमों को खाने के बाद बालक आमों के बारे में यह सामान्यीकरण कर लेता है कि सभी हरे कच्चे आम खट्टे होते हैं।

(4) यह विधि कठिन विषयों, जैसे- गणित, विज्ञान आदि के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। गणित का नया प्रश्न हल करने में वह अपनी सूझ द्वारा सूत्रों या तरीकों का प्रयोग करता है।

(5) शिक्षा के उच्च स्तर सूझ विधि ही अनुसंधान कार्य में अधिक उपयोगी तथा आवश्यक है।

(6) **क्रो** तथा **क्रो** के अनुसार,-"यह विधि कला, संगीत और साहित्य की शिक्षा में अधिक उपयोगी है।"

(7) शिक्षक को विद्यार्थी के सामने समस्या को पूर्ण रूप से प्रस्तुत करना चाहिए। जैसे– बीजगणित में पूरी समस्या प्रस्तुत की जाए, उसके खण्ड या सूत्र (Formula) ही नहीं।

(8) अध्यापक इस विधि के सफल प्रयोग के लिए तत्परता के नियम को ध्यान में रखते हुए विद्यार्थी को अधिगम की परिस्थितियों को ग्रहण करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

(9) इस विधि द्वारा अधिगम के लिए अध्यापक को, विद्यार्थी को तब तक प्रोत्साहित करते रहना चाहिए, जब तक सूझ के द्वारा समस्या का हल न निकल आए। अध्यापक के प्रयत्न से ही विद्यार्थियों में जिज्ञासा एवं रुचि उत्पन्न होती है। अत: उसका कर्त्तव्य है कि इस प्रकार के अधिगम में विद्यार्थी में जिज्ञासा एंव रुचि जागृत करता रहे।

नोट

(10) यह सिद्धान्त अनुभवों के संगठन एवं पूर्णता पर बल देता है, इसलिए शिक्षक को शिक्षार्थी के अनुभवों को पुनर्संगठित करने में सहायता देनी चाहिए।

(11) किसी समस्या का प्रस्तुतीकरण आंशिक रूप से नहीं बल्कि समग्र रूप से करना चाहिए। विद्यार्थी अंशों को नहीं बल्कि समग्र परिस्थिति को पहले समझता है। गेस्टाल्टवादियों के अनुसार, "हम अवयवी (Whole) से अवयव (Part) की ओर जाते हैं, अवयव से अवयवी की ओर नहीं।"

11.3 सारांश (Summary)

- कोहलर का सूझ सिद्धान्त गेस्टाल्टवादी विचारों पर आधारित है। कोहलर स्वयं गेस्टाल्टवाद को विकसित करने वालों में एक विशिष्ट मनोवैज्ञानिक था। गेस्टाल्टवाद का प्रमुख प्रणेता मैक्सवर्दीमर (Max Wertheimer) है। कोहलर के सूझ सिद्धान्त को समझने के लिए गेस्टाल्टवाद के विचार को समझना आवश्यक है। गेस्टाल्ट (Gestalt) का अर्थ है पूर्णाकार। गेस्टाल्टवाद से तात्पर्य है आकृति को पूर्ण रूप या समग्र रूप में प्रत्यक्षीकरण करने का विचार।
- कोहलर का सूझ सिद्धान्त गेस्टाल्टवादी विचारों पर आधारित है। गेस्टाल्टवाद से तात्पर्य है आकृति को पूर्ण रूप या समग्र रूप में प्रत्यक्षीकरण करने का विचार।
- **कोहलर** के अनुसार, "एक से अधिक तकनीकी अर्थ में सूझ का अर्थ किसी समस्या के समाधान को एकाएक पकड़ लेना है जिससे एक ऐसी प्रक्रिया प्रारम्भ होती है जो परिस्थिति के अनुसार चलती है और समस्या का समाधान प्रत्यक्ष ज्ञान के क्षेत्र संख्या के सन्दर्भ में लाता है।" उसका कहना है कि परिस्थिति की वास्तविक संरचना निरीक्षण हेतु ऊपर और खुली हुई होनी चाहिए।"
- इस विधि द्वारा अधिगम के लिए अध्यापक को, विद्यार्थी को तब तक प्रोत्साहित करते रहना चाहिए, जब तक सूझ के द्वारा समस्या का हल न निकल आए। अध्यापक के प्रयत्न से ही विद्यार्थियों में जिज्ञासा एवं रुचि उत्पन्न होती है। अत: उसका कर्त्तव्य है कि इस प्रकार के अधिगम में विद्यार्थी में जिज्ञासा एंव रुचि जागृत करता रहे।

11.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **सूझ का सिद्धांत**–अंतर्दृष्टि का सिद्धांत।
2. **दक्षता**–निपुणता

11.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. कोहलर के अधिगम संबंधी 'सूझ के सिद्धांत' का विवेचन कीजिए।
2. कोहलर के 'सूझ के सिद्धांत' की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. गेस्टाल्टवादी 2. सूझ 3. वनमानुष 4. सुल्तान

नोट

11.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.एच. सिन्हा और रचना शर्मा, अटलांटिक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।*
2. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
3. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
4. बच्चों में शिक्षा का महत्त्व एवं जानकारियाँ–*सीमा चोपड़ा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 12: प्रशिक्षण या अधिगम का स्थानान्तरण (Transfer of Training or Learning)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

12.1 अधिगम के स्थानान्तरण का अर्थ (Meaning of Transfer of Learning)

12.2 अधिगम स्थानान्तरण सम्बन्धी सिद्धान्त (Theories of Transfer of Learning)

12.3 अधिगम-स्थानान्तरण के प्रकार (Types of Transfer of Learning)

12.4 स्थानान्तरण की सहायक स्थितियाँ (Conditions of Transfer of Training)

12.5 अधिगम स्थानान्तरण का शिक्षा में महत्त्व (Educational Importance of Transfer of Learning)

12.6 सारांश (Summary)

12.7 शब्दकोश (Keywords)

12.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

12.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अधिगम के स्थानांतरण का अर्थ एवं सिद्धांत को समझने में।
- अधिगम के स्थानांतरण के प्रकारों को जानने में।
- अधिगम के स्थानांतरण में सहायक स्थितियों को समझने में।
- शिक्षा में अधिगम के स्थानांतरण के महत्त्व को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा-मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि किसी एक विषय के अध्ययन से प्राप्त ज्ञान दूसरे विषयों और परिस्थितयों में उपयोगी सिद्ध होता है। प्राय: यह देखा जाता है कि किसी एक क्रिया या विषय का सीखना दूसरी क्रिया या विषय के सीखने में सहायक होता है। प्राचीन शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा में कुछ विषयों को उच्च स्थान दिया है। उनकी धारणा थी कि इन विषयों द्वारा मस्तिष्क को अच्छी तरह प्रशिक्षित किया जा सकता है। **प्लेटो** का कथन है- "यदि मन्द

नोट

बुद्धि को भी ज्यामिति पढ़ाया जाए तो वह कुछ तीव्र आवश्य हो जायेगा। जो व्यक्ति ज्यामिति पढ़ेगा वह दूसरों की अपेक्षा सब विषयों को समझने में अधिक प्रवीण होगा।" शिक्षाशास्त्री **लॉक** का विचार है कि गणित पढ़ाने से व्यक्ति विवेकशील बनाता है और इस विवेक शक्ति को वह दूसरे विषयों के सीखने में भी स्थानान्तरित कर सकता है। वर्तमान समय में मस्तिष्क को प्रशिक्षित करने की इस विधि में परिवर्तन हो रहा है। शैक्षिक दृष्टि से सफलता प्राप्त करने के लिए सीखे हुए किसी विषय का उपयोग दूसरे विषय में किया जाता है। शिक्षा में पाठ्यक्रम निर्माण की दृष्टि से भी सीखने में स्थानान्तरण के सिद्धांत का बहुत महत्त्व है। यहाँ अधिगम स्थानान्तरण और प्रशिक्षण स्थानान्तरण दो शब्दों का प्रयोग किया गया है। अधिगम स्थानान्तरण का तात्पर्य है विद्यार्थी द्वारा स्वयं अर्जित ज्ञान को दूसरी परिस्थिति में प्रयोग करना। प्रशिक्षण शब्द में सीखना-सिखाना दोनों निहित हैं। इस प्रकार दोनों शब्दों का सम्बन्ध क्रिया से है। इसलिए यहाँ सुविधा की दृष्टि से अधिगम स्थानान्तरण शब्द का प्रयोग किया जा रहा है। अत: अधिगम के अर्थ, सिद्धान्त,प्रकार तथा शैक्षिक महत्त्व पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

नोट्स

दार्शनिक प्लेटो ने अधिगम के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि-"यदि मंद बुद्धि को भी ज्यामिति पढ़ाया जाए तो वह कुछ तीव्र अवश्य हो जाएगा। जो व्यक्ति ज्यामिति पढ़ेगा वह दूसरों की अपेक्षा सब विषयों को समझने में अधिक प्रवीण होगा।"

12.1 अधिगम के स्थानान्तरण का अर्थ (Meaning of Transfer of Learning)

शिक्षा में सीखने के स्थानान्तरण का अर्थ 'सीखी हुई क्रिया या विषय का अन्य परिस्थितियों में उपयोग करना।' दूसरे शब्दों में एक विषय या परिस्थिति में अर्जित ज्ञान का अन्य विषयों या परिस्थितियों के ज्ञानार्जन पर प्रभाव पड़ना ही अधिगम का स्थानान्तरण कहलाता है। इसे 'अधिगम संक्रमण' या 'अधिगमानान्तरण' भी कहते हैं। उदाहारणार्थ- गणित सीखने से जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र तथा सांख्यिकी विषय को सीखने में सहायता करता है। यह क्रिया ही अधिगम का स्थानान्तरण कहलाती है। इसी प्रकार बालक अपने दैनिक जीवन में गणित के साधारण ज्ञान का उपयोग बाजार में वस्तुओं को खरीदते समय करता है। स्पष्ट है कि शिक्षा का किसी-न-किसी रूप में सम्बन्धित क्षेत्र में संक्रमण होता रहता है। अधिगम स्थानान्तरण का अर्थ शिक्षा मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई निम्न परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है-

(1) वेलोन एवं वीनस्टीन-"अधिगम के स्थानान्तरण का अर्थ है एक कार्य की निष्पत्ति दूसरे कार्य की निष्पत्ति द्वारा प्रभावित होती है।" (Transfer of learning means that performance on one task is by affected performance on another task.)

(2) क्रो और क्रो-"साधारणत: अधिगम के एक क्षेत्र में प्राप्त होने वाले विचार, अनुभव या कुशलता का ज्ञान या कार्य करने की आदतों का, सीखने के दूसरे क्षेत्र में प्रयोग करना ही प्रशिक्षण स्थानान्तरण कहलाता है।" (The carrry over of habits of thinking, feeling or working of knowledge, of skills, from one learning area to another is usually referred to as the transfer of training.)

(3) कॉलेसनिक-"स्थानान्तरण पहली परिस्थिति में प्राप्त ज्ञान, कुशलता, आदतों, अभियोग्ताओं या अन्य क्रियाओं का दूसरी परिस्थिति में प्रयोग करना है।" (Transfer is the application of carry over of knowledge,skill,habits, attitudes or other responses from the situation in which they are initially acquired to some other situation.)

नोट

(4) प्रो. सोरेन्सन–"स्थानान्तरण एक परिस्थिति में प्राप्त किया हुआ ज्ञान, प्रशिक्षण और आदतों को दूसरी परिस्थिति में स्थानान्तरित किये जाने की चर्चा करता है।"

(5) प्रेटरसन–"स्थानान्तरण सामान्यीकरण है, क्योंकि वह एक नये क्षेत्र तक विचारों का विस्तार है।"(Transfer is generalization for it is extension of ideas ot a new field.)

इस परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले सीखे हुए अर्जित ज्ञान, कौशल, आदतों या अन्य अनुक्रियाओं का प्रयोग दूसरी परिस्थिति में करना ही स्थानान्तरण है।

12.2 अधिगम स्थानान्तरण सम्बन्धी सिद्धान्त (Theories of Transfer of Learning)

अधिगम के स्थानान्तरण का अर्थ समझ लेने के बाद यह जानना आवश्यक है कि स्थानान्तरण किस प्रकार होता है। इसके लिए स्थानान्तरण के विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन करना आवश्यक है। ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

(1) मानसिक शक्ति का सिद्धान्त और औपचारिक अनुशासन की धारणा (Factulty Theory of Mind are Concept of Formal Discipline)–यह सिद्धान्त शक्ति मनोविज्ञान पर आधारित है। इसके अनुसार व्यक्ति का मन विभिन्न शक्तियों जैसे निरीक्षण, स्मृति, कल्पना, तर्क, निर्णय आदि से मिलकर बना है और ये शक्तियाँ एक-दूसरे से भिन्न या स्वतंत्र हैं। अभ्यास द्वारा इन्हें प्रशिक्षित करके तीव्र बनाया जा सकता है और इनका उपयोग कुशलतापूर्वक किसी भी परिस्थिति में किया जा सकता है। उदहारणार्थ यदि स्मरण-शक्ति को प्रशिक्षित करता है तो उन शब्दों को भी याद कर लेना आवश्यक समझा जाता है, जिनकी उस समय व्यक्ति के लिए उपयोगिता नहीं है। इसी प्रकार इस सिद्धान्त के समर्थकों का विचार है कि गणित द्वारा तर्क-शक्ति को प्रशिक्षित किया जा सकता है और फिर इससे उन विषयों को सीखने में सहायता मिलती है जिसमें तर्क करने की आवश्यकता पड़ती है। इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्य विषयों का चुनाव इस प्रकार किया जाए जिनसे उपर्युक्त मानसिक शक्तियाँ पुष्ट हो सकें। आधुनिक मनोविज्ञान मानसिक शक्तियों के विभजन को स्वीकार नहीं करता। अतः इस सिद्धान्त को मान्यता नहीं दी जाती।

(2) समान तत्वों का सिद्धान्त (Theory of Identical Elements)–इस सिद्धान्त के प्रवर्तक **थॉर्नडाइक** महोदय ने अपने प्रयोगों के आधार पर इस बात की पुष्टि कि जब दो अनुभवों की विषय-सामग्री में या विषयों में समानता होती है तभी स्थानान्तरण की अधिक सम्भावना होती है। यदि विषयों में परस्पर समानता होती है तब एक विषय का अर्जित ज्ञान दूसरे विषय के अध्ययन में सहायक सिद्ध होता है। जैसे गणित का ज्ञान भौतिकशास्त्र व सांख्यिकी में, इतिहास का ज्ञान राजनीति में, मनोविज्ञान का ज्ञान शिक्षा-मनोविज्ञान में और दर्शनशास्त्र का ज्ञान शिक्षादर्शन के अध्ययन में हमें सहायता देता है, और हमें कठिनाई नहीं होती। इसका कारण यह है कि इन विषयों में परस्पर समान अंश या तत्व पाये जाते हैं। इसके समर्थन में **गेट्स** महोदय का कथन है-"यह देखा गया है कि समान तत्वों से स्थानान्तरण का अनुपात अधिक होता है।" यही कारण है कि विद्यार्थी पाठ्य-विषयों का चुनाव करते समय उन विषयों को लेने का प्रयत्न करते हैं जिनमें परस्पर कुछ अंशों में समानता पाई जाती है जैसे–आधुनिक इतिहास के साथ राजनीति विषय लेना।

क्या आप जानते हैं गणित का ज्ञान भौतिकशास्त्र व सांख्यिकी में, इतिहास का ज्ञान राजनीति में, मनोविज्ञान का ज्ञान शिक्षा-मनोविज्ञान में, और दर्शनशास्त्र का ज्ञान शिक्षा दर्शन के अध्ययन में सहायक होता है।

(3) समान्यीकरण का सिद्धान्त (Theory of Generalisation)–इस सिद्धान्त के प्रतिपादक **चार्ल्स जड** महोदय हैं। इस मत के अनुसार जब व्यक्ति अपने अनुभव, अध्ययन या ज्ञान के माध्यम से एक सामान्य सिद्धान्त

नोट

निकाल लेता है तब वह उसे दूसरी परिस्थितियों में स्थानान्तरित कर सकता है। **जड** महोदय ने इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए- "इस सिद्धान्त के अनुसार विशिष्ट कुशलता का विकसित होना, विशेष तथ्यों पर पूर्ण अधिकार, विशेष आदतों और मनोवृत्तियों की प्राप्ति, दूसरी स्थिति में स्थानान्तरण की दृष्टि से बहुत कम महत्त्व रखती है- जब तक कि कुशलता, तथ्य और आदत उन दूसरी परिस्थितियों से क्रमबद्ध रूप से सम्बन्धित नहीं हो जाते, जिनमें कि उनका प्रयोग किया जा सके।" उपर्युक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि बालक को केवल एक परिस्थिति में ही अनुशासित रहने की शिक्षा न दी जाए, बल्कि भिन्न-भिन्न समय में या परिस्थितियों में सुव्यवस्थित आचरण-व्यवहार करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाए।

(4) सामान्य एवं विशिष्ट अंश का सिद्धान्त (Theory of 'G' and 'S' Factor)–इस सिद्धान्त के प्रणेता मनोवैज्ञानिक **स्पीयरमैन** हैं। इनके मतानुसार प्रत्येक विषय को सीखने के लिए बालक को 'सामान्य' और विशिष्ट योग्यता की आवश्यकता होती है सामान्य योग्यता या बुद्धि का प्रयोग सामान्यत: जीवन के प्रत्येक कार्य में होता है किन्तु विशिष्ट बुद्धि का प्रयोग विशेष परिस्थितियों में ही किया जाता है। सामान्य व्यक्ति को प्रत्येक परिस्थितियों में सहायता देती है। इसलिए सामान्य योग्यता या तत्व का ही स्थानान्तरण होता है, विशेष तत्व का नहीं। इतिहास,भूगोल, साहित्य आदि विषयों का सामान्य योग्यता से होता है, किन्तु चित्रकला, संगीत आदि विषयों का सम्बन्ध विशिष्ट योग्यता से है।

(5) गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों का सिद्धान्त (Theory of Gestalt psychologists)–गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों में प्रमुखतया कोहलर आदि का नाम आता है। कोहलर आदि परिस्थितियों का पूर्णाकार रूप में प्रत्यक्षीकरण करने तथा सूझ-बूझ (Insight) का उपयोग करने पर बल देते हैं। ये मनोवैज्ञानिक अधिगम में सूझ-बूझ (Insight in Learning) को महत्त्व देते हैं। सूझ का विकास ही अधिगम है, जो एक परिस्थिति में प्रयुक्त होता है। इन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार एक परिस्थिति में प्रयुक्त अथवा विकसित सूझ का दूसरी परिस्थितियों मे प्रयोग में लाना ही अधिगम स्थानान्तरण है। व्यक्ति तो पहले और बाद की परिस्थितियों में समानता का प्रत्यक्षीकरण करता है और वह पहली परिस्थिति से प्राप्त सूझ का प्रयोग दूसरी परिस्थिति में अन्तरण कर देता है। यह स्थानान्तरण प्रत्यक्षात्मक समानता के कारण घटित होता है। समस्या समाधान में इस प्रकार का स्थानान्तरण देखा जा सकता है जिसमें व्यक्ति एक परिस्थिति में अर्जित समाधान का उपयोग दूसरी समान परिस्थिति में आयी समस्या समाधान में कर लेता है। अत: यह स्थानान्तरण उद्देश्यपूर्ण तथा सप्रयास होता है और इसके लिए अवसरों की समानता आवश्यक है। कोहलर ने चिंपांजी पर अनेक प्रयोग कर इस सिद्धान्त की पुष्टि की है। **बेयल्स** (Bayles) के मतानुसार अधिगम स्थानान्तरण के लिए तीन बातों का होना अपेक्षित है- (1) अवसरों का आना, (2) अवसर को देखना (प्रत्यक्षीकरण) तथा (3) व्यक्ति द्वारा अवसर से लाभ उठाने की प्रवृत्ति।

उपर्युक्त सिद्धान्तों से स्पष्ट हो जाता है कि सीखने का स्थानान्तरण होता है। इनमें से किसी एक सिद्धान्त को प्रधानता नहीं दी जा सकती। इन सिद्धान्तों को समन्वयात्मक दृष्टिकोण से देखना अधिक उपयुक्त होगा।

12.3 अधिगम-स्थानान्तरण के प्रकार (Types of Transfer of Learning)

अधिगम-स्थानान्तरण के प्रमुख छ: प्रकार हैं-

(1) सकारात्मक स्थानान्तरण (Positive Transfer)- जब एक विषय का अधिगम दूसरे विषय के अधिगम में सहायक सिद्ध होता है तो इसे सकारात्मक स्थानान्तरण कहते हैं। सकारात्मक स्थानान्तरण में हम यह पाते हैं कि पूर्व में प्राप्त ज्ञान,कौशल एवं अभिवृत्ति या अन्य अनुक्रियाओं का प्रभाव बाद में सीखे जाने वाले ज्ञान, कौशल एवं अभिवृत्ति या अन्य अनुक्रियाओं का प्रभाव बाद में सीखे जाने वाले ज्ञान, कौशल एवं अभिवृत्ति या अन्य अनुक्रियाओं पर सहायक रूप में पड़ता है। उदाहरणार्थ जो व्यक्ति अंग्रेजी के टाइपराइटर पर टाइप करना सीख लेते हैं, वह हिन्दी

नोट

के टाइप-राइटर पर टाईप करना सरलता से सीख लेते हैं। अर्थात् अंग्रेजी टाइपराइटिंग अधिगम हेतु सहायक सिद्ध होती है। सकारात्मक स्थानान्तरण के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों के विचार निम्नलिखित हैं-

(*i*) मॉर्गन एवं किंग- "जब पहले सीखी गई कोई चीज़ एक नई परिस्थिति में कार्य या अधिगम को लाभान्वित करे तो सकारात्मक स्थानान्तरण घटित होता है।" (Positive transfer occurs when something previously learned benefits Perfarmance or learning in a new situation.)

(*ii*) सोरेन्सन-"एक व्यक्ति स्थानान्तरण से उस सीमा तक सीखता है जिस सीमा तक एक परिस्थिति में प्राप्त योग्यताएँ दूसरी में सहायक होती हैं।" (A person learns through transfer to the extent that the abilities required in one situation help in another.)

सकारात्मक स्थानान्तरण क्षैतिजीय एवं अनुलम्बीय प्रकार का होता है। इनका विवरण बिन्दु सं. 3 एवं 4 में प्रस्तुत किया गया है।

(2) नकारात्मक स्थानान्तरण (Negative Transfer)–जब एक विषय या कौशल का अधिगम दूसरे विषय या कौशल के अधिगम में बाधक होता है या कठिनाई उत्पन्न करता है, तब उसे नकारात्मक स्थानान्तरण कहते हैं, जैसे विज्ञान के विद्यार्थी को कला विषयों (Arts) को समझने में कठिनाई का अनुभव करना। एक अन्य उदाहरण-जैसे हिन्दी का टाइपराइटर सीखने में पहले से सीखी गई अंग्रेजी टाइपराइटिंग की दक्षता या ज्ञान का अवरोध उत्पन्न करना। यह नकारात्मक स्थानान्तरण है जिसमें हम पाते हैं कि पूर्व कार्य का निष्पादन बाद के कार्य के निष्पादन में नकारात्मक स्थानान्तरण के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों के विचार निम्नलिखित हैं-

(*i*) मॉर्गन एवं किंग- "नकारात्मक स्थानान्तरण तब घटित होता है जब पहले सीखी गई कोई चीज एक नयी परिस्थिति में कार्य या अधिगम में बाधा उत्पन्न करती है।" (Negative transfer occurs when something previously learned hinders performance or learning in a new situation.)

(*ii*) बोरिंग तथा अन्य-"जब एक सीखा गया कार्य दूसरे कार्य के अधिगम में कठिनाई उत्पन्न करने लगे तो हम उसे नकारात्मक स्थानान्तरण कहेंगे।" (When learning one task makes learning a second task harder we speak of negative transfer.)

नकारात्मक स्थानातरण भी क्षैतिजीय एवं अनुलम्बीय प्रकार का होता है। इनका विवरण भी बिन्दु सं. 3 एवं 4 में प्रस्तुत किया गया है। नकारात्मक स्थानांतरण की प्रकृति निम्नलिखित दो प्रकार की होती है–

(क) पूर्वलक्षी नकारात्मक स्थानान्तरण (Retro-active Negative Transfer) जब पहले प्रकार की सीखी गई कोई चीज दूसरी प्रकार की सीखी जाने वाली चीज से दुष्प्रभावित होने या भूलने लगे तो इस स्थिति को पूर्वलक्षी नकारात्मक स्थानान्तरण कहते है। उदाहरणार्थ दूसरी कविता को याद कर लेने के पश्चात् पहले याद की गई कविता भूल जाए या स्मृति कमजोर पड़ जाए।

(ख) प्रतिलक्षी नकारात्मक स्थानान्तरण (Pro-active Negative Transfer)–जब पहले प्रकार की सीखी गई कोई चीज दूसरी प्रकार की सीखी जाने वाली किसी चीज पर बुरा प्रभाव डालने लगे या बाधा उत्पन्न करने लगे तो इस स्थिति को प्रतिलक्षी नकारत्मक स्थानान्तरण कहते हैं। उदहारणार्थ पहली याद की गई कविता के पश्चात् यदि दूसरी कविता याद करने में बाधा उत्पन्न हो अथवा स्मृति में पहली कविता की पंक्तियाँ आ जाएँ।

(3) क्षैतिजीय स्थानान्तरण (Horizontal Transfer)–क्षैतिजीय स्थानान्तरण सकारत्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार का होता है। जब भिन्न प्रकार की योग्यता अथवा ज्ञान अन्य सीखी जाने वाली योग्यता अथवा ज्ञान में सहायक होता है तो उसे क्षैतिजीय स्थानान्तरण कहते हैं। यह स्थानान्तरण एक कक्षा में दो विषयों के मध्य घटित होता है। उदहारणार्थ, कक्षा 10 में एक विद्यार्थी का गणित सम्बन्धी ज्ञान का भौतिक विज्ञान के अध्ययन में सहायक होना। इस प्रकार के स्थानान्तरण को हम सकारात्मक क्षैतिजीय स्थानान्तरण कहते हैं। इसके विपरीत जब एक विषय अथवा

नोट

कौशल अन्य विषय या कौशल सीखने की स्थिति में अवरोध उत्पन्न करता है तो इसे क्षैतिजीय स्थानान्तरण कहा जाएगा किन्तु यह नकारात्मक होगा। उदहारणार्थ कक्षा दस का एक विद्यार्थी जब गणित में ज्ञान अथवा कौशल अर्जित करे और यह ज्ञानार्जन हिन्दी साहित्य के ज्ञानार्जन में अवरोध उत्पन्न करे तो इस प्रकार के स्थानान्तरण को हम नकारात्मक क्षैतिजीय स्थानान्तरण कहेंगे।

क्या आप जानते हैं जब एक विद्यार्थी गणित का ज्ञान अथवा कौशल प्राप्त करता है और यही-ज्ञान उसके हिंदी ज्ञानार्जन में बाधा उत्पन्न करता है तो इस प्रकार का अधिगम स्थानांतरण क्षैतिजीय स्थानांतरण कहलाता है।

(4) अनुलम्बीय स्थानान्तरण (Vertical Transfer)-अनुलम्बीय स्थानान्तरण भी सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार का होता है। जब एक स्थिति में अर्जित किया गया ज्ञान अथवा कौशल सम्बन्धित ज्ञान एवं कौशल अर्जित करने में आगे चलकर सहायक सिद्ध हो तो अनुलम्बीय सकारात्मक स्थनान्तरण कहेंगे। उदहारणार्थ, एक विद्यार्थी द्वारा कक्षा आठ में गणित में अर्जित किया हुआ ज्ञान कक्षा दस में गणित का ज्ञान आर्जित करने में सहायक सिद्ध हो। इसके विपरीत जब एक ही स्थिति से सम्बन्धित आर्जित ज्ञान एवं कौशल आगे चलकर उसी स्थिति से सम्बन्धित ज्ञान एवं कौशल अर्जित करने में बाधा उत्पन्न करे तो इस प्रकार के स्थनान्तरण को अनुलम्बीय नकारात्मक स्थानांतरण कहेंगे। उदहारणार्थ, कक्षा आठ के एक विद्यार्थी का साहित्यिक ज्ञान अगली कक्षा के साहित्यिक ज्ञान अर्जित करने में अवरोध उत्पन्न करे अर्थात अधिगम का पहला सोपान अधिगम के दूसरे सोपान में कठिनाई अथवा बाधा उत्पन्न करे।

टास्क क्षैतिजीय स्थानांतरण एवं अनुलंबीय स्थानांतरण के अंतर को उपयुक्त उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट कीजिए।

(5) पार्श्विक स्थानान्तरण (Lataral Transfer)–जब शरीर के एक अंग द्वारा अर्जित कार्यकुशलता उसी अंग की दूसरी सम्बन्धित कार्यकुशलता को प्रभावित करे तो इसे पार्श्विक स्थानान्तरण कहेंगे। उदहारणार्थ, दायें हाथ से हिन्दी लिखने की कुशलता का संस्कृत लिखने की कुशलता को प्रभवित करना।

(6) द्वि-पार्श्विक स्थानान्तरण (Bi-lateral Transfer)–जब शरीर के द्वारा अर्जित कार्य-कुशलता दूसरे अंग की कार्य-कुशलता को प्रभावित करे तो इस प्रकार के स्थानान्तरण को द्वि-पार्श्विक स्थानान्तरण कहेंगे। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति दायें हाथ से लिखना सीखता है किन्तु यदि आवश्यकता पड़ जाये तो वह बायें हाथ से भी लिख सकता है, जबकि उसने हाथ से लिखने का अभ्यास कभी न किया हो। इस स्थिति में हम देखते हैं कि दायें का कौशल बायें में स्थानान्तरित हो गया।

12.4 स्थानान्तरण की सहायक स्थितियाँ (Conditions of Transfer of Training)

अधोलिखित स्थितियाँ स्थानान्तरण में सहायक सिद्ध होती हैं-

(1) सामान्यीकारण (Generalisation)–व्यक्ति अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर जितना अधिक सामान्य नियम या सिद्धान्त निकालने में समर्थ होता है उतना ही अधिक उसके शिक्षण का स्थानान्तरण होता है।

(2) समझना (Understanding)–किसी वस्तु को भली-भाँति समझने में समानता (Identity) का ज्ञान हो जाता है जिसके परिणमस्वरूप स्थानांतरण भी अधिक होता है अत: शिक्षण के स्थनान्तरण हेतु विषय को भली-भाँति आत्मसात् कर लेना श्रेयस्कर है।

नोट

(3) विषय-सामग्री पर अधिकार की मात्रा (The degree of Mastery on Subject-Matter)–किसी विषय-वस्तु का जितना अधिक गहन अध्ययन करके निपुणता प्राप्त कर ली जाए उतना ही उस विषय का दूसरे विषय में स्थानान्तरण सम्भव होता है।

(4) सप्रयत्नशीलता (Deleberation)–यदि व्यक्ति अपने पूर्व अनुभवों को रखते हुए प्रयासपूर्वक एवं पूर्ण शिक्षण-विधियों के द्वारा नवीन परिस्थितियों को समझने का प्रयत्न करता है तो शिक्षण का स्थानान्तरण होता है।

(5) स्थानान्तरित होने वाली विषय-वस्तु के प्रति मनोवृत्ति (Attitude to towards the material of transfer)–स्थानान्तरित होने वाली विषय-वस्तु के प्रति व्यक्ति की अनुकूल मनोवृत्ति धनात्मक स्थानान्तरण में सहायक होती है।

(6) शिक्षण-पद्धति (Method of teaching)–उपर्युक्त शिक्षण-विधि भी शिक्षण के स्थानान्तरण में सहायता प्रदान करती है।

12.5 अधिगम स्थानान्तरण का शिक्षा में महत्त्व (Educational Importance of Transfer of Learning)

शैक्षिक निहितार्थ- शिक्षा में स्थानान्तरण सीखने की क्रिया पर प्रभाव डालता है। शिक्षा में अधिगम के स्थानान्तरण के लिए निम्नांकित बातों पर ध्यान देना चाहिए-

(1) स्थानान्तरण एवं पाठ्यक्रम- स्थानान्तरण का सबसे अधिक महत्त्व पाठ्यक्रम निर्माण के लिए है। बालकों के लिए अनुशासन के लिए अनुकूल पाठ्यक्रम बनाया जाए अर्थात् उसमें इस प्रकार के विषयों का समावेश हो, जो उपयोगी हो तथा दैनिक जीवन की समस्याओं से सम्बन्धित हो। पाठ्यक्रम का स्वरूप व्यावहारिक होना चाहिए। **थॉमसन** का विचार है-"पाठ्यवस्तु में अधिक-से-अधिक विषयों का रहना लाभप्रद है। विषय जितने अधिक रहें, विद्यार्थी में उतनी ही अधिक जीवनोपयोगी योग्यता भी आयेगी।"

(2) स्थानान्तरण और शिक्षण-विधि- शिक्षक को सकारात्मक स्थानान्तरण के लिए उपयुक्त विधि से शिक्षा देनी चाहिए। उसे इस प्रकार शिक्षा दी जाए, जिससे वह एक क्रिया या विषय में प्राप्त ज्ञान का दूसरे विषय के सीखने में प्रयोग कर सके। बालकों को आवश्यकतानुसार स्थानान्तरण के लिए निर्देश भी देना चाहिए। एक विषय के ज्ञान का दूसरे विषय के ज्ञान में स्थानान्तरण के लिए बालकों को विषय से सम्बन्धित समान तत्वों को बता देना चाहिए। इसके लिए साहचर्य के नियमों पर भी ध्यान रखना आवश्यक है। स्थानान्तरण की सफलता के लिए शिक्षक को अपने शिक्षण को अधिक रोचक बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

(3) सामान्यीकरण- शिक्षक को पढ़ाते समय ऐसी शिक्षण-विधि का पालन करना चाहिये, जिससे बालक स्वयं विषय से सम्बन्धित सामान्य सिद्धान्त निकाल सके। सामान्यीकरण के लिए बालक को स्वयं अवसर प्रदान करना चाहिए। उसमें बार-बार हस्तक्षेप न करना चाहिए। सामान्यीकरण करने की योग्यता का विकास होने पर बालक नवीन परिस्थिति में शीघ्र उसका उपयोग कर लेता है। इस सम्बन्ध में **हांड्रिक्स** (Handrix) महोदय का कहना है-"जो बालक यह जानता है कि 6 को 8 बार कहने से 48 हो जाता है, तो वह कमरे में 6 और 8 की कतारों में रखी कुर्सियों को शीघ्र ही 48 बता सकता है" अत: अध्यापक को चाहिए कि वह जो कुछ भी पढ़ये वह सामान्यीकरण के आधार पर ही पढ़ाये। इससे स्थानान्तरण की सम्भावना अधिक होती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान की पूर्ति करें–

1. प्लेटो ने कहा कि 'यदि मंद बुद्धि को भी ..... पढ़ाया जाए तो वह कुछ तीव्र अवश्य हो जाएगा।'
2. लॉक का विचार है कि ..... पढ़ाने से व्यक्ति विवेकशील बनता है।

नोट

3. इतिहास का ज्ञान हमें ..... के ज्ञान में सहायता प्रदान करता है।

4. मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम के स्थानांतरण में कोहलर के ..... के सिद्धांत को महत्त्व दिया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अधिगम की क्रिया में स्थानान्तरण का बहुत महत्त्व है। इस कार्य में शिक्षक को उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त कुछ अन्य निम्नांकित बातों का ध्यान रखना चाहिए-

(1) शिक्षक को विषय का स्पष्ट ज्ञान देना चाहिए।

(2) बालक की मानसिक योग्यता और वैयक्तिक विविधता के अनुसार पाठ्य-विषयों का एवं शिक्षण-विधियों का चयन करना तथा स्थानान्तरण के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करनी चाहिए।

(3) शिक्षक को पढ़ाते समय शिक्षा में सह-सम्बन्ध के सिद्धान्त का अनुसरण करना चाहिए। नवीन ज्ञान को पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित करके पढ़ाना चाहिए। शिक्षण के समय पाठ्य-विषय में आने वाले समान तथ्यों को दूसरे विषयों के तथ्यों में जो समानता हो, उसे अवश्य बताना चाहिए। इस विधि से प्रशिक्षण का स्थानान्तरण होता है।

(4) स्थानान्तरण की सफलता के लिए चिन्तन-शक्ति का विकास तथा अध्ययन के प्रति रुचि जाग्रत करना चाहिए। बालक को सदा ज्ञानार्जन के लिए प्रेरणा प्रदान करनी चाहिए।

(5) शिक्षक बालकों को सदा इस बात के लिए प्रोत्साहित करें कि उन्हें जो भी ज्ञान या शिक्षा दी गई है, उसका वे सामान्य जीवन में उपयोग करें। प्राप्त ज्ञान का विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग करने से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने की योग्यता का विकास होता है। इस प्रकार वे भावी जीवन की परिस्थितियों के साथ अपने को समायोजित करने में सफल होते हैं।

12.6 सारांश (Summary)

- शिक्षा-मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि किसी एक विषय के अध्ययन से प्राप्त ज्ञान दूसरे विषयों और परिस्थितयों में उपयोगी सिद्ध होता है। किसी एक क्रिया या विषय का सीखना दूसरी क्रिया या विषय के सीखने में सहायक होता है।
- **प्लेटो** का कथन है- "यदि मन्द बुद्धि को भी ज्यामिति पढ़ाया जाए तो वह कुछ तीव्र आवश्य हो जायेगा। जो व्यक्ति ज्यामिति पढ़ेगा वह दूसरों की अपेक्षा सब विषयों को समझने में अधिक प्रवीण होगा।"
- अधिगम स्थानान्तरण का तात्पर्य है विद्यार्थी द्वारा स्वयं अर्जित ज्ञान को दूसरी परिस्थिति में प्रयोग करना।
- अधिगम स्थानांतरण के कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धांत हैं– मानसिक शक्ति का सिद्धांत और औपचारिक अनुशासन की धारणा, समान तत्वों का सिद्धांत, समान्यीकरण का सिद्धांत, सामान्य एवं विशिष्ट अंश का सिद्धांत, गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिक का सिद्धांत।
- इनमें से किसी एक सिद्धान्त को प्रधानता नहीं दी जा सकती। इन सिद्धान्तों को समन्वयात्मक दृष्टिकोण से देखना अधिक उपयुक्त होगा।
- अधिगम-स्थानान्तरण के प्रमुख छः प्रकार हैं- सकारात्मक स्थानान्तरण, नकारात्मक स्थानान्तरण, क्षैतिजीय स्थानांतरण, अनुलम्बीय स्थानान्तरण, पार्श्विक स्थानांतरण, द्वि-पार्श्विक स्थानांतरण।
- शिक्षा में स्थानान्तरण सीखने की क्रिया पर प्रभाव डालता है। शिक्षा में अधिगम के स्थानान्तरण के लिए निम्नांकित बातों पर ध्यान देना चाहिए-
- स्थानांतरण एवं पाठ्यक्रम बालकों के लिए अनुशासन के लिए अनुकूल पाठ्यक्रम बनाया जाए अर्थात् उसमें इस प्रकार के विषयों का समावेश हो, जो उपयोगी हो तथा दैनिक जीवन की समस्याओं से सम्बन्धित हो।

नोट

- **स्थानान्तरण और शिक्षण-विधि**- उपयुक्त विधि से इस प्रकार शिक्षा दी जाए, जिससे वह एक क्रिया या विषय में प्राप्त ज्ञान का दूसरे विषय के सीखने में प्रयोग कर सके। बालकों को आवश्यकतानुसार स्थानान्तरण के लिए निर्देश भी देना चाहिए।
- शिक्षक को पढ़ाते समय ऐसी शिक्षण-विधि का पालन करना चाहिये, जिससे बालक स्वयं विषय से सम्बन्धित सामान्य सिद्धान्त निकाल सके।

12.7 शब्दकोश (Keywords)

1. **स्थानांतरण**–तबादला
2. **अधिगम संक्रमण**–एक विषय के सीखे हुए ज्ञान का दूसरे विषय के ज्ञानार्जन पर प्रभाव पड़ना

12.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. अधिगम के स्थानांतरण से आप क्या समझते हैं?
2. अधिगम के स्थानांतरण के सिद्धांतों पर प्रकाश डालिए।
3. अधिगम के स्थानांतरण के प्रकारों को विस्तार से समझाइए।
4. अधिगम स्थानांतरण का शिक्षा में महत्त्व प्रतिपादित कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. ज्यामिति 2. गणित 3. राजनीति 4. सूझ

12.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. मनोविज्ञान–*डॉ. सरयू प्रसाद, आगरा बुक स्टोर, आगरा।*
2. मनोविज्ञान–*मानव व्यवहार का अध्ययन–ब्रजकुमार मिश्र, पी.एच.आई. लर्निंग, नई दिल्ली।*
3. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
4. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 13: अधिगम में अभिप्रेरणा (Motivation in Learning)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

13.1 अभिप्रेरणा का स्वरूप एवं परिभाषा (Nature and Definitions of Motivation)

13.2 अभिप्रेरणाओं की उत्पत्ति (Origin of Motives)

13.3 अभिप्रेरणाओं का विकास (Development of Motives)

13.4 अभिप्रेरणा के कारण (Causes of Motive)

13.5 सारांश (Summary)

13.6 शब्दकोश (Keywords)

13.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

13.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अभिप्रेरणा के स्वरूप को समझने में।
- अभिप्रेरणा की उत्पत्ति एवं विकास को समझने में।
- अभिप्रेरणा के कारणों को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

मनुष्य स्वभाव से ही क्रियाशील प्राणी है वह सदा ही किसी कार्य में लगा रहता है और कोई-न-कोई व्यवहार करता रहता है। बिना प्रयोजन के वह कोई कार्य या व्यवहार नहीं करता। उसके कार्य का उद्देश्य किसी लक्ष्य विशेष की पूर्ति करना होता है। उदाहरणार्थ– एक अच्छा विद्यार्थी बड़े उत्साह एवं लगन से अध्ययन करता है, जबकि दूसरा अध्ययन की ओर से उदासीन रहता है। इसका क्या कारण है। इसी प्रकार प्रश्न उठता है–हम भोजन क्यों करते हैं? आर्थोपार्जन क्यों करते हैं और क्यों पढ़ते-लिखते हैं? इस प्रश्नों के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के कार्य और व्यावहार को परिचालित करने वाली कुछ प्रेरक (Motives) शक्तियाँ हैं जो उसे विभिन्न परिस्थितियों में कार्य या व्यवहार करने की अभिप्रेरणा प्रदान करती हैं।

नोट

क्रेच एवं क्रैचफील्ड (Krech and Krachfield) ने भी स्पष्टत: कहा है कि प्रेरणा का प्रश्न 'क्यों' का प्रश्न है। वस्तुत: आवश्यकताएँ (Needs), चालक (Driver), उद्दीपक (Incentive),तथा प्रेरक (Motive) अभिप्रेरक के मुख्य स्रोत है। **हिलगार्ड** (Hilgard), ने लिखा है, "आवश्यकता चालक को जन्म देती है। चालक बढ़े हुए तनाव की दशा है जो कार्य और प्रारम्भिक व्यवहार की ओर अग्रसर करता है। उद्दीपन बाह्य वातावरण की कोई वस्तु होती है जो आवश्यकता को सन्तुष्ट करती है इस प्रकार क्रिया द्वारा चालक को कम करती है।" प्रेरक को आवश्यकताएँ, इच्छाएँ, तनाव, स्वाभाविक स्थितियाँ, निर्धारक प्रवृत्तियाँ, अभिवृत्तियाँ, आदत, रुचियाँ, स्थाई उद्दीपक तथा समानार्थक शब्दों के रूप में समझा जा सकता है। संक्षेप में अभिप्रेरणा उपर्युक्त चार पदों–आवश्यकता, चालक, उद्दीपन तथा संयुक्त संगठनात्मक संरचना है।

13.1 अभिप्रेरणा का स्वरूप एवं परिभाषा (Nature and Definitions of Motivation)

अंग्रेजी शब्द Motivation की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के Motum शब्द से हुई है Move,Motor तथा Motion अभिप्रेरणा के साधारण और शाब्दिक अर्थ के अनुसार हम किसी भी उत्तेजना को प्रेरणा कह सकते हैं, जिसके कारण व्यक्ति कोई प्रतिक्रिया या व्यवहार करता है। इस प्रकार की उत्तेजना आन्तरिक या बाह्य दोनों हो सकती है। किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रेरणा एक आन्तरिक शक्ति है, जिसमें व्यक्ति अपने अन्दर से किसी कार्य को करने के लिए अभिप्रेरित (Motivated) होता है। इस प्रकार प्रेरणा को प्राणी के शरीर यंत्र की चालक शक्ति कहा जा सकता है, जो व्यक्ति को व्यवहार करने के लिए प्रेरणा देती है। अभिप्रेरणा शब्द के मनोवैज्ञानिक अर्थ को स्पष्ट करने के लिए निम्नांकित परिभाषाएँ प्रस्तुत की गई हैं–

(1) वुडवर्थ (Woodworth) **के अनुसार**– निष्पत्ति (Achievement) = योग्यता, (Ability)+ अभिप्रेरणा (Motivation)। अर्थात् योग्यता + अभिप्रेरणा से निष्पत्ति प्राप्त होती है। व्यक्ति की योग्यता, प्रेरणा पाकर ही विकसित होती है। इस प्रकार की योग्यता और प्रेरणा द्वारा ही निष्पत्ति (Achievement) सम्भव है।

(2) लॉवेल के अनुसार– "अभिप्रेरणा एक ऐसी मनोवैज्ञानिक या आन्तरिक प्रक्रिया है जो किसी आवश्यकता की उपस्थिति में उत्पन्न होती है। यह ऐसी क्रिया की ओर गतिशील होती है जो उस आवश्यकता को सन्तुष्ट करेगी।"(Motivation may be defined more formally as a psychopysiological or internal procss, initiated by some need, which leads to an activity which will satisfy that need.)

(3) गुड के अनुसार– "प्रेरणा कार्य को आरम्भ करने, जारी रखने और नियमित करने की प्रक्रिया है।" (Motivation is the process of arousing sustaining and regulation activity.)

(4) ब्लेयर, जॉन्स और सिम्पसन के अनुसार– "प्ररेणा एक प्रक्रिया है, जिसमें सीखने वाले की आन्तरिक शक्तियाँ या आवश्यकताएँ उसके वातावरण में विभिन्न लक्ष्यों की ओर निर्देशित होती है।" (Motivation is a process in which the learner's internal enternal energies or needs are directed towards various goal objects in his environment.)

(5) पी. टी. यंग के अनुसार– "प्रेरणा व्यवहार को जाग्रत करने, क्रिया के विकास को सम्प्रेषित करने और क्रिया के तरीकों को नियमित करने की प्रक्रिया है।" (Motivation is the process of arousing action, sustaining the activities in progress and regulating the pattern of activity.)

उपर्युक्त परिभाषा का विश्लेषण करने पर अभिप्रेरणा के सम्बन्ध में निम्नांकित बातें स्पष्ट होती हैं–

(1) अभिप्रेरणा एक मनो-शारीरिक या आन्तरिक प्रक्रिया या अवस्था है।

(2) अभिप्रेरित क्रिया किसी आवश्यकता के कारण उत्पन्न होती है।

नोट

(3) अभिप्रेरित प्रक्रिया किसी खास क्रिया (Activity) को करने या दिशा(Direction) की ओर ले जाती है।

(4) यह क्रिया उद्देश्य की प्राप्ति तक जारी रहती है।

मनोवैज्ञानिक अर्थ में अभिप्रेरणा का अर्थ आन्तरिक उत्तेजकों से होता है, जिसके फलस्वरूप हम कोई कार्य या व्यवहार करते हैं। बाह्य उत्तेजना को मनोवैज्ञानिकों ने प्रेरणा के अन्तर्गत नहीं सम्मिलित किया है। उदहारणार्थ भूख एक ऐसी आन्तरिक उत्तेजना है, जिसके फलस्वरूप हम खाना खाने के लिए प्रेरित हो सकते हैं, अत: भूख को प्ररेणा कहा जा सकता है। एक व्यक्ति खाने की थाली देखकर खाने के लिए प्रेरित हो सकता है। यहाँ थाली एक बाह्य उत्तेजना है किन्तु खाने का कार्य प्रेरित नहीं हुआ। व्यक्ति खाना तब तक नहीं खायेगा जब तक उसे आन्तरिक उत्तेजना नहीं मिलती। अत: हम कह सकते हैं कि आन्तरिक उत्तेजना जो व्यक्ति को कोई कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करती है, प्रेरणा कहलाती है। प्रेरणा में प्रेरक का महत्त्व अधिक है अत: प्रेरक के अर्थ एवं परिभाषा पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

प्रेरक– अर्थ एवं परिभाषा

प्रेरक का अर्थ- मानव के प्रत्येक कार्य और व्यवहार के जन्मजात, स्वाभाविक और अर्जित प्रवृत्तियाँ छिपी होती हैं। ये ही व्यवहार को प्रेरणा देती हैं इसलिए मनोवैज्ञानिकों ने इसे प्रेरणा या प्रेरक (Motive) कहा है। अत: हम कह सकते हैं कि मानव-व्यवहार के मूल में प्रेरक वृत्ति विद्यमान रहती है जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति कार्य करता है।

मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई परिभाषाओं से और प्रेरक (Mtoive) शब्दों को समझ लेना चाहिए। प्रेरणा एक मानसिक स्थिति (Mental Set) है और प्रेरक व्यक्ति को एक विशेष प्रकार का व्यवहार करने के लिए प्रेरणा के कारक (Factors) होते हैं। अत: हम कह सकते हैं कि प्रेरणा स्थिति बताती है और प्रेरक उसके कारण स्वरूप होते हैं।

प्रेरक की परिभाषा- प्रेरक की अवधारणा समझाने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने प्रेरक की परिभाषाएँ निम्नलिखित रूप में दी हैं-

(1) शेफर तथा अन्य-"प्रेरक क्रिया की एक ऐसी प्रवृत्ति है जो अन्तर्नोद (Drive) में उत्पन्न होती है तथा अनुकूलन द्वारा समाप्त होती है।" (A motive may now be defined as a tendency to activity initiated by a drive and concluded by an adjustment.)

यह परिभाषा एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार स्पष्ट हो जाती है-भूख की अवस्था में पेट की दीवारों में संकुचन (Contraction) होता है, व्यक्ति अपने अन्दर तनाव का अनुभव करता है, और इस तनावपूर्ण स्थिति से छुटकारा प्राप्त करने के लिए वह खाद्य-पदार्थों की खोज करता है। उसकी खोज तब जारी रहती है जब तक वह खाने की वस्तु को प्राप्त करके अपनी भूख मिटा नहीं लेता। इस उदाहरण में भूख की स्थिति अथवा अवस्था यहाँ पर प्रेरणा है और यह भूख की स्थिति जिस कारण से उत्पन्न होती है उसे भूख या प्रेरक (Hunger Motive) कहते हैं। इस प्रकार प्रेरक प्रवृत्ति के कार्य होते हैं-

(1) क्रिया उत्पन्न करना,

(2) उसे जारी रखना,

(3) जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए उसे बराबर एक निश्चित दिशा की ओर अग्रसर करते रहना।

उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार भूख अन्तर्नोद (Hunger-Drive) से खाने की प्रेरणा मिलती है। खाना पेट में पहुँच जाने पर भूख आन्तर्नोद समाप्त हो जाता है और खाने की प्रेरक वृत्ति या प्रेरणा का अन्तर हो जाता है। 'प्रेरक' एक व्यापक शब्द है जिसके अन्तर्गत आवश्यकता, अन्तर्नोद और उद्दीपन सभी आ जाते हैं।

नोट

(2) गेट्स व अन्य–"प्रेरकों के विभिन्न स्वरूप हैं और इनको विभिन्न नामों से पुकारा जाता है– जैसे आवश्यकताएँ, इच्छाएँ, तनाव, स्वाभाविक स्थितियाँ, निर्धारित प्रवृत्तियाँ, रुचियाँ, स्थायी उद्दीपक और इसी प्रकार के अन्य नाम।" (Motives takes a variety of forms and are designated by many different terms, such needs, desires, tensions, sets, determining tendencies, attitudes, interest, persisting stimuli and soon.)

(3) वुडवर्थ– "प्रेरक व्यक्ति की वह अवस्था या तत्परता है जो कि उसे किसी व्यवहार को करने के लिए एवं किन्हीं उद्देश्यों को प्राप्त करने के निर्देशित करता है।" (A motive is a state or set of the individual which desposes him for certain behaviour and seeking certain goals.")

(4) मैक्डूगल–"प्रेरणाएँ प्राणी की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आन्तर्दशाएँ हैं जो उसे निश्चित तरीकों से क्रिया करने में प्रवृत्त करती हैं।" (Motives are conditions physiological and psychological within the organism that dispose it to act in certain ways.)

(5) गिलफोर्ड– "प्रेरक कोई एक विशेष आन्तरिक कारक या दशा है, जो किसी क्रिया को आरम्भ करने और बनाये रखने को प्रवृत्त होता है।" (A motive is any particular internal factor or condition that tends to initiate and to sustain activity.)

(6) जे. ड्रेवर– "प्रेरक एक ऐसा प्रभावशाली क्रियात्मक कारक है, जो व्यक्ति के चेतना या अचेतन रूप से निर्धारित लक्ष्य या उद्देश्यों की पूर्ती की ओर ले जाने और व्यवहारों की दशा निश्चित करने का कार्य करता है।" (Motive is an effective-conative factor which operates in determining the direction of an individual,s behaviour towards an end or goal, consciously apprehended or unconsicous.)

(7) थॉमसन– "प्रेरक एक भावात्मक क्रियात्मक तत्व है जो चेतना रूप से सोचे या अचेतन अवस्था में व्यवहार की दिशा सुनिश्चित करने के लिए कार्य करता है।" (Motive is an effective-conative factor which operates in determining the direction of an individual's behaviour towarks an end or goal, consciously apprehended or unconscious.)

प्रेरणा के पक्ष

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रेरणा का आरम्भ किसी-न-किसी आवश्यकता (need) से होता है और प्रेरणा का अन्त लक्ष्य की प्राप्ति से होता है। प्रेरणा एक व्यापक शब्द होता है, जिसके अग्रलिखित तीन पक्ष होते हैं–

(1) आवश्यकता (Need)

(2) अन्तर्नोद (Drive)

(3) उद्दीपन (Incentive)

टास्क उदाहरण के साथ प्रेरणा के पक्षों का उल्लेख कीजिए।

(1) आवश्यकता (Need)– प्रत्येक प्राणी के जीवन को बनाए रखने के लिए उसकी कुछ मौलिक आवश्यकताएँ होती हैं, जिसकी पूर्ति होना आवश्यक है। जैसे–जल, वायु, भोजन, निद्रा आदि आवश्यकताओं की पूर्ति होना आवश्यकता है। यदि ये शारीरिक आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं होतीं तो प्राणी के शरीर में तनाव या असंतुलन पैदा हो जाता है जिसके फलस्वरूप वह क्रियाशील हो उठता है। उदहारणार्थ, भूख लगने पर एक व्यक्ति में तनाव और

नोट

क्रियाशीलता तब तक बनी रहती है,जब तक उसे भोजन नहीं मिलता। भोजन मिल जाने पर उसकी आवश्यकता पूरी हो जाती है और उसका तनाव और क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है। **बोरिंग और लैंगफील्ड** ने आवश्यकता की परिभाषा देते हुए कहा है- "आवश्यकताएँ प्राणियों के भीतर का तनाव हैं, जो कुछ उद्दीपनों (प्रोत्साहनों) या लक्ष्यों के सम्बन्ध में प्राणी के क्षेत्र को व्यवस्थित करने में प्रवृत्त करती हैं, जो उनकी प्राप्ति की ओर निर्देशित क्रिया को उत्तेजित करती हैं।" (A need is tension within an organism which tends to organise the field or organism with respect to certain incentives of goals and incite activity Dircted towards their attainment.)

इसी प्रकार अन्य मनोवैज्ञानिकों ने भी आवश्यकता को एक ऐसी दशा कहा है, जो किसी चीज की कमी या अभाव में अनुभव की जाती है। इस कमी को पूरा करने के लिए ही मनुष्य क्रियाशील रहता है। जैसे भोज्य पदार्थ की कमी को पूरा करने के लिए वह भोजन प्राप्त करने की चेष्टा करता है, पानी की पूर्ति करने के लिए वह पानी खोजता है। यहाँ पर भोज्य पदार्थ की कमी तथा पानी का अभाव क्रमशः भोजन तथा पानी की आवश्यकताएँ हैं।

नोट्स

प्रेरणा की शुरुआत किसी न किसी आवश्यकता से होती है यदि शारीरिक आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं तो प्राणी के मन में तनाव अथवा असंतुलन पैदा हो जाता है। जिसके फलस्वरूप वह क्रियाशील हो उठता है।

(2) आन्तर्नोद (drive)– प्राणी की आवश्यकता के कारण जो तनाव की अवस्था उत्पन्न होती है, उसे आन्तर्नोद या चालन कहते हैं। इस प्रकार आवश्यकता से अन्तर्नोद की उत्पत्ति होती है- जैसे जल की आवश्यकता से प्यास-चालक, भोजन की आवश्यकता से भूख-अन्तर्नोद (Hunger-drive)की उत्पत्ति होती है। भूख लगना,प्यास लगना एक आन्तरिक उत्तेजना है, जो व्यक्ति में तनाव पैदा करते हैं। भूख मिटाने और प्यास बुझाने के लिए व्यक्ति क्रिया करता है। इस प्रकार क्रिया करने के लिए प्रेरित करना अन्तर्नोद या चालन की मुख्य विशेषता है। अन्तर्नोद की परिभाषा मनोवैज्ञानिकों ने इस प्रकार दी है-

डेशियल-"आन्तर्नोद आदि शक्ति का मूल-स्रोत है जो मानव-वाणी को क्रियाशील बनाती है।" (Drive is original source of energy that activates the human organism.)

शेफर तथा अन्य के अनुसार-''अन्तर्नोद एक सुदृढ़ तथा अचल उत्तेजक है, जो किसी समायोजन की अनुक्रिया की माँग करता है।" (A drive is a strong persistent,stimulus that demands an adjustive response.)

(3) उद्दीपन (Incentive)– उद्दीपन बाह्य वातावरण की वस्तु है जो आवश्यकता (need) की पूर्ति करके, अन्तर्नोद या चालकों (Drives) की सन्तुष्टि करती है। उदहारणार्थ- भूख एक अन्तर्नोद है जिसे कि भोजन संतुष्ट करता है। इस प्रकार 'भूख चालन' (Hunger Drive) के लिए भोजन प्रोत्सहान या उद्दीपन (Incentive) है। **हिलगार्ड** के अनुसार- "उपयुक्त उद्दीपन की प्राप्ति से अन्तर्नोद की तीव्रता कम हो जाती है और व्यक्ति का मानसिक तनाव दूर हो जाता है।" (In general,an appropriate incentive is one that can reduce the intensity of a drive.)

आवश्यकता और अन्तर्नोद से व्यक्ति की आन्तरिक अवस्था का बोध होता है, जबकि उद्दीपन बाह्य वातावरण में विद्यमान (उपस्थित) रहता है। **बोरिंग और लैंगफील्ड** के शब्दों में, "प्रोत्सहान या उद्दीपन की परिभाषा एक वस्तु, एक स्थिति, या एक क्रिया के रूप में की जा सकती है जो व्यवहार को उद्दीप्त करती है, कायम रखती है और

निर्देशित करती है।" (An incentive may be defined as an objecet, a situation or an activity which excites, maintains and directs behaviour.)

नोट

आवश्यकता, अन्तर्नोद तथा उद्दीपन में सम्बन्ध

प्रेरणा के इन तीनों अंगों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। **हिलगार्ड** (Hillgard) ने प्रेरणा की आवश्यकता, अन्तर्नोद–उद्दीपन सूत्र (Need Drive Incentive Formula) द्वारा स्पष्ट किया है। यह सूत्र किस प्रकार कार्य करता रहता है, यह इन तीनों का अर्थ समझ लेने के बाद भली–भाँति स्पष्ट हो गया। **हिलगार्ड** ने इन तीनों के घनिष्ठ सम्बन्ध के विषय में लिखा है–"आवश्यकता, अन्तर्नोद को जन्म देती है। अन्तर्नोद बढ़े हुए तनाव की स्थिति है,जो कि क्रियाशीलता और प्रारिम्भक व्यवहार की ओर ले जाती है। उद्दीपन वातावरण की कोई वस्तु है, जो आवश्यकता को सन्तुष्ट करती है। इस प्रकार तृप्ति की क्रिया से अन्तर्नोद के तनाव को कम कर देती है।" (Need gives rise to Drive state is a Drive of heightened tension leading to activity and preparatory behaviour. The incentive is something in the external environment that satisfies the need and thus reduces the drive throgh consummatory activity.)

13.2 अभिप्रेरणाओं की उत्पत्ति (Origin of Motives)

मनुष्य का विकास परिपक्वन (Maturation),अभ्यास और सीखने की क्रिया पर निर्भर होता है। यही तत्व उसकी प्रेरणा की उत्पत्ति से सम्बन्धित है। कुछ कार्य प्राणी बिना सीखे परिपक्वन के कारण कर लेता है। इस प्रकार कुछ प्रेरणाओं की उत्पत्ति प्राकृतिक रूप से होती है। दूसरे प्रकार की प्रेरणाओं की उत्पत्ति अनुभवों और प्रयत्नों से होती है। ये सीखी हुई या आर्जित प्रेरणाएँ होती हैं। उदाहरणार्थ नवजात शिशु को भूख लगना एक ऐसी प्रेरणा है जो स्वाभाविक और बिना सीखी हुई है। भूख में आन्तरिक तनाव होता है। वास्तव में यह तनाव किसी कमी के कारण होता है। प्राणी इस तनाव का अनुभव करके उसे दूर करने का प्रयत्न करता है, फलस्वरूप प्रेरणा की उत्पत्ति होती है। "प्रेरणा की उत्पत्ति आन्तरिक तनाव के कारण होती है।" वयस्क–व्यक्ति की प्रेरणा कुछ अंश में मूल प्रवृत्यात्मक (Instinctive) और कुछ अंश में आर्जित या सीखी हुई होती है।

क्या आप जानते हैं प्रेरणाओं की उत्पत्ति शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए होती है। उदहारणार्थ- आरम्भ में भूख–प्यास की आवश्यकता को मिटाने के लिए प्रेरणा होती है। बाद में मनुष्य को सुख प्राप्त करने के लिए धन की अवश्यकता होती है। सुख प्राप्ति की इच्छा उसे धन–संचय की प्रेरणा देती है।

मनुष्य जिस सामाजिक पर्यावरण में रहता है उसमें उसे समाज, उसकी संस्कृति, नियमों और परम्पराओं के अनुसार व्यवहार करना सीखता है।

इस प्रकार प्रेरणा की उत्पत्ति का सम्बन्ध–(1) परिपक्वन, (2) आवश्यकता तथा आन्तरिक तनाव, और (3) पर्यावरण से है।

13.3 अभिप्रेरणाओं का विकास (Development of Motives)

अभिप्रेरणा का विकास धीरे–धीरे, आयु, अनुभव और आवश्यकताओं की वृद्धि एवं विकास के अनुसार होता है। प्रारम्भ में यह विकास केवल शारीरिक (Physiological) होता है और क्रमशः वह मानसिक या मनोवज्ञानिक

नोट

(Psychological) हो जाता है। जन्म के समय मनुष्य की कुछ प्राकृतिक आवश्यकताएँ होती हैं। प्रारम्भ में उसे भूख, प्यास, मल-मूत्र विसर्जन की आवश्यकता के कारण क्रिया तथा व्यवहार के कारण की प्रेरणा मिलती है और वह रोता या चिल्लाता है। धीरे-धीरे आयु और बढ़ने के साथ वह वातावरण पर नियंत्रण करना सीखता है, फलस्वरूप उसकी प्रेरणाओं के प्रति, उसके व्यवहार में अन्तर आता रहता है, बाल्यावस्था में मूल प्रवृत्ति और संवेगों के कारण बालक दूसरों से मिलने-जुलने और खेलने में आनन्द प्राप्त करता है। अत: इस आनन्द-प्राप्ति के लिए उसे विशेष प्रकार व्यवहार करने की प्रेरणा मिलती है। इसी प्रकार किशोरावस्था में भी अपनी आयु के विकास और विशेषताओं के फलस्वरूप शारीरिक, मानसिक और सामाजिक आवश्यताओं को पूरा करने के लिए प्रेरक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं और प्रेरणाओं का विकास क्रमश: होता है।

13.4 अभिप्रेरणा के कारण (Causes of Motive)

अभिप्रेरणा के निम्नलिखित दो कारण हैं-

(1) स्वाभाविक कारण।

(2) आर्जित कारण।

(1) स्वाभाविक कारण निम्नलिखित हैं-

(क) जीवित रहने की इच्छा से सम्बन्धित क्रियाएँ-जैसे भूख,प्यास आदि।

(ख) आत्मरक्षा की भावना।

(ग) सुख और आनन्द प्राप्त करने की भावना।

(घ) कष्ट-निवारण की भावना।

(ङ) प्रेम भावना (काम)।

(च) संवेग, मूल प्रवृत्तियाँ, विचार आदि।

(छ) इच्छा शक्ति।

(ज) अचेतन मन।

(2) आर्जित कारण निम्नलिखित हैं-

(क) सामाजिक आदर्श, स्थिति, सम्बन्ध और वातावरण।

(ख) आदत, संस्कार, रुचि।

(ग) स्थायीभाव, भावना-ग्रंथियाँ।

(घ) सांस्कृतिक एवं सामाजिक उपलब्धियाँ जैसे– विचार, भावना, शिक्षा।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सही विकल्प चुनिए–

1. "प्रेरणा कार्य को आरंभ करने, जारी रखने और नियमित करने की प्रक्रिया है।" अभिप्रेरणा की यह परिभाषा किसने दी है–

   (क) वुडवर्थ (Woodworth) (ख) लावेल (Lawell) (ग) गुड (Good)

2. "प्रेरक क्रिया एक ऐसी प्रवृत्ति है, जो अन्तर्नोद (Drive) तथा अनुकूल द्वारा समाप्त है? जाती है।" 'प्रेरक' की यह परिभाषा किसने दी है–

नोट

(क) गेट्स व अन्य (ख) शेफर तथा अन्य (ग) वुडवर्थ

3. "प्रेरक एक प्रभावशाली क्रियात्मक कारक है जो व्यक्ति के चेतना या अचेतन रूप से निर्धारित लक्ष्य या उद्देश्य की ओर ले जाने और व्यवहार की दशा निश्चित करने का कार्य है।" 'प्रेरक' की यह परिभाषा किसने दी है–

(क) ड्रेवर (Drever) (ख) थॉमसन (Thomson) (ग) गिलफोर्ड (Guilford)

अभिप्रेरणा के कार्य

गेट्स (Gates) के विचार के अनुसार प्राणी के प्रेरित व्यवहार के आधार पर आभिप्रेरणाओं के निम्नलिखत तीन प्रकार हैं-

(1) व्यवहार को शक्तिवान बनाना-अभिप्रेरणाएँ किसी कार्य हेतु व्यक्ति को शक्ति प्रदान करती हैं जिससे उसके अन्दर क्रियाशीलता उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ भूख या प्यास व्यक्ति के अन्दर मांसपेशीय तथा ग्रन्थीय प्रतिक्रिया को उत्पन्न करती हैं। मांसपेशियाँ और ग्रन्थियों के अन्त:स्राव व्यक्ति को ऐसी शारीरिक शक्ति प्रदान करती हैं कि वह क्रियाशील हो जाता है इसके अतिरिक्त अभिप्रेरणाएँ व्यक्ति के व्यवहार को दीर्घावधि के लिए स्थायित्व प्रदान करती हैं। **हेब** (Hebb) ने अपने अध्ययन से निष्कर्ष निकाला है कि अभिप्रेरित व्यवहार दक्षतापूर्ण तथा संगत होते हैं। पर्याप्त अभिप्रेरणा के अभाव में कार्य करने की शक्ति में कमी आ जाती है।

2. व्यवहार का चयन करना-अभिप्रेरणाएँ व्यक्ति को चयनित व्यवहार करने की क्षमता प्रदान करती हैं। प्रेरित व्यवहार एक विशिष्ट दिशा में संचालित होता है। अनेक सम्भावित व्यवहारों में से व्यक्ति उन उपयोगी व्यवहार का चयन करता है जिससे वह लक्ष्य की प्राप्ति कर सके अथवा आवश्यकता को सन्तुष्ट कर सके। अर्थात अभिप्रेरणाएँ व्यक्ति को किसी उत्तेजना विशेष के प्रति प्रतिक्रिया करने को तैयार करती हैं। अभिप्रेरणाएँ यह भी बताती हैं कि व्यक्ति किस अवस्था अथवा परिस्थिति में कैसा व्यवहार करे।

3. व्यवहार को संचालित करना-अभिप्रेरणाएँ व्यवहार को संचालित करने का कार्य करती हैं। वे व्यवहार का संचालन इस प्रकार करती हैं कि व्यवहार की दिशा संतुष्टि की ओर हो। यद्यपि लक्षित कार्य की तारतम्यता एवं परिस्थितियों की बाधापूर्ण संरचना के कारण प्रेरित व्यवहार का संचालन कठिन हो जाता है किन्तु अभिप्रेरणा की तीव्रता व्यक्ति के व्यवहार की तारतम्यता को बनाए रखती है और लक्ष्य पूर्ति के लिए संघर्ष में सफलता प्राप्त करने की दिशा में मार्ग-दर्शन करती है। एसी दशा में इस बात की आपेक्षा रहती है कि व्यक्ति का व्यवहार निर्धारित उद्देश्य प्राप्ति के पक्ष में हो तथा वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति का उपयोग उसी के लिए करे।

13.5 सारांश (Summary)

- मनुष्य स्वभाव से ही क्रियाशील प्राणी है वह सदा ही किसी कार्य में लगा रहता है और कोई-न-कोई व्यवहार करता रहता है।
- व्यक्ति के कार्य और व्यावहार को परिचालित करने वाली कुछ प्रेरक (Motives) शक्तियाँ हैं जो उसे विभिन्न परिस्थितियों में कार्य या व्यवहार करने की अभिप्रेरणा प्रदान करती हैं।
- हम किसी भी उत्तेजना को प्रेरणा कह सकते हैं, किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रेरणा एक आन्तरिक शक्ति है, जिसमें व्यक्ति अपने अन्दर से किसी कार्य को करने के लिए अभिप्रेरित (Motivated) होता है।

नोट

- मानव-व्यवहार के मूल में प्रेरक वृत्ति विद्यमान रहती है जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति कार्य करता है। उदाहरण द्वारा इसे इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है-भूख की अवस्था में पेट की दीवारों में संकुचन (Contraction) होता है, व्यक्ति अपने अन्दर तनाव का अनुभव करता है, और इस तनावपूर्ण स्थिति से छुटकारा प्राप्त करने के लिए वह खाद्य-पदार्थों की खोज करता है। उसकी खोज तब तक जारी रहती है जब तक वह खाने की वस्तु को प्राप्त करके अपनी भूख मिटा नहीं लेता। इस उदाहरण में भूख की स्थिति अथवा अवस्था यहाँ पर प्रेरणा है और यह भूख की स्थिति जिस कारण से उत्पन्न होती है उसे भूख या प्रेरक (Hunger Motive) कहते हैं।
- मनुष्य का विकास परिपक्वन (Maturation),अभ्यास और सीखने की क्रिया पर निर्भर होता है। यही तत्व उसकी प्रेरणा की उत्पत्ति से सम्बन्धित है। कुछ कार्य प्राणी बिना सीखे परिपक्वन के कारण कर लेता है। इस प्रकार कुछ प्रेरणाओं की उत्पत्ति प्राकृतिक रूप से होती है। दूसरे प्रकार की प्रेरणाओं की उत्पत्ति अनुभवों और प्रयत्नों से होती है। ये सीखी हुई या आर्जित प्रेरणाएँ होती हैं। उदाहरणार्थ नवजात शिशु को भूख लगना एक ऐसी प्रेरणा है जो स्वाभाविक और बिना सीखी हुई है। भूख में आन्तरिक तनाव होता है। वास्तव में यह तनाव किसी कमी के कारण होता है। प्राणी इस तनाव का अनुभव करके उसे दूर करने का प्रयत्न करता है, फलस्वरूप प्रेरणा की उत्पत्ति होती है। "प्रेरणा की उत्पत्ति आन्तरिक तनाव के कारण होती है।" वयस्क-व्यक्ति की प्रेरणा कुछ अंश में मूल प्रवृत्यात्मक (Instinctive) और कुछ अंश में आर्जित या सीखी हुई होती है।
- अभिप्रेरणा का विकास धीरे-धीरे, आयु, अनुभव और आवश्यकताओं की वृद्धि एवं विकास के अनुसार होता है। प्रारम्भ में यह विकास केवल शारीरिक (Physiological) होता है और क्रमशः वह मानसिक या मनोवैज्ञानिक (Psychological) हो जाता है।
- बाल्यावस्था में मूल प्रवृत्ति और संवेगों के कारण बालक दूसरों से मिलने-जुलने और खेलने में आनन्द प्राप्त करता है। अतः इस आनन्द-प्राप्ति के लिए उसे विशेष प्रकार व्यवहार करने की प्रेरणा मिलती है। इसी प्रकार किशोरावस्था में भी अपनी आयु के विकास और विशेषताओं के फलस्वरूप शारीरिक, मानसिक और सामाजिक आवश्यताओं को पूरा करने के लिए प्रेरक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं और प्रेरणाओं का विकास क्रमशः होता है।

13.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **अभिप्रेरणा**–प्रयोजन, कारण।
2. **उद्दीपन**–उत्तेजित करना, जगाना।

13.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. अभिप्रेरणा से आप क्या समझते हैं?
2. प्रेरणा के पक्षों पर प्रकाश डालिए।
3. अभिप्रेरणाओं की उत्पत्ति एवं विकास को सविस्तार समझाइए।
4. अभिप्रेरणा के क्या कारण हैं? अभिप्रेरणा के कार्य समझाइए?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment) नोट

1. (ग) 2. (ख) 3. (क)

13.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
2. मनोविज्ञान–*डॉ. सरयू प्रसाद, आगरा बुक स्टोर, आगरा।*
3. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
4. मनोविज्ञान–*मानव व्यवहार का अध्ययन–ब्रजकुमार मिश्र, पी.एच.आई. लर्निंग, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 14: बुद्धि का स्वरूप और सिद्धान्त (Nature and Theories of Intelligence)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

14.1 बुद्धि का स्वरूप और परिभाषा (Nature and Definition of Intelligence)

14.2 बुद्धि की विशेषताएँ (Characteristics of Intelligence)

14.3 बुद्धि और ज्ञान में अन्तर (Difference between Intelligence and Knowledge)

14.4 बुद्धि के प्रकार (Kinds of Intelligence)

14.5 सारांश (Summary)

14.6 शब्दकोश (Keywords)

14.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

14.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- बुद्धि के स्वरूप को समझने में।
- बुद्धि की विशेषताओं को समझने में।
- बुद्धि और ज्ञान में अंतर स्पष्ट करने में।
- बुद्धि के प्रकार को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

दैनिक जीवन में बुद्धि एक सामान्य शब्द है जिसका प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है। वैयक्तिक भिन्नता का विस्तृत अध्ययन करते समय हम यह देखेंगे कि कोई दो व्यक्ति बिल्कुल समान नहीं होते, कुछ तीव्र बुद्धि के होते हैं तो कुछ मंद बुद्धि के कुछ सुस्त, कुछ समस्याओं को शीघ्र हल कर लेते हैं और कुछ बहुत देर बाद, उनमें परस्पर भिन्नता के कई कारण होते हैं, जिसमें एक बुद्धि महत्त्वपूर्ण है। बालक की मानसिक योग्यता पर उसकी बुद्धि का प्रभाव पड़ता है। यह एक सर्वमान्य सत्य है कि बुद्धिमान व्यक्ति को जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त होती है, किन्तु दूसरी तरफ इसके विकास के लिए उपयुक्त वातावरण की भी आवश्यकता होती है। बुद्धि में कोई एक गुण नहीं होता है बल्कि बुद्धि अनेक गुणों का समुच्चय है, अत: किसी भी व्यक्ति को बुद्धिमान अथवा बुद्धिहीन तब

नोट

तक कहना चाहिए, जब तक कि उसके व्यवहार में निहित बुद्धि के अनेक गुणों का परीक्षण न किया जाए। बुद्धि को प्रत्यक्ष रूप से देखा नहीं जा सकता, अत: हम कह सकते हैं कि बुद्धि एक परिकल्पनात्मक शक्ति है। बुद्धि का बहुधा उपयोग व्यक्ति विभिन्न समस्याओं को समझने और उसका अधिगम करने में करता है। मानसिक विकास के लिए उसकी मानसिक क्षमता तथा बौद्धिक स्तर को जानना आवश्यक है। इस दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए कि बुद्धि क्या है?

14.1 बुद्धि का स्वरूप और परिभाषा (Nature and Definition of Intelligence)

बुद्धि क्या है? इस प्रश्न के संबंध में मनोवैज्ञानिकों में मतभेद है। बुद्धि के स्वरूप का वर्णन विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने विचारों के अनुसार किया है। अत: मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गयी परिभाषाओं का अध्ययन करके ही हम बुद्धि के स्वरूप को समझ सकते हैं। मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गयी परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

1. डब्ल्यू. स्टर्न के अनुसार (W. Stern)– "बुद्धि एक सामान्य योग्यता है जिसके द्वारा व्यक्ति नयी परिस्थितियों में अपने विचारों को जान-बूझकर समायोजित कर लेता है।" (Intelligence is a general capacity of an individual consciously to adjust his thinking to new requirements.)

2. सी. बर्ट के अनुसार (C. Burt)– "बुद्धि सापेक्ष रूप में नवीन परिस्थितियों में अभियोजित करने की जन्मजात योग्यता है।" (Intelligence is the innate capacity to adapt relatively to new situations.)

नोट्स बुद्धि को प्रत्यक्ष रूप से देखा नहीं जा सकता, बुद्धि एक परिकल्पनात्मक शक्ति है।

3. बिने के अनुसार (A. Binet)– "किसी समस्या को समझना, उसके विषय में तर्क करना तथा किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचना बुद्धि की आवश्यक क्रियाएँ हैं।" (To judge well, to comprehend well, to reason well, these are the essential activities of intelligence.)

4. गाल्टन (F. Galton)– "बुद्धि पहचानने तथा सीखने की शक्ति है।" (Intelligence is the power of recognition and learning.)

5. टरमैन (L. Terman)– "अमूर्त वस्तुओं के विषय में सोचने की योग्यता बुद्धि है।" (Intelligence is the capacity to carry on abstract thinking.)

6. थार्नडाइक के अनुसार (E. Thorndike)– "वास्तविक परिस्थितियों के अनुसार अपेक्षित प्रतिक्रिया करने की योग्यता बुद्धि है।" (Intelligence is the power of good response from the point of view of truth or fact.)

7. बकिंघम के अनुसार (Bukingham)– "सीखने की शक्ति ही बुद्धि है।" (Intelligence is the ability to learn.)

8. मैक्डूगल के अनुसार (W. Mc Dougall)– "बुद्धि अतीत के अनुभवों के आधार पर जन्मजात प्रवृत्ति को सुधारने की योग्यता है।" (Intelligence is the capacity to improve upon innate tendency in the light of previous experience.)

नोट

9. वैल्स (Wells)– "नवीन परिस्थितियों में समायोजन की योग्यता की बुद्धि है।" (Intelligence is the ability of adjusting to new situations.)

10. स्पीयरमैन (Spearman)– "व्यक्ति की सामान्य योग्यता का नाम ही बुद्धि है।" (Intelligence is the power of attention.)

11. स्टाउट (Stout)– "सतर्क रहने की शक्ति का नाम ही बुद्धि है।" (Intelligunce is the general ability of the individueal.)

12. वुडरो (Woodrow)– "बुद्धि, ज्ञान का अर्जन करने की क्षमता है।" (Intelligence is an acquiring capacity.)

13. एबिंगहैंस (Ebbinghans)– "बुद्धि विभिन्न भागों को मिलाने वाली शक्ति है।" (Intelligence is the power of combining parts.)

14. वेश्लर (Wechsler)– "अभिप्राय युक्त करने, तर्कयुक्त चिन्तन करने तथा पर्यावरण के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से व्यवहार करने की शक्ति व्यक्ति की सम्पूर्ण अथवा सार्वभौम क्षमता ही बुद्धि है।" (Intelligence is the aggregate or global capacity of the individual to act purposefully, to think, rationally and to deal effectively with his environment.)

15. गैरेट (Garret)– "बुद्धि ऐसी समस्याओं के हल करने की योग्यता है जिनमें ज्ञान और प्रतीकों के समझने और प्रयोग करने की आवश्यकता है, जैसे–शब्द, अर्थ, रेखाचित्र, समीकरण और सूत्र।" (The ability demanded in the solution of problems which require the comprehension and use of symbols, *i.e.* words, numbers, diagrams, equations, formulas.)

16. वुडवर्थ (Wodworth)– "बुद्धि कार्य करने की एक विधि" (Intelligence is a way of acting)

14.2 बुद्धि की विशेषताएँ (Characteristics of Intelligence)

मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गयी परिभाषाओं के आधार पर बुद्धि की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

1. बुद्धि एक जन्मजात शक्ति है। यह वंशानुक्रम से प्राप्त होती है।
2. बुद्धि वह शक्ति है जिसके द्वारा व्यक्ति कठिनाइयों को दूर करके परिस्थिति के अनुसार अपने व्यवहार का संगठन करता है।
3. बुद्धि सीखने की क्षमता है।
4. बुद्धि अतीत अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता है।
5. बुद्धि अमूर्त चिन्तन (Abstract Thinking) की योग्यता है अर्थात् बुद्धि के द्वारा जो प्रत्यक्ष नहीं है, उसके बारे में सोच-विचार कर सकते हैं।
6. बुद्धि विभिन्न योग्यताओं का समूह है।
7. बुद्धि सभी प्रकार की विशिष्ट योग्यताओं का निचोड़ (सार) है।
8. बुद्धि द्वारा अर्जित ज्ञान को नयी परिस्थितियों में उपयोग किया जा सकता है।
9. बुद्धि और ज्ञान में अन्तर होता है।
10. लिंग-भेद के कारण बुद्धि में अंतर नहीं दिखाई पड़ता।

नोट

11. बुद्धि में आत्म-निरीक्षण की शक्ति होती है। व्यक्ति द्वारा किये गये कर्मों और विचारों की आलोचना बुद्धि स्वयं करती है।
12. बुद्धि किसी समस्या को समझने का प्रयत्न करती है और समझकर मस्तिष्क को निर्णय करने के लिए प्रेरित करती है।

बुद्धि को प्रभावित करने वाले कारक-बुद्धि को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं–

चित्र 14.1

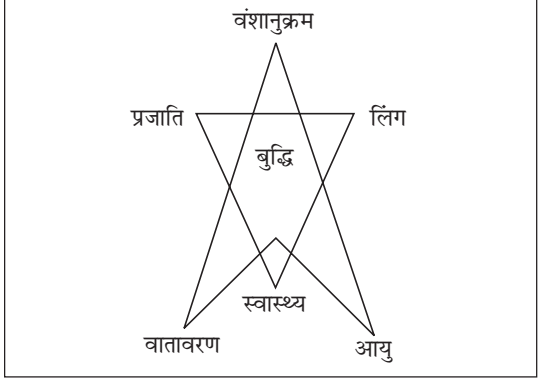

1. वंशानुक्रम (Heredity)– इस संदर्भ में अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अपने अलग-अलग प्रयोग किये और यह निष्कर्ष निकाला कि वंशानुक्रम बुद्धि को प्रभावित करता है। जैसे-फ्रीमैन ने यह स्वीकार किया कि बुद्धि का वंशानुक्रम से बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। **गैसेल और गाल्टन** (Gesell & Galton) ने अपने प्रयोग से यह निष्कर्ष निकाला कि बुद्धि पर वंशानुक्रम का अधिक प्रभाव पड़ता है न कि वातावरण का। **पीयर्सन** (Pearson) ने अपने अध्ययन के आधार पर यह सिद्ध किया कि बुद्धिमान मां-बाप के बच्चे भी एक बहुत बड़ी सीमा तक बुद्धिमान होते हैं। इसके अतिरिक्त श्वीसिंगर (Schvesinger), डासन (Dason), न्यूमैन (Newman) आदि मनोवैज्ञानिकों ने भी यह स्वीकार किया कि बुद्धि पर वंशानुक्रम का बहुत प्रभाव पड़ता है। अत: यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारक है।

वातावरण (Environment)– वातावरण के सम्बन्ध में भी अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रयोग किये। उनका मानना है कि बुद्धि वंशानुक्रम की अपेक्षा वातावरण से अधिक प्रभावित होती है। कोडक (Kodak) ने बुद्धि पर वातावरण के प्रभाव को जानने के लिए अस्सी ऐसी माताओं का अध्ययन किया जिनके बच्चे का पालन-पोषण अच्छे वातावरण में किया गया था। **वेलमैन** (Wellman), लीही (Leahy), और स्कील (Skeel) ने भी अपने योग के आधार पर यह सिद्ध किया कि यदि बच्चों को अच्छा वातावरण दिया जाए तो उनकी बुद्धि में काफी परिवर्तन लाया जा सकता है। इस विचारधारा के मनोवैज्ञानिक बुद्धि को वातावरण से अधिक प्रभावित होने का समर्थन करते हैं।

आयु (Age)– बुद्धि और आयु का सम्बन्ध भी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारक माना जाता है। इस संदर्भ में भी अनेक प्रयोग और अध्ययन किये गये हैं, जैसे–टरमैन (Terman), माइल्स और माइल्स (Miles & Miles), जॉन्स (Jones), थार्नडाइक (Throndike), स्पीयरमैन (Spearman), आदि। इन सभी के प्रयोगों के आधार पर यह परिणाम सामने आया कि सामान्यत: बुद्धि 16 से 20 वर्ष की आयु तक ही बढ़ती है, परन्तु भारत में बुद्धि का विकास 25 वर्ष तक होना माना जाता है।

प्रजाति (Race)– मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि पर प्रजाति के प्रभाव को भी अपने अध्ययन में उतारा और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रजाति भेदों का बुद्धि पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। सभी प्रजातियों में तीन वर्ग- तीव्र, सामान्य

नोट

और निम्न बुद्धि के लोग पाए जाते हैं। उनका प्रतिशत कम या अधिक अवश्य हो सकता है, परन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों ने स्वीकार किया कि प्रजाति का बुद्धि पर प्रभाव पड़ता है।

लिंग (Sex)– लिंग का बुद्धि पर प्रभाव पड़ता है या नहीं, इस सम्बन्ध में भी अनेक प्रयोग किये गये। मनोवैज्ञानिक विट्टी (Witty) ने स्वीकार किया कि लिंग भेद का बुद्धि-लब्धि में कोई विशेष अन्तर नहीं होता, परन्तु यदि लड़कियों को उचित वातावरण न दिया जाए तो उनका चिन्तन पक्ष पिछड़ जाता है और जिनको स्वतंत्र वातावरण भी नहीं मिलता, वे भी लड़कों की अपेक्षा कम बुद्धि-लब्धि ही होती हैं। **मैकमीकेन** (MacMeeken 1939) ने एक अध्ययन में 875 बच्चों की बुद्धि का मापन किया, यह सभी बच्चे स्काटलैण्ड के थे। इन बच्चों की बुद्धि का मापन स्टैनफोर्ड बिनेट परीक्षण द्वारा किया गया। अध्ययनों के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला गया कि लड़कों का औसत I.Q. 100.5 तथा लड़कियों की औसत I.Q. 99.7 थी। दोनों का मध्यमान I.Q. और S.D. का क्रमशः 15. 9 तथा 15.2 था। कुछ मनोवैज्ञानिकों का यह भी विचार है कि लड़कियों की I.Q. 6 वर्ष की अवस्था से 14 साल तक के लड़कों की अपेक्षा अधिक रहती है। इसके बाद 16 वर्ष की अवस्था पर दोनों की बुद्धि-लब्धि तथा इस आयु के बाद लड़कों की बुद्धि-लब्धि बढ़ जाती है।

स्वास्थ्य (Health)– जैसा कि कहा जाता है कि 'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है।' दैनिक जीवन के अनुभवों से यह महसूस किया गया है कि स्वास्थ्य जितना ही अच्छा होता है, बच्चे की बुद्धि का विकास उतना ही अच्छा होता है। अतः स्वास्थ्य भी व्यक्ति की बुद्धि प्रभावित करता है।

क्या आप जानते हैं विभिन्न मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि सामान्यतः बुद्धि 16 से 20 वर्ष की आयु तक ही बढ़ती है, परन्तु भारत में बुद्धि का विकास 25 वर्ष तक होना माना जाता है।

14.3 बुद्धि और ज्ञान में अन्तर (Difference between Intelligence and Knowledge)

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बुद्धि और ज्ञान में निम्नलिखित अन्तर है–

1. बुद्धि वंशानुक्रम द्वारा प्राप्त एक जन्मजात शक्ति है, जबकि ज्ञान अर्जित शक्ति है। ज्ञानार्जन वातावरण में होता है।
2. बुद्धि स्थिर होती है, ज्ञान अर्जित करने से बढ़ता है। बुद्धि घटती या बढ़ती नहीं, किन्तु ज्ञान बढ़ सकता है।
3. अधिक बुद्धि से ज्ञान का विकास हो सकता है, किन्तु अधिक ज्ञान से बुद्धि का विकास नहीं हो सकता।
4. एक व्यक्ति विद्वान् हो सकता है, किन्तु आवश्यक नहीं कि वह बुद्धिमान भी हो। इसी प्रकार यह आवश्यक नहीं है कि जो बुद्धिमान होगा वह विद्वान् भी होगा।
5. बहुत-सी बातों को जानना ज्ञान है, किन्तु उनका उपयोग करना बुद्धि है।
6. मनोवैज्ञानिक **रॉस** ने कहा है कि "बुद्धि लक्ष्य है और ज्ञान उस सीमा तक पहुँचने का केवल एक साधन है।"
7. मनोवैज्ञानिक **बेलार्ड** ने कहा है कि "बुद्धि वह मानसिक योग्यता है जो कि ज्ञान, रुचि एवं आदत रूपी साधनों से नापी जाती है।"
8. "सांसारिक जीवन में प्रयोग लाने योग्य 'ज्ञान' या 'विचार' ही बुद्धि है।" ये विचार एडम्स महोदय ने व्यक्त किये हैं।

नोट

9. यदि व्यक्ति की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है तो उसका ज्ञान समाप्त हो जाता है।
10. बुद्धिमान व्यक्ति कठिनाइयों का सामना सरलतापूर्वक कर सकता है, जबकि ज्ञानी व्यक्ति ऐसा करने में असमर्थ हो सकता है।

टास्क बुद्धि और ज्ञान के संदर्भ में जन्मजात और अर्जित का अर्थ समझाइए।

14.4 बुद्धि के प्रकार (Kinds of Intelligence)

मनोवैज्ञानिक थॉर्नडाइक ने बुद्धि को कई शक्तियों का समूह माना है। इस आधार पर उन्होंने बुद्धि के निम्नलिखित तीन प्रकार बताये हैं–

1. अमूर्त्त बुद्धि (Abstract Intelligence)
2. सामाजिक बुद्धि (Social Intelligence)
3. गामक या यांत्रिक बुद्धि (Motor or Mechanical Intelligence)

1. **अमूर्त्त बुद्धि–** इस बुद्धि द्वारा सूक्ष्म भावों की जानकारी होती है। कवि, साहित्यकार, चित्रकार आदि भावों को इसी बुद्धि के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। इस प्रकार की बुद्धि में शब्द, अंक एवं प्रतीकों का प्रयोग अधिक किया जाता है। यह पठन की सीखने की प्रक्रिया है। उन समस्याओं को हल करने की भी प्रक्रिया है जिनमें शब्द एवं प्रतीकों (Symbols) का इस्तेमाल किया जाता है। इसलिए शब्द एवं प्रतीकों के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की कला अमूर्त्त या मौखिक बुद्धि की देन है। विद्यालय में पठन, गणित, भूगोल, इतिहास एवं ऐसे ही विषयों में सफलता के लिए अमूर्त्त बुद्धि का विकास किया जाना आवश्यक है। नयी योजना, नया आविष्कार, नया चिन्तन इसी बुद्धि के सहारे होता है।

अमूर्त्त बुद्धि का परीक्षण तीन प्रकार से किया जा सकता है–

1. आकांक्षा का स्तर– व्यक्ति की आकांक्षा के स्तर का मापन करने से हमें उस व्यक्ति की अमूर्त बुद्धि का पता चलता है। जिस व्यक्ति की आकांक्षा का स्तर जितना ऊँचा होगा, उसकी अमूर्त्त बुद्धि भी उतनी ही तीव्र होगी।

2. विभिन्न प्रकार के कार्य करना– जो व्यक्ति अनेक प्रकार के कार्य करते हैं, उनके कार्य करने की क्षमता को अमूर्त्त बुद्धि के विषय में जाना जा सकता है।

3. कार्य करने की गति– जो व्यक्ति अमूर्त्त कार्यों को जितना अधिक गति से करता है, उसकी अमूर्त्त बुद्धि उसी के अनुसार कम या अधिक होगी।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

दिए गए कथन के सामने सही (✓) और गलत (×) का निशान लगाइए–

1. मनोवैज्ञानिक 'गाल्टन' ने बुद्धि के विषय में कहा है–"बुद्धि पहचानने तथा सीखने की शक्ति है।" ☐
2. बुद्धि प्रयास से अर्जित की जा सकती है। ☐
3. भारत में बुद्धि का विकास 40 वर्ष तक होता है। ☐
4. बुद्धि जन्मजात तथा ज्ञान अर्जित शक्ति है। ☐

नोट

2. सामाजिक बुद्धि– इस बुद्धि का संबंध सामाजिक अनुकूलन की योग्यता से है जिसकी सहायता से व्यक्ति अपने को समाज के अनुकूल व्यवस्थित कर लेता है। सामाजिक बुद्धि के कारण, व्यक्ति दूसरों को अपने व्यवहार से प्रभावित कर लेता है। इस प्रकार का व्यक्ति प्रसन्न, मिलनसार तथा सामाजिक कार्यों में रुचि लेता है। सामाजिक बुद्धि के कारण ही व्यक्ति समाज में सफलतापूर्वक जीवन व्यतीत करता है। इस प्रकार की बुद्धि वाले व्यक्ति, व्यवसायी, कूटनीतिज्ञ और सामाजिक कार्यकर्त्ता होते हैं।

3. यांत्रिक बुद्धि– यांत्रिक बुद्धि का तात्पर्य उस शक्ति या योग्यता से है जिसकी सहायता से व्यक्ति अपने को यंत्रों या भौतिक पदार्थों से संबंधित परिस्थितियों के साथ सुव्यवस्थित कर लेता है। जिन बालकों में यह शक्ति होती है, वह उनमें प्रारम्भिक काल से ही दिखाई पड़ने लगती है। वे अपने खिलौने, घड़ी या साइकिल आदि को खोलकर ठीक करने का प्रयास करते हैं। ऐसे बालक आगे चलकर कुशल, कारीगर, मिस्त्री इंजीनियर आदि बनते हैं। यांत्रिक बुद्धि वाले बालक खेलकूद तथा अन्य शारीरिक कार्यों में भी कुशल होते हैं।

14.5 सारांश (Summary)

- दैनिक जीवन में बुद्धि एक सामान्य शब्द है जिसका प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है। वैयक्तिक भिन्नता का विस्तृत अध्ययन करते समय हम यह देखेंगे कि कोई दो व्यक्ति बिल्कुल समान नहीं होते, कुछ तीव्र बुद्धि के होते हैं तो कुछ मंद बुद्धि के कुछ सुस्त, कुछ समस्याओं को शीघ्र हल कर लेते हैं और कुछ बहुत देर बाद, उनमें परस्पर भिन्नता के कई कारण होते हैं, जिसमें एक बुद्धि महत्त्वपूर्ण है। बालक की मानसिक योग्यता पर उसकी बुद्धि का प्रभाव पड़ता है। यह एक सर्वमान्य सत्य है कि बुद्धिमान व्यक्ति को जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त होती है, किन्तु दूसरी तरफ इसके विकास के लिए उपयुक्त वातावरण की भी आवश्यकता होती है। बुद्धि में कोई एक गुण नहीं होता है बल्कि बुद्धि अनेक गुणों का समुच्चय है।
- बुद्धि के स्वरूप का वर्णन विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने विचारों के अनुसार किया है।
- बुद्धि की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं– बुद्धि एक जन्मजात शक्ति है। यह वंशानुक्रम से प्राप्त होती है, बुद्धि अतीत अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता है, बुद्धि अमूर्त चिन्तन (Abstract Thinking) की योग्यता है अर्थात् बुद्धि के द्वारा जो प्रत्यक्ष नहीं है, उसके बारे में सोच-विचार कर सकते हैं।
- बुद्धि को प्रभावित करने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण कारक हैं– वंशानुक्रम (Heredity), वातावरण (Environment), आयु (Age), प्रजाति (Race), लिंग (Sex), स्वास्थ्य (Health)
- थॉर्नडाइक ने बुद्धि को कई शक्तियों का समूह माना है। इस आधार पर उन्होंने बुद्धि के निम्नलिखित तीन प्रकार बताये हैं–

1. अमूर्त्त बुद्धि (Abstract Intelligence)
2. सामाजिक बुद्धि (Social Intelligence)
3. गामक या यांत्रिक बुद्धि (Motor or Mechanical Intelligence)

14.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **अर्जितशक्ति**–संग्रहित शक्ति

14.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

नोट

1. बुद्धि का स्वरूप समझाइए।
2. बुद्धि की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. बुद्धि को प्रभावित करने वाले कारक कौन-कौन-से हैं? विस्तार से समझाइए।
4. बुद्धि और ज्ञान में अंतर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (✓) 2. (×) 3. (×) 4. (✓)

14.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. मनोविज्ञान–*डॉ. सरयू प्रसाद, आगरा बुक स्टोर, आगरा।*
2. मनोविज्ञान–*मानव व्यवहार का अध्ययन–ब्रजकुमार मिश्र, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
3. बच्चों में शिक्षा का महत्त्व एवं जानकारियाँ–*सीमा चोपड़ा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
4. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 15: बुद्धि-परीक्षण (Intelligence-Tests)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

15.1 बुद्धि-परीक्षण का इतिहास (History of Intelligence Tests)

15.2 बुद्धि-परीक्षणों के प्रकार (Kinds of Intelligence Tests)

15.3 भारत में बुद्धि-परीक्षा (Intelligence Testing in India)

15.4 बुद्धि-मापन की विधि (Method of Measuring Intelligence)

15.5 बुद्धि-लब्धि (Intelligence Quotient)

15.6 बुद्धि-परीक्षणों की उपयोगिता (Utility of Intelligence Tests)

15.7 सारांश (Summary)

15.8 शब्दकोश (Keywords)

15.9 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

15.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- बुद्धि परीक्षण के इतिहास को समझने में।
- बुद्धि परीक्षण के प्रकारों को जानने में।
- भारत में बुद्धि परीक्षण को जानने में।
- बुद्धि-मापन विधि, बुद्धि-लब्धि एवं बुद्धि परीक्षण की उपयोगिता को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

जिस प्रकार दो व्यक्ति रूप-रंग, कद-काठी, भार और स्वास्थ्य आदि में भिन्न दिखाई देते हैं, उसी प्रकार उनकी मानसिक योग्यता में भी भिन्नता होती है। शिक्षा के क्षेत्र में मानसिक योग्यता में भिन्नता का अध्ययन करना महत्त्वपूर्ण है। छात्रों की मानसिक योग्यता की भिन्नता को ध्यान में रखकर अध्यापकों को अपने शिक्षण कार्य को नियोजित

नोट

तथा कक्षा को विभिन्न वर्गों में विभाजित करना पड़ता है। छात्रों का मानसिक योग्यता या क्षमता में अन्तर बुद्धि के कारण होता है।

शिक्षा में व्यक्तिगत भिन्नताओं का अध्ययन करना आवश्यक है। व्यक्तिगत भिन्नताओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कई विधियों का प्रयोग किया जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तिगत भिन्नताओं को मापने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के परीक्षण बनये हैं। इनमें बुद्धि का मापन करने के लिए बुद्धि परीक्षाओं का निर्माण किया गया है। बुद्धि परीक्षाएँ शिक्षा की बहुत-सी समस्याओं का समाधान करने में सहायता देती हैं, अत: इनके विषय में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है।

15.1 बुद्धि-परीक्षण का इतिहास (History of Intelligence Tests)

बुद्धि के अर्थ, स्वभाव, प्रकार और सिद्धांतों की विवेचना करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि मनोवैज्ञानिक बुद्धि को सीखने की योग्यता, चिन्तन की योग्यता तथा समायोजन की योग्यता के रूप में परिभाषित करते हैं।

बुद्धि और उसके आपस का श्रेय वैयक्तिक भेदों को है। 1796 में ग्रीनविच की ज्योतिष प्रयोगशाला में किनर ब्रुक नामक व्यक्ति सहायक पर्यवेक्षक नियुक्त हुआ। वह दूरदर्शी यंत्रों की सहायता से तारा ग्रहों की गति का अध्ययन तथा समय का लेखन करता था। उसकी गति धीमी थी। अत: उसे नौकरी से निकल दिया गया। कालान्तर में ज्योतिषियों ने इस घटना पर विचार किया तथा निष्कर्ष निकाला कि प्रत्येक व्यक्ति में योग्यता तथा क्षमता भिन्न होती है। इसलिए उन्होंने वैयक्तिक समीकरण (Equation) के विचार को विकसित किया।

आधुनिक काल में बुद्धि-परीक्षण के संबंध में वैज्ञानिक अध्ययन यूरोप में आरंभ हुआ। सन् 1879 ई. में जर्मनी के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **वुन्ट** (Wundt) ने मनोविज्ञान की प्रथम प्रयोगशाला स्थापित की। इस प्रयोगशाला में बुद्धि की परीक्षा वैज्ञानिक आधार पर की जाती थी। यहाँ बुद्धि का मापन यंत्रों के द्वारा किया जाता था। वुन्ट के कार्यों से प्रोत्साहित होकर अन्य देशों के मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि-परीक्षण से संबंधित कार्य करना आरंभ कर दिया। इस संबंध में फ्रांस के **अल्फ्रेड बिने** (Alfred Binet) तथा अमेरिका के **थार्नडाइक** एवं **टरमैन** (Thornidike and Terman) ने उल्लेखनीय कार्य किये हैं। अन्य मनोवैज्ञानिकों में **गाल्टन** (Galton), **कैटेल** (Cattell), **पीयरसन** (Pearson) आदि विद्वानों ने भी अनेक बुद्धि-परीक्षणों का निर्माण किया है, किन्तु ये परीक्षण साधारण मानसिक क्रियाओं को मापते थे इसलिए इन्हें बुद्धि-परीक्षण नहीं कहा जा सकता। इस कार्य में सबसे पहले और ठोस कदम उठाने वाले मनोवैज्ञानिक **अल्फ्रेड बिने** थे। बिने ने सन् 1950 ई. में मनोवैज्ञानिक साइमन (Simon) की सहायता से भिन्न-भिन्न आयु के बालकों की बुद्धि-परीक्षण के लिए प्रश्नावलियाँ तैयार कीं, जिसे **'बिने-साइमन बुद्धि मापन'** (Binet-Simon Scale) कहा गया है। बिने साइमन परीक्षणों को विभिन्न देशों में मान्यता दी गयी। इसके बाद 1908 ई. के बाद अमेरिका तथा यूरोप में बिने साइमन स्केल का सुधार किया गया। अमेरिका में **टरमैन** ने सन् 1913–16 के बीच बिने साइमन स्केल का संशोधन किया और इसका नाम **स्टैनफोर्ड बिने स्केल** रखा। सन् 1937 में टरमैन ने **मैरिल** (Merril) की सहायता से इसमें फिर कुछ सुधार किया और इसका नाम **टरमैन मैरिल स्केल** रखा। इंग्लैण्ड तथा अमेरिका में बालकों के बुद्धि-मापन के लिए इन्हीं परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। भारत में भी मनोविज्ञानशाला, इलाहाबाद ने भारतीय बालकों के लिए बिने साइमन परीक्षणों का संशोधन किया है। भारत में **डॉ. सोहनलाल, डॉ. जलोटा, पं. लज्जाशंकर झा** तथा **डॉ. भाटिया** आदि ने विभिन्न-परीक्षण तैयार किये हैं।

15.2 बुद्धि-परीक्षणों के प्रकार (Kinds of Intelligence Tests)

बुद्धि का मापन करने के लिए अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अनेक बुद्धि-परीक्षण बनाए हैं। बुद्धि-परीक्षण के इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि **बिने** (Binet) के पूर्व भी अनेक बुद्धि-परीक्षण तैयार किये गये थे जिनमें कैन्टल का

नोट

बुद्धि-परीक्षण भी था। किन्तु बिने ने साइमन (Simon) की सहायता से 1905 में एक बुद्धि-परीक्षण तैयार किया, जिसका एक वैज्ञानिक आधार था और जो सर्वप्रथम ख्याति प्राप्त बुद्धि-परीक्षण के रूप में विभिन्न देशों में प्रयोग में लाया गया। यद्यपि कि इसमें कई सुधार कर इसे नया रूप दिया गया, किन्तु इसकी तुलना में अनेक बुद्धि-परीक्षण तैयार किये जाने लगे। आज बुद्धि मापन के लिए अनेक बुद्धि-परीक्षण उपलब्ध हैं। यदि हम बुद्धि-परीक्षणों के प्रकारों पर दृष्टि डालें तो उन्हें दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

(क) वैयक्तिक तथा सामूहिक बुद्धि-परीक्षण

(ख) शाब्दिक तथा अशाब्दिक बुद्धि-परीक्षण

उपर्युक्त दोनों वर्गों के मिश्रण से बुद्धि परीक्षणों को निम्नलिखित चार वर्गों में रखा जा सकता है–

1. वैयक्तिक शाब्दिक बुद्धि-परीक्षण
2. वैयक्तिक अशाब्दिक बुद्धि-परीक्षण
3. सामूहिक शाब्दिक बुद्धि-परीक्षण
4. सामूहिक अशाब्दिक बुद्धि-परीक्षण

बुद्धि-परीक्षणों के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख करने से पहले उपर्युक्त दोनों वर्गीकरणों के स्वरूपों तथा उनके अंतर को समझ लेना आवश्यक है–

(क) वैयक्तिक तथा सामूहिक बुद्धि-परीक्षण– वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षण वे होते हैं जिसके द्वारा एक समय में एक व्यक्ति की बुद्धि की परीक्षा होती है। इसके विपरीत जब एक समय में कई व्यक्तियों की एक साथ बुद्धि-परीक्षा होती है, तो उसे **सामूहिक बुद्धि-परीक्षण** कहते हैं। वैयक्तिक तथा सामूहिक बुद्धि-परीक्षणों में अंतर होता है, जो निम्नलिखित हैं–

वैयक्तिक तथा सामूहिक बुद्धि-परीक्षण में अंतर

वैयक्तिक तथा सामूहिक बुद्धि परीक्षण में निम्नलिखित अंतर पाया जाता है–

वैयक्तिक परीक्षण	सामूहिक परीक्षण
1. इस परीक्षण में अधिक समय लगता है।	1. यह परीक्षा प्राय: 45 से 90 मिनट के भीतर पूरी हो जाती है।
2. इस परीक्षा को केवल प्रशिक्षित व्यक्ति ही ले सकता है।	2. इस परीक्षा को सामान्य योग्यता का व्यक्ति भी ले सकता है।
3. यह छोटे बालकों के लिए अधिक उपयुक्त है।	3. यह बड़े बालकों और वयस्कों के लिए उपयुक्त है।
4. इस परीक्षा में प्रश्न कठिन होते हैं।	4. इसमें प्रश्न सरल होते हैं।
5. इस परीक्षा के प्रश्नों को बनाने में कठिनाई होती है।	5. इसमें प्रश्न सरलता से बन जाते हैं।
6. इस परीक्षा में धन अधिक खर्च होता है।	6. इसमें कम धन की आवश्यकता होती है।

नोट

7. इस परीक्षा में बालक प्राय: घबड़ा जाते हैं।	7. सामूहिक परीक्षा में वे प्रसन्नतापूर्वक सहयोग देते हैं।
8. इसमें बालक और परीक्षक का निकट सम्पर्क स्थापित हो जाता है।	8. सामूहिक परीक्षा में इस बात का अभाव होता है।
9. इस परीक्षा के निष्कर्ष में प्रामाणिकता (Validity) और विश्वसनीयता (Reliability) अधिक पाई जाती है।	9. सामूहिक परीक्षा के निष्कर्ष कम प्रामाणिक और विश्वसनीय होते हैं।
10. इस परीक्षा में सामूहिक बुद्धि का पता नहीं लग सकता।	10. सामूहिक परीक्षा से सामूहिक शब्द का अनुमान लगाया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त हम कह सकते हैं कि व्यक्तिगत परीक्षण सामूहिक परीक्षण की तुलना में श्रेष्ठ है। व्यक्तिगत परीक्षण में अधिक धन, समय और प्रशिक्षित व्यक्ति की आवश्यकता होती है। इसीलिए सामूहिक परीक्षणों का अधिक प्रयोग किया जाता है। किन्तु जहाँ तक प्रामाणिकता और विश्वसनीयता का प्रश्न है, व्यक्तिगत परीक्षण अधिक उपयुक्त प्रतीत होते हैं।

(ख) शाब्दिक तथा अशाब्दिक बुद्धि-परीक्षण– शाब्दिक बुद्धि परीक्षण में भाषा का प्रयोग अधिक होता है। इस परीक्षण में एक साथ बहुत से प्रश्न एक छोटी-सी पुस्तिका के रूप में संग्रहीत होते हैं। शाब्दिक परीक्षणों में शब्दों और संख्याओं का अधिक प्रयोग किया जाता है। इस परीक्षा में व्यक्ति को भाषा तथा अंक का ज्ञान होना आवश्यक है। अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण में भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है। इस परीक्षण में कुछ कार्य करने के लिए निर्देश दिये जाते हैं। इसलिए इसे **क्रियात्मक परीक्षण** (Performance Tests) भी कहते हैं। क्रियात्मक बुद्धि-परीक्षणों का प्रयोग भाषा विशेष न जानने वाले लोगों या निरक्षर लोगों के लिए किया जाता है। अधिकांश अशाब्दिक अथवा क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण वैयक्तिक रूप में है।

क्या आप जानते हैं अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण में भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है। कुछ कार्य करने के निर्देश दिए जाते हैं।, इसीलिए इसे क्रियात्मक परीक्षण भी कहते हैं।

शाब्दिक तथा अशाब्दिक बुद्धि-परीक्षण में अन्तर

शाब्दिक तथा अशाब्दिक बुद्धि-परीक्षण में निम्नलिखित अन्तर पाया जाता है–

शाब्दिक परीक्षण	अशाब्दिक परीक्षण
1. शाब्दिक परीक्षण में व्यक्ति को भाषा तथा संख्याओं का ज्ञान आवश्यक है।	1. अशाब्दिक परीक्षण में व्यक्ति को भाषा तथा गणित का ज्ञान आवश्यक नहीं है।

नोट

2. शाब्दिक बुद्धि-परीक्षण के अनुक्रिया का अंकन परीक्षण पुस्तिका में दिये गये निर्देशों को पढ़कर उसी पुस्तिका में करना होता है।	2. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण में परीक्षणकर्त्ता मौखिक निर्देश देता है और परीक्षार्थी मौखिक निर्देशानुसार कार्य करता है। निर्देश लिखित भी हो सकते हैं, किन्तु अनुक्रिया के लिए शब्दों या अंकों का प्रयोग नहीं होता।
3. अनुक्रिया अंकित करने के लिए शाब्दिक परीक्षण में शब्द/वाक्य पर चिह्न लगाना, रिक्त स्थान की पूर्ति, मिलान करना, टिक लगाना आदि विधियों का प्रयोग होता है।	3. अशाब्दिक परीक्षण में चित्रों को पहिचानना, अंग पूर्ति करना, आकृतियाँ बनाना, चित्र के अनुसार गुटकों को जोड़ना आदि विधियों का प्रयोग किया जाता है।
4. शाब्दिक परीक्षण में समय का बन्धन अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं होता।	4. अशाब्दिक परीक्षण में बुद्धि का माप करने के समय सीमा का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।
5. भाषा के विकास का प्रभाव बुद्धि-परीक्षण के निष्कर्ष पर पड़ता है।	5. भाषा के ज्ञान के स्तर का प्रभाव बुद्धि-परीक्षण के निष्कर्ष पर नहीं पड़ता है।
6. अधिकांश शाब्दिक बुद्धि-परीक्षाएँ सामूहिक रूप से ली जाती हैं।	6. अशाब्दिक बुद्धि-परीक्षाएँ प्राय: वैयक्तिक रूप से ली जाती हैं।

अब दोनों प्रकार के वर्गों के संयोग से बनने वाले चार वर्गों के अन्तर्गत आने वाले प्रमुख बुद्धि-परीक्षणों का संक्षिप्त वर्णन करना समीचीन होगा–

1. वैयक्तिक शाब्दिक बुद्धि-परीक्षण– वैयक्तिक शाब्दिक बुद्धि-परीक्षण बुद्धि की परीक्षा एक समय में एक व्यक्ति की लेते हैं और उसमें व्यक्ति को वह भाषा जानना आवश्यक है जो परीक्षण में प्रयोग में लाया गया है। विशिष्ट वैयक्तिक शाब्दिक बुद्धि-परीक्षण निम्नलिखित हैं–

(क) बिने-साइमन-बुद्धि स्केल (Binet-Simon-Intelligence Scale)–मन्द बुद्धि बालकों की पहचान करने के प्रयास में **बिने** (Binet) ने अपने एक सहयोगी **साइमन** (Simon) के साथ एक बुद्धि-परीक्षण का विकास किया, जिसे उन्होंने 1905 में प्रकाशित किया। सफल बुद्धि परीक्षणों में बिने-परीक्षण प्रथम माना जाता है। 1908 तथा 1911 में दोनों ने इसमें और परिमार्जन कर इसे पूर्ण बनाने का प्रयास किया। यही परीक्षण बिने-साइमन बुद्धि स्केल के नाम से विख्यात है।

बिने-साइमन स्केल में मानसिक आयु के आधार पर बुद्धि-परीक्षण किया जाता है। मानसिक आयु ज्ञात करने के लिए प्रत्येक वर्ष के लिए कुछ प्रश्न दिये गये हैं। जो बालक जिस आयु के लिये निर्धारित प्रश्नों के सभी उत्तर सही-सही देता है, उसकी मानसिक आयु वही मान ली जाती है। उदाहरण के लिए यदि 5 वर्ष का बालक 4 वर्ष के लिए निर्धारित प्रश्नों के उत्तर सही-सही दे पाता है तो उसकी मानसिक आयु चार वर्ष मानी जायेगी, किन्तु यदि वह 7 वर्ष के लिए निर्धारित सभी प्रश्नों का उत्तर सही-सही दे देता है तो उसकी आयु 7 वर्ष मानी जायेगी। वास्तविक आयु की तुलना में मानसिक आयु जितनी अधिक होगी, बालक की बुद्धि उतनी ही अधिक मानी जायेगी। इस प्रकार बुद्धि के माप को बुद्धिलब्धि (Intelligence Quotient) के रूप में व्यक्त किया जाता है। बुद्धिलब्धि ज्ञात करने की विधि अन्यत्र दी गयी है। बिने साइमन बुद्धि परीक्षण 3 से 15 वर्ष के बालक/बालिका के लिए निर्धारित किये गये थे, किन्तु 4 वर्ष की आयु के लिए चार प्रश्न तथा 11 एवं 13 वर्ष आयु के लिए कोई प्रश्न निर्धारित नहीं थे। तीन वर्ष की आयु के लिए निर्धारित प्रश्न निम्नलिखित थे–

(*i*) अपना नाम बताना।

(*ii*) अपने मुंह, नाक और कान को उंगली से बताना।

नोट

(*iii*) किसी चित्र को देखकर उसकी मुख्य बातें बताना।

(*iv*) छः शब्दों के सरल वाक्य को दोहराना।

(*v*) दो अंकों को एक बार सुनकर दोहराना। जैसे 2-3, 3-7, 6-8 आदि।

बाद के अध्ययनों में पाया गया कि बिने-साइमन स्केल में अनेक दोष विद्यमान हैं। एक प्रमुख दोष यह था कि किसी आयु का बालक अपनी आयु के लिये निर्धारित प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाता था तो उसकी मानसिक आयु जीवन आयु से कम मानी जाती थी।

(ख) स्टैनफोर्ड-बिने स्केल (Stanford-Binet Scale)–बिने-साइमन स्केल में दोष होते हुए भी यह विश्वविख्यात हुआ और ख्याति प्राप्त मनोवैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित करने में सफल हुआ। बिने-साइमन बुद्धि स्केल को दोष मुक्त करने के लिए इंग्लैंड के **सिरिल बर्ट** (Cyril Burt) और अमेरिका के **लेविन एम. टरमन** (Lewin M- Terman), जो कि स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान के प्रोफेसर थे, ने 1916 में महत्त्वपूर्ण कार्य किये। इस प्रकार सुधारे गये बुद्धि-परीक्षण को **'स्टैनफोर्ड-बिने स्केल'** के नाम से जाना जाता है। टरमैन ने आगे चलकर अपने सहयोगी **मॉड ए. मेरिल** (Maud A. Merrill) की सहायता से 1937 और पुनः 1960 में संशोधन कर इसे पूर्णतः दोष मुक्त कर दिया। इस संशोधित बुद्धि-परीक्षण में बिने के 54 प्रश्नावली के स्थान पर 90 प्रश्न रखे गये, जिनमें बिने के भी कुछ प्रश्न सम्मिलित किये गये। इस स्केल के द्वारा 2 से 14 वर्ष की आयु तक के बालक/बालिका की बुद्धि का मापन किया जाता है। इसमें 13 वर्ष तक की आयु के लिए प्रत्येक प्रश्न के सही उत्तर के लिये दो माह और 14 वर्ष आयु के लिए प्रत्येक प्रश्न के सही उत्तर के लिए चार माह एवं सामान्य वयस्क के लिए पाँच माह निर्धारित किये गये हैं। इसकी प्रश्नावली के प्रश्नों के उत्तरों के आधार पर मानसिक आयु ज्ञात की जाती है और वास्तविक आयु के अनुपात में बुद्धि के माप के विषय में निर्णय दिया जाता है। स्टैनफोर्ड-बिने स्केल की प्रश्नावली के उदाहरण के रूप में तीन वर्ष के लिए निर्धारित प्रश्नों की सूची निम्नलिखित है–

(*i*) अपने परिवार का नाम बताना।

(*ii*) अपने को बालक या बालिका (लिंग ज्ञान) होना बताना।

(*iii*) 6 से 7 अक्षरों के वाक्य को दोहराना।

(*iv*) अपने मुँह, नाक और आँखों आदि को उंगली से बताना।

(*v*) चाकू, चाभी, कैंची आदि को देखकर उनका नाम बताना।

(*vi*) किसी चित्र को देखकर उसकी मुख्य बातें बताना।

उपर्युक्त प्रश्नावली के माध्यम से बिने-साइमन और स्टैनफोर्ड-बिने बुद्धि स्केल में अन्तर देखा जा सकता है।

2. वैयक्तिक अशाब्दिक बुद्धि-परीक्षण– वैयक्तिक अशाब्दिक बुद्धि-परीक्षण उनके लिए होते हैं जो भाषा सम्बन्धी ज्ञान नहीं रखते। भाषा के स्थान पर इनमें चित्रों, वस्तुओं तथा आकृतियों आदि का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के बुद्धि-परीक्षणों को क्रियात्मक बुद्धि-परीक्षण भी कहते हैं, क्योंकि इसमें उत्तर क्रियात्मक रूप में दिये जाते हैं। क्रियात्मक बुद्धि-परीक्षाएँ प्रायः व्यक्तिगत रूप से ली जाती है। प्रमुख अशाब्दिक बुद्धि-परीक्षण निम्नलिखित हैं–

(क) चित्रांकन-परीक्षण (Picture Drawing)– यह परीक्षण 4 से 10 साल तक आयु के बालकों के लिए उपयुक्त है। इसमें बालक को एक कागज और पेन्सिल दी जाती है और उससे यह कहा जाता है कि "गाय का चित्र खींचो"। इस परीक्षा में बालकों को चित्र की पूर्णता के आधार पर अंक दिये जाते हैं।

(ख) चित्र पूर्ति-परीक्षण (Picture Completing Test)– इसमें बालक के सामने एक चित्र के वर्गाकार टुकड़े काटकर दिये जाते हैं और कहा जाता है, इन्हें एकत्र करके पूरा चित्र बनाओ।

(ग) भूलभुलैया परीक्षण (Maze Test)– इसमें बालक को एक ऐसा रेखाचित्र दिया जाता है जिसमें अनेक रास्ते बने होते हैं जो बालक एक सिरे से दूसरे सिरे तक बिना रुकावट के पहुँच जाता है, उसे बुद्धिमान समझा जाता है।

नोट

चित्र 15.1

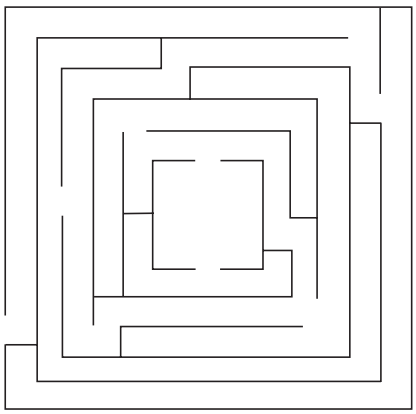

पोर्टियस भूलभुलैया परीक्षण

(घ) आकृति फलक परीक्षा (Form Board Test)– इसमें एक लकड़ी का तख्ता होता है जिसमें विभिन्न आकृति के छेद बने होते हैं। जैसे–गोलाकार, अर्द्ध गोलाकार, चतुर्भुजाकार, त्रिकोणाकार आदि। इन छेदों में उनके कटे हुए टुकड़ों को ठीक से उचित स्थान में बैठाना पड़ता है जो बालक नियत समय के भीतर टुकड़ों को ठीक स्थान पर रख देता है उसे बुद्धिमान समझा जाता है।

(ङ) डॉ. अलेक्जेण्डर द्वारा बनाये गये क्रियात्मक परीक्षण समूह– डॉ. अलेक्जेण्डर ने बुद्धि मापने के लिए तीन परीक्षाओं को मिलाकर एक बैटरी (Battery) का निर्माण किया है। इस बैटरी में निम्नलिखित तीन क्रियात्मक परीक्षाएँ हैं–

I. कोहज ब्लाक डिजाइन टेस्ट (Kohas Block Design Test)– इसकी परीक्षा-सामग्री में एक इंच के सोलह रंगीन घन होते हैं तथा दस डिजाइन (नमूने) होते हैं। एक दफ्ती के टुकड़े पर ये डिजाइन एक ही रंग से बनाये जाते हैं। बालक को उस डिजाइन के अनुसार घनों को इस प्रकार जोड़ना पड़ता है कि डिजाइन बन जाये। भिन्न-भिन्न डिजाइनों के लिए बालक को इन घनों को विभिन्न प्रकार से जोड़ना पड़ता है।

चित्र 15.2

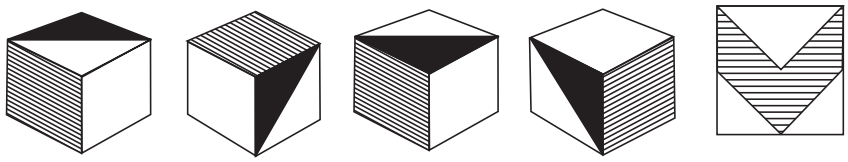

कोहज ब्लाक डिजाइन परीक्षण

II. क्यूब कान्सट्रक्शन टेस्ट (Cube Construction Test)– इस परीक्षा के तीन भाग होते हैं–

***(i)* प्रथम भाग** में एक बड़ा मॉडल ब्लाक (Model Block) $3'' \times 1'' \times 1''$ का होता है। इसकी चार सतह लाल रंग की होती है और ऊपरी तथा नीचे की सतह सादी होती है। इसके अलावा 9 एक इंच घन के घन होते हैं। इनकी सतहें रंगीन होती हैं। इन्हें ठीक से मिलने पर या रखने पर मॉडल ब्लाक की आकृति बन जाती है।

नोट

(*ii*) दूसरे भाग के मॉडल ब्लाक में केवल नीचे की सतह रंगीन नहीं होती। इनमें भी 9 एक इंच घन के घन होते हैं जिनकी सतहें रंगीन होती हैं। इन्हें जोड़कर मॉडल ब्लाक की आकृति बनाने के लिए कहा जाता है।

(*iii*) तीसरे भाग के एक रंगहीन दो इंच का घन होता है और आठ एक इंच के घन के घन होते हैं जिनमें से प्रत्येक की तीन सतहें रंगीन होती हैं। इन छोटे घनों को मिलाकर मॉडल ब्लाक की आकृति में रखना होता है।

III. पास एलांग टेस्ट (Pas Along-Test)– इसमें एक लकड़ी की तश्तरी में कुछ चौकोर या आयताकार लाल, पीले रंग के टुकड़े रखे रहते हैं। इन टुकड़ों को खिसकाकर, बिना उठाये इस प्रकार रखना होता है जिससे दिया गया डिजाइन बन जाए। इस परीक्षा में आठ डिजाइन होते हैं।

(च) वस्तु-संयोजन परीक्षण (Objects Assembling Test)– इस प्रकार के परीक्षणों में वैक्सलर (Wacksler) का परीक्षण प्रमुख है। इसमें मानव-आकृति को अनेक भागों में विभक्त कर दिया जाता है और बालक को विभिन्न भागों को जोड़कर सही ढंग से मानव-आकृति बनानी होती है।

(छ) भाटिया बैटरी (Bhatia Battery)– बुद्धि-परीक्षण के लिए भाटिया बैटरी के निर्माता चन्द्र मोहन भाटिया हैं। यह भारतीय परिस्थितियों में बुद्धि मापन के लिए बहुत अनुकूल है। इस बैटरी (परीक्षणों का समूह) में कुल पाँच परीक्षणों का संयोजन है, जो निम्नलिखित हैं–

(*i*) कोहज का ब्लाक डिजाइन टेस्ट

(*ii*) एलेक्जेण्डर का पास एलांग टेस्ट

(*iii*) पैटर्न ड्राइंग टेस्ट

(*iv*) तात्कालिक स्मृति परीक्षण तथा

(*v*) चित्र-निर्माण परीक्षण।

नोट्स डॉ. भाटिया द्वारा तैयार बुद्धि परीक्षण भारतीय परिस्थितियों में बुद्धि मापन के लिए बहुत अनुकूल है।

उपर्युक्त बुद्धि-परीक्षणों में कुछ अवधि निश्चित कर दी जाती है। उत्तर देने के लिए प्राय: 45 मिनट का समय दिया जाता है। परीक्षार्थी जितनी जल्दी चाहे प्रश्नों का उत्तर दे सकता है। इसके आधार पर बुद्धि के साथ-साथ व्यक्ति की गति (Speed) की भी परीक्षा ली जाती है। जिन परीक्षाओं में समय निर्धारित कर दिया जाता है उन्हें **समय सीमा परीक्षा** कहते हैं।

कुछ परीक्षाएँ इस प्रकार की होती है जिनमें समय की सीमा नहीं होती। प्रश्नों का उत्तर देने के लिए परीक्षार्थी जितना समय चाहे ले सकता है। इसमें बुद्धि के साथ-साथ यह देखा जाता है कि व्यक्ति कितना ठीक (Acurate) काम करता है।

3. सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण– इसमें भाषा का प्रयोग ही अधिक होता है। इस परीक्षण में एक साथ बहुत से प्रश्न एक छोटी-सी पुस्तिका के रूप में संग्रहीत होते हैं। शाब्दिक परीक्षणों में शब्दों का और संख्याओं का अधिक प्रयोग किया जाता है। इन परीक्षणों से बालकों की शाब्दिक योग्यता का मापन होता है।

शाब्दिक बुद्धि-परीक्षण के प्रश्नों के उदाहरण निम्नलिखित हैं–

1. निम्नलिखित में जो शब्द अन्य शब्दों से भिन्न हैं, उनके नीचे रेखा खींचिए–

कुर्सी, मेज, अलमारी, पलंग, कमीज।

नोट

2. निम्नलिखित पाँच शब्दों में से किसका बाकी चारों से मेल नहीं है।

चीन, जापान, मुम्बई, भारत, फ्रांस।

3. 'रात' का उल्टा है–प्रजा, राजा, दिन, शाम।

4. 1, 4, 8, 12, 16, 20–इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की संख्या लिखो।

5. पर्वत का अर्थ है–मैदान, किनारा, पहाड़, पत्थर।

6. कमल से विमल तेज दौड़ता है। कमल से हरि कम दौड़ पाता है तो सबसे तेज कौन दोड़ता है? कमल, विमल, हरि।

सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों का विकास प्रथम विश्व युद्ध के समय हुआ क्योंकि बड़ी शीघ्रता में बड़ी संख्या में सैनिकों का चयन करना था। इस वर्ग में मुख्य रूप से प्रयोग में आने वाले परीक्षण निम्नलिखित हैं–

(क) आर्मी अल्फा टेस्ट (Army, Alpha, Test)– यह परीक्षण अंग्रेजी भाषा जानने वालों के लिए है। अमेरिका में बड़ी संख्या में एक साथ सैनिकों तथा सैन्य कर्मचारियों एवं अधिकारियों का चयन करने के लिए प्रथम विश्व युद्ध के समय इस परीक्षण का निर्माण किया गया था। इस परीक्षण की परीक्षा-सामग्री बहुत कुछ **स्टैनफोर्ड बने स्केल** से ली गयी मालूम होती है।

(ख) सेना सामान्य वर्गीकरण परीक्षण (Army General Classification)– द्वितीय विश्व युद्ध में अमेरिका में सेना के विभिन्न विभागों में सैनिकों का वर्गीकरण करने के लिए सेना सामान्य वर्गीकरण परीक्षण तैयार किया गया था। इस परीक्षण में तीन प्रकार की समस्याओं, यथा–शब्दावली, गणित तथा वस्तु गणना से संबंधित बातों का समाधान करना पड़ता था। इस परीक्षण का प्रयोग लगभग 12 लाख सैनिकों के बुद्धि-परीक्षण लेने के लिए किया गया था।

सामूहिक बुद्धि-परीक्षण निर्माण के क्षेत्र में भारत में उल्लेखनीय प्रयास किये गये हैं। इसमें डॉ. मोहनलाल का बी. पी.टी. 12, बी.पी.टी. 13 और बी.पी.टी. 14 जो कि क्रमशः 12, 13 व 14 वर्ष की आयु के लिए हैं और डॉ. जलोटा तथा डॉ. जोशी का परीक्षण भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसके अतिरिक्त मनोविज्ञानशाला, उत्तर प्रदेश द्वारा अनेक शाब्दिक सामूहिक बुद्धि-परीक्षण तैयार किये गये हैं, जो कि क्रमशः कक्षा आठ, दस और बारह के विद्यार्थियों के लिए हैं।

4. सामूहिक अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण– इसमें भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है। इस परीक्षण में किसी जानवर का चित्र बनवाया जाता है या किसी दिए हुए चित्र में गलती बताई जाती है। इस प्रकार के बुद्धि परीक्षण के निर्माण में **टरमैन, थामसन, हैगर्टो, बेलार्ड** तथा कैटल आदि मनोवैज्ञानिकों ने पर्याप्त योगदान किया। इस संबंध में बेलार्ड का कथन है कि "इस योजना से मूर्खों को निकालना तथा बैल एवं गधे को एक साथ न जोतना और योग्य व्यक्ति को योग्य पद पर रखना संभव हो सकता।" बिना भाषा का प्रयोग किये इस प्रकार के परीक्षण अनेक व्यक्तियों पर एक साथ लागू किये जाते हैं। इस वर्ग के उल्लेखनीय परीक्षण निम्नलिखित हैं–

(क) आर्मी बीटा टेस्ट (Army Beta Test)– आर्मी अल्फा टेस्ट के समान उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आर्मी बीटा टेस्ट का निर्माण भी अमेरिका में प्रथम विश्वयुद्ध के समय में किया गया था। सेना में विभिन्न पदों और विभागों में कार्य करने वाले व्यक्तियों का चयन ऐसे लोगों में से करना था जो कि अशिक्षित थे या अंग्रेजी भाषा का ज्ञान नहीं रखते थे। अतः एक समय में सामूहिक रूप से निरक्षर या अंग्रेजी न जानने वाले व्यक्तियों का बुद्धि-परीक्षण कर अपेक्षित बुद्धि रखने वाले व्यक्तियों की पहचान के लिए इस परीक्षण में क्रियात्मक विधि अपनाई गयी। इसमें वस्तुओं की गणना, अंकित चित्र से संबंधित विभिन्न वस्तुओं में एक-दूसरे से संबंध बताना, चित्र की उन वस्तुओं में चिह्न लगाना, जिनका किसी से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है आदि प्रकार की समस्या-समाधान के आधार पर बुद्धि का मापन किया जाता है।

नोट

(ख) शिकागो अशाब्दिक टेस्ट (Chicago Non-Verble Test)– 6 वर्ष की आयु के बालकों या बालिकाओं से लेकर प्रौढ़ वय के व्यक्तियों तक के लिए शिकागो अशाब्दिक टेस्ट का प्रयोग किया जाता है। 13 वर्ष की आयु के बालकों का बुद्धि-परीक्षण करने में तो यह बहुत उपयोगी पाया गया है। इस टेस्ट में अनेक प्रकार के कार्य करने का निर्देश दिया जाता है, जैसे–विभिन्न प्रकार की आकृतियों में समानता या असमानता बताना, चित्र के अलग हुए टुकड़ों को व्यवस्थित करके उसे पूर्ण करना, लकड़ी के टुकड़ों की सहायता से गणना करना तथा विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में से समान वस्तुओं को पहचान कर अलग-अलग वर्गों में रखना।

उपर्युक्त के अतिरिक्त सामूहिक अशाब्दिक बुद्धि-परीक्षणों में **कैटल** का संस्कृति-स्वतंत्र परीक्षण तथा **पीजन** (Pigeon) के अशाब्दिक परीक्षण का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिनमें विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ होती हैं और उन आकृतियों में समानताएँ या असमानताएँ दिखानी पड़ती हैं।

15.3 भारत में बुद्धि-परीक्षा (Intelligence Testing in India)

भारत में बुद्धि-परीक्षा का विकास अभी कुछ दिनों पूर्व ही हुआ है। उपर्युक्त वर्णित बुद्धि-परीक्षा में 'बिने-परीक्षा' को भारतीय परिस्थितियों में प्रयोग करने का प्रयास किया गया। बुद्धि-परीक्षा सम्बन्धी कार्य देश के विभिन्न राज्यों के विश्वविद्यालय में उनके 'शिक्षा विभाग' तथा मनोविज्ञानशाला (Psychological Bureau) में किये जो रहे हैं। सन् 1922 ई. में डॉ. सी. एच. राइस (C.H. Rice) ने **'हिन्दुस्तानी बिने कार्यात्मक परख'** (Hindustani Binet Performance Test) का प्रकाशन किया। यह परीक्षा बिने की परीक्षाओं का संशोधित रूप है। इसके बाद जो क्रियात्मक बुद्धि-परीक्षण बनाये गये, उनमें **डॉ. भाटिया का 'क्रिया परीक्षण समूह'** (Bhatia Battery of Performance Test) उल्लेखनीय है।

भाटिया क्रियात्मक परीक्षण समूह– अलेक्जेण्डर द्वारा बनाये गये क्रियात्मक परीक्षण समूह के आधार पर बालकों के लिए डॉ. भाटिया ने क्रियात्मक परीक्षण का निर्माण किया। निम्नलिखित पाँच परीक्षण सम्मिलित किये गये हैं–

टास्क

आपके विचार में भारत में बुद्धि परीक्षण देर से शुरू होने के क्या-क्या कारण हो सकते हैं?

1. कोहज ब्लाक डिजाइन टेस्ट।
2. अलेक्जेण्डर्स पास एलांग टेस्ट।
3. पैटर्न ड्राइंग टेस्ट (Pattern Drawing Test)
4. इमिडिएट मेमोरी टेस्ट फार डिजिट्स (Immediate Memory Test for Digits)
5. पिक्चर कान्सट्रक्शन टेस्ट (Picture Construction Test)। इसमें प्रथम दो परीक्षाएँ उसी प्रकार की हैं जिनका वर्णन किया जा चुका है।

पैटर्न ड्राइंग टेस्ट में अलग-अलग कार्ड पर आठ रेखाचित्र बने हैं। इन्हें सामने रखकर उसी प्रकार का चित्र बनाने के लिए कहा जाता है।

इमिडिएट मेमोरी टेस्ट फार डिजिट्स में कुछ संख्या जैसे 7, 5, 11, 4 कहकर या दिखाकर तुरन्त उसे दोहराने के लिए कहा जाता है।

पिक्चर कन्सट्रक्शन टेस्ट में भारतीय जीवन को दिखाने वाले पाँच दृश्य हैं, इन्हें अलग-अलग टुकड़ों पर रखकर फिर से मिलाने के लिए कहा जाता है। इस क्रिया से पूरा चित्र बन जाता है।

नोट

इन बुद्धि परीक्षाओं के अलावा हिन्दी में निम्नलिखित बुद्धि परीक्षाएँ बनाई गयी हैं।

1. शाब्दिक बौद्धिक परीक्षा– इसका निर्माण मनोविज्ञानशाला, उत्तर प्रदेश में हुआ है। यह परीक्षा दस साल के बालकों से लेकर प्रौढ़ों तक के लिए है।

2. शाब्दिक बौद्धिक परीक्षा– यह भी मनोविज्ञानशाला, उत्तर प्रदेश में बनाई हैं, यह आठवीं, दसवीं और बारहवीं कक्षा (ग्रेड) के बालकों के लिए है।

3. शाब्दिक बौद्धिक परीक्षा– यह 10 साल से लेकर 16 साल तक के बालकों के लिए है। इसे डॉ. एस.ए. मोहसिन ने बनाया है।

4. साधारण मानसिक योग्यता परीक्षा– इसका निर्माण डॉ. एस. जलोटा ने किया है। यह 12 से 16 साल के बालकों के लिए है।

इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से बुद्धि-परीक्षण बनाए गये हैं जिनका प्रयोग आवश्यकतानुसार विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सही विकल्प चुनिए–

1. मनोविज्ञान की प्रथम प्रयोगशाला स्थापित करने का श्रेय है–
   (क) अल्फ्रेड बिने (ख) वुंट
   (ग) टरमैन (घ) अलेक्जेण्डर
2. 'बिने साइमन स्केल' को संशोधित करने वाले अमेरिकी मनोवैज्ञानिक थे–
   (क) पीयरसन (ख) गाल्टन
   (ग) टरमैन (घ) अल्फ्रेड बिने
3. भारत में सबसे पहले क्रियात्मक बुद्धि-परीक्षण तैयार करने का श्रेय है
   (क) डॉ. सोहनलाल (ख) डॉ. भाटिया
   (ग) डॉ. जलोटा (घ) उपरोक्त सभी
4. भारत में डॉ. भाटिया द्वारा तैयार क्रियात्मक बुद्धि-परीक्षण का आधार था–
   (क) कैटेल का क्रियात्मक परीक्षण (ख) बिने कार्यात्मक परख
   (ग) अलेक्जेण्डर का क्रियात्मक परीक्षण (घ) बिने साइमन परीक्षण

15.4 बुद्धि-मापन की विधि (Method of Measuring Intelligence)

बुद्धि मापने की विधि को जानने के लिए हमें दो बातों के विषय में ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है–

1. मानसिक आयु (Mental Age)
2. बुद्धि-लब्धि (Intelligence Quotient)

मानसिक आयु– मानसिक आयु व्यक्ति के बुद्धि स्तर (Level of Intelligence) की सूचक है। मानसिक आयु किसी विशेष आयु में बालक की मानसिक परिपक्वता को प्रकट करती है। **डॉ. माथुर** के अनुसार, "मानसिक आयु

नोट

किसी व्यक्ति के द्वारा प्राप्त विकास की सीमा की वह अभिव्यक्ति है जो उसके कार्यों द्वारा जानी जाती है तथा किसी आयु विशेष में उसकी अपेक्षा होती है।" मनोविज्ञान में मानसिक आयु निर्धारण करने के लिए विभिन्न आयु के लिए विभिन्न प्रकार की बुद्धि-परीक्षाओं का निर्माण किया गया है। मानसिक आयु इन बुद्धि-परीक्षाओं द्वारा ज्ञात की जा सकती है। उदाहरणार्थ यदि किसी बुद्धि-परीक्षा में 12 वर्ष के बालकों के लिए निर्धारित औसत मान (Average Score) 75 हो तो जिस बालक का इस परीक्षा का औसत मान 75 आये तो उसकी मानसिक आयु 12 वर्ष मानी जायेगी, चाहे वह 10 वर्ष का ही हो। किसी भी बालक की वास्तविक आयु और मानसिक आयु में कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं होता। 12 वर्ष की बालक की मानसिक आयु 8 वर्ष के बालक की मानसिक आयु के बराबर भी हो सकती है। मानसिक आयु जानने के लिए एक बुद्धि परीक्षण का प्रयोग करना आवश्यक है। उपर्युक्त वर्णित परीक्षणों से उत्तरों के आधार पर मानसिक आयु का ज्ञान प्राप्त किया जाना है।

15.5 बुद्धि-लब्धि (Intelligence Quotient)

व्यक्ति की मानसिक आयु जान लेने पर यह पता नहीं लग पाता कि वह तीव्र, सामान्य या मन्द बुद्धि का है। बुद्धि को मापने के लिए बुद्धि-लब्धि (I.Q.) का आविष्कार **मनोवैज्ञानिक टरमैन** ने किया। बुद्धि-लब्धि क्या है? इसे जानने के पहले वास्तविक आयु (Chronological Age) तथा मानसिक आयु (Mental Age) का पता लगाना आवश्यक है। इसके बाद निम्नांकित सूत्र या समीकरण (Formula) द्वारा बुद्धि-लब्धि निकाली जाती है।

$$\text{बुद्धि-लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times 100$$

$$\text{या, I.Q.} = \frac{M.A.}{C.A.} \times 100$$

उदाहरण के लिए किसी बालक की मानसिक आयु 15 वर्ष है और उसकी वास्तविक आयु 12 वर्ष है तो उसकी बुद्धि-लब्धि इस प्रकार निकाली जाती है–

$$\text{बुद्धि-लब्धि} = \frac{15}{12} \times 100 = 125$$

इस बुद्धि-लब्धि का अर्थ यह है कि बालक प्रखर बुद्धि का है। साधारणत: जिनकी बुद्धि-लब्धि 100 या इसके आस-पास होती है, ये सामान्य बुद्धि के माने जाते हैं।

बुद्धि-लब्धि का वर्गीकरण

मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि-लब्धि की गणना के आधार पर व्यक्ति की बुद्धि को निम्नांकित वर्गों में रखा है–

सारिणी 15.1

बुद्धि-लब्धि वर्ग (I.Q. Group)	बुद्धि-वर्ग (Intelligence Group)
1. 140 से 200 तक	प्रतिभाशाली (Genious)
2. 120 से 140 तक	प्रखर बुद्धि (Kery Superior)
3. 110 से 120 तक	उत्कृष्ट बुद्धि (Superior)

नोट

4. 90 से 110 तक	सामान्य बुद्धि (Average)
5. 80 से 90 तक	मन्द बुद्धि (Dull)
6. 70 से 80 तक	निर्बल बुद्धि (Feeble Minded)
7. 50 से 60 तक	मूर्ख (Moron)
8. 25 से 50 तक	मूढ़ (Imbecile)
9. 25 से नीचे	जड़ बुद्धि (Idiot)

15.6 बुद्धि-परीक्षणों की उपयोगिता (Utility of Intelligence Tests)

शिक्षा के क्षेत्र में बुद्धि-परीक्षाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक शिक्षा-शास्त्रियों के अनुसार बालक को केन्द्र मानकर शिक्षा देना चाहिए। इसलिए बालक की बुद्धि और योग्यता को ध्यान में रखते हुए शिक्षा प्रदान करना आवश्यक हो जाता है। इस दृष्टि से बुद्धि-परीक्षाएँ शिक्षा की महत्त्वपूर्ण साधन बन गई हैं। शिक्षा में बुद्धि-परीक्षाओं की निम्नलिखित उपयोगिता है–

1. छात्रों के चयन में सहायता– बुद्धि-परीक्षा के द्वारा उपयुक्त छात्रों को उपयुक्त कक्षाओं में प्रवेश देने में सहायता मिलती है। इसके द्वारा अनुपयुक्त छात्रों को छाँट दिया जाता है और केवल योग्य छात्र का ही चयन किया जाता है।

2. बालकों के मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण में सहायता– बुद्धि-परीक्षाओं की सहायता से बालकों को विभिन्न वर्गों में बाँटा जा सकता है। तीव्र बुद्धि, सामान्य बुद्धि और मन्द बुद्धि बालकों को अलग-अलग वर्ग में रखकर उसकी योग्यता के अनुसार उन्हें शिक्षा दी जा सकती है।

3. विशिष्ट योग्यता की माप में सहायता– इन परीक्षाओं द्वारा विद्यालय में सर्वोच्च बालकों का चुनाव किया जा सकता है जो कि वाद-विवाद प्रतियोगिताओं तथा अन्य क्रियाकलापों में उच्च स्थान प्राप्त करते हैं।

4. समस्यात्मक बालकों से व्यवहार करने में सहायता– बुद्धि-परीक्षा द्वारा ऐसे बालकों की बुद्धि-लब्धि का पता लग जाता है कि उनके व्यवहार का कारण बुद्धि की कमी है या कोई अन्य कारण है। इस प्रकार बुद्धि-परीक्षा द्वारा उनके असामान्य व्यवहार के कारणों को जानकर उनका उपचार और सुधार किया जा सकता है।

5. बालकों की क्षमता के अनुसार कार्य देने में सहायता– बुद्धि-परीक्षा द्वारा बालक की कार्य करने की क्षमता का पता लगाया जा सकता है।

6. बालक के भविष्य की ओर संकेत– डगलस और डाजेंड ने कहा है–"बुद्धि-परीक्षाएँ छात्रों की भावी सफलता की ओर संकेत करती है।" इन परीक्षाओं द्वारा उनकी भावी सम्भावनाओं का पता लगाया जा सकता है।

7. पाठ्य विषयों के चुनाव में सहायता– इन परीक्षाओं के आधार पर यह जाना जा सकता है कि कौन-से बालक के लिए कौन-कौन से विषय उपयुक्त होंगे।

8. वार्षिक परीक्षाओं में सहायता– इन परीक्षाओं के आधार पर कुशाग्र बुद्धि बालक यदि कक्षा की परीक्षा में कम अंक प्राप्त करता है या असफल हो जाता है या बीमारी आदि के कारण परीक्षा में अधिक अंक प्राप्त नहीं कर पाता तो उसे आगे की कक्षा में पढ़ाया जा सकता है।

9. अध्यापकों के कार्य की जाँच– इन परीक्षाओं द्वारा अध्यापकों ने बालक को किस प्रकार पढ़ाया है, इसका भी पता लग सकता है।

नोट

10. अध्यापकों को शिक्षण-कार्य में सहायता– बुद्धि परीक्षा का प्रयोग करके तीव्र बुद्धि और मन्द बुद्धि बालकों को अलग-अलग वर्ग में रखा जाता है। इस प्रकार की कक्षा में जिसमें एक ही स्तर की बुद्धि के बालक रहते हैं, शिक्षकों को पढ़ाने में सुविधा होती है और बालक भी रुचिपूर्वक ध्यान लगाकर पढ़ता है।

11. व्यवसाय सम्बन्धी मार्गदर्शन की सहायता– बुद्धि परीक्षाओं का प्रयोग करके बालकों की व्यावसायिक योग्यता का अनुमान लगाया जा सकता है और उन्हें व्यवसाय चुनाव में सहायता दी जा सकती है।

12. विद्यार्थियों की प्रगति का ज्ञान– बुद्धि-लब्धि का प्रयोग करके शिक्षक यह मालूम कर लेता है कि विद्यार्थी अपनी योग्यतानुसार पाठ्य-विषयों में प्रगति कर रहा है या नहीं। इस प्रकार इन परीक्षाओं से विद्यार्थियों द्वारा किये गये परिश्रम की जाँच की जा सकती है।

13. मानसिक अस्वस्थता का निदान (Diagnosis of Mental Health)**–** बुद्धि-परीक्षाओं द्वारा मानसिक अस्वस्थताओं का पता लगाकर उसका उपचार करने में सहायता मिलती है।

14. छात्रवृत्ति देने का निर्णय करने में सहायता– इन परीक्षाओं से बुद्धि-परीक्षण करके योग्य छात्रों को छात्रवृत्ति देने में सहायता ली जा सकती है।

15. शिक्षा में अपव्यय का निवारण– प्राय: विद्यालयों में अनेक बालक परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण होने पर पढ़ाई स्थगित कर देते हैं। इसलिए इस अपव्यय को दूर करने के लिए बुद्धि-परीक्षाओं द्वारा बालकों की योग्यताओं का ज्ञान प्राप्त करके, उन्हें पाठ्यविषयों का चुनाव करने में सहायता दी जा सकती है।

16. व्यक्तियों के विशिष्ट वर्गों के अध्ययन में सहायता– बुद्धि-परीक्षाएँ विशिष्ट वर्गों, जैसे-अन्धे, बहरे, गूंगे तथा अन्य जातीय समुदायों के बौद्धिक स्तर का सर्वेक्षण करने में सहायता देती है।

17. औद्योगिक और व्यावसायिक क्षेत्र में उपयोगिता– बुद्धि-परीक्षाओं द्वारा सरकारी और गैर सरकारी सेवाओं के लिए अधिकारियों तथा कर्मचारियों के चुनाव में सहायता ली जा सकती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बुद्धि-परीक्षाओं का प्रयोग जीवन के विविध क्षेत्रों में दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। जीवन के सभी महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में बुद्धि-परीक्षाओं के द्वारा अनेक समस्याओं का निदान तथा उपचार किया जा सकता है। शिक्षा-क्षेत्र में विशेष रूप से इनका उपयोग बड़ा ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है।

15.7 सारांश (Summary)

- शिक्षा के क्षेत्र में मानसिक योग्यता में भिन्नता का अध्ययन करना महत्त्वपूर्ण है। छात्रों का मानसिक योग्यता या क्षमता में अन्तर बुद्धि के कारण होता है।
- शिक्षा में व्यक्तिगत भिन्नताओं का अध्ययन करना आवश्यक है। व्यक्तिगत भिन्नताओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कई विधियों का प्रयोग किया जाता है।
- बुद्धि परीक्षाएँ शिक्षा की बहुत-सी समस्याओं का समाधान करने में सहायता देती हैं, अत: इनके विषय में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। आधुनिक काल में बुद्धि-परीक्षण के संबंध में वैज्ञानिक अध्ययन यूरोप में आरंभ हुए।
- फ्रांस के **अल्फ्रेड बिने** (Alfred Binet) तथा अमेरिका के **थार्नडाइक** एवं **टरमैन** (Thornidike and Terman) ने उल्लेखनीय कार्य किये हैं। अन्य मनोवैज्ञानिकों में **गाल्टन** (Galton), **कैटेल** (Cattell), **पीयरसन** (Pearson) आदि विद्वानों ने भी अनेक बुद्धि-परीक्षणों का निर्माण किया है, किन्तु ये परीक्षण साधारण मानसिक क्रियाओं को मापते थे इसलिए इन्हें बुद्धि-परीक्षण नहीं कहा जा सकता। इस कार्य में सबसे पहले और ठोस कदम उठाने वाले मनोवैज्ञानिक **अल्फ्रेड बिने** थे।

नोट

- आज बुद्धि मापन के लिए अनेक बुद्धि-परीक्षण उपलब्ध हैं। यदि हम बुद्धि-परीक्षणों के प्रकारों पर दृष्टि डालें तो उन्हें दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है– (अ) वैयक्तिक तथा सामूहिक बुद्धि-परीक्षण (ब) शाब्दिक तथा अशाब्दिक बुद्धि-परीक्षण।
- भारत में बुद्धि-परीक्षा का विकास अभी कुछ दिनों पूर्व ही हुआ है। उपर्युक्त वर्णित बुद्धि-परीक्षा में 'बिने-परीक्षा' को भारतीय परिस्थितियों में प्रयोग करने का प्रयास किया गया। बुद्धि-परीक्षा सम्बन्धी कार्य देश के विभिन्न राज्यों के विश्वविद्यालय में उनके 'शिक्षा विभाग' तथा मनोविज्ञानशाला (Psychological Bureau) में किये जो रहे हैं।
- शिक्षा के क्षेत्र में बुद्धि-परीक्षाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक शिक्षा-शास्त्रियों के अनुसार बालक को केन्द्र मानकर शिक्षा देना चाहिए। इसलिए बालक की बुद्धि और योग्यता को ध्यान में रखते हुए शिक्षा प्रदान करना आवश्यक हो जाता है। इस दृष्टि से बुद्धि-परीक्षाएँ शिक्षा की महत्त्वपूर्ण साधन बन गई हैं।

15.8 शब्दकोश (Keywords)

1. **लब्धि–**प्राप्ति, भागफल
2. **अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण–**इसमें भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता।

15.9 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. बुद्धि परीक्षण को विस्तार से समझाइए।
2. बुद्धि परीक्षण के इतिहास पर संक्षिप्त नोट लिखिए।
3. 'बिने साइमन स्केल' तथा 'स्टैनफोर्ड-बिने स्केल' में मूल अंतर समझाइए।
4. भारत में बुद्धि परीक्षण की स्थिति स्पष्ट कीजिए।
5. बुद्धि-लब्धि से आप क्या समझते हैं।
6. बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिता समझाइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (ख) 2. (ग) 3. (घ) 4. (ग)

15.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. मनोविज्ञान–*मानव व्यवहार का अध्ययन–ब्रजकुमार मिश्र, पी.एच.आई. लर्निंग, प्रा.लि., नई दिल्ली।*
2. मनोविज्ञान–*डॉ. सरयू प्रसाद, आगरा बुक स्टोर, आगरा।*
3. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
4. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग, प्रा.लि., नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 16: बुद्धि के सिद्धान्त (Theories of Intelligence)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

16.1 बुद्धि के सिद्धांत (Theories of Intelligence)

16.2 गिलफर्ड का एस.आई. मॉडल (Guilford's S.I. Model)

16.3 उत्पादकीय उपादेयता (Productional Implications)

16.4 सारांश (Summary)

16.5 शब्दकोश (Keywords)

16.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

16.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- बुद्धि के सिद्धांत के विभिन्न पहलुओं को समझने में।
- गिलफर्ड के बुद्धि सिद्धांत संबंधी एस.आई. मॉडल को समझने में।
- गिलफर्ड के सिद्धांत की उत्पादकीय उपादेयता को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने अलग-अलग सिद्धांत एवं मतों द्वारा बुद्धि के संगठनात्मक रूप को समझाने का प्रयास किया है। बिने, टरमैन, स्टर्न ने जहाँ बुद्धि को सर्वशक्तिमान मानसिक इकाई माना है वहीं थॉर्नडाइक इसे तीन भागों में विभाजित करते हैं–सामाजिक, स्थूल एवं अमूर्त्त बुद्धि। स्पीयर मैन बुद्धि को सामान्य एवं विशिष्ठ बुद्धि के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। प्रस्तुत इकाई में बुद्धि के सिद्धांतों पर विस्तार से चर्चा की गई है।

16.1 बुद्धि के सिद्धांत (Theories of Intelligence)

मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि के संगठन के विषय में निम्नलिखित सिद्धांतों को स्वीकार किया है–

1. एक तत्वीय अथवा एक सत्तात्मक सिद्धान्त (Unifactor or Monarchic Theory)
2. द्वितत्वीय या द्विखण्ड का सिद्धान्त (Two factor Theory)

नोट

3. त्रिखण्ड सिद्धान्त (Three-factor Theory)
4. बहुतत्व अथवा असत्तामक सिद्धान्त (Multifactor or Anarchic Theory)
5. बहुमानसिक योग्यता का सिद्धान्त (Multi-Mental Ability Theory)
6. वर्गघटक या संघसत्तात्मक सिद्धान्त (Group factor or Oligarchic Theory)
7. क्रमिक महत्त्व का सिद्धान्त (Hierarchical Theory)
8. केटल का सिद्धान्त (Catal's Theory)
9. सम्मिलित सिद्धान्त (Unified Theory)

(1) एक सत्तात्मक सिद्धान्त–इसे एक खण्ड का सिद्धान्त भी कहा गया है। इस सिद्धान्त के समर्थक मनोवैज्ञानिक **बिने, टरमैन, स्टर्न** हैं। इनके अनुसार बुद्धि एक इकाई है और सम्पूर्ण बुद्धि एक समय में सक्रिय होकर एक ही प्रकार का कार्य करती है। इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि सर्वशक्तिशाली मानसिक शक्ति है जो सभी मानसिक योग्यताओं पर शासन करती है। किन्तु यह सिद्धान्त तो दोषपूर्ण माना जाता हैं, क्योंकि हम यह नहीं कहते कि जो व्यक्ति गणित में निपुण है, वह कला में भी निपुण होगा।

(2) द्वि-तत्त्वीय या द्विखंड का सिद्धान्त–इस सिद्धान्त के समर्थक मनोवैज्ञानिक **स्पीयरमैन** हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि में दो तत्व होते हैं अर्थात् बौद्धिक योग्यताओं को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है।

(क) सामान्य तत्व या योग्यता (General Ability or 'G' factor)

(ख) विशेष तत्व या योग्यता (Specific Ability or 'S' Factor)

स्पीयरमैन के अनुसार बुद्धि दो प्रकार की शक्तियों या योग्यताओं का योग है। सामान्य योग्यता व्यक्ति को सभी प्रकार के कार्यों में सहायता करती है और विशेष योग्यता, विशिष्ट कार्यों को करने में सहायता देती है। जैसे–कोई संगीत या कला कौशल में प्रवीण होता है, कोई गणित या विज्ञान में-विशेष कार्यों में प्रवीणता विशेष बुद्धि तत्व ('S' Factor) की आवश्यकता होती है।

बुद्धि के सामान्य तत्व की निम्न विशेषताएँ हैं–(1) यह तत्व सभी में पाया जाता है। (2) यह जन्मजात होता है, (3) यह तत्व सदा एक समान होता है। (4) प्रत्येक व्यक्ति की सामान्य योग्यता में अन्तर होता है, (5) जिस व्यक्ति में यह तत्व अधिक होता है वह दूसरों की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त करता है, (6) इस तत्व की जीवन के सभी कार्यों में अधिक आवश्यकता होती है।

नोट्स

स्पीयरमैन ने प्रत्येक व्यक्ति की सामान्य योग्यता में अंतर माना है। जिसमें यह तत्व अधिक होता है वह दूसरों की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त करता है।

बुद्धि के विशिष्ट तत्व की ये विशेषताएँ हैं–(1) यह तत्त्व भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में कम या अधिक मात्रा में होता है। (2) विभिन्न क्रियाओं के लिए विभिन्न प्रकार के विशेष तत्व निर्धारित होते हैं। (3) जिस व्यक्ति में जिस विशेष तत्व की अधिकता होती है, वह उसी में क्षमता प्राप्त करता है। (4) विशेष तत्व को अर्जित किया जा सकता है। (5) भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के विशेष तत्व पाये जाते हैं।

(3) त्रिखंड सिद्धान्त–इस सिद्धान्त से **स्पीयरमैन** ने बुद्धि के 'G' और 'S' तत्वों के साथ एक 'सामूहिक खण्ड' और जोड़ दिया। इसके अनुसार बुद्धि-परीक्षा में तीन तत्वांशों की आवश्यकता होती है–सामान्य बुद्धि, विशिष्ट बुद्धि

नोट

और भाषा या स्थानात्मक ज्ञान की। यह सिद्धान्त विवादास्पद रहा है। मनोवैज्ञानिकों ने इस पर मतभेद प्रकट किया है। अत: यह सर्वमान्य नहीं हो सका।

(4) बहुतत्व या असत्तात्मक सिद्धान्त–इस सिद्धान्त के प्रवर्तक अमेरिका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **थार्नडाइक** हैं। इनके मतानुसार बुद्धि कई प्रकार की शक्तियों का एक समूह है और इन विभिन्न प्रकार की शक्तियों में किसी भी प्रकार की समानता आवश्यक नहीं है। थार्नडाइक बुद्धि के समान तत्व को नहीं मानते, उनके विचार से सभी मनुष्यों की बुद्धि विशेष होती है। यदि किसी में एक विषय की योग्यता है तो उससे उसके दूसरे विषय की योग्यता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। **थार्नडाइक** ने बुद्धि को तीन भागों में विभाजित किया है–

(*i*) सामाजिक बुद्धि (Social Intelligence)

(*ii*) स्थूल बुद्धि (Concrete Intelligence)

(*iii*) अमूर्त बुद्धि (Abstract Intelligence)

क्या आप जानते हैं मनोवैज्ञानिक थॉर्नडाइक बुद्धि के समान तत्व को नहीं स्वीकार करते हैं बल्कि उनके विचार में प्रत्येक मनुष्य की एक विशेष बुद्धि होती है।

(5) बहुमानसिक योग्यता का सिद्धान्त–थार्नडाइक ने कई योग्यताओं के समूह को बुद्धि कहा है, किन्तु मनोवैज्ञानिक **थर्स्टन** (Thurston) और **केली** (Kelly) ने कहा है कि बुद्धि कुछ मानसिक योग्यताओं के समूह से बनी है। **केली** ने बुद्धि के निर्माण में निम्नलिखित 9 योग्यताओं उल्लेख किया है–

(*i*) सामाजिक योग्यता (Social Ability)

(*ii*) वाचिक योग्यता (Verbal Ability)

(*iii*) सांख्यिकी योग्यता (Numerical Ability)

(*iv*) क्रियात्मक योग्यता (Motor Ability)

(*v*) शारीरिक क्षमता (Physical Ability)

(*vi*) यान्त्रिक योग्यता (Mechanical Ability)

(*vii*) संगीतात्मक योग्यता (Musical Talent)

(*viii*) रुचि (Interest)

(*ix*) स्थानिक सम्बन्धों के साथ व्यवहार करने की योग्यता (Ability to deal with Spatial Relations)

थर्स्टन ने भी विभिन्न प्रकार क मनोवैज्ञानिक परीक्षण करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि बुद्धि निम्नांकित 7 मानसिक प्राथमिक योग्यताओं (Primary Mental Abilities) का समूह है।

(*i*) सांख्यिकी योग्यता (Number Ability or N)

(*ii*) शाब्दिक योग्यता (Verbal Ability or V)

(*iii*) स्थान-सम्बन्धी योग्यता (Spatial Ability or S)

(*iv*) शब्द प्रवाह-योग्यता (Word Fluency Ability or W)

(*v*) वाचिक या तार्किक योग्यता (Reasoning Ability or R)

नोट

(*vi*) स्मृति सम्बन्धी योग्यता (Memory Ability or M)

(*vii*) प्रत्यक्ष सम्बन्धी योग्यता (Perceptual Talent or P)

अंग्रेजी में इसे सूत्र में इस प्रकार लिखा जा सकता है–

Intelligence = N + V + S + W + R + M + P

(6) वर्ग घटक या संघ सत्तात्मक सिद्धान्त–इस सिद्धान्त के समर्थक स्काटलैंड के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **जी. थामसन** (G. Thomson) हैं। इनके अनुसार विशिष्ट योग्यताओं का वर्ग या समूह होता है। एक ही वर्ग या समूह की योग्याताओं में परस्पर समानता होती है, जैसे–साहित्यिक योग्यता के समूह के अन्तर्गत कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध आदि में परस्पर सम्बन्ध रहेगा, किन्तु इन योग्यताओं का विज्ञान के समूह की योग्यताओं से कोई सम्बन्ध न रहेगा।

(7) क्रमिक महत्त्व का सिद्धान्त–इस सिद्धान्त के समर्थक **बर्ट** (Burt) और **वर्नन** (Vernon) हैं। इन्होंने मानसिक योग्यताओं को क्रमिक महत्त्व दिया है और मानसिक योग्यताओं के चार निम्नलिखित स्तर बताये हैं–

(*i*) सामान्य मानसिक योग्यता

(*ii*) सामान्य मानसिक योग्यता के दो भाग–

(क) क्रियात्मक, यांत्रिक-आन्तरिक और शारीरिक योग्यताएँ

(ख) शाब्दिक, सांख्यिकी और शैक्षिक योग्यताएँ।

(*iii*) उपर्युक्त दोनों स्तर की योग्यताओं का अनेक मानसिक योग्यताओं में विभाजन जैसे स्मरण, कल्पना, विचार आदि।

(*iv*) विशेष मानसिक योग्यताएँ।

(8) कैटल का सिद्धान्त–स्पीयरमैन द्वारा बताए गये बुद्धि के सामान्य तत्व के ही दो तत्व केटल ने बताए हैं। ये दो तत्व निम्नलिखित हैं–

(अ) निश्चित बुद्धि (Crystallized Intelligence) इसे कैटल ने GF तत्व बताया है, तथा

(ब) अनिश्चित बुद्धि (Fluid Intelligence) इसे कैटल ने GE तत्व बताया है।

अनिश्चित बुद्धि के विकास पर वंशानुक्रम का प्रभाव पड़ता है। अत: वंशानुक्रमीय परिवर्तन तथा भेद के कारण भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की बुद्धि में अन्तर होता है। निश्चित बुद्धि के विकास पर वातावरण का प्रभाव पड़ता है। अत: वातावरणीय परिवर्तन तथा भेद अथवा समानता के कारण भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की बुद्धि में असमानता या समानता दिखाई देती है। **कैटल** के अनुसार उक्त दोनों तत्वों का तात्विक विश्लेषण करके उन्हें अनेक तत्वों में विभक्त किया जा सकता है। **कैटल** ने बुद्धि-मापन के लिए संस्कृति स्वतन्त्र परीक्षण (Culture Free Test) का निर्माण किया था जिससे अनिश्चित बुद्धि का ही मापन किया जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. असत्तात्मक सिद्धान्त के प्रतिपादक ..... हैं।
2. गिलफर्ड ने ..... सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।
3. ..... के अनुसार 'सीखने की शक्ति ही बुद्धि है।"
4. यदि व्यक्ति की ..... भ्रष्ट हो जाती है तो उसका ..... समाप्त हो जाता है।

नोट

(9) सम्मिलित सिद्धान्त–सम्मिलित सिद्धान्त (Unified Theory) का प्रतिपादन **गिलफर्ड** ने किया है। गिलफर्ड के अनुसार बुद्धि का एक 'संरचना प्रतिमान' (Structure of Intellect Model) होता है। संरचना प्रतिमान के तीन प्रमुख आयाम हैं जिसके अन्तर्गत विभिन्न योग्यताएँ आती हैं। ये निम्नलिखित हैं–

टास्क बुद्धि के विभिन्न सिद्धांतों में आपकी राय में सबसे अधिक वैज्ञानिक सिद्धांत कौन-सा है? और क्यों?

16.2 गिलफर्ड का S.I. मॉडल (Guilford's S.I. Model)

बुद्धि संबंधी अनेक सिद्धांतों के अन्तर्गत गिलफर्ड ने बुद्धि संबंधी अपना एक अलग ही सिद्धांत प्रतिपादित किया है। गिलफार्ड के अनुसार बुद्धि कुछ प्राथमिक बौद्धिक योग्यताओं (Primary Intellectual Abilities) की संरचना (Structure) मात्र है। गिलफर्ड कहता है कि प्रत्येक बौद्धिक योग्यता अपने में विशिष्ट व अनूठी होती है। साथ ही, प्रत्येक कार्य को सही ढंग से करने के लिए किसी न किसी की बौद्धिक योग्यता की आवश्यकता पड़ती है। अत: इस दृष्टि से गिलफर्ड की मान्यता है कि प्रत्येक बौद्धिक योग्यता की माप अलग-अलग ढंग से की जानी चाहिए। गिलफर्ड महोदय इस संदर्भ में यह भी मानते हैं कि विभिन्न बौद्धिक योग्यताओं में कुछ समानताएँ (similarities) भी दृष्टिगोचर होती है। गिलफर्ड ने इन्हीं समानताओं के आधार पर इन्हें तीन सामान्य श्रेणियों में रखा है। ये तीन सामान्य श्रेणियाँ इस प्रकार हैं–

1. प्रक्रिया (Process or Operation)
2. विषय-वस्तु (Content or Material)
3. परिणाम (Product)

गिलफर्ड महोदय ने इन तीनों के प्रत्येक भाग के लिए कुछ विशिष्ट मानसिक योग्याताओं का भी उल्लेख किया है, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

1. **प्रक्रिया:** (Process): संक्रिया से तात्पर्य व्यक्ति द्वारा की जाने वाली मानसिक प्रक्रिया के स्वरूप से है, अर्थात् किसी दिये गये कार्य को करने में व्यक्ति द्वारा अपनायी जाने वाली मानसिक क्रियाओं का स्वरूप क्या होगा, इसकी व्याख्या संक्रिया के अन्तर्गत आती है। उदाहरणार्थ, यदि आज के युग में किसी व्यक्ति से 'मोबाइल' के गुण-दोषों की व्याख्या करने को कहा जाये तो यहाँ संक्रिया के पाँच घटकों में से मूल्यांकन (evaluation) की संक्रिया होती पायी जायेगी। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित पाँच प्रमुख मानसिक योग्यताएँ (Mental Abilities) आती हैं, जो इस प्रकार हैं–

   (क) संज्ञान (Cognition)– इस योग्यता के आधार पर व्यक्ति किसी चीज का पुन: स्मरण करता है, उसे दोहराता है तथा उसे पहचानने का प्रयास करता है।

   (ख) स्मृति (Memory)– इस योग्यता के आधार पर व्यक्ति अपने विगत अनुभवों के आधार पर वर्तमान से संबंध स्थापित करता है, विगत अनुभवों को याद करता है तथा उन्हें संजोकर रखता है।

   (ग) अपसारी चिन्तन (Divergent Thinking)– इस योग्यता के आधार पर व्यक्ति अपनी बुद्धि का प्रयोग अनेक दिशाओं में करता है। वह विभिन्न दिशाओं में सोच सकता है तथा परिस्थिति के अनुकूल निर्णय ले सकता है। उसकी सोच एकांगी नहीं होती।

   (घ) अभिसारी चिन्तन (Convergent Thinking)– अभिसारी चिन्तन अपसारी चिन्तन का दूसरा रूप है। व्यक्ति के लिए दोनों ही प्रकार के चिन्तन जीवन में महत्त्व रखते हैं। इस प्रकार की योग्यता

नोट

में व्यक्ति इस प्रकार सोचने में समर्थ हो जाता है कि वह अन्त में किसी समस्या हेतु ठीक निष्कर्ष पर पहुँच जाये।

(ङ) **मूल्यांकन** (Evaluation)–इस योग्यता के आधार पर व्यक्ति जिस परिवेश में रहता है या किसी समस्या पर कार्य कर रहा होता है उसके बारे में सम्पूर्ण जानकारी रखने का प्रयास करता है। तभी वह सम्पूर्ण परिस्थिति का अवलोकन कर उपयुक्त रीति से सही निर्णय पर पहुँच पाता है।

2. **विषय-वस्तु** (Content)–विषय-वस्तु विमा से तात्पर्य उस क्षेत्र से है जिसकी सूचनाओं (Informations) के आधार पर संक्रिया की जाती है। गिलफर्ड ने इस प्रकार की सूचनाओं को चार भागों में विभक्त किया है। संक्रिया के अन्तर्गत जो उदाहरण हमने प्रस्तुत किया है उसमें मूल्यांकन प्रक्रिया निहित है उसकी विषय-वस्तु शाब्दिक (Semantic) है। लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता है कि व्यक्ति को जो सूचनाएँ प्राप्त की जाती हैं वे शाब्दिक न होकर चित्र के रूप में हों। ऐसी स्थिति में विषय-वस्तु का स्वरूप आकृतिक (Figural) कहलायेगा। इसके अन्तर्गत गिलफर्ड महोदय ने निम्नलिखित चार प्रभागों का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार हैं–

(*i*) **आकृति** (Figure)–इससे आशय यह है कि व्यक्ति आकृति विशेष को देखकर उसे समझने व पहचानने का प्रयास करे। यह कार्य वह अपनी ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से करता है तथा आकृति का सही ढंग से पूर्ण अवलोकन करता है।

(*ii*) **प्रतीकात्मक** (Symbolic)–इसका आशय यह है कि व्यक्ति विभिन्न प्रकार के प्रतीकों को सही ढंग से समझकर उन्हें महत्त्व के अनुसार जीवन में प्रयोग कर सके। जीवन के विभिन्न कार्यों में विभिन्न प्रकार के प्रतीकों को समझने की आवश्यकता पड़ती है।

(*iii*) **भाषा** (Language)–जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए भाषा संबंधी योग्यता आवश्यक समझी जाती है। भाषा पर अधिकार होने की स्थिति में ही व्यक्ति स्वयं के विचारों को दूसरों को भली भाँति समझा सकता है तथा दूसरों के विचारों को भली प्रकार समझ सकता है। साथ ही, विचारों के स्वरूप को भी आसानी से समझा (Perceive) जा सकता है।

(*iv*) **व्यवहारात्मक** (Behavioural)–इसका अर्थ सामाजिक बुद्धि (Social Intelligence) से है, जिसकी सहायता से व्यक्ति विभिन्न मानव सम्प्रेषणों (Human Communication) को आसानी से समझने में समर्थ होता है। यह जीवन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पहलू माना जाता है।

3. **उत्पाद** (Product)–उत्पाद विमा से तात्पर्य किसी विशेष प्रकार की विषय-वस्तु द्वारा की गई संक्रिया के परिणाम (Product) से है। इस विमा को गिलफर्ड ने 6 भागों में विभक्त किया है। उदाहरण के तौर पर यदि हम किसी विद्यार्थी से गणित की सम व विषम संख्याओं को अलग-अलग श्रेणियों में रखने के लिए कहें तो विद्यार्थी द्वारा किया गया कार्य उत्पाद विमा वर्ग (Class or Category) घटक के अन्तर्गत रखा जायेगा। जब विषय-वस्तु को किसी प्रक्रिया में लगाया जाता है तो परिणाम प्राप्त होते हैं। इसके अन्तर्गत जो छः प्रकार की मानसिक योग्यताएँ आती हैं, वे इस प्रकार हैं–

(1) **इकाइयाँ** (Units)–इसके अन्तर्गत दृश्य, श्रव्य एवं प्रतीकात्मक इकाइयों का अवबोधन तथा उनके अर्थ समझना मुख्य है। अर्थात् यहाँ व्यक्ति संवेदनात्मक प्रत्यक्षीकरण (Sensory perceptions) की विशिष्टताओं अथवा विलक्षणताओं को समझने का प्रयास करता है।

(2) **वर्ग** (Class or Categories)–इसके अन्तर्गत इकाइयों को वर्गीकृत करने की योग्यता आती है। इसमें यह देखा जाता है कि व्यक्ति विभिन्न विचारों को श्रेणीबद्ध कर सकता है अथवा नहीं।

नोट

(3) संबंध (Relations)–इसके अन्तर्गत यह देखा जाता है कि व्यक्ति विभिन्न वस्तुओं के मध्य पारस्परिक संबंध को समझ सकता है अथवा नहीं। साथ ही, इन संबंधों की व्याख्या भी कर सकता है अथवा नहीं।

(4) व्यवस्थाएँ (Systems)–इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के विचारों अथवा समस्याओं को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करना तथा उसके समाधान के तरीकों की खोज करना आदि सम्मिलित है।

(5) रूपान्तरण (Transformations)–इसका संबंध इस प्रकार की योग्यता से है कि व्यक्ति यह आभास कर सके कि पदार्थ में अमुक परिवर्तन करने पर उसका स्वरूप क्या होगा? अथवा किसी स्वरूप विशेष के लिए यह सुझाव देना कि उसमें अमुक प्रकार के परिवर्तन कर लिये जायें।

(6) आशय (Implications)–इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति में किसी भी वस्तु, विचार या तथ्य में निहित भावों को समझ सकने की पर्याप्त योग्यता है अथवा नहीं। इसीलिए कुछ लोग आशय को निहितार्थ के रूप में भी प्रयोग में लाते हैं।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि बौद्धिक योग्यताओं (Intellectual Abilities) के संदर्भ में गिलफर्ड के विश्लेषण के अनुसार मानसिक योग्यताओं में निम्नलिखित बातें निहित रहती हैं–

1. पाँच प्रक्रियाएँ (Five Operations)
2. चार विषय-वस्तु (Four Contents or Materials)
3. छः परिणाम (Six Products)

गिलफर्ड के अनुसार ये सभी मानसिक योग्यताएँ परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित होती हैं। अतः इस प्रकार कुल बौद्धिक आयामों (Dimensions) की संख्या $5 \times 4 \times 6 = 120$ कही जा सकती है।

गिलफर्ड का उपरोक्त वर्णित सिद्धांत सबसे व्यापक सिद्धांतों में से एक है, फिर भी, गिलफर्ड का कहना है कि यह मॉडल बिल्कुल सैद्धान्तिक है और इसमें परिवर्तन किया जा सकता है। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि यह अनुसंधान के क्षेत्र में नई संभावनाओं को जन्म देता है।

गिलफर्ड के इस सिद्धांत को संक्षिप्त रूप में इस प्रकार समझा जा सकता है–बुद्धि एक तर्क संगत संरचना है जो दो मुख्य कोटि से बनी है–स्मृति तथा चिन्तन। चिन्तन का वर्गीकरण संज्ञान, उत्पादन एवं मूल्यांकन के अन्तर्गत किया गया है। उत्पादन को पुनः दो वर्गों में विभक्त किया गया है–अपसारी चिन्तन तथा अभिसारी चिन्तन। इस प्रकार, कुल पाँच बुद्धि खण्डों के समूह हैं जो कुछ संक्रियाओं के माध्यम से स्पष्ट किये गये हैं। इन पाँच समूहों का गर्वीकरण दो सिद्धांतों के आधार पर किया गया है। इन सभी के अन्तर्गत किस प्रकार का परिणाम (इकाइयों, वर्गों) समाहित है तथा किस प्रकार की विषय-वस्तु (आकृति, भाषायी, प्रतीकात्मक एवं व्यावहारिक) को लिया गया है, इस संबंध में गिलफर्ड अपने सिद्धांत को यह कहकर विराम देते हैं कि रिक्त प्रकोष्ठ (cells) उन प्राथमिक मानसिक योग्यताओं की ओर संकेत देते हैं जिनकी खोज करना अभी शेष है।

अपने विस्तृत कारक-विश्लेषण अनुसंधान के आधार पर गिलफर्ड ने सन् 1967 में डिब्बे के आकार का एक मॉडल (Model) प्रस्तुत किया, जिसे 'बुद्धि संरचना मॉडल' (Intellect Structure Model) के नाम से जाना जाता है। इस मॉडल में उन्होंने $5 \times 4 \times 6$ वर्ग बनाये हैं अर्थात्, कुल 120 कोश (Cells), जिनमें मानसिक योग्यता संबंधी तीन तत्वों पर आधारित विभिन्न कारकों को रखा गया है। प्रत्येक कोश में कम से कम एक कारक या योग्यता को रखा गया है, कुछ कोषों में एक से अधिक कारक भी रखे जा सकते हैं, वैसे, इस मॉडल में यह व्यवस्था कम ही की गई है। गिलफर्ड महोदय ने प्रत्येक कारक की व्याख्या तीनों आयामों पर ही की है तथा अपने कारक-विश्लेषण अनुसंधान के आधार पर 80 कारकों के अस्तित्व को स्थापित करने में सफल हुए हैं तथा शेष के प्रति आशावान हैं। गिलफर्ड ने बुद्धि के समस्त तत्वों का विभाजन इस प्रकार से किया–

नोट

सामान्य मानसिक बुद्धि

संक्रिया (Operation)	विषय-वस्तु (Content)	उत्पादन (Product)
1. मूल्यांकन (Evaluation)	1. रूप-आकार (Figural)	1. इकाई (Units)
2. उत्पादन (Production)	2. सांकेतिक (Symbolic)	2. वर्ग (Classes)
3. स्मृति (Memory)	3. शाब्दिक (Semantic)	3. संबंध (Relations)
4. संज्ञान (Cognition)	4. व्यावहारिक (Behavioural)	4. प्रणाली (Systems)
		5. रूप-परिवर्तन (Transformations)
		6. प्रयोग (Implications)

16.3 उत्पादकीय उपादेयता (Productional Implications)

जहाँ तक इस सिद्धांत की शिक्षा जगत में उपादेयता का प्रश्न है गिलफर्ड ने अपने इस सिद्धांत के प्रतिपादन के समय ही कहा था कि यह सिद्धांत शिक्षा के क्षेत्र में व अनुसंधान के क्षेत्र में नई संभावनाओं को जन्म देगा। गिलफर्ड को यह विश्वास था कि यह सिद्धांत सम्पूर्ण शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को एक नया स्वरूप प्रदान करेगा। साथ ही, अधिगमकर्त्ता की जिज्ञासाओं को भी शांत करेगा। उन्होंने अधिगमकर्त्ता की तुलना एक कम्प्यूटर से की है। अन्तर

चित्र 16.1: बुद्धि संरचना मॉडल (Intellect Structure Model)

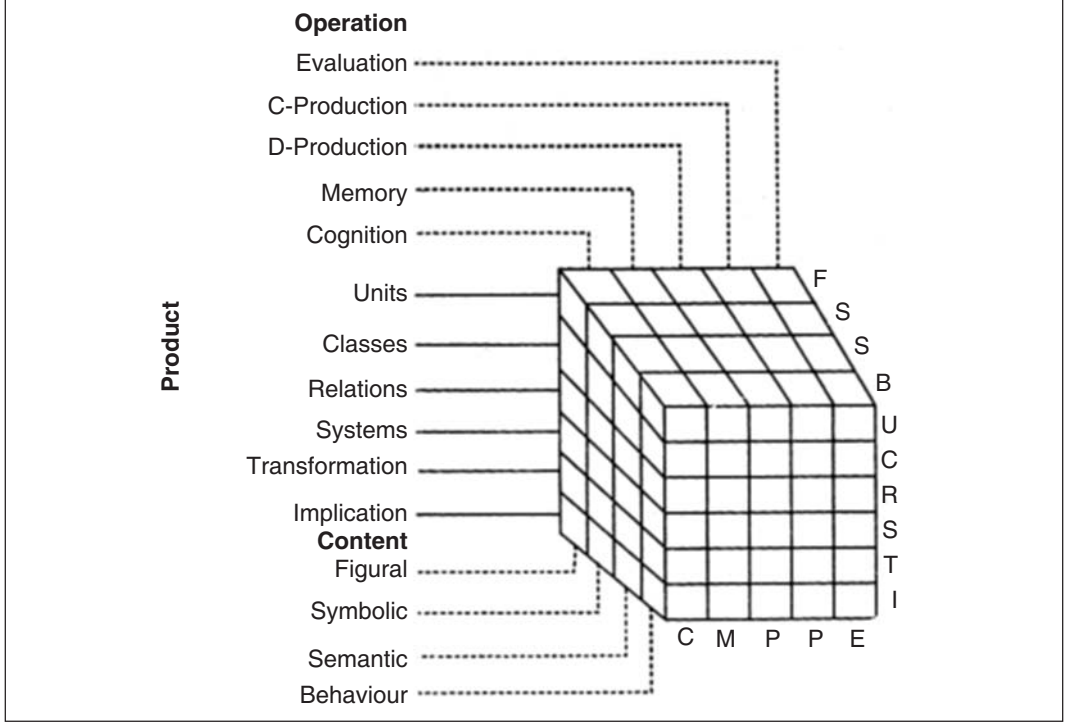

नोट

केवल इतना है कि विद्यार्थी अपना कार्यक्रम स्वयं सुनिश्चित करता है जबकि कम्प्यूटर दूसरों पर निर्भर रहता है। संक्षेप में, कहा जा सकता है कि गिलफर्ड का उपरोक्त वर्णित सिद्धांत अभी पूर्ण नहीं है तथा इस संबंध में अभी और आगे खोज करने की आवश्यकता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि बुद्धि के क्षेत्र में इस सिद्धांत के प्रतिपादन से गिलफर्ड ने एक अन्वेषणा का मार्ग प्रशस्त किया है। गिलफर्ड के सिद्धांत के संबंध में आईजिंक लिखते हैं–

"Guilford classifies the intellect into operations, which it can perform, different contents of these operations and different products. By taking all possible interactions we obtain 120 cells corresponding to different mental abilities. Of these, Guilford claims to have evidence in actual factorial studies for eighty, he is optimistic about discovering the remainder."

16.4 सारांश (Summary)

- बालक की मानसिक योग्यता पर बुद्धि का प्रभाव पड़ता है। बुद्धि क्या है? इस प्रश्न का उत्तर मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने विचारों के अनुसार दिये हैं। मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न परिभाषाओं द्वारा बुद्धि के स्वरूप की व्याख्या की है। उनका निष्कर्ष यह है- बुद्धि एक सामान्य योग्यता है। यह विभिन्न योग्यताओं का समूह है तथा विशिष्ट योग्यताओं का सार है।
- एक संगठन के रूप में बुद्धि के उल्लेखनीय सिद्धांत इस प्रकार हैं–(1) एक सत्तात्मक सिद्धान्त, (2) या द्विखंड का सिद्धान्त, (3) त्रिखंड सिद्धान्त, (4) बहुतत्त्व या असत्तात्मक सिद्धान्त, (5) बहुमानसिक योग्यता का सिद्धान्त, (6) वर्गघटक या संघ सत्तात्मक सिद्धान्त, (7) क्रमिक महत्त्व का सिद्धान्त, (8) कैटल का सिद्धान्त, (9) सम्मिलित सिद्धान्त।
- बुद्धि संबंधी अनेक सिद्धांतों के अन्तर्गत गिलफर्ड ने बुद्धि संबंधी अपना एक अलग ही सिद्धांत प्रतिपादित किया है। गिलफार्ड के अनुसार बुद्धि कुछ प्राथमिक बौद्धिक योग्यताओं (Primary Intellectual Abilities) की संरचना (Structure) मात्र है। गिलफर्ड कहता है कि प्रत्येक बौद्धिक योग्यता अपने में विशिष्ट व अनूठी होती है। साथ ही, प्रत्येक कार्य को सही ढंग से करने के लिए किसी न किसी की बौद्धिक योग्यता की आवश्यकता पड़ती है। अत: इस दृष्टि से गिलफर्ड की मान्यता है कि प्रत्येक बौद्धिक योग्यता की माप अलग-अलग ढंग से की जानी चाहिए। गिलफर्ड महोदय इस संदर्भ में यह भी मानते हैं कि विभिन्न बौद्धिक योग्यताओं में कुछ समानताएँ (similarities) भी दृष्टिगोचर होती है। गिलफर्ड ने इन्हीं समानताओं के आधार पर इन्हें तीन सामान्य श्रेणियों में रखा है। ये तीन सामान्य श्रेणियाँ इस प्रकार हैं–

  1. प्रक्रिया (Process or Operation)
  2. विषय-वस्तु (Content or Material)
  3. परिणाम (Product)

16.5 शब्दकोश (Keywords)

1. **उपसारी**–सहायक
2. **अपसारी**–हटता हुआ, भिन्न

नोट

16.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. बुद्धि के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।
2. एक सत्तात्मक तथा असत्तात्मक सिद्धांत में अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. गिलफर्ड को 'सम्मिलित सिद्धांत' का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. थॉर्नडाइक 2. सम्मिलित 3. बकिंघम 4. बुद्धि, ज्ञान

16.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.एच. सिन्हा और रचना शर्मा, अटलांटिक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।*
2. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
3. बच्चों में शिक्षा का महत्त्व एवं जानकारियाँ–*सीमा चोपड़ा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
4. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 17: स्मृति (Memory)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

17.1 स्मृति का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Memory)

17.2 स्मृति के तत्व (Factors of Memory)

17.3 अच्छी स्मृति की विशेषताएँ (Characteristics of Good Memory)

17.4 स्मृति के प्रकार (Kinds of Memory)

17.5 सारांश (Summary)

17.6 शब्दकोश (Keywords)

17.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

17.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- स्मृति का अर्थ समझने में सक्षम होंगे।
- स्मृति के तत्व एवं अच्छी स्मृति की विशेषताओं से परिचित होंगे।
- स्मृति के प्रकार की जानकारी प्राप्त करने में सक्षम होंगे।

प्रस्तावना (Introduction)

हमारे दैनिक जीवन में स्मृति का बहुत महत्त्व है बिना स्मृति के व्यक्ति को अपना जीवन सुचारु रूप से चलाना कठिन हो जाता है। व्यक्ति जो कुछ भी नित्य अनुभव करता है वह मस्तिष्क में किसी–न–किसी रूप में संचित होता रहता है। जो अनुभव मन के अचेतन स्तर पर रहते हैं या चेतनायुक्त नहीं होते उन्हें 'संचय' कहते हैं और जो चेतन स्तर पर आ जाते हैं उन्हें स्मृति कहते हैं। आवश्यकता पड़ने पर ये संचित अनुभव ही हमारी विभिन्न परिस्थितियों में सहायता करते हैं। जीवन के व्यावहारिक कार्यों में स्मृति से ही सहायता मिलती है। यदि व्यक्ति अपने पूर्व अनुभवों और विचारों को याद न रख सकता तो आज वह इतनी उन्नति नहीं कर सकता था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विकास और शिक्षा, पूर्व ज्ञान और अनुभवों की संचय प्रवृत्ति पर निर्भर हैं, उसके लिए अच्छी स्मृति की आवश्यकता होती है। विशेष रूप से बौद्धिक कार्य स्मृति के अभाव में नहीं हो सकते। शिक्षा में स्मरण शक्ति का

नोट

महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्मृति के बिना शिक्षा प्राप्त करना नितान्त असम्भव है। अत: स्मृति के स्वरूप पर विस्तार से विचार करना आवश्यक है।

17.1 स्मृति का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Memory)

स्मृति एक मानसिक क्रिया है। इसकी सहायता से हम गत अनुभवों को जो कि मानसिक संस्कार के रूप में हमारे अचेतन मन में विद्यमान रहते हैं, अपनी वर्तमान चेतना में लाते हैं। हमारे व्यावहारिक जीवन में अनेक प्रकार की घटनाएँ घटित होती रहती हैं या हम किसी स्थान या वस्तु को देखते हैं तो उनसे कुछ अनुभव प्राप्त होते हैं जो कि सदा चेतन मन में नहीं रहते किन्तु अचेतन मन में बने रहते हैं। इन अनुभवों की छाप मस्तिष्क में अंकित हो जाती है। अचेतन मन में संचित इन्हीं अनुभवों के चेतन मन में आने की क्रिया को स्मृति कहते हैं। उदाहरणार्थ–आगरा के विभिन्न ऐतिहासिक स्थलों में ताजमहल विशेष रूप से दर्शनीय है। इसे मैंने वर्षों पूर्व देखा था। उसे प्रत्यक्ष देखकर मस्तिष्क में जो प्रतिमा अंकित हो गई है, वह मेरे अचेतन स्तर पर थी। आज छोटी बहन के सामने ताजमहल का वर्णन करने में पूर्व अनुभव जो अचेतन स्तर पर संचित थे, चेतन मन में आ गये। यही स्मृति है।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई स्मृति की परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

(1) स्टाउट (Stout)– "स्मृति एक आदर्श पुनरावृत्ति है, उस सीमा तक जहाँ तक कि इसमें अतीत काल के अनुभवों को यथासम्भव उसी रूप और क्रम में याद किया जाता है, जैसा कि उनका पहले अनुभव किया गया था।" (Memory is the ideal revival so far as ideal revival is merely reproductive in which the object of past experience are reinstated as far as possible in the order and manner of their original occurence.)

(2) वुडवर्थ (Woodworth)–"स्मृति सीखी हुई वस्तु का सीधा उपयोग है।" (Memory is the direct use of what is learned.)

(3) मैक्डूगल (Mc Dougall)–"स्मृति से तात्पर्य है–अतीत की घटनाओं के अनुभवों की कल्पना करना और इस तथ्य को पहचान लेना कि ये अतीतकालीन अनुभव है।" (Memory implies imagining of events as experienced in the past and recognising them as belonging to one's own past experience.)

(4) विलियम जेम्स (W. James)–"स्मृति चेतना से अलग हो जाने के बाद मन की अतीत दशा का ज्ञान है अथवा यह एक घटना या तथ्य का ज्ञान है, जिसके बारे में हमने कुछ समय तक नहीं सोचा है, पर साथ ही हमें यह सोचना है कि हम उसका पहले विचाार या अनुभव कर चुके हैं।"

(5) नन (Nunn)–"हमारे अनुभवों को संचित करके रहने वाली शक्ति जब चेतना से युक्त होती है, तब हम उसे 'स्मृति' कहते हैं।

(6) रायबर्न (Ryburn)–"अपने अनुभवों को संचित रखने और उनको प्राप्त करने के कुछ समय बाद चेतना के क्षेत्र में लाने की जो शक्ति हममें होती है, उसी को स्मृति कहते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि स्मृति एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा संचित या गत अनुभवों की आवश्यकता पड़ने पर पुन: चेतना में लाया जाता है।

नोट्स

स्मृति के अंतर्गत समस्त सीखी हुई और अनुभव की हुई बातें आती हैं। इस प्रकार स्मृति पूर्व अनुभवों और विचारों को पुन: जाग्रत करने, सजीव करने तथा स्मरण करने की क्रिया है।

17.2 स्मृति के तत्व (Factors of Memory)

नोट

स्मृति एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है। **वुडवर्थ** के अनुसार स्मृति में अग्रलिखित चार तात्विक क्रियाओं का समावेश होता है–

1. अधिगम (Learning)
2. धारण (Retention)
3. प्रत्याह्वान (Recall)
4. प्रत्यभिज्ञा (Recognition)

(1) अधिगम (Learning)–किसी विषय-वस्तु का स्मरण करने के लिए सर्वप्रथम उसे सीखना आवश्यक है। सीखने की प्रक्रिया क्या है और किस प्रकार होती है, इस सम्बन्ध में सीखने से सम्बन्धित अध्याय में विवेचन किया गया है। सीखने और स्मरण करने में घनिष्ठ सम्बन्ध है। बिना भली-भाँति सीखे हम किसी विषय का स्मरण नहीं कर सकते और बिना स्मरण किये हम कुछ भी सीख नहीं सकते। किसी पाठ को सीखने के लिए बालक उसे बार-बार दोहराता है, उसका अर्थ समझता है और उसे दूसरे पाठों से सम्बन्धित करता है। इस क्रिया में उसकी 'छाप' मन पर पड़ जाती है। इस प्रकार पाठ की सीखी हुई बातों का स्मरण करके वह पूर्वाज्ञान का नवीन ज्ञान से साहचर्य स्थापित करता है। स्मृति के इस अंग में सीखने के नियमों का पूर्ण पालन किया जाता है।

(2) धारण (Retention)–'स्मरण रखना' केवल सीखी हुई वस्तु को धारण करना है। स्मरण करने की शक्ति बहुत कुछ धारण शक्ति पर निर्भर है। धारण मस्तिष्क की वह शक्ति है जिसके द्वारा हम सीखे या स्मरण किये हुए विषय को मस्तिष्क में रोके रखते हैं। **वुडवर्थ के अनुसार**–"धारण एक ऐसी परिस्थिति है जिसमें प्रत्येक वस्तु, जो सीखी गई है जब तक कि दुबारा सक्रिय न हो, पड़ी रहती है।"

क्या आप जानते हैं जब हम ध्यानपूर्वक किसी पाठ को सीखते हैं तो मस्तिष्क क्रियाशील हो उठता है और यह क्रियाशीलता मानसिक संस्कार के रूप में एक चिह्न (Engrams) छोड़ जाती है, जिसे 'स्मृति चिह्न' (Memory Trace) कहते हैं।

ये चिह्न नष्ट नहीं होते। ये अचेतन स्तर पर मानसिक संस्कार के रूप में सुरक्षित रहते हैं। जब तक स्मृति चिह्न हमारे मस्तिष्क में उपस्थित रहते हैं तब तक हम उस सीखी हुई सामग्री को स्मरण कर सकते हैं। 'धारण किसी सीखे हुए कार्य की निष्क्रिय दशा है।' 'धारण' एक ऐसा तत्व है जिसे स्मरण द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। हम उन वस्तुओं को पुन: स्मरण कर सकते हैं जिन्हें हमने सीख कर मन में धारण कर लिया है। इस प्रकार पुन: स्मरण धारण और धारण सीखने पर निर्भर है।

धारण-शक्ति को प्रभावित करने वाले कारक–धारण शक्ति को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं–

(क) मस्तिष्क–मानसिक क्रियाएँ मस्तिष्क द्वारा नियंत्रित होती हैं। मस्तिष्क में ही स्मृति चिह्न अंकित होते हैं। जिस व्यक्ति का मस्तिष्क अधिक विकसित होता है उसके स्मृति चिह्न भी अधिक सुदृढ़ होते हैं, फलस्वरूप धारण क्रिया पर वैयक्तिक भेद के कारण अर्थात् कम बुद्धि और अधिक बुद्धि का भी प्रभाव पड़ता है।

(ख) स्वास्थ्य–धारण-शक्ति पर स्वास्थ्य का भी प्रभाव पड़ता है। जो व्यक्ति अस्वस्थ होते हैं वे अधिक समय तक किसी सीखी देखी या अनुभव की हुई बातों को धारण नहीं कर पाते। उदाहरणार्थ–प्रात:काल जब हम थके नहीं हाते और अधिक स्वस्थ रहते हैं, उस समय हम किसी वस्तु को शीघ्र सीख लेते हैं। इसीलिए विद्यार्थियों को प्रात:काल जल्दी उठकर पढ़ने और सीखने पर जोर दिया जाता है ताकि वे पढ़ी हुई वस्तु को अच्छी तरह धारण कर सकें।

नोट

(ग) अभिरुचि–जिस विषय को रुचि और ध्यान से सीखा जाता है वह विषय अधिक समय तक मस्तिष्क में टिका रहता है। धारण-शक्ति को तीव्र बनाने के लिए शिक्षक को विषय के प्रति बालक की रुचि जाग्रत करने पर ध्यान देना चाहिए।

(घ) चिन्तन–धारण-शक्ति का चिन्तन से भी सम्बन्ध है। जिस विषय में हमारी रुचि होती है। हम उसी का चिन्तन करते हैं। चिन्तन द्वारा ही जब हम किसी समस्या पर विचार करते हैं तब पूर्व अनुभव और सीखी हुई बातें शीघ्र याद हो जाती हैं और मस्तिष्क उन्हें अच्छी तरह धारण कर लेता है।

धारण में अनुकूल दशाएँ (Favourable conditions of Retention)—मनोवैज्ञानिकों ने 'धारण में अनुकूल दशाएँ' के सम्बन्ध में अनेक प्रयोग किये हैं। इन प्रयोगों से प्राप्त निष्कर्ष निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किये जा सकते हैं–

1. उत्तेजना की अवधि का धारण शक्ति से अन्त:सम्बन्ध रहता है। अधिक देर तक रहने वाली उत्तेजना मस्तिष्क में अधिक अवधि तक धारण की जा सकती है।
2. **लुंट, एबिंगहास तथा क्रूगर** के अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला है कि अति शिक्षण से धारण पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। किसी निश्चित अवधि में जितनी अधिक मात्रा में कोई वस्तु बालक को सिखाई जायेगी, उतनी ही अधिक मात्रा में उसमें धारण होगी।
3. अधिगम की गति का धारण-शक्ति पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है किसी विषय को जितनी तीव्र गति से सीखा जाता है उसी अनुपात में उसका धारण भी होता है।
4. बालक के स्वास्थ्य का धारण-शक्ति पर प्रभाव पड़ता है। स्वस्थ बालक सीखी हुई सामग्री को अधिक समय तक धारण कर सकता है।
5. जो अधिगम सामग्री रुचि व ध्यान के साथ सीखी जाती है वह अधिक समय तक धारण में बनी रहती है, अर्थात् रुचि तथा ध्यान का धारण शक्ति पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।
6. धारण शक्ति को सुदृढ़ करने के लिए आवश्यक है कि स्मरणीय सामग्री की उत्तेजना तीव्र, स्पष्ट, सार्थक तथा ताजा हो। उत्तेजना में ये विशेषताएँ जितनी अधिक होंगी धारण उतना ही अधिक होगा ये विशेषताएँ धारण के लिए अनुकूलता प्रदान करती हैं।
7. उपयुक्त अधिगम विधि धारण को अनुकूल स्थिति प्रदान करती है। जैसे निष्क्रिय विधि की तुलना में सक्रिय विधि को सीखने में धारण उत्तम एवं दीर्घकालिक होता है।
8. सामग्री की मात्रा अधिक होने पर धारण शक्ति पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। बड़ी विषय-सामग्री को स्मरण करने में अधिक समय और परिश्रम लगता हैं अधिक समय तथा परिश्रम धारण-शक्ति को पुष्ट करते हैं। छोटी विषय-सामग्री की अपेक्षा बड़ी विषय-सामग्री में बालक सार्थकता ढूंढकर विषय के विविध अंगों को परस्पर जोड़ता है। इससे धारण में सहायता मिलती है।
9. कुछ मनोवैज्ञानिकों का निष्कर्ष है कि स्मरण करने के पश्चात् निद्रा, धारण के लिए अनुकूल दशा के रूप में सहायक होती है। स्मृति करते समय यदि मन काम में लग जाए तो उससे धारण में बाधा पड़ेगी, किन्तु किसी विषय को सीखने के पश्चात् बालक सो जाए तो स्मृति चिह्नों को सुदृढ़ होने का अच्छा अवसर मिल जाता है।

टास्क

अपने अनुभव के आधार पर बताइए कि स्मृति धारण अथवा याद रखने का कौन-सा तरीका बेहतर है।

नोट

10. किसी उद्देश्य से सीखा हुआ अनुभव या विषय सामग्री अधिक समय तक स्मृति में रहती है। इसीलिए प्राय: यह देखा गया है कि परीक्षा के समय याद की गई सामग्री अधिक समय तक धारण में बनी रहती है क्योंकि उस पर उद्देश्य का प्रभाव पड़ता है।
11. धारण में पूर्व संचित ज्ञान का अधिक महत्त्व होता है यदि विषय-सामग्री पूर्व संचित ज्ञान से सम्बन्धित नहीं होती तो धारण में कठिनाई होती है। पूर्व-संचित ज्ञान का मिलान धारण को अनुकूल अवस्था प्रदान करता है।
12. धारण में अनुभूतियों तथा भावात्मक परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ता है। दु:ख, सुख, भय तथा निराशा आदि की परिस्थिति की अनुभूतियाँ मस्तिष्क में गहरी छाप अंकित कर देती हैं और वह बहुत समय तक धारण में बनी रहती हैं। किन्तु धारण को अनुकूल दशा प्राप्त करने के लिए इस प्रकार की शैक्षिक परिस्थितियों का निर्माण नहीं किया जा सकता।

(3) पुन: स्मरण (Recall)—पूर्व अनुभवों का चेतना में लाना ही पुन: स्मरण है। गत अनुभवों से मन पर जो संस्कार अंकित हो जाते हैं, पुन: स्मरण द्वारा वे चेतन स्तर पर आ जाते हैं। पुन: स्मरण धारण-शक्ति पर निर्भर है। यदि बालक किसी पाठ को सीखकर उसे उचित रूप से धारण कर लेता है तो फिर उसे वह सरलता से स्मरण कर सकता है। इस प्रकार–"पुन: स्मरण वह मानसिक क्रिया है जिससे हम पूर्वानुभूतियों को बिना मौलिक उद्दीपक के उपस्थित हुए अपनी चेतना में लाते हैं।" पुन: स्मरण प्रमुख रूप से दो प्रकार का होता है– **(क) स्वभावोत्पन्न पुन: स्मरण** (Spontaneous), **(ख) सप्रयास पुन: स्मरण** (Deliberate)। प्रथम प्रकार में किसी भी प्रकार का प्रयास नहीं करना पड़ता है। वे स्वत: आवश्यकतानुसार चेतन स्तर पर आ जाते हैं। दूसरे प्रकार के पुन: स्मरण में प्रयास करना पड़ता है। जैसे परीक्षा-भवन में लिखते समय प्रश्न के उत्तर को स्मरण करने के लिए प्रयास करना पड़ता है। धारण-शक्ति को प्रभावित करने वाले कारकों के अतिरिक्त पुन: स्मरण को कुछ अन्य बातें भी प्रभावित करती हैं, जो इस प्रकार हैं–

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सही विकल्प चुनिए–

समृति की निम्नलिखित परिभाषाएँ किसने दी हैं–

1. "स्मृति सीखी हुई वस्तु का सीधा उपयोग है"–

   (क) स्टाउट (ख) वुडवर्थ (ग) विलियम जेम्स

2. "स्मृति से तात्पर्य है–अतीत की घटनाओं के अनुभवों की कल्पना करना और इस तथ्य को पहचान लेना कि यह अतीत कालीन अनुभव है।"

   (क) मैक्डूगल ने (ख) विलियम जेम्स ने (ग) वुडवर्थ ने

3. 'स्मृति में चार तात्विक क्रियाओं का समावेश किया है।'

   (क) मैक्डूगल ने (ख) नन ने (ग) वुडवर्थ ने

4. पुन: स्मरण के कितने प्रकार होते हैं?

   (क) दो (ख) चार (ग) पाँच

(क) संवेगात्मक अवस्था–पुन: स्मरण की क्रिया को संवेगात्मक अवस्था प्रभावित करती है। पुन: स्मरण के समय यदि व्यक्ति चिन्तित, भयभीत या घबराड़ (nervous) जाता है जो अच्छी तरह सीखी और धारण की हुई वस्तु भी वह पुन: नहीं याद कर पाता। उदाहरणार्थ–परीक्षा-भवन में कभी-कभी प्रश्न-पत्र को देखकर छात्र किसी

नोट

प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाता, किन्तु परीक्षा भवन से बाहर आते ही उसका उत्तर अच्छी तरह स्मरण हो जाता है क्योंकि उसकी धारण-शक्ति अच्छी थी। इसका कारण सांवेगिक अवस्था है। यदि व्यक्ति प्रसन्न और स्वस्थ रहता है तो उसे पुनः स्मरण जल्दी होता है।

(ख) मानसिक तत्परता या विन्यास (Mental Set)–जब व्यक्ति किसी विषय को याद करने के लिए मानसिक रूप से तत्पर रहता है तब वह अधिक बातों को पुनः स्मरण कर सकता है। उदारहणार्थ-परीक्षा के दिनों में विद्यार्थी जो विषय पढ़ते या सीखते हैं वह उन्हें सफलतापूर्वक शीघ्र याद हो जाता है, क्योंकि विद्यार्थी के मन में परीक्षा के कारण विषय को याद करने की एक मानसिक वृत्ति बन जाती है, जिससे पुनः स्मरण में सहायता मिलती है।

(4) पहचान या प्रत्यभिज्ञा (Recognition)–पहचान या प्रत्यभिज्ञा स्मृति का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्व है। **वुडवर्थ** के अनुसार– "पूर्व अनुभवों को जानना ही पहचान है, या वर्तमान काल में उस वस्तु से परिचित होना जिससे कि अतीत काल में परिचित हो चुके हैं।" उदाहरणार्थ–एक वयस्क व्यक्ति जब अपने किसी अध्यापक को वर्षों बाद देखता है जिन्होंने कि उसे बाल्यकाल में चौथी या पाँचवी कक्षा में पढ़ाया था तो वह उन्हें पहचान लेता है कि 'वे मुझे गणित पढ़ाते थे।' अध्यापक भी पुनः स्मरण द्वारा उसे पहचान लेता है कि 'कक्षा का बहुत शैतान लड़का था।' इस प्रकार प्रत्यभिज्ञा विचार साहचर्य (Association of ideas) और परिचित होने की अनुभूति पर निर्भर है।

17.3 अच्छी स्मृति की विशेषताएँ (Characteristics of Good Memory)

अच्छी स्मृति के प्रमुख लक्षण या विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) शीघ्र याद होना या अधिगम (Quick Learning)–अच्छी स्मृति का प्रथम लक्षण है जल्दी याद होना। जो बालक किसी बात को एक बार पढ़ लेने या सुन लेने से याद कर लेता है तो उसकी स्मृति अच्छी कही जाती है।

(2) उत्तम धारण-शक्ति (Good Retention)–यदि कोई बालक सीखी या याद की हुई बातों को अधिक दिनों तक स्मरण रख सकता है तो उसकी स्मृति अधिक स्थायी होती है। यह अच्छी स्मृति का लक्षण है।

(3) शीघ्र पुनः स्मरण (Quick Recall)–अच्छी स्मृति का एक अन्य लक्षण है–पुनः स्मरण। सीखी हुई विषय-सामग्री जितनी जल्दी याद आ जाती है उतनी ही अधिक उसकी उपयोगिता होती है। परीक्षा की दृष्टि से शीघ्र पुनः स्मरण बालक के लिए अत्यावश्यक है।

(4) शीघ्र एवं स्पष्ट पहचानना (Quick and Accurate of Recognition)–अच्छी स्मृति के लिए शीघ्र पुनः स्मरण की नहीं बल्कि किसी विषय को शीघ्र एवं स्पष्ट रूप से पहचानना भी आवश्यक है। बालक ने विषय से सम्बन्धित बहुत-सी बातों को पढ़ा, सीखा और याद किया है, परीक्षा के समय वह उन बातों को पुनः स्मरण करता है किन्तु बिना शीघ्र एवं स्पष्ट रूप से पहचाने हुए वह वांछित प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ नहीं हो सकता।

(5) अनावश्यक बातों को भूलना (Forgetting of Meaningless Things)–अच्छी स्मृति का एक आवश्यक लक्षण यह भी है कि बालक व्यर्थ बातों को भूल जाए और उपयोगी बातें ही याद रखे। अनावश्यक बातें याद रहने से उपयोगी बातों के पुनः स्मरण, धारण एवं पहचान में बाधा पड़ती है।

17.4 स्मृति के प्रकार (Kinds of Memory)

मनोवैज्ञानिकों ने स्मृति के निम्नलिखित प्रकार बताये हैं–

(1) तात्कालिक स्मृति (Immediate Memory)–किसी विषय या तथ्य को याद करके तुरन्त सुना देना तात्कालिक स्मृति है, किन्तु इस प्रकार की स्मृति में विस्मरण की अधिक सम्भावना रहती है।

नोट

(2) स्थायी स्मृति (Permanent Memory)–इसमें सीखी हुई बातें बहुत समय तक याद रहती हैं। यह बालाकों में अधिक पाई जाती है।

(3) सक्रिय स्मृति (Active Memory)–पूर्व अनुभवों को इच्छापूर्वक प्रयास करके पुन: स्मरण करना सक्रिय स्मृति कहलाती है, जैसे परीक्षा-भवन में पूर्व अनुभवों को प्रयासपूर्वक स्मरण करके उत्तर लिखना।

(4) निष्क्रिय स्मृति (Passive Memory)–जब हम पूर्व अनुभवों को अनायास बिना प्रयास के पुन: स्मरण कर लेते हैं तो उसे निष्क्रिय स्मृति कहते हैं। उदारहणार्थ-श्यामपट्ट का नाम लेते ही उसके कालेपन की याद आ जाना।

(5) व्यक्तिगत स्मृति (Personal Memory)–अतीत काल के स्वयं के अनुभवों का पुन: स्मरण व्यक्तिगत स्मृति है, जैसे किसी घटना को देखकर अपनी बाल्यावस्था के किसी अनुभव की याद आ जाना।

(6) अव्यक्तिक स्मृति (Impersonal Memory)–इस प्रकार की स्मृति में स्वयं के अनुभवों के अतिरिक्त अन्य किसी मित्र, पुस्तक, समाचार-पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से प्राप्त अनुभवों को याद कर लिया जाता है।

(7) यांत्रिक स्मृति (Rote Memory)–किसी विषय को भली-भाँति बिना समझे रट लेना और आवश्यकता पढ़ने पर सफलतापूर्वक पुन: स्मरण कर लेना ही यांत्रिक स्मृति है। आजकल अधिकांश विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए इसी प्रकार की स्मृति का सहारा लेते हैं। इस प्रकार की स्मृति अंकगणित के लिए पहाड़ों को याद करने में सहायक होती है।

(8) तार्किक स्मृति (Logical Memory)–विषय-सामग्री को भली-भाँति सोच-विचार कर सीखना और स्मरण कर लेना तथा आवश्यकता पड़ने पर उसे सुना देना तार्किक स्मृति है। इसे बौद्धिक स्मृति भी कहते हैं। इस प्रकार की स्मृति ही बालक की शिक्षा में अधिक उपयोगी होती है।

(9) आदतजन्य स्मृति (Habit Memory)–जब व्यक्ति किसी बात को बार-बार दोहराता या याद करता है तो यह उसकी आदत में परिणत हो जाता है। इस आदत के कारण उसे स्मरण करने का प्रयास नहीं करना पड़ता है।

(10) इन्द्रिय-अनुभव स्मृति (Sense Impression Experience)–इस प्रकार की स्मृति में जब हम किसी वस्तु, तथ्य या विचार को ज्ञानेन्द्रियों के अनुभव के फलस्वरूप पुन: स्मरण करते या पहचानते हैं जैसे आँख बन्द करके किसी वस्तु को छूकर, चखकर या सूँघकर बता सकना या सुनकर किसी तथ्य की याद आ जाना।

(11) शारीरिक स्मृति (Physical Memory)–जब हम किसी कार्य को बार-बार करते हैं तब हमारे सम्बन्धित अंगों को कार्य करने की आदत पड़ जाती है और फिर उस कार्य में किसी प्रकार की भूल नहीं होती, जैसे टाइप करते हुए उंगलियों का स्वयं स्वतंत्रतापूर्वक ठीक-ठीक शब्दों पर पड़ना।

(12) वास्तविक स्मृति (True Memory)–शिक्षाविद्ों ने इस स्मृति को सबसे श्रेष्ठ कहा है। इस प्रकार की स्मृति में विषय-वस्तु को क्रमबद्ध रूप से याद किया जाता है, इसमें याद की हुई सामग्री का क्रमबद्ध ज्ञान स्थायी बना रहता है। वास्तविक स्मृति द्वारा तथ्यों को शीघ्र पुन:स्मरण किया जा सकता है। शिक्षा में इस प्रकार की स्मृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

17.5 सारांश (Summary)

- व्यक्ति जो कुछ भी नित्य अनुभव करता है वह मस्तिष्क में किसी-न-किसी रूप में संचित होता रहता है। जो अनुभव मन के अचेतन स्तर पर रहते हैं या चेतनायुक्त नहीं होते उन्हें 'संचय' कहते हैं और जो चेतन स्तर पर आ जाते हैं उन्हें स्मृति कहते हैं। जीवन के व्यावहारिक कार्यों में स्मृति से ही सहायता मिलती है।
- शिक्षा में स्मरणशक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्मृति के बिना शिक्षा प्राप्त करना नितान्त असम्भव है।
- मनोवैज्ञानिक मैक्डूगल ने स्मृति को परिभाषित करते हुए कहा है– स्मृति से तात्पर्य है–अतीत की घटनाओं के अनुभवों की कल्पना करना और इस तथ्य को पहचान लेना कि ये अतीतकालीन अनुभव है।

नोट

- स्मृति एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है। **वुडवर्थ** के अनुसार स्मृति में अग्रलिखित चार तात्विक क्रियाओं का समावेश होता है– 1. अधिगम 2. धारण 3. प्रत्याह्वान 4. प्रत्यभिज्ञा।
- अच्छी स्मृति का प्रथम लक्षण है जल्दी याद होना। जो बालक किसी बात को एक बार पढ़ लेने या सुन लेने से याद कर लेता है तो उसकी स्मृति अच्छी कही जाती है।
- मनोवैज्ञानिकों ने स्मृति के निम्नलिखित प्रकार बताये हैं–1. तात्कालिक स्मृति 2. स्थाई स्मृति 3. सक्रिय स्मृति 4. निष्क्रिय स्मृति 5. व्यक्तिगत स्मृति 6. अव्यक्तिक स्मृति 7. यांत्रिक स्मृति, 8. तार्किक स्मृति 9. आदतजन्य स्मृति 10. इन्द्रिय-अनुभव स्मृति 11. शारीरिक स्मृति 12. वास्तविक स्मृति।

17.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **प्रत्याह्वान**–वापस बुलाना
2. **प्रत्यभिज्ञा**–पहचान, मान्यता

17.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. स्मृति किसे कहते हैं? परिभाषा सहित स्मृति का अर्थ समझाइए।
2. स्मृति के तत्वों पर प्रकाश डालिए।
3. अच्छी स्मृति की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
4. स्मृति के प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (ख) 2. (क) 3. (ग) 4. (क)

17.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. मनोविज्ञान–*मानव व्यवहार का अध्ययन–ब्रजकुमार मिश्र, पी.एच.आई. लर्निंग, नई दिल्ली।*
2. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
3. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
4. मनोविज्ञान–*डॉ. सरयू प्रसाद, आगरा बुक स्टोर, आगरा।*

नोट

इकाई 18: विस्मृति (Forgetting)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

18.1 विस्मृति का स्वरूप (Nature of Forgetting)

18.2 विस्मृति के कारण (Causes of Forgetting)

18.3 विस्मृति के सिद्धांत (Theory of Forgetting)

18.4 विस्मृति निवारण के उपाय (Methods of Minimising Forgetfulness)

18.5 स्मरण एवं विस्मरण का शैक्षिक महत्त्व (Educational Importance of Memory and Forgetting)

18.6 सारांश (Summary)

18.7 शब्दकोश (Keywords)

18.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

18.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विस्मृति के स्वरूप को समझने में।
- विस्मृति के कारणों एवं विस्मृति-निवारण के उपाय खोजने में।
- विस्मृति के सिद्धांत को समझने में।
- स्मरण तथा विस्मरण के शैक्षिक महत्त्व को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

स्मृति के स्वरूप पर विचार करने के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि स्मृति, अधिगम और धारण क्रिया पर विशेष रूप से निर्भर है। सीखी हुई वस्तु को धारण और पुन: स्मरण करने में असफल होना ही विस्मृति है। शिक्षा में स्मृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है, किन्तु साथ ही विस्मृति का अध्ययन करना भी आवश्यक है, क्योंकि विस्मृति, स्मृति के हेतु है। विस्मृति मन को अनावश्यक और व्यर्थ की बातों से मुक्त करती है एवं नवीन, आवश्यक और उपयोगी बातों को ग्रहण करने में सहायता करती है।

नोट

मनोवैज्ञानिक **मन** (Munn) का विचार है- ''स्मरण के समान विस्मरण भी सीखने की प्रक्रिया का आवश्यक पक्ष है, क्योंकि जब सही बातों को याद करते हैं तब हम गलत बातों को भूल जाते हैं।'' (Forgetting like memory is a necessary aspect of the learning process, for we must often, forget incorrect responses while we acquire correct ones.)

अत: यहाँ शैक्षिक दृष्टि से स्मृति के स्वरूप, सिद्धान्त, कारण और निवारण पर विचार किया जायेगा।

18.1 विस्मृति का स्वरूप (Nature of Forgetting)

सीखने की क्रिया के लिए विस्मृति के स्वरूप और कारणों को जानना अति आवश्यक है। अधिगम-क्रिया में सफलता विस्मृति के कारणों का निवारण करने पर ही प्राप्त होती है। विस्मृति एक ऐसी मानसिक क्रिया है, जिसके कारण हम किसी सीखी हुई बात को, अनुभव को या विचार को अपनी चेतना पर लाने में असमर्थ होते हैं अर्थात् धारण किये हुए अनुभवों को पुन: स्मरण नहीं कर पाते। विस्मृति में व्यक्ति पूर्व अर्जित अनुभवों को जो मानस पटल पर स्मृति-चिह्न के रूप में अंकित हो जाते हैं, उनका प्रत्याह्वान या प्रत्याभिज्ञान करने में अपने को असमर्थ पाता है। इस स्मृति चिह्न का धुंधला पड़ जाना या मिट जाना विस्मृति कहलाता है। विस्मृति के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने निम्नांकित परिभाषाएँ दी हैं-

(1) **मन** (Munn)- ''ग्रहण किये या सीखे हुए तथ्यों को धारण करने या पुन: स्मरण की असफलता को विस्मृति कहते हैं।'' (Forgetting is failing to retain or to be able to recall what has been acquired.)

(2) **ड्रेवर** (Drever)- ''विस्मरण का अर्थ है-किसी समय प्रयत्न करने पर भी किसी पूर्व अनुभव का स्मरण करने या पहले की सीखी हुई किसी क्रिया को करने में असफलता।'' (Forgetting means failure at any time to recall an experience. When attempting to do so, or to perform an action previously learned.)

(3) **फ्रायड** (Freud) - ''विस्मरण वह प्रवृत्ति है जिसके द्वारा दु:खद अनुभवों को स्मृति से अलग कर दिया जाता है।'' (Forgetting is a tendency toward off from memory that which is unpleasant.)

उपर्युक्त विवेचन से विस्मरण का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने विस्मरण पर कुछ प्रयोग किये हैं, वो विस्मरण के कारणों पर प्रकाश डालते हैं। इन मनोवैज्ञानिकों में **एबिंगहॉस** (Ebbinghaus) का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने विस्मरण को एक 'निष्क्रिय मानसिक प्रक्रिया' (Passive Mental Process) कहा है। उनके अनुसार सीखने के बाद जैसे-जैसे **स्कैग्स** (Skaggs) **म्यूलर** (Mullar), **पिल्जेकर** (Pilzecker) तथा **फ्रायड** (Freud) ने एबिंगहॉस के मत का खण्डन करते हुए विस्मरण को 'सक्रिय मानसिक क्रिया' (Active Mental Process) कहा है। इन लोगों के अनुसार समय व्यतीत होने के कारण हम नहीं भूलते, बल्कि भूलने का कारण सीखने और पुन: स्मरण के बीच होने वाली अन्य क्रियाएँ तथा कारण होते हैं।

18.2 विस्मृति के कारण (Causes of Forgetting)

विस्मृति के कारणों को निम्नांकित दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

(क) सैद्धान्तिक कारण (Theoretical)

(ख) सामान्य कारण (General)

(क) विस्मृति के सैद्धांतिक कारण–विस्मृति के सैद्धांतिक कारण निम्नलिखित हैं–

(1) अनाभ्यास का सिद्धांत (Theory of Disuse)–इस सिद्धान्त के समर्थक **एबिंगहॉस** महोदय हैं। इनके मतानुसार जब सीखी हुई विषय सामग्री को बहुत दिनों तक प्रयोग में नहीं लाया जाता या उसका अभ्यास नहीं किया

नोट

जाता तो वह भूलने लगती है। स्पष्ट है कि विस्मरण के लिए अनाभ्यास के उत्पन्न काल-व्यवधान (Lapse of Time) ही उत्तरदायी है। एबिंगहॉस ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है विस्मरण की मात्रा बढ़ती जाती है।

(2) दमन का सिद्धान्त (Repression Theory)–इस सिद्धान्त का प्रतिपादन मनोविश्लेषणवादी फ्रायड तथा उनके अनुयायियों ने किया है। इनके अनुसार व्यक्ति को अपने जीवन-काल में जो दु:खद और अप्रिय अनुभव होते हैं, उन्हें वह स्वेच्छापूर्वक पुन: स्मरण नहीं करना चाहता है। इस प्रकार के पीड़ादायक अनुभव अचेतन मन में दमित होकर विस्मृत हो जाते हैं।

(3) बाधा का सिद्धान्त (Theory of Interference)– इस सिद्धान्त पर मुलर, वुडवर्थ एवं पिल्जेकर आदि मनोवैज्ञानिकों ने प्रकाश डाला है। इनके मतानुसार यदि सीखने और पुन: स्मरण के बीच कोई अन्य क्रिया की जाती है तो वह पहले सीखी हुई विषय-सामग्री के पुन: स्मरण में बाधा या रुकावट पहुँचाती है। इस क्रिया को प्रतिगामी या पूर्वलक्षी अवरोध (Retrospective Inhibition) कहते हैं। इसका अर्थ है पीछे की ओर रुकावट। सीखने और पुन:स्मरण के बीच जो क्रिया होती है, उसे अन्तर्वेशी क्रिया (Interpolated activity) कहते हैं। विशेष क्रिया सीखी हुई क्रिया से जितनी भिन्न होगी, विस्मरण भी अधिक मात्रा में होगा।

टास्क फ्रायड के अनुसार 'पीड़ादायक अनुभव अचेतन मन में दमित होकर विस्मृत हो जाते हैं? फ्रायड के इस विचार के संदर्भ में विस्मृति की व्याख्या कीजिए।'

(ख) विस्मृति के सामान्य कारण- विस्मृति के सामान्य कारण निम्नलिखित हैं-

(1) विषय-सामग्री का स्वरूप (Nature of the Learning Material)– यदि सीखने या याद करने वाली सामग्री अधिक सार्थक, आनन्दवर्धक एवं सरल होती है तो विस्मरण की क्रिया कम होती है। इसके विपरीत यदि विषय-सामग्री निरर्थक और जटिल होती है तो विस्मरण उतनी अधिक मात्रा में होता है।

(2) विषय-वस्तु का परिमाण (Amount of Learning Material)– यदि कोई विषय अधिक लम्बा होता है तो उसे सीखने के लिए अधिक समय और अभ्यास की आवश्यकता होती है। अधिक अभ्यास के कारण यह अधिक दिनों तक याद रहता है। इसके विपरीत छोटे विषय शीघ्र याद हो जाते हैं, उनके लिए अधिक अभ्यास की आवश्यकता नहीं होती। फलत: इस प्रकार के याद किये विषयों में स्मृति चिह्न गहरे नहीं होते और उसे शीघ्र भूल जाते हैं। इस प्रकार भूलने का कारण विषय का कम लम्बा या छोटा होना भी है।

(3) सीखने की मात्रा (Degree of Learning)– किसी विषय को यदि पर्याप्त या अधिक मात्रा में सीखा या अभ्यास किया जाता है तो वह अधिक समय तक याद रहता है। इसके विपरीत कम याद किया (Under Learning) या सीखा विषय शीघ्र भूल जाता है।

(4) सीखने की दोषपूर्ण विधि (Defective Method of Learning)– यदि सीखने या याद करने की विधि उपयुक्त नहीं है तो विषय-सामग्री शीघ्र भूल जाती है।

(5) रुचि और ध्यान का अभाव (Lack of Interest and Attention)– जिस विषय को सीखने में व्यक्ति की अभिरुचि नहीं होती उसमें उसका ध्यान नहीं लगता और वह किसी बात को सीखने पर भी शीघ्र भूल जाता है।

(6) समय अवधान (Lapse of Time)– सीखने एवं प्रत्याह्वान के बीच के समय में जितना अधिक अन्तर होगा विस्मृति की क्रिया भी उतनी अधिक मात्रा में होगी जैसा कि अनाभ्यास के सिद्धान्त में स्पष्ट किया गया है।

(7) सीखने वाले की आयु एवं बुद्धि (Age and Intelligence of Learner)– विस्मृति की मात्रा सीखने वाले की आयु एवं बुद्धि पर भी निर्भर करती है। प्रौढ़ एवं प्रखर बुद्धि के व्यक्ति में विस्मृति की क्रिया मन्द होगी।

नोट

(8) पुनरावृत्ति का अभाव (Lack of Repetition)–जब सीखी हुई विषय सामग्री को अधिक दिनों तक दोहराया नहीं जाता तो वह भी भूल जाती है क्योंकि स्मृति-चिह्न पुनरावृत्ति के अभाव में मन्द पड़ने लगते हैं।

(9) संवेगात्मक कारण (Emotional Causes)– प्राय: भय, क्रोध, चिन्ता, घबराहट आदि के कारण संवेगात्मक असन्तुलन उत्पन्न होने से शारीरिक और मानसिक दशा में परिवर्तन हो जाता है। ऐसी दशा में याद की हुई या पिछली बातों का स्मरण करना कठिन हो जाता है। प्राय: परीक्षार्थी परीक्षा भवन में भय या घबराहट में अच्छी तरह याद किया हुआ पाठ भी भूल जाते हैं।

(10) भूलने की इच्छा (Desire to forget)– जब हम किसी बात को याद नहीं रखना चाहते तब भूल जाते हैं। प्राय: व्यक्ति अपने जीवन में घटित दु:खद घटना को याद नहीं रखना चाहता इसलिए भूल जाता है। इस प्रकार विस्मृति इच्छा-प्रेरित होती है। बालक जब अनिच्छापूर्वक सीखते हैं तो शीघ्र भूल जाते हैं।

(11) संशय (Doubt)– संशय मानसिक दुर्बलता को जन्म देता है जिससे कि व्यक्ति में आत्मविश्वास की कमी हो जाती है। इस प्रकार मन में संशय उत्पन्न होने पर वह आवश्यक बातों को भूलने लगता है।

(12) मस्तिष्क की चोट (Brain Injury)– यदि व्यक्ति के मस्तिष्क पर कभी चोट लग जाती है तो उसकी स्मरण-शक्ति क्षीण हो जाती है।

(13) मानसिक आघात (Mental Shock)– यदि किसी व्यक्ति को किसी कारण किसी प्रकार का मानसिक धक्का लगता है तो उसकी स्मरण-शक्ति पर इसका प्रभाव पड़ता है।

(14) मानसिक द्वन्द्व (Mental Conflict)– मानसिक द्वन्द्व से उत्पन्न परेशानी भी विस्मृति का कारण है।

(15) मादक वस्तुओं का सेवन (Use of Intoxicants)– नशीली वस्तुओं का प्रयोग करने वाले लोगों की स्मरण-शक्ति मन्द पड़ जाती है। सीखने के बाद यदि किसी वस्तु का प्रयोग किया जाता है तो विषय-वस्तु अधिक समय तक याद नहीं रहती है।

(16) मानसिक रोग (Mental Disease)– मानसिक रोग या विकार भी स्मरण-शक्ति को निर्बल बना देते हैं।

उपर्युक्त बातों में असाधारण विस्मृति का कारण संवेगात्मक उथल-पुथल, भावना-ग्रन्थियाँ, संशय मानसिक द्वन्द्व आदि हैं। अन्य बातें साधारण विस्मृति के अन्तर्गत आती हैं।

18.3 विस्मृति के सिद्धांत (Theory of Forgetting)

इससे पहले विस्मृति के कारणों का उल्लेख करने के लिए कुछ सैद्धान्तिक पक्ष दिये गये हैं। वास्तव में विस्मृति के कारणों का व्यापक आधार प्रस्तुत करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने विस्मृति के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। अत: यहाँ विस्मृति के प्रमुख सिद्धान्तों का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

नोट्स

विस्मृति का सम्बन्ध अधिगम से है। यदि अधिगम न हो तो विस्मृति का प्रश्न ही नहीं उठता। इसीलिए विस्मृति के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया जिससे अधिगम को प्रभावशाली बनाये रखने हेतु विस्मृति के दुष्प्रभावों से बचा जा सके।

विस्मृति के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

(1) चिह्न-ह्रास का सिद्धान्त (Theory of Trace Decay)

(2) व्यतिकरण का सिद्धान्त (Theory of Interference)

(3) पुनर्आह्वान की विफलता का सिद्धान्त (Theory of Retrieval Failure)

नोट

(4) अभिप्रेरणात्मक सिद्धान्त (Motivational Theory)

(5) अनुबद्धता का सिद्धान्त (Theory of Conselidation)

1. चिह्न-ह्रास का सिद्धान्त (Theory of Trace Decay)– चिह्न ह्रास का सिद्धान्त सामान्य अनुभवों पर आधारित है। प्राय: यह देखा जाता है। कि समय अन्तराल के कारण हम पिछली बातें भूल जाते हैं। स्मृति पटल पर बने स्मृति चिह्न धूमिल हो जाते हैं अथवा मिट जाते हैं। अत: पूर्व अनुभव, कृत कार्य अथवा अधिगम पूर्ण अथवा आंशिक रूप से विस्मरण हो जाते हैं। इस प्रकार से होने वाले विस्मरण में दो तत्व प्रधान रूप से पाये जाते हैं- समय तत्व तथा उपयोगिता तत्व। एक समय में स्मृति अथवा अधिगम सामग्री आगे के समय में यदि प्रत्याह्वानित (Recalled) न की जा सके तो इस प्रकार से होने वाले विस्मरण में तत्व (Time Factor) क्रियाशील होता अर्थात् स्मृति को समय तत्व धीरे-धीरे मिटा देता है। अत: इस विचार से विस्मरण की प्रक्रिया समय अन्तराल के कारण स्मृति चिह्न में ह्रास होने से घटित होती है। विस्मरण में उपयोगिता तत्व का भी प्रभाव पड़ता है। जिन बातों का उपयोग व्यवहार में होता रहता है अभ्यास के कारण उनकी स्मृति सुदृढ़ रहती है, किन्तु जिन बातों का उपयोग व्यवहार में नहीं होता, अर्थात् अभ्यास न होने के कारण स्मृति चिह्न में ह्रास होने लगता है, तो विस्मरण की प्रक्रिया घटित होती है। **थॉर्नडाइक** ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है कि जिन अधिगम व्यवहारों का उपयोग नहीं होता वे भूल जाते हैं। थॉर्नडाइक ने अपने अधिगम नियमों में इस विचार को अनुपयोगिता सिद्धान्त (Theory of Disuse) के रूप में वर्णित किया है। विस्मरण सम्बन्धी अध्ययन के क्षेत्र में इसे विस्मरण का अनुपयोगिता सिद्धान्त (Thoery of Disuse) कहा जाता है। उपर्युक्त कारणों से स्मृति चिह्नों में जो ह्रास दिखाई देता है उससे जब हम विस्मरण की व्याख्या करते हैं तो वही विस्मृति का चिह्न ह्रास सिद्धान्त (Theory of Trace Decay) है। इस सिद्धान्त के पक्ष में हम अपने दैनिक जीवन के व्यवहार से अनेक उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं जो इस सिद्धान्त की पुष्टि कर सके। किन्तु मनोवैज्ञानिक अध्ययनों की कसौटी पर यह सिद्धान्त खरा नहीं उतरता। अत: इसको नकारा भी गया है। यह सिद्धान्त सामान्य अनुभवों पर आधारित है तथा वैज्ञानिक स्वरूप नहीं रखता। यह एक पुरातन सिद्धान्त है। इससे असन्तुष्ट होने के कारण ही अन्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

2. व्यतिकरण का सिद्धान्त (Theory of Interference)– विस्मृति के इस सिद्धान्त पर **मुलर, वुडवर्थ** तथा **पिल्जेकर** आदि मनोवैज्ञानिकों ने प्रकाश डाला है। इस सिद्धान्त के अनुसार एक समय में जो अधिगम, धारण अथवा स्मरण किया जाता है। उस पर उसके पूर्व के तथा पश्चात् के कार्यों द्वारा पुन: स्मरण में बाधा (Interference) के रूप में ह्रासात्मक प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति जो कार्य कर रहा होता है वह वर्तमान में होता है, जो कर चुका है वह भूत में चला जाता है तथा बाद में किया जाने वाला कार्य भविष्य में होता है। समय के तीनों कालों में किये गये कार्यों में एक प्रभावात्मक सम्बन्ध होता है। इसको निम्नचित्र में प्रदर्शित किया गया है–

चित्र 18.1

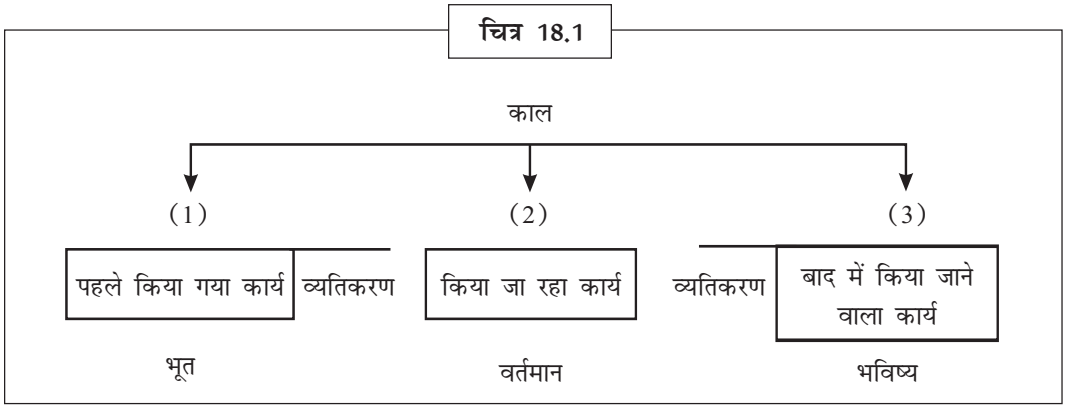

नोट

जब वर्तमान काल के अधिगम कार्य (2) भूतकाल के कार्य (1) में व्यतिकरण (Interference) उत्पन्न करें अथवा भविष्य के कार्य (3) वर्तमान के कार्य (2) में व्यतिक्रम करें, जिससे पुन: स्मरण अथवा धारण-शक्ति में ह्रास हो तो इस प्रकार से होने वाली विस्मृति के विचार को व्यक्तिकरण का सिद्धान्त कहेंगे।

क्या आप जानते हैं विस्मृति के व्यतिकरण का सिद्धान्त विभिन्न काल में हुए अधिगमों के मध्य पारस्परिक रूप से बाधित होने का दूसरा नाम है।

इस तथ्य से ज्ञात होता है कि व्यतिकरण की दो दशाएँ हैं, पहली, जब भूतकाल की अधिगम क्रियाएँ वर्तमान की क्रियाओं में व्यतिक्रम उत्पन्न करती हैं, तथा दूसरी, जब भविष्य की अधिगम क्रियाओं में व्यतिक्रम उत्पन्न करती हैं। मनोवैज्ञानिक भाषा में दोनों प्रकार के व्यतिकरणों को अग्रलिखित नामों से जाना जाता है-

(1) अग्रोन्मुख व्यतिकरण (Pro-active Interference)

(2) पृष्ठोन्मुख व्यतिकरण (Retro-active Interference)

1. अग्रोन्मुख व्यतिकरण (Pro-active Interference)– विस्मरण के कारक जब आगे की ओर उन्मुख होकर व्यतिकरण करते हैं तो उसे अग्रोन्मुख व्यतिकरण कहते हैं, जैसे कि इसके नाम से ही स्पष्ट है। इस विचार से यह प्रकट होता है कि वर्तमान काल में किये जा रहे अधिगम पर पिछली अधिगम सामग्री व्यतिक्रम के रूप में प्रभाव डालती है। अर्थात् पहले का अधिगम बाद के अधिगम में बाधा बन जाता है। उदाहरणार्थ, एक बालक को दो सूचियों में दी गई अधिगम सामग्री को धारण तथा पुन: स्मरण करना है तो वह पहले एक सूची को याद करता है, फिर दूसरी सूची को याद करने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया में यदि दूसरी सूची के धारण एवं पुन: स्मरण में पहली सूची की अधिगम सामग्री बाधा उत्पन्न करे तो इससे सिद्ध होगा कि विस्मरण में अग्रोन्मुख व्यतिकरण क्रियाशील रहता है- इसी प्रक्रिया को मनोविज्ञान की शब्दावली में अग्रोन्मुख व्यतिकरण कहते हैं। प्राय: यह देखा गया है कि बालक के अधिकांश विस्मरण के कारणों में अग्रोन्मुख व्यतिकरण ही प्रधान रहता है। इस सम्बन्ध में **एस. एस. चौहान** का निम्नलिखित उद्धरण देना समीचीन होगा-

''हम प्रतिदिन के जीवन के अनुभवों से यह प्राप्त करते हैं कि अधिकांश विस्मरण अग्रोन्मुखी अवरोध (व्यतिकरण) के कारण ही होता है।'' (Forgeeting, we experience in daily life, is more due to proactive inhibition.)

2. पृष्ठोन्मुख व्यतिकरण (Retro-active Interference)– जब बाद में किया हुआ अधिगम कार्य उससे पूर्व के अधिगम धारण एवं पुन:स्मरण में अवरोध अथवा व्यतिकरण उत्पन्न करता है तो विस्मरण के इस विचार को पृष्ठोन्मुख व्यतिकरण कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि एक बालक पहले एक सूची को याद करने के पश्चात् दूसरी सूची को याद करने का प्रयास करे और दूसरी सूची याद करने से पहली सूची की धारण एवं पुन: स्मरण में व्यतिकरण का दुष्प्रभाव दिखाई दे तो यह क्रिया पृष्ठोन्मुख व्यतिकरण कहलाएगी। इस प्रकार के व्यतिकरण से भी विस्मरण होता है। इस तथ्य से यह भी स्पष्ट होता है कि दो अधिगम धारणाओं और उनके पुन:स्मरण के मध्य अन्तर्वेशी कार्य (Interpolated activity) क्रियाशील हो जाते हैं जिसके प्रभाव से विस्मरण होने लगता है। पहले और बाद की अधिगम सामग्री में जितनी अधिक समानता होगी पृष्ठोन्मुख व्यतिकरण का प्रभाव उतना ही अधिक होगा। जैसे, यदि दोनों सूचियों की सामग्री मे अधिक समानता होगी तो विस्मरण अधिक होगा इसी प्रकार अन्तर्वेशी सामग्री की अधिकता, अन्तर्वेशी अधिगम की अधिकता, अन्तर्वेशी अधिगम को प्रस्तुत करने में समय की अधिकता तथा धारण-विश्राम अवधि में क्रियाशीलता की अधिकता के कारण भी विस्मरण की मात्रा अधिक हो सकती है, क्योंकि ये कारक धारण शक्ति एवं पुन: स्मरण में व्यतिकरण करते हैं।

नोट

उपर्युक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अन्तर्वेशी कार्य की क्रियाशीलता से स्मरण में पृष्ठोन्मुख व्यतिकरण होता है। इस सम्बन्ध में **एस. एस. चौहान** के विचार का उद्धरण समीचीन होगा–

''पुन: स्मरणकाल में अधिगम के मूलभूत प्रदत्त एवं अन्तर्वेशी कार्य की सूची के बीच व्यतिकरण एक महत्त्वपूर्ण परिवर्त्य (Variable) है, जो पृष्ठोन्मुख व्यतिकरण की मात्रा को प्रभावित करता है।'' (Interference between the item of the original and interpolated list at the time of the recall is an important variable influencing the amount of retro-active inhibition.)

विस्मरण की व्याख्या में व्यतिकरण के सिद्धान्त को अधिकांश मनोवैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है। विस्मरण में एक प्रकार का व्यतिकरण ही क्रियाशील होता है। यद्यपि कि कुछ मनोवैज्ञानिक, विशेष रूप से **आसगुड** आदि, इस सिद्धान्त से सहमत नहीं है क्योंकि उनकी मान्यता के अनुसार व्यतिकरण की मात्रा का मापन नहीं किया जा सकता, केवल उनका निरीक्षण तथा अनुभव किया जा सकता है। तथापि व्यतिकरण के सिद्धान्त की व्यापकता विस्मरण की अवधारणा को स्पष्ट करने में सक्षम है, क्योंकि इस सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में मनोविज्ञान की प्रयोगशालाओं में अनेक प्रयोग किये जा चुके हैं तथा वर्तमान में भी किये जा रहे हैं।

3. पुनर्आह्वान की विफलता का सिद्धान्त (Theory of Retrieval Failure)– इस सिद्धान्त में यह विचार प्रतिपादित किया गया है कि विस्मरण का कोई स्थाई प्रारूप नहीं होता, बल्कि यह अस्थाई रूप में होता है। एक विषय वस्तु याद करने के पश्चात् उसका पुनर्आह्वान (Recall) करते समय बालक स्मृति कोष में उसे खोजता है। वह पुनर्आह्वान करने का प्रयास करता है। इस प्रयास में सफलता मिलने पर स्मृति क्रियाशील होती है, किन्तु प्रयास विफल होने पर विस्मृति क्रियाशील होती है। इस प्रकार पुनर्आह्वान में विफलता की स्थिति ही विस्मृति है। प्राय: यह देखने को मिलता है किसी स्मृति का पुनर्आह्वान करने के लिए बालक समय लगाता है, मस्तिष्क पर जोर देता है या माथा ठोंकता है–ये सभी क्रियाएँ पुनर्आह्वान के प्रयासों में सफलता प्राप्त करने के लिए होती है। हम कह सकते हैं कि विस्मृति का खो जाना या समाप्त हो जाना नहीं है, बल्कि यह स्मृति पटल पर ले आने अर्थात् पुनर्आह्वान में विफल हो जाने की परिणति है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि विषय-वस्तु स्मृति पटल पर है अथवा वह कुछ धुँधली अवस्था में है किन्तु पुनर्आह्वान (Retrieval) का स्वरूप नहीं ले पाती। प्रयास करने पर पुनर्आह्वान में सफलता मिल भी सकती है या नहीं भी मिल सकती है। कभी-कभी तो कोई विषय सामग्री बड़ी प्रवाह से और बिना प्रयास पर बल दिए पुनर्आह्ववानित (Recalled) की जा सकती है, जैसे कि वह जिह्वा की नोक पर रखी (Tip on the Tongue) हो। स्मृति तथा विस्मृति के रूप में धारण तथा उसके पुनर्आह्वान में एक अचेतन शक्ति कार्य करती है जो ज्ञात नहीं होती। अत: विस्मरण का कारण अचेतन तथा अज्ञात होता है। वस्तुत: बाह्य रूप से पुनर्आह्वान में विफलता की स्थिति ही विस्मरण है, चाहे वह स्थायी हो या अस्थायी।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान की पूर्ति करें–

1. अधिगम क्रिया में सफलता ..... के कारणों का निवारण करने पर ही प्राप्त होती है।
2. एबिंगहॉस ने विस्मरण को ..... कहा है
3. फ्रायड के अनुसार पीड़ादायक अनुभव ..... में दमित होकर विस्मृत हो जाते हैं।
4. अधिकांश मनोवैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है कि विस्मरण में एक प्रकार का ..... ही क्रियाशील होता है।

4. अभिप्रेरणात्मक सिद्धान्त (Motivational Theory)–इस सिद्धान्त को दमन का सिद्धान्त (Theory of Repression) भी कहते हैं। वस्तुत: फ्रायड ने विस्मरण के सम्बन्ध में अभिप्रेरणा के प्रभाव का उल्लेख किया

नोट

है। यह अभिप्रेरणा दमन है। दमनात्मक क्रियाएँ व्यक्ति में एक ऐसी प्रवृत्ति उत्पन्न करती हैं जिससे व्यक्ति एक विषय अथवा घटना को विस्मृत करने के लिए अभिप्रेरित हो। इससे व्यक्ति स्मृति-विशेष की उपेक्षा करना सीख जाता है। अत: सायास उपेक्षा भाव से धारण शक्ति में ह्रास होने तथा पुनर्आह्वान करने में बाधा आने या असमर्थ होने से विस्मरण होता है। इसमें अचेतन मन क्रियाशील होता है जो कि कष्ट, दु:ख तथा अशुभ आदि की स्मृति से सम्बन्धित होता है। व्यक्ति उस स्मृति से उत्पन्न भय से ग्रस्त हो जाता है। अत: स्मृति उसका पुन: स्मरण (Recall) नहीं चाहती। अभिप्रेरणा का प्रभाव स्मरण और विस्मरण दोनों की प्रक्रिया पर पड़ता है।

अभिप्रेरणा का अभाव भी विस्मरण का कारण बन जाता है। शैक्षिक परिस्थितियों में प्राय: यह देखा जाता है कि बालक पिछली कक्षा का पाठ भूल जाते हैं और वर्तमान कक्षा के पाठ की स्मृति में अधिक प्रयास करते हैं। अत: वे वर्तमान कक्षा की विषय सामग्री के पुनर्आह्वान में, पिछली कक्षा की विषय सामग्री के पुनर्आह्वान की तुलना में अधिक सफलता प्राप्त करते हैं। इस सम्बन्ध में **जिगारनिक** (Zeigarnik) महोदय ने एक प्रयोग किया, जिसमें उन्होंने यह पाया कि बालक पूर्ण कार्यों की तुलना में अपूर्ण कार्यों के प्रति अधिक अभिप्रेरित रहते हैं। उनकी व्याख्या के अनुसार- ''अपूर्ण कार्यों के प्रत्याह्वान में सफलता का कारण वे अभिप्रेरणाएँ होती हैं जिनकी उपलब्धि पूर्ण नहीं होती और उद्देश्य की प्राप्ति का आर्कषण बना रहता है, किन्तु पूर्ण कार्यों में उपलब्धि के कारण अभिप्रेरणा सन्तुष्ट हो चुकी होती है।'' (The explanation of recalling incompleted task is that in case of completed task, their motivation was satisfied and in the case of incompleted tasks, the attraction of those tasks they were unable to finish main.)

5. अनुबद्धता का सिद्धान्त (Theory of Consolidation)–यह सिद्धान्त स्मृति के परिपक्व और सुसंगठित हो जाने की व्यवस्था में कमी रह जाने या उसमें छेड़छाड़ करने से सम्बन्धित है। ऐसी स्थिति में प्रत्याह्वान (Recall) करने में सफलता नहीं मिल पाती। एक स्मृति चिह्न में दूसरी स्मृति चिह्न द्वारा बाधा पहुँचाना अथवा एक धारण (Retention) का दूसरी धारण पर हावी हो जाना विस्मरण का कारण बन जाता है। जिस प्रकार से सीमेन्ट के दृढ़ अथवा परिपक्व होने की एक अवधि सीमा होती है, यदि इसी समय के अन्दर उससे छेड़छाड़ किया जाए तो वह ठीक से अनुबद्धित (Consolidated) नहीं हो पाता। अत: इसके लिए कुछ समय देना होता है। इसी प्रकार एक विषय के धारण की एक धारण-अवधि होती है जिसमें स्मृति दृढ़ होती है। इस अवधि में दूसरी धारणाओं के निर्माण प्रयासों से बाधा या विघटन का प्रभाव पड़ने लगता है जिससे धारण का प्रत्याह्वान नहीं हो पाता। यही विस्मरण है। विस्मरण का यह सिद्धान्त अपूर्ण तथा असन्तोषजनक माना जाता है क्योंकि यह विस्मरण का आंशिक तथ्य ही प्रस्तुत करता है।

उपर्युक्त सिद्धान्तों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि विस्मरण के अनेक कारण हैं। विभिन्न कारणों पर बल देने के कारण विस्मरण के विभिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित हुए। समग्रता के अभाव के कारण प्रत्येक सिद्धान्त में कुछ-न-कुछ कमी परिलक्षित होती है। तुलनात्मक रूप से हम यह देखते हैं कि व्यतिकरण का सिद्धान्त अधिक तर्कसंगत और समीचीन है, क्योंकि इसका मनोवैज्ञानिक आधार है और विस्मरण की व्याख्या करने के लिए इसी सिद्धान्त के आधार पर प्रयोगशालाओं में प्रयोग किये जा रहे हैं।

18.4 विस्मृति निवारण के उपाय (Methods of Minimising Forgetfulness)

विस्मरण को कम करने के लिए मनोवैज्ञानिक **मन** ने अपने विचार प्रकट किये हैं। यहाँ संक्षेप में इनका उल्लेख किया जा रहा है-

(1) किसी बात को सीखने के लिए स्मरण करने का इरादा होना चाहिए।

(2) स्मरण रखने के लिए ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है।

(3) स्मरण रखने के लिए स्मृति प्रतिभाओं का उपयोग करना चाहिए। नोट

(4) अनुभव की गई या सीखी हुई बातों का अन्य बातों से साहचर्य स्थापित करना चाहिए।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त विस्मरण का निवारण स्मृति-प्रशिक्षण द्वारा किया जा सकता है।

18.5 स्मरण एवं विस्मरण का शैक्षिक महत्त्व (Educational Importance of Memory and Forgetting)

स्मरण का महत्त्व- शिक्षा की प्रमुख प्रक्रिया में अधिगम (सीखना) के लिए स्मरण क्रिया के साथ विस्मरण का भी स्थान एवं महत्त्व है। स्मरण करने की विभिन्न विधियों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इन विधियों की उपयोगिता एवं शैक्षिक महत्त्व यह है कि इनके द्वारा शिक्षार्थी को स्मरण करने के सरल ढंग का ज्ञान हो जाता है और किसी विषय को स्मरण करने में समय और श्रम की बचत होती है। स्मृति-प्रशिक्षण के लिए शिक्षक को विशेष बातों पर ध्यान देना चाहिए, जैसे-प्रेरणा प्रदान करना, विचार साहचर्य और सीखने के नियमों पर ध्यान देना, स्मरण करने की विधियों का प्रयोग करना आदि।

विस्मरण का महत्त्व- मनोवैज्ञानिकों ने विस्मरण की क्रिया पर अनेक अध्ययन एवं प्रयोग किये हैं। शिक्षा में विस्मरण के महत्त्व पर **कालिन्स और ड्रेवर** ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं- ''यह सत्य है कि विस्मरण, स्मरण के विपरीत है, पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से विस्मरण लगभग उतना ही लाभप्रद है जितना कि स्मरण।'' (It is true that forgetting is the opposite of remembering, but from a practical point of view forgetting is almost as useful as remembering.)

शिक्षा में विस्मरण की उपयोगिता एवं महत्त्व के सम्बन्ध में निम्नांकित विचार प्रस्तुत किये जाते हैं-

(1) विद्यालय में बालक बहुत-सी बातों को देखता, सुनता और सीखता है किन्तु बहुत-सी बातें अधिक महत्त्व की नहीं होतीं। अत: उन्हें भुला देना ही उपयुक्त होता है। बालक का स्मृति-क्षेत्र सीमित होता है। इसलिए नई बातों को सीखने के लिए पुरानी और निरर्थक बातों को विस्मरण करना आवश्यक होता है। **वुडवर्थ** का कथन है- ''नई बातों का सीखना, पुरानी बातों के स्मरण में बाधा डालता है और पुरानी बातों का स्मरण नई बातों को सीखने में बाधा डालता है।'' इस प्रकार विस्मरण और स्मरण में सन्तुलन रखने की योग्यता से शिक्षा का कार्य भली-भाँति पूरा होता है।

(2) विस्मरण से पुराने अनुभवों के स्थान पर नये अनुभव संचित होते हैं। यदि बालक के मस्तिष्क में सभी बातों के स्मृति-चिह्न अंकित होते जायेंगे तो उसके विचार और अर्जित अनुभव अस्त-व्यस्त हो सकते हैं। अत: विचारों को व्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए कुछ बातों को भुलाना आवश्यक हो जाता है। इस सम्बन्ध में **स्टर्ट और ओकडन** (Sturt and Oakden) का विचार है- ''यदि हम अपने विचारों में व्यवस्था और बल चाहते हैं तो हमारे लिए विस्मरण आवश्यक है।''

(3) बालक को विद्यालय एवं समाज में कभी-कभी दु:खद एवं कटु अनुभव भी प्राप्त होते हैं। अत: कटु अनुभवों के लिए विस्मरण आवश्यक है, क्योंकि इनसे बालक की शिक्षा एवं विकास प्रभावित हो सकता है।

(4) विस्मरण सुधार की दृष्टि से भी उपयोगी होता है।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट हो जाता है कि बालक की शिक्षा में स्मरण के साथ विस्मरण की भी उपयोगिता एवं महत्त्व है।

नोट

18.6 सारांश (Summary)

- स्मृति, अधिगम और धारण क्रिया पर विशेष रूप से निर्भर है। सीखी हुई वस्तु को धारण और पुनः स्मरण करने में असफल होना ही विस्मृति है।
- विस्मृति का अध्ययन भी आवश्यक है, क्योंकि विस्मृति, स्मृति के हेतु है। विस्मृति मन को अनावश्यक और व्यर्थ की बातों से मुक्त करती है एवं नवीन, आवश्यक और उपयोगी बातों को ग्रहण करने में सहायता करती है।
- मनोवैज्ञानिक मन (Munn) का विचार है- ''स्मरण के समान विस्मरण भी सीखने की प्रक्रिया का आवश्यक पक्ष है, क्योंकि जब सही बातों को याद करते हैं तब हम गलत बातों को भूल जाते हैं।''
- अधिगम-क्रिया में सफलता विस्मृति के कारणों का निवारण करने पर ही प्राप्त होती है। विस्मृति एक ऐसी मानसिक क्रिया है, जिसके कारण हम किसी सीखी हुई बात को, अनुभव को या विचार को अपनी चेतना पर लाने में असमर्थ होते हैं अर्थात् धारण किये हुए अनुभवों को पुनः स्मरण नहीं कर पाते।
- विस्मृति के कारणों को निम्नांकित दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- (क) सैद्धान्तिक कारण (ख) सामान्य कारण
- विस्मृति के कारणों का व्यापक आधार प्रस्तुत करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने विस्मृति के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। जिससे अधिगम को प्रभावशाली बनाये रखने हेतु विस्मृति के दुष्प्रभावों से बचा जा सके।
- विस्मृति के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं- (1) चिह्न-ह्रास का सिद्धान्त (2) व्यतिकरण का सिद्धान्त (3) पुनर्आह्वान की विफलता का सिद्धान्त (4) अभिप्रेरणात्मक सिद्धान्त (5) अनुबद्धता का सिद्धान्त
- शिक्षा की प्रमुख प्रक्रिया में अधिगम (सीखना) के लिए स्मरण क्रिया के साथ विस्मरण का भी स्थान एवं महत्त्व है।
- स्मृति-प्रशिक्षण के लिए शिक्षक को विशेष बातों पर ध्यान देना चाहिए, जैसे-प्रेरणा प्रदान करना, विचार साहचर्य और सीखने के नियमों पर ध्यान देना, स्मरण करने की विधियों का प्रयोग करना आदि।
- कालिन्स और ड्रेवर ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं- ''यह सत्य है कि विस्मरण, स्मरण के विपरीत है, पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से विस्मरण लगभग उतना ही लाभप्रद है जितना कि स्मरण।''

18.7 शब्दकोश (Keywords)

1. **व्यतिकरण**–हस्तक्षेप
2. **पृष्ठोन्मुख**–पूर्वप्रभावी, पूर्वव्यापी

18.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. विस्मृति के स्वरूप को विस्तार से समझाइए।
2. विस्मृति के कारणों पर प्रकाश डालिए।
3. विस्मृति के सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए।
4. 'स्मरण' एवं 'विस्मरण' का शैक्षिक महत्त्व समझाइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment) नोट

1. विस्मृति 2. निष्क्रिय मानसिक प्रक्रिया 3. अचेतन मन 4. व्यतिकरण

18.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.एच. सिन्हा और रचना शर्मा, अटलांटिक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।*
2. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
3. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
4. बच्चों में शिक्षा का महत्त्व एवं जानकारियाँ–*सीमा चोपड़ा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 19: व्यक्तित्व का स्वरूप, प्रकार एवं विकास (Nature, Type and Development of Personality)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

19.1 व्यक्तित्व का अर्थ एवं स्वरूप (Meaning and Nature of Personality)

19.2 व्यक्तित्व के प्रकार (Types of Personality)

19.3 सारांश (Summary)

19.4 शब्दकोश (Keywords)

19.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

19.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- व्यक्तित्व के अर्थ एवं स्वरूप को समझने में।
- व्यक्तित्व के प्रकार को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

साधारणत: व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के बाह्य रूप, रंग तथा शारीरिक गठन आदि से लगाया जाता है। दैनिक जीवन में प्राय: हम यह सुना करते हैं कि अमुक व्यक्ति का व्यक्तित्व बड़ा अच्छा है, प्रभावशाली है या खराब है। अच्छे व्यक्तित्व का अभिप्राय यह है कि उस व्यक्ति की शरीरिक रचना सुन्दर है, वह स्वस्थ एवं मृदुभाषी है, उसका स्वभाव व चरित्र अच्छा है और वह दूसरों को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। नि:संदेह ये गुण एक अच्छे व्यक्तित्व के लक्षण हैं किन्तु यह व्यक्तित्व का एक पहलू है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से व्यक्तित्व का कुछ और अर्थ होता है। व्यक्तित्व सम्पूर्ण व्यवहार का दर्पण है। व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति व्यक्ति के आचार-विचार, व्यवहार क्रियाओं एवं उसकी गतिविधियों द्वारा होती है। व्यक्ति के आचरण-व्यवहार में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक गुणों का मिश्रण होता है, जिसमें कि एकरूपता और व्यवस्था पाई जाती है। इस प्रकार व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार का समग्र गुण है। व्यक्ति का समस्त व्यवहार सामाजिक परिवेश से अनुकूलन करने के लिए होता है। प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक परिवेश में अपने विशेष व्यक्तित्व के कारण, व्यवहार करने के ढंग में भिन्नता पाई जाती है। सामाजिक परिवेश में अपने को समायोजित करने के लिए वह जिस प्रकार का व्यवहार करता है, उससे उसका व्यक्तित्व बनता है या प्रकट होता है। व्यक्ति के व्यवहार पर उसकी आन्तरिक भावनाओं और

नोट

बाह्य वातावरण का प्रभाव पड़ता है। कुछ लोगों के अनुसार चरित्र और व्यक्तित्व में विशेष अन्तर नहीं है। **वुडवर्थ के अनुसार**–"'चरित्र' का संकेत अधिकतर उस आचरण की ओर होता है जिसे अच्छा या बुरा कहा जा सके, जो समाज द्वारा स्वीकृत आदर्शों के अनुकुलन में सफल या विफल रहता हो। 'व्यक्तित्व' का संकेत उस व्यवहार की ओर है जो भले ही अच्छा या बुरा न हो, परन्तु दूसरे लोगों को जो रुचिकर या अरुचिकर लगे तथा जो अपने साथियों के बीच व्यक्ति की स्थिति को अनुकूल या प्रतिकूल बना दे।" इस कथन से चरित्र और व्यक्तित्व का भेद बहुत स्पष्ट नहीं होता। अत: वैज्ञानिकों के अनुसार इस भेद की उपेक्षा की जा सकती है। चरित्र क्या है? चरित्र की क्या विशेषताएँ हैं? इन बातों का उल्लेख पूर्व अध्याय में किया गया है। उच्च चारित्रिक गुणों का व्यक्तिगत-विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान है, इसलिए दैनिक प्रयोग में चरित्र को व्यक्तित्व से अलग समझना व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता है। व्यक्तित्व के स्वरूप को स्पष्ट रूप से समझने के लिए विभिन्न विद्वानों के विचारों का अध्ययन करना आवश्यक है। प्रस्तुत अध्याय में व्यक्तित्व का अर्थ एवं परिभाषा, व्यक्तित्व के गुण, व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करने वाले कारकों एवं संगठित व्यक्तित्व की विशेषताओं के साथ व्यक्तित्व परीक्षण पर प्रकाश डाला जायेगा।

नोट्स मनोवैज्ञानिक दृष्टि से 'व्यक्तित्व' का अर्थ भिन्न है। व्यक्तित्व, व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार का समग्र रूप है।

19.1 व्यक्तित्व का अर्थ एवं स्वरूप (Meaning and Nature of Personality)

'व्यक्तित्व' शब्द के सम्बन्ध में अनेक धारणाएँ प्रचलित हैं। साधारणत: बोलचाल की भाषा में व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के बाह्य रूप-रंग से ही समझा जाता है, किन्तु विद्वानों ने इसका अर्थ नये दृष्टिकोणों से बताया है।

(1) शाब्दिक अर्थ–व्यक्तित्व अंग्रेजों के 'पर्सनैलिटी' (Personality) का हिन्दी रूपान्तर है। यह शब्द लैटिन शब्द 'पर्सोना' (Persona) से लिया गया है जिसका अर्थ है वेशभूषा जिसे नाटक करते समय नाटक के पात्र पहनकर, तरह-तरह के रूप बदला करते थे। आरम्भ में इस शब्द का अर्थ बाह्य आवरण के रूप में किया जाता था। इस प्रकार व्यक्तित्व शब्द बाह्य गुणों की ओर संकेत करता है।

(2) सामान्य दृष्टिकोण से अर्थ–जनसाधारण व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के बाह्य रूप तथा उन गुणों से लगाते हैं जिनके द्वारा एक व्यक्ति दूसरों को अपनी ओर आकर्षित और प्रभावित करके विजय पाता है।

(3) व्यवहार के दृष्टिकोण से अर्थ–"व्यक्तित्व व्यक्ति के संगठित व्यवहार का सम्पूर्ण चित्र होता है।"

"A man's personality is the total picture of his organised behaviour." **—Deshiell**

"किसी व्यक्ति के व्यवहार का सम्पूर्ण गुण व्यक्तित्व है।"

(4) दार्शनिक दृष्टिकोण से अर्थ–दर्शनशास्त्र के अनुसार, व्यक्तित्व आत्मज्ञान का ही दूसरा नाम है, यह पूर्णता का आदर्श है।

(5) सामाजिक दृष्टिकोण से अर्थ–समाजशास्त्र के आधार पर व्यक्तित्व की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है- "व्यक्तित्व उन सब तत्वों का संगठन है जिनके द्वारा व्यक्ति को समाज में कोई स्थान प्राप्त होता है। इसलिए हम व्यक्तित्व को सामाजिक प्रवाह कह सकते हैं।"

(6) मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अर्थ–इस दृष्टिकोण से व्यक्तित्व की व्याख्या में वंशानुक्रम और वातावरण दोनों को महत्त्व प्रदान किया गया है। व्यक्तित्व की मनोवैज्ञानिक ढंग से व्याख्या करने पर यह प्रतीत होता है कि व्यक्ति में आन्तरिक और बाह्य जितनी भी विशेषताएँ, योग्यताएँ और विलक्षणताएँ होती हैं, उन सबका समन्वित या संगठित

नोट

(Integrated) रूप व्यक्तित्व है। व्यक्ति को जन्म से जो गुण, क्षमताएँ या शक्तियाँ प्राप्त होती हैं वे धीरे-धीरे विकसित होती रहती हैं। व्यक्ति अपने विकास-काल में अपनी जन्मजात शक्तियों के आधार पर वातावरण के साथ अभियोजन करने के लिए क्रिया-प्रतिक्रिया करता रहता है, जिसके परिणामस्वरूप वह कुछ विशेष योग्यताएँ, कुशलता, आदतें, रुचि और दृष्टिकोण आदि अर्जित कर लेता है। वातावरण से अभियोजन स्थापित करने के प्रयत्न में उसके जन्मजात अर्जित गुणों का परिमार्जन और परिवर्द्धन होता रहता है। इसलिए व्यक्तित्व को **'गत्यात्मक संगठन'** (Dynamic Organisation) कहा गया है।

शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास है। मनोवैज्ञानिक और शिक्षा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अत: मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गयी व्यक्तित्व की परिभाषाओं को जानना आवश्यक है-

(क) बीसन्ज और बीसन्ज (Biesanj & Biesanj)–"व्यक्तित्व मनुष्य की आदतों, दृष्टिकोण, विशेषताओं का संगठन है। यह जीवशास्त्रीय, सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों के संयुक्त कार्य द्वारा उत्पन्न होता है।" (Personality is the organisation of person's habits, attitudes and traits and arises from the inter-play of biological, social and cultural factors.)

(ख) मन (Munn)–"व्यक्तित्व एक व्यक्ति के व्यवहार के तरीकों, रुचियों, दृष्टिकोणों, क्षमताओं, योग्यताओं तथा अभिरुचियों का सबसे विशिष्ट संगठन है।" (Personality may be defined as the most characteristic integration of individual's structures modes of behaviour, interests, attitudes. capacities, abilities and aptitude.)

(ग) ऑलपोर्ट (Allport)–"व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनो-शारीरिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण के साथ उसका अद्वितीय समायोजन निर्धारित करता है।" (Personality is the dynamic organisation within the individual of those psychophysical systems that determine his unique adjustments to his environment.)

(घ) ड्रेवर–"व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग, व्यक्ति के उन शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक गुणों के सुसंगठित और गत्यात्मक संगठन के लिए किया जाता है, जिसे वह अन्य व्यक्तियों के साथ अपने सामाजिक जीवन के आदान-प्रदान में प्रदर्शित करता है।"

19.2 व्यक्तित्व के प्रकार (Types of Personality)

व्यक्तित्व सम्बन्धी विभिन्नताओं को जानने के लिए व्यक्तित्व के प्रकारों को भी जानना आवश्यक है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न आधारों पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया है। साधारणत: निम्नांकित दृष्टिकोण से व्यक्तित्व के प्रकारों को विभाजन किया गया है-

1. शरीर-रचना का दृष्टिकोण (Constitution Viewpoint)
2. समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण (Sociological Viewpoint)
3. मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण (Psychological Viewpoint)

(1) शरीर-रचना का दृष्टिकोण-जर्मन वैज्ञानिक क्रेचमर (Kreshmer) ने शारीरिक रचना के निम्नांकित प्रकार बनाए हैं–

(क) कृशकाय (Asthenic)–इस प्रकार के व्यक्ति दुबले-पतले होते हैं। इनका सिर लम्बा, भुजाएँ पतली, सीना छोटा, हाथ पैर लम्बे, पतले होते हैं। इस प्रकार का व्यक्ति अपनी आलोचना सुनना पसन्द नहीं करता है वरन् दूसरों की आलोचना करना पसंद करता है।

नोट

(ख) सुडौलकाय (Athletic)–इस प्रकार के व्यक्ति हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ होते हैं। इनका सीना चौड़ा, उभरी हुई मजबूत भुजाएँ मांसपेशियाँ पुष्ट होती हैं। ये दूसरों से इच्छानुसार समायोजन कर लेते हैं।

(ग) गोलकाय (Pyknic)–इस प्रकार के व्यक्ति कद में नाटे, छोटे, गोल और चर्बी वाले होते हैं। ये आरामतलब और सामाजिक होते हैं।

(घ) डायसप्लास्टिक (Dysplastic)–इनमें उपर्युक्त तीनों प्रकार का मिश्रण होता है। इस प्रकार के लोगों के शरीर साधारण होता है।

अमेरिका के प्रसिद्ध **वैज्ञानिक शेल्डन** (Sheldon) ने शारीरिक आकृति के आधार पर व्यक्तित्व का निम्नांकित विभाजन किया है–

(क) गोलाकृति (Endomorphic)–इस प्रकार के व्यक्ति अधिक मोटे, गोल, कोमल और स्थूल शरीर के होते हैं। इनके पाचक अंग अधिक विकसित होते हैं, ये कुद अधिक भोजनप्रिय होते हैं। वे आरामपसन्द, सोने में तेज, स्नेह पाने के इच्छुक, आमोद प्रिय, सज्जन, विवकेशील, सहिष्णु, जल्दी परेशान होने वाले होते हैं।

(ख) आयत आकृति (Mesomorphic)–इस प्रकार के व्यक्ति स्वस्थ सुसंगठित शरीर वाले होते हैं। इनमें शक्ति और स्फूर्ति अधिक होती है। ये साहसी क्रियाशील और उद्योगशील होते हैं।

(ग) लम्बाकृति (Ectomorphic)–ऐसे व्यक्ति दुबले-पतले, कोमल, कमजोर शरीर वाले होते हैं। ये संकोची, मन्दभाषी तथा एकान्तप्रिय, संयमी एवं संवेदनशील होते हैं।

मनोवैज्ञानिक वार्नर (Warner) ने शारीरिक स्वास्थ्य और विकास की दृष्टि से व्यक्तियों के कई प्रकार बताए हैं–

(क) स्वस्थ, (ख) अपरिपुष्ट, (ग) अविकसित, (घ) अंग-भंग, (ङ) स्नायु रोगी, (च) पिछड़ा तथा मन्द बुद्धि, (छ) सुस्त, (ज) मिरगी रोग, (झ) चुस्त।

मनोवैज्ञानिक कैनन (Cannon) ने अन्त: स्रावी ग्रन्थियों के आधार पर व्यक्तित्व के प्रकार बताए हैं। व्यक्ति के विकास पर ग्रंन्थियों का बहुत प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण व्यक्तिगत भिन्नताएँ पाई जाती हैं–

(क) थायरॉइड ग्रन्थिवाला (Thyroid Gland)–इससे निकले स्राव को थायरॉक्सिन (Thyroxin) कहते हैं। शारीरिक और मानसिक विकास पर इसका बहुत प्रभाव पड़ता है। जिन व्यक्तियों में इस ग्रन्थि का विकास ठीक से नहीं होता है वे मंद बुद्धि, बौने कद और दुर्बल होते हैं। ये आलसी, चिन्तित, सुस्त तथा सदा उदास दिखाई देते हैं। इस ग्रन्थि के ठीक से कार्य करने पर व्यक्ति का स्वास्थ ठीक और चित्त प्रसन्न रहता है।

(ख) पिट्यूटरी ग्रन्थि वाला (Pitutory Gland)–इस ग्रन्थि से अधिक स्राव होने पर शरीर लम्बा हो जाता है। यदि कम स्राव होता है तो बौनापन आ जाता है या शरीर का विकास ठीक से नहीं होता। यदि यह ग्रन्थि ठीक से कार्य करती है तो व्यक्ति प्रसन्नचित्त, शांत स्वभाव, धैर्यवान, शारीरिक और मानसिक कष्ट सहने वाला होता है।

(ग) एड्रिनिल ग्रन्थि वाला (Adrenal Gland)–इस ग्रन्थि का अधिक विकास होने पर व्यक्ति लड़ाकू व झगड़ालू स्वभाव के एवं परिश्रमी होते हैं। इनका विकास समय से पूर्व होता है।

इस प्रकार अन्त:स्रावी ग्रन्थियों से कम या अधिक स्राव होने पर व्यक्तित्व असामान्य हो जाता है। मानव-व्यवहार इन ग्रंथियों की क्रियाशीलता पर निर्भर करता है। अत: हम कह सकते हैं कि ये ग्रन्थियाँ भी व्यक्तित्व को निर्धारित करती हैं।

भारतीय आयुर्वेदशास्त्र के अनुसार व्यक्ति तीन प्रकार के होते हैं–

(क) कफ़ प्रधान–ये लोग मोटे, शांत और काम करने वाले होते हैं।

(ख) पित्त प्रधान–ये दुर्बल, शीघ्र काम करने वाले तथा चंचल प्रकृति के होते हैं।

(ग) वात प्रधान–ये न दुर्बल न मोटे मध्यम शरीर वाले तथा चिड़चिड़े स्वभाव के होते हैं।

नोट

यूनान में भी लोगों का विश्वास था कि शरीर में पाये जाने वाले चार प्रकार के रसों के आधार पर व्यक्तियों के चार प्रकार होते हैं–

(क) शान्तचित्त (Phelgmatic)–ये लोग शांत प्रकृति के, निर्बल और निरुत्तेजित होते हैं।

(ख) चिन्तित (Melancholic)–ये लोग निराशावादी होते हैं।

(ग) उत्तेजनशील (Choleric)–ये लोग शीघ्र क्रोधित हो जाते हैं।

(घ) आशामय या गम्भीर (Sanguine)–ये लोग आशावान, उच्च पदाभिलाषी, प्रसन्न और शीघ्र कार्य करने वाले होते हैं।

(2) समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण–सामाजिक भावना और कार्य के आधार पर **मनोवैज्ञानिक स्प्रैंगर** (Sprangar) ने व्यक्तित्व के निम्नलिखित प्रकार बताए हैं–

(क) सैद्धान्तिक (Theoretical)–इस प्रकार के व्यक्ति सिद्धान्तों पर अधिक जोर देते हैं। दार्शनिक, वैज्ञानिक, समाज सुधारक इसी कोटि में आते हैं।

(ख) आर्थिक (Economic)–इस प्रकार के व्यक्ति प्रत्येक वस्तु का मूल्यांकन आर्थिक दृष्टि से करते हैं। व्यापारी इसी श्रेणी में आते हैं।

(ग) धार्मिक (Religious)–ये लोग ईश्वर और आध्यात्मिकता में आस्था रखते हैं, यथा–साधु, सन्त, योगी, दयालु और धर्मात्मा व्यक्ति।

(घ) राजनैतिक (Political)–ये लोग सत्ता और प्रभुत्व दल में विश्वास करते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति दूसरों पर शासन करने की इच्छा रखते हैं। राजनैतिक कार्यों में बहुत रुचि लेते हैं, यथा नेता लोग।

(ङ) सामाजिक (Social)–इस प्रकार के व्यक्ति के सामाजिक गुण अधिक होते हैं और वे समाज-कल्याण में रुचि लेते हैं।

(च) कलात्मक (Aesthetic)–इस प्रकार के लोग कला और सौन्दर्य के पुजारी होते हैं और प्रत्येक वस्तु को कला की दृष्टि से देखते-परखते हैं जैसे-कलाकार, चित्रकार आदि।

(3) मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण–मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक लक्षणों (गुणों) के आधार पर व्यक्तित्व के निम्न प्रकार बताए हैं–

(अ) मनोवैज्ञानिक युंग (Jung)–ने मानव प्रकृति के आधार पर व्यक्तित्व के दो प्रमुख आधार बताए हैं–

***(i)* अन्तर्मुखी व्यक्तित्व** (Introvert Personality)–इस प्रकार का व्यक्तित्व उन व्यक्तियों को होता है जिनका स्वभाव, आदतें और गुण बाह्य रूप से प्रकट नहीं होते। ये आत्मकेन्द्रित होते हैं और सदा अपने में ही खोये रहते हैं। इन्हें बाहरी जगत की चिन्ता नहीं होती। इनकी अन्य विशेषताएँ निम्नांकित हैं।

(क) ये लोग कम बोलते हैं।

(ख) ये शीघ्र घबरा जाते हैं।

(ग) संकोची होने के कारण अपने विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं।

(घ) चिन्तन बहुत करते हैं और अपने विचारों को अपने तक ही सीमित रखते हैं।

(ङ) ये चिन्ताग्रस्त रहते हैं, सन्देही तथा सावधान रहते हैं।

(च) ये अपने कर्त्तव्यों के प्रति सत्यनिष्ठ होते हैं।

(छ) प्रत्येक कार्य को सोच-विचार कर करते हैं।

नोट

(ज) ये अच्छे लेखक होते हैं किन्तु अच्छे वक्ता नहीं होते।

(झ) ये अध्यनशील और मननशील होते हैं। प्राय: ऐसे व्यक्ति किताबी कीड़ा होते हैं और आगे चलकर वैज्ञानिक, दार्शनिक और अन्वेषक बनते हैं।

(ञ) ये हँसी-मजाक, निन्दा और बेकार बातचीत पसन्द नहीं करते हैं।

***(ii)* बहिर्मुखी व्यक्तित्व** (Extrovert Personality)–इस प्रकार के व्यक्तित्व के लोगों की रुचि बाह्य जगत में होती है। इनकी विशेषताएँ निम्न हैं–

(क) ये सामाजिक जीवन में अधिक रुचि लेते हैं और समाज में सामंजस्य (Adjust) करने के लिए सदा सचेत रहते हैं। ये आशावादी होते हैं और परिस्थितियों एवं आवश्यकता के अनुकूल अपने को व्यवस्थित कर लेते हैं।

(ख) ये व्यावहारिक जीवन में कुशल होते हैं, अवसरवादी प्रकृति के होते हैं और शीघ्र ही लोकप्रिय बन जाते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति अधिकतर सामाजिक, राजनैतिक या व्यापारिक नेता, अभिनेता, खिलाड़ी आदि बनते हैं।

(ग) ये सदा दूसरों को प्रभावित करके अपना काम निकाल लेते हैं।

(घ) ये चिन्तामुक्त होते हैं। इनका ध्येय आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करना है। ये वर्तमान में प्रसन्न रहते हैं। इन्हें भविष्य की चिन्ता नहीं व्यापती।

(ङ) ये अहंवादी तथा अनियंत्रित भी होते हैं।

(च) इनमें आत्म प्रदर्शन की भावना अधिक होती है। ये प्राय: अपनी चाल-ढाल, वेशभूषा तथा योग्यता से दूसरों को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं।

क्या आप जानते हैं

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बहुत ही कम व्यक्ति इस प्रकार के होते हैं जो पूर्ण रूप से अन्तर्मुखी या बहिर्मुखी होते हैं। कुछ लोग इस प्रकार के होते हैं जिनमें दोनों प्रकार के गुणों का मिश्रण होता हैं। ये लोग **उभयमुखी** (Ambivert) होते हैं।

उभयमुखी व्यक्तित्व (Ambivert Personality)–इस प्रकार का व्यक्ति अन्तर्मुखी गुणों को विचार में ला सकता है और बहिर्मुखी गुणों को कार्य रूप में स्थान दे सकता है। उदाहरणार्थ-एक व्यक्ति अच्छा लेखक और वक्ता दोनों हो सकता है, एक व्यक्ति सामाजिक व्यवहार प्रदर्शित करता है किन्तु वह कोई कार्य अकेले ही करना पसन्द करता है। उभयमुखी व्यक्ति अपना तथा समाज दोनों का लाभ देखता है।

(ब) फ्राइड जो कि एक प्रसिद्ध मनोविश्लेषणवादी था, ने व्यक्तित्व के निम्नलिखित तीन प्रकार बताए हैं–

(1) **मौखिक कामुक** (Oral erotic)–फ्रायड के अनुसार शिशु अपने मुँह से काम सुख प्राप्त करना चाहता है अर्थात् काम का निवास बचपन में मुँह में होता है जिससे काम सुख प्राप्त करने के लिए वह चूसता, काटता, चाटता है और वस्तुओं को अपने मुख की ओर ले जाता है। आगे चलकर यह सुख प्राप्त करने की क्रियाओं में व्यक्तित्व दो प्रकारों में विभाजित दिखाई देता है।

(क) मौखिक निष्क्रिय (Oral Passive)–जिन बच्चों में मौखिक निष्क्रिय प्रकार के व्यक्तित्व का विकास होता है वे आशावादी, अपरिपक्व तथा आश्रित एवं अपनी क्रियाओं और विचारों में रत् रहने वाले होते हैं।

(ख) मौखिक निर्दयी (Oral Sadistic)–जिन बच्चों में मौखिक निर्दयी प्रकार के व्यक्तित्व का विकास होता है, वे निराशावादी, आक्रामक, दूसरों के प्रति अश्लील व्यवहार करने वाले तथा शंकालु स्वभाव के होते हैं।

नोट

(2) गुदा सम्बन्धी (Anal)–काम सुख प्राप्त करने का दूसरा आधार और चरण बच्चे की गुदा होती है। इस स्तर पर बच्चे गुदा सम्बन्धी क्रियाशीलता में रत रहते हैं। इस अवस्था में वह टट्टी कर माम सुख प्राप्त करता है। इस तरह ही क्रियाशीलता द्वारा बच्चों में हठीपन, कृपणता तथा नियम या व्यवस्थाप्रियता के गुणों का विकास होता है।

(3) लिंग सम्बन्धी (Phaltic)–यह व्यक्तित्व के निर्माण का तीसरा स्तर है जिसे मनोलैंगिक विकास का स्तर कहा जाता है। इस स्तर पर बच्चे अपने जननांग को छेड़ते रहते हैं। इस प्रकार की क्रियाएँ अधिकांशत: किशोरवस्था में होती हैं। इन क्रियाओं की प्रवृत्ति से आगे चलकर व्यक्तित्व के विशिष्ट गुणों का विकास होता है जिससे किशोर दूसरों का ध्यान आकृष्ट करने तथा आत्मप्रेम प्रदर्शित करने का व्यवहार करते हैं।

टास्क उभयमुखी व्यक्तित्व से आप क्या समझते हैं?

(स) आलपोर्ट ने व्यक्तित्व को व्यक्ति के गुणों के आधार पर वर्गीकृत किया है। उसके अनुसार गुणों का वास्तविक तथा सशक्त अस्तित्व है। आलपोर्ट ने गुणों को निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया है–

"गुण कार्यात्मक रूप के समान अनेक उद्दीपकों को अधीन करने की क्षमतायुक्त एक सामान्यीकृत मनोस्नायविक प्रणाली है जो अनुकूलित एवं अभिव्यक्त व्यवहार के स्थाई रूपों का अनुकरण तथा निर्देशन भी करती है।" (A trait is a generalized and focalized neuropsystic system with the capacity to render many stimuli functionally equivalent and to innitiet guide consistent forms of adeptive and expressive behaviour.)

आलपोर्ट के अनुसार गुणों की प्रकृति सामान्य तथा स्थाई होती है। समस्त मानवीय गुणों को उन्होंने तीन श्रेणियों में विभाजित किया है–

***(i)* प्रधान गुण** (Cordinal Trait)–ऐसे गुण जो व्यक्ति के व्यवहार में अधिकाधिक पाए जाते हैं वे प्रधान गुण कहलाते हैं, जैसे उपलब्धि के प्रति निष्ठा गुण। यदि व्यक्ति में यह प्रधान गुण के रूप में है तो यह उस व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन में व्याप्त रहेगा।

***(ii)* केन्द्रीय गुण** (Central Trait)–केन्द्रीय गुण प्रधान गुण की तुलना में कम प्रधान होते हैं फिर भी पर्याप्त मात्रा में सामान्यीकृत होते हैं अर्थात् उनकी केन्द्रीय प्रवृत्ति प्राय: स्थिर रहती है।

***(iii)* गौड़ गुण** (Secondary dispositions)–व्यक्ति के गौड़ गुण विशेष रूप से संकुचित गुण होते हैं और अभिवृत्तियों (Attitudes) के रूप में होते हैं। अभिवृत्तियाँ मात्रात्मक रूप में सकारात्मक या नकारात्मक ध्रुव की ओर झुकी होती है तथा अधिगम से इनका सम्बन्ध हो सकता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

दिए गए कथन के सामने सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए।

1. जर्मन व वैज्ञानिक क्रेचमर ने शरीर रचना के चार प्रकार बताए हैं यथा– कृशकाय, सुडोलकाय, गोलकाय, डायसप्लास्टिक। ☐
2. फ्रायड ने व्यक्तित्व के पाँच प्रकारों का उल्लेख किया है। ☐
3. 'आलपोर्ट' ने व्यक्ति की बाह्य संरचना के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया है। ☐

नोट

4. मनोवैज्ञानिक युंग ने प्रकृति के आधार पर व्यक्तित्व के दो प्रमुख प्रकार बताए हैं। ☐

5. बहिर्मुखी व्यक्ति सामाजिक जीवन में अधिक रुचि लेते हैं। ☐

(द) थॉर्नडाइक (Thorndike)–ने चिन्तन और कल्पना के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण किया हैं–

(क) सूक्ष्म विचारक–इस प्रकार के व्यक्ति काम करने के पहले उसके पक्ष और विपक्ष पर भली-भाँति चिंतन कर लेते हैं। इन्हें गणित, विज्ञान, दर्शन-शास्त्र और तर्कशास्त्र में अधिक रुचि होती है।

(ख) प्रत्यय विचारक–इस प्रकार के व्यक्तियों को विचार करने के लिए शब्द, संख्या तथा संकेत या चिह्नों से सहायता लेनी पड़ती है। जैसे–गणितज्ञ, भौतिक विज्ञानी आदि।

(ग) स्थूल विचारक–ये क्रियाशीलता पर अधिक जोर देते हैं और इनके अनुसार स्थूल वस्तुओं के माध्यम से सोचने-विचारने में सफलता मिलती है।

(य) टरमैन ने बुद्धिलब्धि के आधार पर वैयक्तिक भिन्नता की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया है। बुद्धिलब्धि के अनुसार व्यक्तियों का वर्गीकरण इस प्रकार है–

(क) प्रतिभाशाली, (ख) प्रखर बुद्धि, (ग) उत्कृष्ट बुद्धि, (घ) सामान्य बुद्धि, (ङ) मन्द बुद्धि, (च) मूर्ख, (छ) मूढ़, (ज) जड़ बुद्धि।

(र) कैटल ने निम्नलिखित दो प्रकार का व्यक्तित्व बताया है–

(क) लहरी (Surgent)–इस प्रकार के व्यक्ति बहिर्मुखी, खुशमिजाज, मिलनसार, विनोदप्रिय और अवसरवादी होते हैं। इनमें प्रदर्शन की भावना अधिक होती है तथा समाज के अगुवा बनने की भावना अधिक होती है।

(ख) अलहरी (Desurgent)–ये अन्तर्मुखी प्रकृति के होते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों में अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के गुण पाये जाते हैं।

(ल) स्टीफेन्सन (Stephenson)–ने युंग के वर्गीकरण को आधार बनाकर व्यक्तित्व का विभाजन दो वर्गों में किया है–

(क) प्रसारक (Perseverator)–किसी कार्य के समाप्त हो जाने के बाद भी, यदि वह मस्तिष्क में चक्कर लगाता रहता है या उसका प्रभाव देर तक रहता है तो इस क्रिया को प्रसक्ति (perseverration) कहते हैं। जिन व्यक्त्यिों के मस्तिष्क में यह क्रिया बहुत देर तक बनी रहती है उन्हें प्रसारक कहते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति अन्तर्मुखी होते हैं।

(ख) अप्रसारक (Non-perseverator)–जिन लोगों के मस्तिष्क में किसी कार्य या बात के समाप्त हो जाने पर उसका प्रभाव देर तक नहीं रहता, उन्हें अप्रसारक कहते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति बहिर्मुखी होते हैं।

(व) इसी प्रकार भारतीय आचार्यों एवं मनोवैज्ञानिकों ने भी तीन प्रकार के व्यक्तियों का उल्लेख किया है।

(क) राजसी–इनमें रजोगुण की प्रधानता होती है। इनमें चंचलता, उत्तेजना और क्रियाशीलता अधिक पाई जाती है। ये वीर, युद्धप्रेमी व साहसी होते हैं।

(ख) सात्विकी–ये सौम्य, शान्त और धार्मिक प्रवृत्ति के होते हैं।

(ग) तामसी–इनमें तमोगुण का प्राधान्य होता है। ये क्रोधी, लड़ाई झगड़ा करने वाले, आलसी तथा धर्म में अविश्वास करने वाले होते हैं।

नोट

19.3 सारांश (Summary)

- साधारणत: व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के बाह्य रूप, रंग तथा शारीरिक गठन आदि से लगाया जाता है। दैनिक जीवन में प्राय: हम यह सुना करते हैं कि अमुक व्यक्ति का व्यक्तित्व बड़ा अच्छा है, प्रभावशाली है या खराब है। अच्छे व्यक्तित्व का अभिप्राय यह है कि उस व्यक्ति की शरीरिक रचना सुन्दर है, वह स्वस्थ एवं मृदुभाषी है, उसका स्वभाव व चरित्र अच्छा है और वह दूसरों को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। नि:संदेह ये गुण एक अच्छे व्यक्तित्व के लक्षण हैं किन्तु यह व्यक्तित्व का एक पहलू है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से व्यक्तित्व का कुछ और अर्थ होता है। व्यक्तित्व सम्पूर्ण व्यवहार का दर्पण है। व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति व्यक्ति के आचार-विचार, व्यवहार क्रियाओं एवं उसकी गतिविधियों द्वारा होती है। व्यक्ति के आचरण-व्यवहार में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक गुणों का मिश्रण होता है, जिसमें कि एकरूपता और व्यवस्था पाई जाती है। इस प्रकार व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार का समग्र गुण है।
- दर्शनशास्त्र के अनुसार, व्यक्तित्व आत्मज्ञान का ही दूसरा नाम है, यह पूर्णता का आदर्श है।
- **मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अर्थ**–इस दृष्टिकोण से व्यक्तित्व की व्याख्या में वंशानुक्रम और वातावरण दोनों को महत्त्व प्रदान किया गया है। व्यक्तित्व की मनोवैज्ञानिक ढंग से व्याख्या करने पर यह प्रतीत होता है कि व्यक्ति में आन्तरिक और बाह्य जितनी भी विशेषताएँ, योग्यताएँ और विलक्षणताएँ होती हैं, उन सबका समन्वित या संगठित (Integrated) रूप व्यक्तित्व है। व्यक्ति को जन्म से जो गुण, क्षमताएँ या शक्तियाँ प्राप्त होती हैं वे धीरे-धीरे विकसित होती रहती हैं। व्यक्ति अपने विकास-काल में अपनी जन्मजात शक्तियों के आधार पर वातावरण के साथ अभियोजन करने के लिए क्रिया-प्रतिक्रिया करता रहता है, जिसके परिणामस्वरूप वह कुछ विशेष योग्यताएँ, कुशलता, आदतें, रुचि और दृष्टिकोण आदि अर्जित कर लेता है। वातावरण से अभियोजन स्थापित करने के प्रयत्न में उसके जन्मजात अर्जित गुणों का परिमार्जन और परिवर्द्धन होता रहता है। इसलिए व्यक्तित्व को **'गत्यात्मक संगठन'** (Dynamic Organisation) कहा गया है।
- व्यक्तित्व सम्बन्धी विभिन्नताओं को जानने के लिए व्यक्तित्व के प्रकारों को भी जानना आवश्यक है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न आधारों पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया है। 1. शरीर-रचना का दृष्टिकोण 2. समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण 3. मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण।

19.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **कृशकाय**–दुबला-पतला, कमजोर।
2. **उभयमुखी**–दोनों ओर का।

19.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. शिक्षा-मनोविज्ञान के संदर्भ में व्यक्तित्व का अर्थ एवं स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
2. व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकारों को विस्तार से समझाइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment) नोट

1. (✓) 2. (×) 3. (×) 4. (✓) 5. (✓)

19.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. मनोविज्ञान–*डॉ. सरयू प्रसाद, आगरा बुक स्टोर, आगरा।*
2. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली*
3. मनोविज्ञान–*मानव व्यवहार का अध्ययन–ब्रजकुमार मिश्र, पी.एच.आई. लर्निंग, नई दिल्ली।*
4. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 20: व्यक्तित्व मापन (Measurment of Personality)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

17.1 व्यक्तित्व मूल्यांकन की विधियाँ (Methods of Assessment of Personality)

17.2 व्यक्तित्व-परीक्षण का महत्त्व (Importance of Personality Tests)

17.3 सारांश (Summary)

17.4 शब्दकोश (Keywords)

17.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

17.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- व्यक्तित्व मूल्यांकन की विधियों को समझने में।
- व्यक्तित्व परीक्षण के महत्त्व को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

मनोवैज्ञनिकों के मतानुसार व्यक्तित्व को उन गुणों या लक्षणों का समूह कहा गया है जिनके कारण विभन्न व्यक्तियों में भिन्नता दिखाई देती है। आधुनिक शिक्षा में व्यक्तिगत विभिन्नता को विशेष महत्त्व दिया जाता है। विद्यार्थियों को शैक्षिक व्यावसायिक और व्यक्तिगत निर्देश देने लिए व्यक्तित्व की विशेषताओं को जानना आवश्यक होता है अत: शिक्षा की प्रक्रिया में व्यक्तित्व के मापन का व्यापक महत्त्व होता है। व्यक्तित्व के मापन के लिए अनेक विधियों और परीक्षणों को प्रयोग किया जाता है। इसमें से प्रमुख विधियों और परीक्षणों पर हम यहाँ विचार करेंगे।

20.1 व्यक्तित्व मूल्यांकन की विधियाँ (Methods of Assessment of Personality)

व्यक्तित्व मूल्यांकन के लिए जिन विधियों या परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है, वे निम्नलिखत हैं–

1. **आत्मनिष्ठ विधि** (Subjective Method)–इस विधि में व्यक्तित्व-जाँच स्वयं परीक्षक द्वारा या उसके परिचितों की सहायता से की जाती हैं इसमें निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है–

नोट

(क) जीवन इतिहास विधि (Case History Method)

(ख) प्रश्नावली विधि (Questionnaire Method)

(ग) साक्षात्कार विधि (Interview Method)

(घ) आत्मकथा लेखन विधि (Autobiography or self-History Method)

2. वस्तुनिष्ठ विधि (Objective Method)–इस विधि में व्यक्ति के बाह्य आचरण का अध्ययन किया जाता है। ये निम्नलिखित हैं–

(क) नियंत्रित निरीक्षण विधि (Controlled Observation Method)

(ख) मापन रेखाविधि (Rating Scale Method)

(ग) समाजमिति विधि (Sociometric Method)

(घ) शारीरिक परीक्षण (Physiological Test)

3. प्रक्षेपी विधि (Projective Method)–प्रक्षेपण का तात्पर्य उस विधि से है जिसमें परीक्षार्थी के सामने ऐसी उत्तेजक परिस्थिति प्रस्तुत की जाती है जिसमें वह अपने विचारों, भावनाओं और मनोवृत्तियों और संवेगों को दूसरों में देखता है और अपने अचेतन मन में एकत्र हुई बातों को प्रकट करता है।

क्या आप जानते हैं मनोविश्लेषक प्रक्षेपी को एक रक्षायुक्ति (Defence Mechanism) कहते हैं, जिसमें व्यक्ति अपनी दबी हुई इच्छाओं को जो किसी कारण अचेतन मन में संकलित हो जाती हैं, परिवर्तित करके नयी वस्तु की ओर प्रकट करता है।

जैसे अचेतन मन की झुंझलाहट को दूसरों को डाँटने या लड़ने के द्वारा व्यक्त करना है। प्रक्षेपी विधि में विषयी को किसी बाह्य वस्तुओं के सहारे अपने अन्दर उठे हुए विचारों को प्रक्षेप करने के लिए कहते हैं। प्रक्षेपी विधि द्वारा व्यक्तित्व सम्बन्धी उन पहलुओं का पता चल जाता है जिनसे कि व्यक्ति स्वयं अनभिज्ञ होता है। प्रमुख प्रक्षेपी विधियाँ निम्नलिखित हैं–

(क) प्रासंगिक अंतर्बोध परीक्षण (Thematic Apperception Test or T.A.T.)

(ख) बाल सम्प्रत्यक्ष परीक्षण (Childern Apperception Test or C.A.T.)

(ग) रोर्शाक परीक्षण (Rorchach Ink Blot Test)

(घ) वाक्य-पूर्ति तथा कहानी पूर्ति परीक्षण (Sentence and Story Completion Test)

4. मनोविश्लेषण विधि (Psycho-Analytic-Method)–इसमें निम्न दो विधियाँ आती हैं–

(क) स्वतंत्र शब्द साहचर्य परीक्षण (Free Word Association Test)

(ख) स्वप्न विश्लेषण (Dream Analysis)

उपर्युक्त आत्मनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ विधियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

1. जीवन-इतिहास विधि–इस विधि में व्यक्ति से सम्बन्धित उसके शारीरिक स्वास्थ्य, शारीरिक विशेषताएँ, उसकी व्यक्तिगत विभिन्नताएँ, उसके सामाजिक सम्बन्ध, उसके परिवार के इतिहास आदि का अध्ययन करके सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं। ये सूचनाएँ व्यक्ति के भूतकालीन विवरण, वर्तमान काल के विवरण तथा आगे आने वाली सम्भावनाओं से सम्बन्धित होती हैं। इस विधि में अध्ययनकर्त्ता विभिन्न स्रोतों से व्यक्ति के माता-पिता, सगे सम्बन्धी,

नोट

मित्र, पड़ोसी, डॉक्टर आदि की सहायता से सूचाएँ प्राप्त करता है। इस विधि का प्रयोग प्राय: मनोवैज्ञानिक रोगों के उपचार के लिए किया जाता है तथा इसे विशेष रूप से मानसिक चिकित्सक अपनाते हैं।

2. प्रश्नावली विधि–इस विधि में व्यक्तित्व के विभिन्न गुणों से सम्बन्धित प्रश्नों की एक सूची तैयार की जाती है जिसमें व्यक्ति को लिखित 'हाँ', या नहीं में उत्तर देना पड़ता है। इस विधि को 'कागज पेंसिल परीक्षण' (Paper Pencil Test) भी कहते हैं। इन प्रश्नावलियों की सहायता से व्यक्तित्व की विशेषताओं और गुण जैसे–रुचि, अरुचि, आत्मविश्वास, सामाजिकता, अर्न्तमुखी प्रवृत्ति तथा अधीनता की प्रवृत्ति आदि की परीक्षा की जाती है।

इन प्रश्नावलियों के मुख्य चार प्रकार निम्नलिखित हैं–

***(i)* बन्द प्रश्नावली** (Closed Questionnaire)– इसमें प्रत्येक प्रश्न के सामने 'हाँ' या 'नहीं' लिखा रहता है। परीक्षाओं को हाँ या नहीं में से एक को काटकर उत्तर देना पड़ता है, जैसे–

(क) क्या आप जरा-सी बात पर परेशान हो जाते हैं? हाँ/नहीं

(ख) क्या आप लोगों से मिलना-जुलना पसन्द करते हैं? हाँ/नहीं

(ग) क्या आप सामाजिक अवसरों पर पीछे रहना चाहते हैं? हाँ/नहीं

***(ii)* खुली प्रश्नावली** (Open Questionnaire)–इस प्रश्नावली में प्रश्नों का पूरा उत्तर लिखना पड़ता है जैसे–

लोकतंत्रीय भारत में शिक्षा के क्या उद्देश्य होने चाहिए?

***(iii)* सचित्र प्रश्नावली** (Pictorial Questionnaire)–इस प्रश्नावली में कुछ चित्र दिये रहते हैं। परीक्षार्थी को दिये हुए विभिन्न चित्रों पर निशान लगाकर प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है।

***(iv)* मिश्रित प्रश्नावली** (Mixed Questionnaire)–इस प्रश्नावली में उपर्युक्त प्रश्नावलियों के प्रश्नों का मिश्रण होता है।

3. साक्षात्कार विधि–इस विधि में साक्षात्कार करने वाला (परीक्षक) परीक्षार्थी से कुछ प्रश्नों द्वारा आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त करता है जो कि व्यक्ति की व्यक्तित्व-सम्बन्धी विशेषताओं को समझने में सहायक होती है। इस विधि का प्रयोग सबसे अधिक सरकारी नौकरियों के चुनाव में किया जाता है।

4. आत्मकथा लेखन विधि–इस विधि में परीक्षा लेने वाला परीक्षार्थी को व्यक्तित्व से सम्बन्धित एक शीर्षक देता है और उसी से सम्बन्धित अपना व्यक्तिगत इतिहास लिखने को कहता है। परीक्षक उसे पढ़कर उस व्यक्ति के सम्बन्ध में विचार प्रकट करता है।

5. नियंत्रित निरीक्षण विधि–इस विधि का प्रयोग मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला की नियंत्रित परिस्थितियों में किया जा सकता है। इसमें परीक्षक व्यक्ति की विभिन्न क्रियाओं तथा आचरण-व्यवहार का अध्ययन करता है। इन्हीं के आधार पर व्यक्तित्व की विशेषताएँ मालूम की जाती हैं।

6. मापन रेखा विधि–इस विधि में व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों का मूल्यांकन स्वयं व्यक्ति से या उसके सम्पर्क में रहने वाले व्यक्तियों से करवाया जाता है कि वे अमुक व्यक्ति के गुणों पर अपने विचार प्रकट करें। जिस गुण की परीक्षा करनी होती है। उस गुण का श्रेणी या वर्ग-विभाजन करने के लिए एक रेखा को 3, 5 या 7 बराबर भागों में बाँट दिया जाता है। जिस वर्ग या श्रेणी को सबसे अधिक मत या अंक मिलते हैं व्यक्ति को उसी प्रकार का समझा जाता है जैसे–

क्या वह बालक ईमानदार है?

बिल्कुल ईमानदार ईमानदार औसत बेईमान बिल्कुल बेईमान

क्या आपको छोटी-छोटी बातें परेशान कर देती हैं?

सदा बहुत बार कभी-कभी कम बार कभी नहीं

उपर्युक्त पाँच उत्तरों में से व्यक्ति जो उत्तर देना चाहता है उस पर निशान लगा देता है। **नोट**

7. समाजमिति विधि–इस विधि द्वारा व्यक्ति के सामाजिक गुणों की परीक्षा की जाती है। इसमें इस प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं–

(क) क्या आप अपनी जान-पहचान कुछ विशेष लोगों तक ही सीमित रखना पसन्द करते हैं? हाँ/नहीं

(ख) क्या आप सामूहिक कार्यों में नेता बनना या पहल करना पसन्द करते हैं? हाँ/नहीं

8. शारीरिक परीक्षण–इस विधि में विभिन्न यंत्रों की सहायता से व्यक्ति विशेष के शारीरिक लक्षणों का अध्ययन किया जाता है।

1. **प्लेन्थीसोमोग्राफ** (Plenthisomograph) नामक यंत्र द्वारा रक्तचाप देखा जा सकता है। इससे रक्त के दबाव का पता लगता है।
2. **इलेक्ट्रो-कार्डियोग्राफ** (Electro-Cardiograph) नामक यंत्र द्वारा हृदय-गति की जाँच की जाती है।
3. **स्फीग्मोग्राफ** (Sphygmograph) नामक यंत्र की सहायता से नाड़ी की गति का पता लगाया जाता है।
4. **न्यूमोग्राफ** (Pneumograph) नामक यंत्र से साँस की गति मापी जाती है और साँस लेने की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है।
5. **साइको-गैलवनोमीटर** (Psycho-Galavanometer) नामक मंत्र की सहायता से त्वचा की अनुक्रिया में होने वाले परिवर्तनों की जाँच की जाती है। संवेग की अवस्था में त्वचा पर पाये जाने वाले विद्युत तत्वों में कमी या वृद्धि हो जाती है जैसे–भयभीत होने पर शरीर के रोंगटे खड़े हो जाना, मुँह पीला पड़ जाना आदि। इस प्रकार इस यंत्र द्वारा व्यक्ति में होने वाले संवेगात्मक परिवर्तन को समझने का प्रयत्न किया जाता है। उपर्युक्त यंत्रों की सहायता से व्यक्ति के शारीरिक लक्षणों का पता लगाकर उसके साहस, वीरता, भक्ति कायरता तथा अपराध वृत्ति का पता लगाया जा सकता है।

9. प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण (T.A.T)–इस परीक्षण का निर्माण मनोवैज्ञानिक **मॉर्गन** (Morgon) तथा **मरे** (Murrey) ने किया था। इसे कथानक बोध परीक्षण (T.A.T.) भी कहते हैं। इसके द्वारा व्यक्तित्व की विशेषताओं की जाँच की जाती है। इस परीक्षण में 30 चित्रों का प्रयोग किया जाता है। इसमें 10 चित्र महिलाओं के लिए, 10 चित्र पुरुषों के लिए तथा 10 चित्र दोनों के लिए होते हैं। साधारणत: अन्तिम 10 चित्रों का ही प्रयोग किया जाता है। प्रथम कुछ चित्रों में जो वस्तुएँ दिखाई गयी हैं, वे इस प्रकार हैं–

1. वायलन बजाता हुआ एक बालक।
2. एक लड़की जिसके हाथ में कुछ किताबें हैं, एक दूसरी स्त्री उसकी ओर निगाह गड़ाए हुए है और कुछ दूर पर खेत में काम करता हुआ एक किसान।
3. सीधी कोहनी पर सिर थामे हुए फर्श पर पड़ा हुआ एक बालक जिसके पास एक पिस्तौल रखी है।
4. नीचा सिर किए हुए, सीधे हाथ को सिर पर रखे हुए तथा बाएँ हाथ से दरवाजा थामे हुए एक स्त्री।

इसी प्रकार अन्य चित्रों में किसी-न-किसी घटना को चित्रित किया जाता है। परीक्षा आरम्भ करते समय परीक्षक निम्नांकित निर्देश परीक्षार्थी को देता है–

आपको कुछ चित्र दिखाये जायेंगे। चित्र देखकर इन चार बातों को ध्यान में रखते हुए कहानी बनानी होगी–

1. ये कौन लोग हैं?
2. पहले क्या बात हुई होगी जिससे यह घटना चित्र में दिखायी गयी है?

नोट

3. इस समय क्या हो रहा है?
4. ये लोग क्या सोच रहे हैं? उनके मन में क्या भाव उठ रहे हैं? इसका क्या अन्त होगा?

कहानी लिखने के लिए पाँच मिनट का समय दिया जाता है। इन कहानियों में व्यक्ति अपनी स्वाभाविक इच्छाओं, संवेगों, विचारों, भावनाओं तथा समस्याओं को व्यक्त करता है। यह कहानी स्वयं उसके जीवन की कहानी हो सकती है। परीक्षक इन कहानियों का विश्लेषण करता है और उसके आधार पर व्यक्ति की विशेषताओं का पता लगाता है।

10. बाल सम्प्रत्यक्ष परीक्षण (C.A.T.)–यह परीक्षा बच्चों के व्यक्तित्व-व्यवस्थापन की जाँच करने के लिए प्रयोग में लाई जाती है। इनमें चित्रों की संख्या 10 होती है। ये चित्र किसी-न-किसी जानवर से सम्बन्धित होते हैं जो कि मनुष्यों की तरह व्यवहार करते दिखाई देते हैं। इनके माध्यम से बच्चों की विभिन्न रुचियों, क्रियाओं और समस्याओं के विषय में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

11. रोर्शाक परीक्षण या स्याही-धब्बा परीक्षण–इस विधि का अविष्कार स्विट्जरलैण्ड के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **हरमैन रोर्शाक** (Herman Rorschach) ने किया। इस परीक्षण में 10 प्रमाणित स्याही लगे धब्बे के कार्डों का प्रयोग किया जाता है। इन कार्डों में पाँच बिल्कुल काले हैं, दो काले और लाल हैं और तीन में कई रंग मिले हैं।

परीक्षण विधि–इस विधि का प्रयोग करने के लिए परीक्षण को विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। परीक्षण का प्रयोग करने के पहले परीक्षार्थी विषयी (Subject) को निम्नलिखित निर्देश दिया जाता है–

भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को इन धब्बों में भिन्न-भिन्न वस्तुएँ दिखाई देती हैं। तुमको ये धब्बे एक-एक करके दिखाये जायेंगे। प्रत्येक कार्ड को ध्यान से देखो और मुझे बताओ की तुम इनमें क्या देखते हो? जितनी देर तक कार्ड देखना चाहो देख सकते हो, किन्तु जो वस्तुएँ इस चित्र में तुम्हें नजर आती हों उन सबको बताते जाओ। जब तुम उसको पूरी तरह से देख लो तब मुझे लौटा दो, एक धब्बे (चित्र) को दिखाते हुए "यह क्या हो सकता है।"

चित्र 20.1

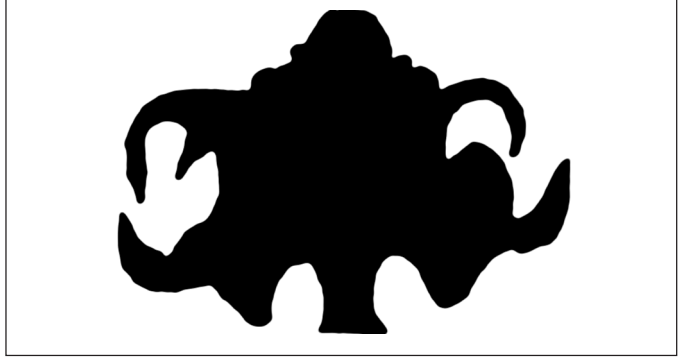

दिए गए निर्देश के बाद एक-एक करके ये कार्ड परीक्षार्थी को दिखाए जाते हैं। परीक्षार्थी इन धब्बों को देखकर जो प्रतिक्रिया करता है, परीक्षक उसे लिखता जाता है।

टास्क दिए गए चित्र (20.1) का निरीक्षण कर बताएँ कि इस चित्र में आपको क्या-क्या स्पष्ट हो रहा है।

विश्लेषण (Analysis)–परीक्षार्थी के उत्तरों का विश्लेषण निम्नलिखित चार बातों के आधार पर किया जाता है–

1. **स्थान** (Location)–इसमें यह देखा जाता है कि परीक्षार्थी ने धब्बे के किसी विशेष भाग के प्रति प्रतिक्रिया की है या पूरे धब्बे के प्रति।

नोट

2. **गुण** (Quality)–इसमें यह देखा जाता है कि उसकी प्रतिक्रिया धब्बे की बनावट के कारण है या विभिन्न रंगों के कारण या गति के कारण है।
3. **विषय** (Content)–इसमें यह देखा जाता है कि परीक्षार्थी धब्बे में मनुष्य की आकृति देखता है, या पशु की या किसी वस्तु की, या प्राकृतिक दृश्यों की।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान की पूर्ति करें–

1. ..... विधि में व्यक्तित्व जाँच स्वयं परीक्षक द्वारा या उसके परिचितों द्वारा की जाती है।
2. व्यक्तित्व जाँच की वस्तुनिष्ठ विधि में व्यक्ति के ..... का अध्ययन किया जाता है।
3. समाजमिति विधि द्वारा व्यक्ति के ..... की परीक्षा की जाती है।
4. रोर्शाक परीक्षण को ..... परीक्षण भी कहते हैं।

4. **समय**–इसमें यह देखा जाता है कि परीक्षार्थी ने प्रत्येक धब्बे को देखने में कितना समय लिया।

मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर व्यक्ति की चेतन और अचेतन विशेषताओं की जाँच की जा सकती है। इस परीक्षण द्वारा व्यक्ति की सामाजिकता, संवेगात्मक प्रतिक्रिया, रचनात्मक एवं कल्पनात्मक शक्तियों का विकास, समायोजन-क्षमता तथा अन्य व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषओं का पता लगाया जा सकता है।

12. वाक्य-पूर्ति तथा कहानी पूर्ति-परीक्षण–इस परीक्षा में परीक्षार्थी के सामने कुछ अधूरे वाक्य तथा अधूरी कहानियों को प्रस्तुत किया जाता है। वह अपने मन में आए हुए शब्दों तथा विचारों द्वारा इन वाक्यों और कहानियों में अपनी इच्छाओं तथ संवेगों को प्रकट करता है इनके अधार पर उसके व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है।

13. स्वतंत्र शब्द-साहचर्य परीक्षण–इस परीक्षण द्वारा व्यक्ति की आंतरिक मनोदशा का पता लगाया जाता है। इस परीक्षण में 50 से 100 तक चुने हुए उद्दीपक शब्द (Stimulus Words) होते हैं। परीक्षक व्यक्ति के सामने एक शब्द को बोलता है, जैसे–घर, पानी, मिठाई आदि। इन शब्दों से सम्बन्धित जितने शब्द या विचार उसके मन में आ सकते हैं उन्हें व्यक्त करने के लिए उसे उत्साहित किया जाता है। परीक्षक परीक्षार्थी द्वारा बोले गये शब्दों को तथा प्रत्येक शब्द को तथा प्रत्येक शब्द के 'प्रतिक्रिया काल' को लिखता जाता है और अन्त में दिये गये उत्तरों के आधार पर व्यक्तित्व-मूल्यांकन किया जाता है।

14. स्वप्न-विश्लेषण–यह विधि मानसिक चिकित्सा करने के लिए प्रयोग में लाई जाती है। इस विधि के अंतर्गत व्यक्ति से अपने स्वप्नों को याद करके या लिखने या बताने के लिए कहा जाता है। इन स्वप्नों में व्यक्ति के अचेतन मन की इच्छाओं और भावनाओं का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इस विधि में कुछ कठिनाई होती है, क्योंकि व्यक्ति को स्वप्न ठीक से याद नहीं रह पाते। व्यक्ति द्वारा दिये गये उत्तरों के आधार पर उसकी समस्याओं का समाधान करने का प्रयत्न किया जाता है।

20.2 व्यक्तित्व-परीक्षण का महत्त्व (Importance of Personality Tests)

व्यक्तित्व-परीक्षणों की दिशा में मनोवैज्ञानिकों ने जो कार्य किया है उनके फलस्वरूप व्यक्तित्व को मापने की कई महत्त्वपूर्ण विधियों का सफलातापूर्वक उपयोग किया जा रहा है। व्यक्तित्व-मापन की आवश्यकता जीवन के विभिन्न कार्य-क्षेत्रों में होती है। व्यक्तित्व-परीक्षणों का उपयोग छात्रों, सैनिकों, विभिन्न सेवाओं के कर्मचारियों के चुनाव में, मानसिक रोगों के उपचार तथा व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान एवं उपचार के लिये किया जाता है। इन परीक्षणों की सहायता से व्यक्ति की रुचियों, अरुचियों, प्रवृत्तियों, इच्छाओं, आवश्यकताओं, स्वाभाविक गुणों, आंतरिक

नोट

मनोदशा, सामाजिक और व्यक्तिगत संबंधों आदि की जानकारी प्राप्त करके व्यक्तिगत निर्देशन (Guidance) सरलतापूर्वक दिया जा सकता है।

नोट्स

शिक्षा के क्षेत्र में व्यक्ति-परीक्षण का महत्त्व शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों की दृष्टि से अधिक है। शिक्षार्थी के व्यक्तित्व-विकास पर विद्यालय-जीवन का गहरा प्रभाव पड़ता है। अत: उसके व्यक्तित्व को जाँच करके ही, वैयक्तिक भिन्नताओं के अनुसार पाठ्यक्रम, पाठन विधि तथा परीक्षण-विधि आदि की व्यवस्था की जा सकती है। शिक्षक शिक्षार्थी के व्यक्तित्व का अध्ययन करके ही उसके व्यक्तित्व-निर्माण में सहायता प्रदान करता है।

इन परीक्षणों के आधार पर ही विद्यार्थियों की विभिन्न समस्याओं, जैसे–मानसिक अस्वस्थता, पिछड़ापन, अनुशासनहीनता आदि के कारणों का पता लगाया जा सकता है। इस प्रकार व्यक्तित्व-परीक्षणों से व्यक्तित्व सम्बन्धी समस्याओं का निदान तथा उपचार दोनों किया जा सकता है।

अन्त में यह कहना भी उपयुक्त प्रतीत होता है कि मानव-व्यक्तित्व इतना जटिल है कि उसका ठीक-ठीक मापन करना और व्यक्तित्व के गुणों का पता लगाना सरल कार्य नहीं है। इस कारण से व्यक्तित्व-मापन की विधियों और परीक्षणों को पूर्ण रूप से वैध और विश्वसनीय (Valid and Reliable) नहीं कहा जा सकता है। जैसा कि मनोवैज्ञानिक **बरनन** ने कहा है–"मानव-व्यक्तित्व के परीक्षण या मापन में इतनी कठिनायाँ व्याप्त हैं कि सबसे उत्तम मनावैज्ञानिक कुशलता का प्रयोग करके भी, शीर्घ सफलता प्राप्त करने की आशा नहीं की जा सकती है।" (The testing or assessment of human personality is fraught with so many difficulties that even the application of the highest psychological skill cannot be expected to bring about rapid success.)

20.3 सारांश (Summary)

- विद्यार्थियों को शैक्षिक व्यावसायिक और व्यक्तिगत निर्देशन देने लिए व्यक्तित्व की विशेषताओं को जानना आवश्यक होता है अत: शिक्षा की प्रक्रिया में व्यक्तित्व के मापन का व्यापक महत्त्व होता है। व्यक्तित्व के मापन के लिए अनेक विधियों और परीक्षणों को प्रयोग किया जाता है।
- व्यक्तित्व के मूल्यांकन के लिए निम्नलिखित विधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं–

1. आत्मनिष्ठ विधि–इसके अंतर्गत निम्न विधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं–
   (क) जीवन इतिहास विधि (ख) प्रश्नावली विधि
   (ग) साक्षात्कार विधि (घ) आत्मलेखन विधि।
2. वस्तुनिष्ठ विधि–
   (क) नियंत्रित निरीक्षण विधि, (ख) मापन रेखा विधि,
   (ग) समाजमिति विधि (घ) शारीरिक परीक्षण
3. प्रक्षेपी विधि–
   (क) प्रासंगिक अंतर्बोध परीक्षण (ख) बाल संप्रत्यक्ष परीक्षण
   (ग) रोर्शाक परीक्षण (घ) वाक्य पूर्ति तथा कहानी पूर्ति परीक्षण

4. मनोविश्लेषण विधि–

नोट

(क) स्वतंत्र शब्द साहचर्य परीक्षण (ख) स्वप्न विश्लेषण

20.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **अंतर्बोध**–मन का ज्ञान

20.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. व्यक्तित्व मूल्यांकन की आत्मनिष्ठ विधियाँ बताइए।
2. व्यक्तित्व मूल्यांकन की वस्तुनिष्ठ विधियों पर प्रकाश डालिए।
3. व्यक्तित्व परीक्षण के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. आत्मनिष्ठ 2. बाह्य आचरण 3. सामाजिक गुण 4. स्याही-धब्बा।

20.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
2. मनोविज्ञान–*मानव व्यवहार का अध्ययन–ब्रजकुमार मिश्र, पी.एच.आई. लर्निंग, नई दिल्ली।*
3. मनोविज्ञान–*डॉ. सरयू प्रसाद, आगरा बुक स्टोर, आगरा।*
4. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 21: सृजनात्मकता (Creativity)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

21.1 सृजनात्मकता का अर्थ (Meaning of Creativity)

21.2 सृजनात्मकता के तत्व (Element of Creativity)

21.3 सृजनात्मक व्यक्तित्व की विशेषताएँ (Criteria Creative Personality)

21.4 सृजनात्मकता का मापन (Measurement of Creativity)

21.5 सृजनात्मकता परीक्षण का निर्माण (Construction of a Creativity Test)

21.6 कतिपय सृजनात्मकता परीक्षण (Some Tests of Creativity)

21.7 सारांश (Summary)

21.8 शब्दकोश (Keywords)

21.9 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

21.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सृजनात्मकता का अर्थ एवं उसके तत्वों को समझने में।
- सृजनात्मक व्यक्तित्व की विशेषताएँ समझने में।
- सृजनात्मकता का मापन एवं परीक्षण निर्माण प्रक्रिया को समझने में।
- विभिन्न सृजनात्मक परीक्षणों के विषय में जानकारी प्राप्त करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

वैज्ञानिक, तकनीकी तथा औद्योगिक विकास के आधुनिक युग में नित प्रतिदिन नूतन आविष्कार हो रहे हैं। इनमें से अधिकांश अविष्कारों के पीछे जहाँ वैज्ञानिकों का अथक प्रयास छिपा है वहीं उनकी सृजनात्मकता का भी कम योगदान नहीं है। पहले यह माना जाता था कि केवल लेखक, कवि, चित्रकार, संगीतकार आदि व्यक्ति ही सृजनात्मक

नोट

होते हैं परन्तु अब माना जाने लगा है कि मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति हो सकती है। वास्तव में संसार के समस्त प्राणियों में सृजनात्मकता पाई जाती है–किसी में कम मात्रा में सृजनात्मकता होती है तथा किसी में अधिक मात्रा में सृजनात्मकता होती है। मानवीय जीवन को सुखमय बनाने के लिए नवीन आविष्कार करने तथा समस्याओं का समाधान खोजने के कार्य में सृजनात्मकता महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

आज के समस्याग्रस्त जटिल समाज तथा प्रतियोगितापूर्ण संसार में सृजनात्मकता व्यक्तियों की माँग है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी उपलधियों को अर्जित करने के लिए सृजनात्मक व्यक्तियों को खोजना एक राष्ट्रीय आवश्यकता बन गई है। प्रस्तुत अध्याय में सृजनात्मकता के अर्थ तथा मापन विधियों का वर्णन किया गया है।

नोट्स दूसरे विश्वयुद्ध के उपरान्त 'सृजनात्मकता' के प्रत्यय पर मनोवैज्ञानिकों व शिक्षाशास्त्रियों ने विशेष ध्यान दिया। तीव्र गति से हो रहे वैज्ञानिक, तकनीकी व औद्योगिक विकास तथा आधुनिकीकरण ने मानव जीवन को इतना जटिल तथा समस्याग्रस्त बना दिया है कि इन समस्याअें के समाधान के लिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सृजनात्कता की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है।

21.1 सृजनात्मकता का अर्थ (Meaning of Creativity)

भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने सृजनात्मकता को भिन्न-भिन्न ढंग से परिभाषित किया है। सृजनात्मकता की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नवत् हैं–

डीहान तथा **हेविंगहर्स्ट** के अनुसार "सृजनात्मकता वह विशेषता है जो किसी नवीन व वांछित वस्तु के उत्पादन की ओर प्रवृत्त करे। यह नवीन वस्तु सम्पूर्ण समाज के लिए नवीन हो सकती है अथवा केवल उत्पादक व्यक्ति के लिए नवीन हो सकती है।"

ड्रैवहल के शब्दों में, "सृजनात्मकता वह मानवीय योग्यता है जिसके द्वारा वह किसी रचना या विचारों को प्रस्तुत करता है।"

मनोवैज्ञानिक **क्रो** एवं **क्रो** के अनुसार, "सृजनात्मकता मौलिक परिणामों को अभिव्यक्त करने की मानसिक प्रक्रिया है।"

कोल और **ब्रूस** के शब्दों में "सृजनात्मकता मौलिक उत्पाद के रूप में मानव मस्तिष्क को समझने व्यक्त करने तथा सराहना करने की योग्यता व क्रिया है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सृजनात्कमता का सम्बन्ध प्रमुख रूप से मौलिकता या नवीनता से है। सृजनात्मकता समस्या पर नये ढंग से साचने तथा समाधान खोजने के प्रयास से परिलक्षित होती है दूसरे शब्दों में सृजनात्मकता वह योग्यता है जो व्यक्ति को किसी समस्या का विद्वतापूर्ण समाधान खोजने के लिए नवीन ढंग से सोचने व विचार करने में समर्थ बनाती है। प्रचलित ढंग से हटकर किसी नये ढंग से चिन्तन करने तथा कार्य करने की योग्यता ही सृजनात्मकता है।

21.2 सृजनात्मकता के तत्व (Elements of Creativity)

सृजनात्मकता की परिभाषाओं के अवलोकन तथा विश्लेषण से ज्ञात होता है कि सृजनात्मकता को संवेदनशीलता, जिज्ञासा, कल्पना, मौलिकता, खोजपरकता, लचीलापन, प्रवाह, विस्तार, नवीनता आदि के संदर्भ में समझा जा सकता

नोट

है। सृजनात्मकता के समानार्थी यह सभी प्रत्यय वैज्ञानिक अनुसंधानों, कलाकृतियों, संगीत, रचना, लेखन व काव्य कला, चित्रकला, भवन निर्माण आदि सृजनात्मक कार्यों में परिलक्षित होते हैं। सृजनात्मकता के चार प्रमुख तत्व निम्नवत हैं–

(*i*) **प्रवाह** (Fluency)–प्रवाह से तात्पर्य किसी दी गई समस्या पर अधिकाधिक प्रत्युत्तरों से है। प्रवाह को पुन: चार भागों–वैचारिक प्रवाह (Ideational Fluency), अभिव्यक्ति प्रवाह (Expressional Fluency), साहचर्य प्रवाह (Associative Fluency) तथा शब्द प्रवाह (Word Fluency) में बाँटा जा सकता है। **वैचारिक** प्रवाह में विचारों के स्वतन्त्र प्रस्फुटन को प्रोत्साहित किया जाता है। जैसे किसी कहानी के शीर्षक बताना, किसी वस्तु के उपयोग बताना, किसी वस्तु को सुधारने के तरीके बताना आदि। **अभिव्यक्ति प्रवाह** में मानवीय अभिव्यक्तियों के स्वतन्त्र प्रस्फुटन को प्रोत्साहित किया जाता है। जैसे दिये गये चार शब्दों से वाक्य बनाना, दिये अपूर्ण वाक्य को पूरा करना आदि। **साहचर्य प्रवाह** से तात्पर्य दिये गये शब्दों या वस्तुओं में साहचर्य स्थापित करने से है। जैसे किसी दिये गये शब्द के पर्यायवाची या विलोम शब्द लिखना। **शब्द प्रवाह** का सम्बन्ध शब्दों से होता है। जैसे दिये गये प्रत्ययों तथा उपसर्गों (Prefix and suffix) से शब्द बनाना। किसी व्यक्ति के द्वारा किसी सृजनशील परीक्षण के किसी पद (item) पर प्रवाह को प्राय: उस पद पर दिये गये प्रत्युत्तरों की संख्या से व्यक्त किया जाता है। परीक्षण पर व्यक्ति के प्रवाह प्राप्तांक को ज्ञात करने के लिए सभी पदों के प्रवाह अंकों का योग कर लिया जाता है।

(*ii*) **विविधता** (Flexibility)–विविधता से अभिप्राय किसी समस्या पर दिये प्रत्युत्तरों या विकल्पों में विविधता के होने से है। इससे ज्ञात होता है कि व्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत किये गये विकल्प या उत्तर एक दूसरे से कितने भिन्न-भिन्न हैं। विविधता की तीन विमाएँ–आकृति स्वत: स्फूर्त विविधता (Figural Spontaneous Flexibility), आकृति अनुकूलन विविधता (Figural Adaptive Flexibility) तथा शाब्दिक स्वत: स्फूर्त विविधता (Semantic Spontaneous Flexibility) हो सकती हैं। आकृति स्वत: स्फूर्त विविधता से तात्पर्य किसी वस्तु या आकृति में सुधार करने के उपायों की विविधता से है। आकृति अनुकूलन विविधता से अभिप्राय किसी वस्तु या आकृति के रूप में किसी दिये गये रूप में परिवर्तित करने की विधियों की विविधता से है। शाब्दिक स्वत: स्फूर्त विविधता में वस्तुओं या शब्दों के प्रयोग में विविधता को देखा जाता है सृजनात्मकता के परीक्षणों के किसी पद (item) पर विविधता को प्राय: उस पद पर व्यक्ति के द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रत्युत्तरों (different types of responses) से व्यक्त किया जाता है। परीक्षण पर किसी व्यक्ति के विविधता प्राप्तांक को ज्ञात करने के लिए उसके द्वारा विभिन्न पदों पर प्राप्त विविधता अंकों को जोड़ लिया जाता है।

(*iii*) **मौलिकता** (Originality)–मौलिकता से अभिप्राय व्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत किये गये विकल्पों या उत्तरों के असामान्य (Uncommon) होने से है। इसमें देखा जाता है कि दिये गये विकल्प या उत्तर सामान्य या प्रचलित (Popular) विकल्पों या उत्तरों से कितने भिन्न हैं। दूसरे शब्दों में मौलिकता मुख्य रूप से नवीनता (Newness) से सम्बन्धित होती है। जो व्यक्ति अन्यों से भिन्न विकल्प प्रस्तुत करता है वह मौलिक कहा जा सकता है। वस्तुओं के नये उपयोग बताना, कहानी, कविता या लेख के शीर्षक लिखना, परिवर्तनों के दूरगामी परिणाम बताना, कहानी, कविता, या लेख के शीर्षक लिखना, परिवर्तनों के दूरगामी परिणाम बताना नवीन प्रतीक खोजना आदि मौलिकता के कुछ उदाहरण हैं।

(*iv*) **विस्तारण** (Elaboration)–विस्तारण से तात्पर्य दिये गये विचारों या भावों की विस्तृत व्याख्या, पूर्ति या प्रस्तुतीकरण से होता है। विस्तारण को दो भागों–शाब्दिक विस्तारण (Semantic Elaboration) तथा आकृति विस्तारण (Figural Elaboration) में बाँटा जा सकता है **शाब्दिक विस्तारण** में किसी दी गई संक्षिप्त घटना, क्रिया, कार्य परिस्थिति आदि को विस्तृत करने के लिए कहा जाता है जबकि **आकृति विस्तारण** में किसी दी गई रेखा या अपूर्ण चित्र में कुछ जोड़कर पूर्ण एवं सार्थक चित्र बनाना होता है।

21.3 सृजनात्मक व्यक्तित्व की विशेषताएँ (Criteria Creative Personality)

नोट

टोरेन्स (Torrance) ने अनेक सृजनात्मक व्यक्तियों के व्यवहारों का विशद अध्ययन करने के उपरान्त, सृजनात्मक व्यक्ति की 84 व्यक्तित्व विशेषताओं की एक सूची तैयार की थी। सृजनात्मकता के मापन में सृजनात्मक व्यक्तित्व की द्योतक ये 84 विशेषताएँ महत्त्वपूर्ण व सार्थक भूमिका अदा कर सकती है। ये चौरासी विशेषताएँ निम्नवत हैं–

1. अव्यवस्था को स्वीकारना (Accepts Disorder)
2. जोखिम उठाना (Adventurous)
3. दृढ़ भावात्मकता (Strong Affection)
4. अन्यों के प्रति जागरूकता (Awareness to others)
5. अव्यवस्था की ओर आकर्षण (Attraction to Disorder)
6. कठिन कार्यों का करना (Attempts Difficult Jobs)
7. रचनात्मक आलोचना (Constructive Criticism)
8. तीव्र व अन्तर्विवेकशील परम्पराएँ (Deep and Conscientious Conventions)
9. परार्थोन्मुख (Altruistic)
10. सदैव परेशान रहना (Always Beffled by Something)
11. रहस्यात्मक खोजों के प्रति आकर्षित होना (Attracted to Mysterious Discoveries)
12. झेंपू या लज्जालू (Bashful Outwardly)
13. साहसिक (Courageous)
14. नम्रता की परम्पराओं को स्पष्ट करना (Defines Conventions of Courtesy)
15. स्वास्थ्य की परम्पराओं को स्पष्ट करना (Defines Conventions of Health)
16. श्रेष्ठ बनने की इच्छा (Desire of Excel)
17. दृढ़ निश्चय (Determination)
18. विभेदीकृत मूल्य अधिक्रम (Differentiated Value-hierarchy)
19. असन्तुष्ट (Discontented)
20. व्यवस्था को बिगाड़ने वाले (Disturbs Organization)
21. प्रबल, हावी (Dominant)
22. संवेगात्मक (Emotional)
23. संवेगात्मक रूप से संवेदनशील (Emotionally Sensitive)
24. उत्साही (Energetic)
25. दोष निकालने वाला (A Fault Finder)
26. लोगों की चिन्ता नहीं करना (Does not fear being thought differently)
27. जिज्ञासा से परिपूर्ण (Full of Curiosity)

नोट

28. प्राय: आत्म-सन्तुष्ट प्रतीत होना (Appears self-satisfied at times)
29. एकान्तप्रिय (Likes Solitude)
30. अनुभव करना कि सारी व्यवस्था गड़बड़ है (Feels whole parade is out of step)
31. निर्णय में स्वतन्त्रता (Independence in Judgement)
32. चिन्तन में स्वतन्त्रता (Independence in Thinking)
33. व्यक्तिवादी (Individualistic)
34. अन्त:प्रज्ञात्मक (Intuitive)
35. परिश्रमी (Industrious)
36. अन्त:मुखी (Introversive)
37. व्यावहारिक योग्यता में कमी (Lacks Business Ability)
38. त्रुटि करना (Makes Mistakes)
39. कभी न ऊबना (Never Bored)
40. आक्रामक और पलायनवादी नहीं होना (Not Hostile or Negativistic)
41. जनप्रिय न होना (Not Popular)
42. विचित्र आदतें (Oddities of Habits)
43. सतत् (Persistent)
44. अपने विचारों में लीन (Becomes Preoccupied)
45. जटिल विचारों को पसन्द करना (Preference for Complex Ideas)
46. अनैष्ठिक (Non-conformity)
47. अनियमित समय पर कार्य करना (Keeps Unusual Hours)
48. प्रश्न करने की योग्यता (A Questioning Ability)
49. आमूल-चूल परिवर्तनवादी (Radical)
50. बाह्य संवेदनाओं को ग्रहण करना (Receptive to External Stimuli)
51. अन्य व्यक्तियों के विचारों का ग्राही (Receptive to Ideas of Others)
52. कभी-कभी पलायनवादी (Regresses Occasionally)
53. विचारों के दमन का विरोधी (Rejection of Suppression as a Mechanism of Impulse Control)
54. दमन को नकारना (Rejection of Repression)
55. संकल्पी (Resolute)
56. आत्मसात (Reserved)
57. आत्म-सचेत (Self-aware)

नोट

58. आत्म विश्वासी (Self-confident)
59. आत्म निर्भर (Self-sufficient)
60. हँसोड़ (Sense of Humour)
61. सुन्दरता के प्रति संवेदनशील (Sensitive to Beauty)
62. निश्छल (Sincere)
63. शक्ति को त्यागने वाला (Shuns Power)
64. अपने आपको थोपने वाला (Self-assertive)
65. स्वचालित (Self-starter)
66. नियति को मानना (Senses of Destiny)
67. छोटी-मोटी बातों से अरुचि (Not Interested in Small Details)
68. परिकल्पनात्मक (Speculative)
69. असहमत होने को तत्पर (Spirited in Disagreement)
70. दूरगामी लक्ष्यों का आकांक्षी (Strives for Distant Goals)
71. हठी या अड़ियल (Stubborn)
72. अस्थायी स्वभाव (Temrperamental)
73. दृढ़ (Tenacious)
74. वात्सल्य (Tender Emotions)
75. डरपोक (Timid)
76. परिपूर्ण (Thorough)
77. शक्ति के परे तटस्थ (Unconcerned about Power)
78. कुछ अनुसंस्कृत, आदिम (Somewaht Uncultured Primitive)
79. अपरिष्कृत (Unsophisticated Naive)
80. कहने मात्र से किसी बात को स्वीकार करने का अनिच्छुक (Unwilling to accept any thing on mere say to)
81. दृष्टा (Visionary)
82. बहुमुखी (Versatile)
83. जोखिम उठाने को तैयार (Willing to take Risks)
84. काफी विरक्त और खामोश (Somewhat withdrawn and Quiescent)

21.4 सृजनात्मकता का मापन (Measurement of Creativity)

यद्यपि सृजनात्मकता वास्तव में एक मानसिक योग्यता ही है, फिर भी अन्य मानसिक योग्यताओं के मापन की तुलना में सृजनात्मकता का मापन एक जटिल कार्य है। सृजनात्मकता के अन्तर्गत अनूठे, अस्पष्ट, विस्तृत तथा जटिल कार्यों

नोट

को करने की अनेकों विभिन्न क्षमतायें समाविष्ट रहती हैं इसीलिए सृजनात्मकता का मापन करना मुश्किल कार्य होता है। वास्तव में किसी भी एक परीक्षण की सहायता से किसी व्यक्ति की सम्पूर्ण सृजनात्मकता को कदापि माना नहीं जा सकता यही कारण है कि **मैकनील** (Mc Neil. 1960) ने सुझाव दिया था कि सृजनात्मकता के प्रत्येक कारक या घटक को अलग-अलग परीक्षणों के द्वारा मापा जाना चाहिए। सृजनात्मकता के किसी भी कारक या घटक को मापने के लिए परीक्षण तैयार करने से पूर्व यह आवश्यक है कि उस कारक या घटक को मानव व्यवहार के रूप में स्पष्ट व वस्तुनिष्ठ ढंग से परिभाषित किया जा सके। सृजनात्मकता के प्रमुख घटकों तथा सृजनशील व्यक्ति की विशेषताओं का वर्णन पीछे किया जा चुका है। हरग्रीव्ज (Hargreaves), थर्सटन (Thurstone), विल्सन (Wilson), टेलर (Tailor), गिलफोर्ड (Guilford), मेरीफील्ड (Marrifield), हालैन्ड (Holland), कैन्ट (Kent), हेरिस (Harris), ओविन (Owen), टोरेन्स (Torrance) आदि ने सृजनात्मकता के मापन के प्रयासों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। गिलफोर्ड तथा मेरीफील्ड के द्वारा निर्मित 'कालेज छात्रों के लिए सृजनात्मकता परीक्षण', हालैण्ड तथा कैण्ट द्वारा निर्मित 'स्कूल छात्रों के लिए सृजनात्मकता परीक्षण' तथा टोरेन्स के द्वारा तैयार किया गया 'सृजनात्मक चिन्तन का मिनिसोटा परीक्षण' काफी प्रसिद्ध हुए। भारत में बी.के पासी तथा बाकर मेंहदी के द्वारा के द्वारा विकसित किये गये सृजनात्मकता परीक्षणों को पर्याप्त सफलता मिली है।

यद्यपि सृजनात्मकता के मापन के लिए अनेकों परीक्षणों का निर्माण किया जा चुका है, परन्तु इन सृजनात्मकता परीक्षणों की अपनी व्यावहारिक उपयोगिता सिद्ध नहीं हो सकी है। अधिकांश परीक्षणों की विश्वसनीयता संदिग्ध है, परीक्षण-पुनर्परीक्षण विश्वसनीयता गुणांकों का मान प्राय: 40 से 75 के बीच पाया गया है। इन परीक्षणों की पूर्व-कथन वैधता (Predictive Validity) काफी कम प्राप्त हुई है। सृजनात्मकता के विभन्न परीक्षणों पर प्राप्त अंक परस्पर घनिष्ठ रूप से सहसम्बन्धित नहीं होते हैं। यही कारण है कि सृजनात्मकता परीक्षणों से प्राप्त अंकों की विश्वसनीयता तथा वैधता को संतोषजनक मानने में कठिनाई होती है। फिर भी जब तक अधिक विश्वसनीय तथा वैध मापन विधियों का प्रतिपादन नहीं होता है तब तब उपलब्ध परीक्षणों के प्रयोग से ही सृजनात्मकता का मापन करना होगा।

21.5 सृजनात्मकता परीक्षण का निर्माण (Construction of a Creativity Test)

अन्य परीक्षणों के निमार्ण व प्रमापीकरण की तरह से सृजनात्मकता परीक्षणों के निर्माण में भी योजना बनाना, प्रश्न तैयार करना, पद विश्लेषण करके प्रश्न छांटना तथा परीक्षण का मूल्यांकन करना-चार मुख्य सोपानों का अनुगमन किया जाता है। इन चारों सोपानों के अन्तर्गत किया जाने वाले कार्य लगभग वही है जो किसी सम्प्राप्ति परीक्षण अथवा बुद्धि परीक्षण के निर्माण के दौरान सम्पादित किये जाते हैं। प्राय: सृजनात्मकता परीक्षण के लिए पदों का चयन करने के लिए पद वैधता (Item Validity) अथवा पद विभेदकता (Item Discrimination) ज्ञात की जाती है तथा इसके लिए परीक्षण प्राप्तांकों व पद प्राप्तांकों के मध्य सहसम्बन्ध गुणांकों की गणना की जाती है तथा उच्च व निम्न सृजनात्मक समूहों की तुलना पद प्राप्तांकों के लिए करके **टी मानों को ज्ञात किया** जाता है। पद वैधता अथवा पद विभेदकता ज्ञात करते समय अधिकांश परीक्षण रचयिता परीक्षण पदों के द्वारा प्रदत्त सृजनात्मकता प्राप्तांकों का उपयोग करते हैं। सृजनात्मकता परीक्षणों के निर्माण व प्रमापीकरण के लिए पद विश्लेषण की यह प्रविधि उपयुक्त प्रतीत नहीं होती है। वास्तव में किसी सम्प्राप्ति या बुद्धि परीक्षण तथा सृजनात्मकता परीक्षण की प्रकृति में कुछ मूलभूत अन्तर होता है जिसके कारण दोनों प्रकारों के परीक्षणों के लिए एक जैसी पद विश्लेषण प्रविधि का प्रयोग करना मनोमितिय दृष्टि से उचित नहीं है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

सही विकल्प चुनिए–

1. टॉरेंस (Torrence) ने सृजनात्मक व्यक्तित्व की कितनी विशेषताएँ बतायी हैं–
   (क) 40 (ख) 62 (ग) 84
2. सृजनात्मकता के कितने तत्व होते हैं–
   (क) छः (ख) चार (ग) पाँच
3. 'सृजनात्मकता मौलिक परिणामों को व्यक्त करने की मानसिक प्रक्रिया है।' यह परिभाषा किसने दी है–
   (क) क्रो एंड क्रो (ख) डीहान (ग) ब्रूस
4. भारत में सफल सृजनात्मक परीक्षण तैयार करने वाले मनोवैज्ञानिक हैं–
   (क) डॉ. भाटिया तथा जैन (ख) पासी तथा बाक़र मेंहदी (ग) क्रो एंड क्रो

सम्प्राप्ति या बुद्धि परीक्षण में प्रत्येक प्रश्न का केवल **एक उत्तर** दिया जाता है तथा प्रत्येक प्रश्न के लिए छात्र को केवल एक ही प्राप्तांक प्रदान किया जाता है। विभिन्न प्रश्नों के प्राप्तांकों का योग करने पर कुल सम्प्राप्ति प्राप्तांक या बुद्धि प्राप्तांक ज्ञात हो जाता है। परन्तु सृजनात्मकता परीक्षण में ऐसा नहीं होता है। सृजनात्मक परीक्षण में किसी एक प्रश्न पर प्रयोज्य द्वारा अनेक प्रतिक्रियाएँ दी जा सकती हैं अतः प्रयोज्य को अधिकाधिक प्रतिक्रियाएँ देने के लिए प्रेरित किया जाता है। इन प्रतिक्रियाओं का अंकन सही-गलत के रूप में न होकर व्यक्ति की कल्पना शक्ति की उड़ान अथवा नवीन ढंग से सोचने की क्षमता के रूप में किया जाता है। एक ही प्रश्न पर दी गई प्रतिक्रियाओं के लिए विभिन्न दृष्टिकोण (प्रवाहता, विविधता, मौलिकता आदि) के आधार पर **तीन-चार** विभिन्न प्राप्तांक प्रदान किये जाते हैं। इसी प्रकार से किसी व्यक्ति के लिए कुल सृजनात्मकता प्राप्तांक के साथ-साथ कई अन्य प्राप्तांक (प्रवाहता, विविधता, मौलिकता आदि के लिए) प्राप्त होते हैं। किसी प्रश्न या कुल परीक्षण पर प्राप्त होने वाले ये प्राप्तांक एक ही प्रतिक्रिया/प्रतिक्रियाओं को भिन्न-भिन्न ढंग से **विश्लेषित** करने पर प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ माना कि किसी सृजनात्मकता परीक्षण के किसी प्रश्न पर किसी छात्र ने कुल चार प्रतिक्रियाएँ दीं, तो इनके आधार पर उसे प्रवाहता के लिए 4. विविधता के लिए 2 तथा मौलिकता के लिए 3 अंक मिल सकते हैं। स्पष्ट है कि अंक देते समय प्रथम बार प्रतिक्रियाओं की संख्या देखी गई है, द्वितीय बार प्रतिक्रियाओं की प्रकृति के प्रकार को देखा गया है तथा तीसरी बार प्रतिक्रियाओं की दुर्लभता को ध्यान में रखा गया है। तीनों प्राप्तांकों का योग उस प्रश्न पर **कुल सृजनात्मकता** का प्राप्तांक होगा। निःसन्देह किसी प्रश्न के लिए कुल सृजनात्मकता प्राप्तांक व्यक्ति की सामूहिक सृजनात्मकता (Global Creativity) को इंगित करेगा। परन्तु इसके आधार पर प्रश्न पर व्यक्ति द्वारा दी गई प्रतिक्रियाओं में प्रवाहता, या मौलिकता आदि के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट ज्ञान नहीं होता है, जबकि विभिन्न प्रतिक्रियाओं का अंकन इन्हीं आधार पर करना होता है। अतः कुल सृजनात्मकता प्राप्तांकों की सहायता से ही **पद विश्लेषण** करके प्रश्नों का चयन करना वांछित प्रतीत नहीं होता है।

यह कहा जा सकता है कि सम्प्राप्ति या बुद्धि परीक्षणों में भी विमीय प्राप्तांक प्राप्त किये जाते हैं जिनका योग करने पर कुल सम्प्राप्ति या बुद्धि प्राप्तांक ज्ञात होते हैं। परन्तु इन परीक्षणों तथा सृजनात्मकता परीक्षण में प्राप्त विमीय प्राप्तांकों की प्रकृति पर्याप्त भिन्न होती है। किसी सम्प्राप्ति या बुद्धि परीक्षण में पाठ्यवस्तु (Content) को कुछ भागों में विभक्त करके विमायें बनाई जाती हैं तथा कोई भी प्रश्न केवल एक ही विमा में आ सकता है। किसी प्रश्न पर छात्र को केवल एक ही प्राप्तांक प्रदान किया जाता है जो केवल उसी विमा के कुल प्राप्तांक में योगदान करता है, किसी अन्य विमा में उसका कोई योगदान नहीं होता है। स्पष्टतः ऐसी स्थिति में विमीय प्राप्तांक परस्पर पूर्णतः स्वतन्त्र होते हैं। इसके विपरीत सृजनात्मकता परीक्षण में विमाएँ पाठ्यवस्तु के विभाजन पर आधारित न होकर

नोट

प्रक्रियाओं का अंकन भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से करने के आधार पर निर्धारित की जाती है। प्रत्येक प्रश्न के लिए दी गई प्रतिक्रियाएँ सभी विमाओं के लिए प्राप्तांक प्रदान करती हैं। परिणामत: विमीय प्राप्तांकों का योग करके कुल सृजनात्मकता ज्ञात करना व्यावहारिक दृष्टि से उचित हो सकता है, परन्तु पद विश्लेषण के लिए सांख्यिकीय दृष्टिकोण से उचित स्वीकार करना कठिन है। सृजनात्मकता परीक्षण के पद विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य ऐसे प्रश्न छाँटना होना चाहिये जो व्यक्ति की प्रवाहता, विविधता, मौलिकता आदि का अधिकाधिक प्रस्फुटन (Manifestation) करने में समर्थ हों। इसके लिए पद विश्लेषण की किसी अन्य व विशिष्टि विधि का अनुसरण करना होगा। दूसरे शब्दों में, या तो सृजनात्मकता परीक्षण पर प्रवाह, विविधता, मौलिकता आदि के लिए अलग-अलग प्राप्तांक न प्राप्त करके कुल प्राप्तांक (Total Score) को प्राप्त किया जाये अथवा विभिन्न विमीय प्राप्तांकों को दृष्टिगत रखकर ही पद विश्लेषण किया जाये। यदि परीक्षण पर केवल कुल सृजनात्मकता प्राप्तांक (Total retivity Score) ही प्राप्त करने होते हैं तब तो सामान्य प्रविधियों से पद वैधता या पद विभेदकता ज्ञात की जा सकती है तथा अधिक पद वैधता या विभेदकता वाले प्रश्नों को परीक्षण के अन्तिम प्रारूप में सम्मिलित किया जा सकता है।

सृजनात्मकता की विभिन्न विमाओं यथा प्रवाह, विविधता, मौलिकता आदि पर प्राप्तांक प्राप्त करने के निमित्त बनाये जाने वाले परीक्षणों का पद विश्लेषण करने के लिए किन्हीं विशिष्ट प्रविधियों को प्रयोग करना होगा। इसके लिए दो विकल्प हो सकते हैं। परीक्षण निर्माण के परम्परागत चिन्तन के अनुरूप प्रथम विकल्प के अन्तर्गत प्रत्येक प्रश्न की पद वैधता या पद विभेदकता विभिन्न विमाओं के लिए अलग-अलग ज्ञात करके ऐसे प्रश्नों का चयन किया जा सकता है जो सभी विमाओं के सन्दर्भ में सार्थक पर वैधता या विभेदकता रखते हों। स्पष्टत: तब एक ही प्रश्न के लिए कई पद वैधता या विभेदकता गुणांक (सृजनात्मकता की प्रत्येक विमा के लिए एक-एक) ज्ञात करने होंगे तथा उन सभी गुणांकों को दृष्टिगत रखकर ही पदों का चयन करना होगा। विभिन्न विमाओं के लिए अलग-अलग पद-विश्लेषण करके पद वैधता या विभेदकता ज्ञात करने की यह विधि समय व श्रम की दृष्टि से कुछ कठिन जान पड़ती है।

विभिन्न विमाओं की प्रकृति को देखते हुए कहा जा सकता है कि सृजनात्मकता परीक्षण का उद्देश्य व्यक्ति में छिपी सृजनात्मकता को उद्वेलित करके सामने लाना है जिससे व्यक्ति के चिन्तन की प्रवाहता विविधता, मौलिकता आदि का मापन किया जा सके। क्योंकि किसी प्रश्न पर व्यक्ति के द्वारा दी गई प्रतिक्रियाएँ सही अथवा गलत नहीं होती हैं, इसलिए दो व्यक्तियों के द्वारा समान संख्या में प्रतिक्रियाएँ देने के बावजूद उन दोनों के विभिन्न विमाओं पर तथा कुल सृजनात्मकता प्राप्तांक भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। इसी प्रकार से दो व्यक्तियों के द्वारा असमान संख्या में दी गई प्रतिक्रियाओं के बावजूद वे एक समान प्राप्तांक प्राप्त कर सकते हैं ऐसी स्थिति में लेखक के मतानुसार पद विश्लेषण के लिए पद वैधता या विभेदकता ज्ञात करने के समय प्रश्नों के चयन का एक मात्र आधार प्रश्नों के द्वारा प्रवाहता, मौलिकता, विविधता आदि चिन्तन योग्यताओं को उद्वेलित करने की क्षमता ही होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, जो प्रश्न व्यक्ति की सृजनात्मक चिन्तन योग्यताओं यथा प्रवाह, विविधता, मौलिकता आदि के प्रस्फुटन (Manifestation) में अधिक समर्थ हों, उन्हें ही सृजनात्मकता के मापन के लिए बनाये जा रहे परीक्षण में सम्मिलित किया जाना चाहिए। नि:सन्देह किसी प्रश्न पर व्यक्तियों के किसी बड़े समूह के द्वारा सृजनात्मकता की विभिन्न विमाओं पर प्राप्त अंकों के मध्यमान उस प्रश्न की सृजनात्मक योग्यताओं को प्रस्फुटित करने की क्षमता को इंगित करेंगे। किसी प्रश्न पर प्रवाह, विविधता, मौलिकता आदि के मध्यमान अधिक होने का अर्थ है कि प्रश्न इन विमाओं को अधिक मात्रा में प्रस्फुटित करने में समर्थ रहा है।

क्या आप जानते हैं किसी भी योग्यता के मापन का उद्देश्य व्यक्तिगत विभिन्नताओं को जानना भी है, इसलिए सृजनात्मकता परीक्षण में ऐसे ही प्रश्न रखे जाने चाहिए जो व्यक्तियों में अधिक विभेद भी कर सकें।

नोट

किसी प्रश्न पर व्यक्तियों के द्वारा विमीय प्राप्तांकों के विस्तार या मानक विचलन उस पद की विभिन्न विमाओं पर व्यक्तियों में विभेद की क्षमता के परिचायक होंगे। किसी प्रश्न पर किसी विमीय प्राप्तांकों के मानक विचलन का अधिक होना, उस विमा के प्राप्तांकों के लिए समूह की विषमता (Hetrogenety) को इंगित करेगा। स्पष्ट है कि किसी प्रश्न पर प्रवाह, विविधता, मौलिकता आदि प्राप्तांकों के मानक विचलन अधिक होने का तात्पर्य प्रश्न के द्वारा इन योग्यताओं पर 'व्यक्तियों' में अधिक विभेद करने में समर्थ होना है। अत: सृजनात्मकता परीक्षण में केवल ऐसे प्रश्न रखे जाने चाहिए जिनके लिए विभिन्न विमीय प्राप्तांकों के मध्यमान तथा मानक विचलन अधिक हों। ऐसे प्रश्न व्यक्तियों की सृजनात्मक योग्यताओं को अधिक मात्रा में प्रस्फुटित होने के अवसर प्रदान करने के साथ-साथ व्यक्तियों में विभिन्न सृजनात्मकता योग्यताओं के सन्दर्भ में अधिक विभेद भी कर सकेंगे। अत: निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सृजनात्मकता परीक्षण का पद विश्लेषण करते समय पहले विभिन्न प्रश्नों के लिए विभिन्न विमाओं पर प्राप्तांक प्राप्त कर लेने चाहिए। फिर विभिन्न विमाओं के लिए मानक विचलन ज्ञात कर लेने चाहिए। तत्पश्चात् ऐसे प्रश्नों का चयन करना चाहिए जिनके लिए सभी विमाओं पर मध्यमान तथा मानक विचलन अन्य प्रश्नों से अधिक हों।

21.6 कतिपय सृजनात्मकता परीक्षण (Some Tests of Creativity)

जैसी कि पहले चर्चा की जा चुकी है कि सृजनात्मकता के मापन के लिए अनेक परीक्षणों का निर्माण तथा प्रमापीकरण किया जा चुका है। पाठकों की जानकारी के लिए कुछ प्रमुख परीक्षणों का संक्षिप्त वर्णन आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. गिलफोर्ड व मेरीफील्ड का कालेज छात्रों के लिए सृजनात्मकता परीक्षण

(Guilford and Merrifield's Creativity Test for College Students)

गिलफोर्ड तथा मेरीफील्ड के अनुसार सृजनात्मक चिन्तन में गैर परम्परागत उत्पादन (Divergent Production) रूपान्तरण (Transformation) तथा पुन: पारिभाषीकरण (Re-definition) की योग्यताएँ निहित होती हैं। उन्होंने कालेज छात्रों की सृजनात्मकता का मापन करने के लिए एक परीक्षण का निर्माण किया, जिसमें निम्न छ: घटकों या कारकों को सम्मिलित किया–

(*i*) समस्या के प्रति संवेदनशीलता (Senstivity)

(*ii*) विविधता (Flexibility)

(*iii*) प्रवाह (Fluency)

(*iv*) मौलिकता (Originality)

(*v*) विस्तारण (Elaboration)

(*vi*) पुन: परिभाषीकरण (Re-definition)

2. टोरेन्स के सृजनात्मक चिन्तन के परीक्षण

(Torrance's Tests of Creative Thinking–TTCT)

टोरेन्स के द्वारा तैयार की गई इस परीक्षण श्रृंखला में दो परीक्षण हैं–प्रथम, शाब्दिक परीक्षण (Verbal Test) जिसे शब्दों के साथ सृजनात्मक चिन्तन (Thinking Creatively with Words) कहते हैं, तथा दूसरा, आकृतिक परीक्षण (Figural Test). जिसे चित्रों के साथ सृजनात्मक चिन्तन (Thinking Creatively with Figures) कहते हैं। इस परीक्षण श्रृंखला में निम्न चार प्रकार के कार्य सम्मिलित हैं–

नोट

(*i*) किसी चित्र के सम्बन्ध में अधिकाधिक प्रश्न करना।

(*ii*) किसी खिलौने में सुधार के लिए परिवर्तन सुझाना।

(*iii*) किसी सामान्य वस्तु के अधिकाधिक प्रयोग बताना।

(*iv*) किसी दी गई वक्रीय रेखा के चारों ओर कोई चित्र बनाना तथा चित्र को शीर्षक देना।

यह परीक्षण प्रवाह (fluency), विविधता (Flexibility), मौलिकता (Originality) तथा विस्तारण (Elaboration) नामक चार प्राप्तांक प्रदान करता है।

3. पासी का सृजनात्मकता परीक्षण (Passi's Tests of Creativity)

इन्दौर के प्रो.बी.के. पासी के द्वारा 1972 में निर्मित इस सृजनात्मकता परीक्षण में निम्नलिखित छः उपपरीक्षण सम्मिलित हैं–

(*i*) समस्या देना परीक्षण (Seeing Problem Test)

(*ii*) असामान्य उपयोग परीक्षण (Unusual Uses Test)

(*iii*) परिणाम परीक्षण (Consequences Test)

(*iv*) जिज्ञासा परीक्षण (Test of Inquisitiveness)

(*v*) वर्ग पहेली परीक्षण (Square Puzzle Test)

(*vi*) ब्लाक परीक्षण (Blocks Test)

स्पष्ट है कि इस परीक्षण में शाब्दिक तथा अशाब्दिक दोनों ही प्रकार के कार्य सम्मिलित किये गये हैं। परीक्षण पर कुल सृजनात्मकता प्राप्तांक के साथ-साथ चौदह अन्य विमीय प्राप्तांक भी प्राप्त होते हैं। यद्यपि इस परीक्षण की परीक्षण निर्देशिका (Manual) अंग्रेजी भाषा में है परन्तु परीक्षण पुस्तिकाएँ हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में उपलब्ध है।

टास्क इस इकाई में दिए गए सृजनात्मक परीक्षणों में से आप किसे प्रभावशाली मानते हैं? और क्यों?

4. बाक़र मेंहदी के सृजनात्मक चिन्तन परीक्षण (Baqer Mehdi's Tests of Creative Thinking)

अलीगढ़ के प्रो. बाक़र मेंहदी के द्वारा सृजनात्मक चिन्तन की इस परीक्षण श्रृंखला में दो परीक्षण–(*i*) सृजनात्मक चिन्तन का शाब्दिक परीक्षण (Verbal Test of Creative Thinking) तथा (*ii*) सृजनात्मक चिन्तन चित्रों द्वारा (Thinking Creatively with Figures) हैं । पहले परीक्षण, जो कि **शाब्दिक परीक्षण** है, में निम्न चार कार्य सम्पादित किये गये हैं–

(*i*) यदि ऐसा हो जाये तो (Consequences Test)

(*ii*) वस्तुओं के नये-नये प्रयोग (Unusual Uses Test)

(*iii*) नये-सम्बन्ध पता लगाना (New Relationship Test)

(*iv*) वस्तुओं को मनोरंजक बनाना (Product Improvement Test)

इस परीक्षण के द्वारा सृजनात्मकता के तीन कारकों यथा प्रवाह (Fluency) विविधता (Flexibility) तथा मौलिकता (Originality) का मापन होता है।

बाक़र मेंहदी द्वारा निर्मित दूसरे परीक्षण, जो कि **अशाब्दिक परीक्षण** हैं, के अन्तर्गत निम्नांकित तीन कार्य सम्मिलित किये गये हैं– नोट

(*i*) चित्र बनाओ

(*ii*) चित्र पूर्ति व शीर्षक बताओ

(*iii*) त्रिभुजाकार व अण्डाकार आकृतियाँ

इस परीक्षण के द्वारा सृजनात्मकता के विस्तारण (Elaboration) तथा मौलिकता (Originality) नामक दो कारकों का मापन होता है।

21.7 सारांश (Summary)

- वैज्ञानिक, तकनीकी तथा औद्योगिक विकास के आधुनिक युग में नित प्रतिदिन नूतन आविष्कार हो रहे हैं। इनमें से अधिकांश अविष्कारों के पीछे जहाँ वैज्ञानिकों का अथक प्रयास छिपा है वहीं उनकी सृजनात्मकता का भी कम योगदान नहीं है। पहले यह माना जाता था कि केवल लेखक, कवि, चित्रकार, संगीतकार आदि व्यक्ति ही सृजनात्मक होत हैं परन्तु अब माना जाने लगा है कि मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति हो सकती है। वास्तव में संसार के समस्त प्राणियों में सृजनात्मकता पाई जाती है–किसी में कम मात्रा में सृजनात्मकता होती है तथा किसी में अधिक मात्रा में सृजनात्मकता होती है मानवीय जीवन को सुखमय बनाने के लिए नवीन आविष्कार करने तथा समस्याओं का समाधान खोजने के कार्य में सृजनात्मकता महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।
- ड्रैवहल के शब्दों में, "सृजनात्मकता वह मानवीय योग्यता है जिसके द्वारा वह किसी रचना या विचारों को प्रस्तुत करता है।"
- सृजनात्कमता का सम्बन्ध प्रमुख रूप से मौलिकता या नवीनता से है। सृजनात्मकता समस्या पर नये ढंग से साचने तथा समाधान खोजने के प्रयास से परिलक्षित होती है दूसरे शब्दों में सृजनात्मकता वह योग्यता है जो व्यक्ति को किसी समस्या का विद्वतापूर्ण समाधान खोजने के लिए नवीन ढंग से सोचने व विचार करने में समर्थ बनाती है। प्रचलित ढंग से हटकर किसी नये ढंग से चिन्तन करने तथा कार्य करने की योग्यता ही सृजनात्मकता है।
- यद्यपि सृजनात्मकता वास्तव में एक मानसिक योग्यता ही है, फिर भी अन्य मानसिक योग्यताओं के मापन की तुलना में सृजनात्मकता का मापन एक जटिल कार्य है। सृजनात्मकता के अन्तर्गत अनूठे, अस्पष्ट, विस्तृत तथा जटिल कार्यों को करने की अनेकों विभिन्न क्षमतायें समाविष्ट रहती हैं इसीलिए सृजनात्मकता का मापन करना मुश्किल कार्य होता है।
- सृजनात्मकता के किसी भी कारक या घटक को मापने के लिए परीक्षण तैयार करने से पूर्व यह आवश्यक है कि उस कारक या घटक को मानव व्यवहार के रूप में स्पष्ट व वस्तुनिष्ठ ढंग से परिभाषित किया जा सके।
- यद्यपि सृजनात्मकता के मापन के लिए अनेकों परीक्षणों का निर्माण किया जा चुका है, परन्तु इन सृजनात्मकता परीक्षणों की अपनी व्यावहारिक उपयोगिता सिद्ध नहीं हो सकी है। अधिकांश परीक्षणों की विश्वसनीयता संदिग्ध है।
- विभिन्न विमाओं की प्रकृति को देखते हुए कहा जा सकता है कि सृजनात्मकता परीक्षण का उद्देश्य व्यक्ति में छिपी सृजनात्मकता को उद्वेलित करके सामने लाना है जिससे व्यक्ति के चिन्तन की प्रवाहता विविधता,

नोट

मौलिकता आदि का मापन किया जा सके। क्योंकि किसी प्रश्न पर व्यक्ति के द्वारा दी गई प्रतिक्रियाएँ सही अथवा गलत नहीं होती है।

- सृजनात्मकता के मापन के लिए अनेक परीक्षणों का निर्माण तथा प्रमापीकरण किया जा चुका है। कुछ सृजनात्मक परीक्षण इस प्रकार हैं–
- गिलफोर्ड व मेरीफील्ड का कालेज छात्रों के लिए सृजनात्मकता परीक्षण, टोरेन्स के सृजनात्मक चिन्तन के परीक्षण, पासी का सृजनात्मकता परीक्षण, बाक़र मेंहदी के सृजनात्मक चिन्तन परीक्षण इत्यादि।

21.8 शब्दकोश (Keywords)

1. **परार्थोन्मुख**–उपकार भावना की ओर उन्मुख
2. **विमा**–आयाम

21.9 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. सृजनात्मकता का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके तत्वों पर प्रकाश डालिए।
2. सृजनात्मक व्यक्तित्व की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. सृजनात्मकता परीक्षण निर्माण प्रक्रिया समझाइए।
4. पासी एवं बाक़र मेंहदी के सृजनात्मक परीक्षण समझाइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (ग) 2. (ख) 3. (क) 4. (ख)

21.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.एच. सिन्हा और रचना शर्मा, अटलांटिक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।*
2. बच्चों में शिक्षा का महत्त्व एवं जानकारियाँ–*सीमा चोपड़ा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
3. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
4. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 22: अभिवृत्ति (Attitude)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

22.1 अभिवृत्तियों का अर्थ (Meaning of Attitudes)

22.2 अभिवृत्तियों का मापन (Measurement of Attitudes)

22.3 अभिवृत्ति मापनी का निर्माण (Construction of Attitude Scale)

22.4 योग निर्धारण विधि (Method of Summated Ratings)

22.5 अन्यविधियाँ (Other Methods)

22.6 सारांश (Summary)

22.7 शब्दकोश (Keywords)

22.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

22.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अभिवृत्ति का अर्थ एवं उसकी मापन प्रक्रिया को समझने में।
- अभिवृत्ति की निर्माण प्रक्रिया को समझने में।
- योग-निर्धारण एवं अन्य विधियों को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

मनोवृत्ति किसी व्यक्ति, वस्तु या घटना के प्रति एक खास ढंग से अनुक्रिया करने की एक मानसिक तत्परता (Mental readiness) होती है। मनोवृत्ति में, व्यक्ति में अनुकूलता-प्रतिकूलता (favourableness-unfavourableness) की विमा (dimension) पर किसी वस्तु, वस्तु या घटना के प्रति अनुक्रिया करने की तत्परता पाई जाती है। जिस छात्र की मनोवृत्ति उदाहरणस्वरूप, कला (art) के प्रति अनुकूल (favourable) होती है, तो उनकी मनोवृत्ति कलाकारों, रंग (colour), चित्रकारी (paintings), अजायबघर (museums) आदि के प्रति भी अनुकूल होगी। उसी तरह यदि किसी छात्र की मनोवृत्ति कला के प्रति प्रतिकूल होगी, तो वह कला के विभिन्न पहलुओं को भी तुच्छ बताएगा और उसके प्रति अपनी नापसंदीदगी (disliking) व्यक्त करेगा। किसी भी

नोट

मनोवृत्ति में तीन घटक (components) होते हैं–संज्ञानात्मक घटक (cognitive component), भावात्मक घटक (affective component) तथा व्यवहारात्मक घटक (behavioural component)। संज्ञानात्मक घटक में व्यक्ति की मनोवृत्ति वस्तु (attitude object) के प्रति ज्ञान (knowledge) तथा उसका अपना विश्वास (faith) आदि सम्मिलित होता है। भावात्मक घटक में व्यक्ति के मन में मनोवृत्ति वस्तु के प्रति एक सुखद (pleasant) या दुखद (unpleasant) भाव होता है तथा व्यवहारात्मक घटक में व्यक्ति के मन में अपनी मनोवृत्ति वस्तु के प्रति एक प्रतिकूल या अनुकूल व्यवहार करने की तत्परता संयोजित होती है। मनोवृत्ति की एक प्रमुख विशेषता (characteristic) यह है कि मनोवृत्ति अर्जित (acquired) होती है और यह कक्षा में विभिन्न तरह के शिक्षण (learning) को प्रभावित करती है।

शिक्षण परिस्थिति में मनोवृत्ति में परिवर्तन कैसे लाया जाए?

(How to change attitudes in learning situation?)

मनोवृत्ति जब एक बार निर्मित (formed) हो जाती है, तो उसमें परिवर्तन लाना थोड़ा कठिन कार्य होता है; क्योंकि मनोवृत्ति व्यक्ति की आवश्यकता, भाव तथा आत्म-संप्रत्यय (self-concept) से संबंधित होती है। मनोवृत्ति में परिवर्तन का अर्थ व्यक्ति के भाव, आवश्यकता एवं आत्म-संप्रत्यय में परिवर्तन है। शायद इन्हीं कारणों से मनोवृत्ति परिवर्तन साधारणत: एक कठिन कार्य होता है। फिर भी, शिक्षण परिस्थितियों में शिक्षकों को ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता है। जिसमें उनके लिए छात्रों की मनोवृत्ति में परिवर्तन कर उसकी जगह एक अधिक स्वस्थकर एवं शिक्षामुखी (education-oriented) मनोवृत्ति विकसित करना अनिवार्य होता है। खासकर, कभी-कभी देखा गया है कि किसी-किसी छात्र की मनोवृत्ति शिक्षा के प्रति या अमुक विषय (subject) के प्रति कुछ कारकों से प्रतिकूल हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में छात्र की अभिरुचि शिक्षा में समाप्त होने लगती है और धीरे-धीरे वह एक समस्या छात्र (problem student) बनने लगता है। ऐसी परिस्थितियों का सामना करने के लिए शिक्षक को उन प्रतिविधियों का ज्ञान होना आवश्यक एवं अनिवार्य है जिनके सहारे वे छात्रों की ऐसी प्रतिकूल मनोवृत्तियों में परिवर्तन ला सकें। कुछ ऐसी ही प्रविधियों को आगे समझाया जाएगा।

1. शिक्षक जब भी कोई मनोवृत्ति परिवर्तन कार्यक्रम प्रारंभ करें तो सबसे पहला कदम उनके लिए यह होना चाहिए कि छात्रों की वर्तमान मनोवृत्ति (existing attitude) विभिन्न विषयों (issues) के प्रति कैसी है, इसका पता लगा लें।
2. मनोवृत्ति का संबंध चूँकि व्यक्ति के आत्म-संप्रत्यय (self-concept) तथा व्यक्तिगत तादात्म्य (personal identification) से अधिक होता है, अत: मनोवृत्ति में परिवर्तन सामूहिक प्रक्रियाओं (group processes) द्वारा तुलनात्मक रूप से अधिक होता है। वाइडर (Wieder, 1954) ने एक अध्ययन कर इस तथ्य की पुष्टि की है। इन्होंने अपने इस अध्ययन में पाया कि जब छात्र एक समूह में कार्य करते थे और विभिन्न मुद्दों (issues) पर भूमिका-निर्वाह (role playing) किया करते थे तो उन मुद्दों के प्रति उनकी मनोवृत्ति उस परिस्थिति की अपेक्षा अधिक परिवर्तित हुई जब छात्र कक्षा में परंपरागत भाषण-विवेचना (lecture- discussion) द्वारा मुद्दों पर विचार करते थे। अत: स्कूल में मनोवृत्ति परिवर्तन का कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि उसमें छात्रों की सामूहिक प्रक्रियाओं (group processes) का समावेश अधिक-से-अधिक हो।
3. मनोवृत्ति परिवर्तन में आँखों देखी या प्रत्यक्ष अनुभूतियाँ किताब पढ़कर प्राप्त अनुभूतियों या कुछ कह-सुनकर प्राप्त अनुभूतियों से अधिक प्रभावकारी (effective) होती हैं। एक अध्ययन जिसे ब्लेयर, जोन्स एवं सिम्पसन (Blair, Jones and Simpson, 1962) ने किया, में पाया कि जब अपराधी छात्रों को पुलिस द्वारा एक खेलकूद-संबंधी कार्यक्रम में रेफरी (refree) तथा प्रशिक्षक (instructor) बना दिया गया, तो पुलिस के प्रति उनके मन में घृणा और अविश्वास की मनोवृत्ति में परिवर्तन हो गया।

नोट

4. छात्रों के मनोवृत्ति परिवर्तन कार्यक्रम में शिक्षकों को चाहिए कि वे इस ढंग से तथ्य, घटना, कहानी आदि को छात्र के सामने प्रस्तुत करें कि उससे मनोवृत्ति के भावात्मक घटक (affective component) पर सीधा प्रभाव पड़े। जबतक छात्र में पहले के भाव (feeling) की जगह एक नया भाव उत्पन्न नहीं किया जाता है, तबतक मनोवृत्ति परिवर्तन के कार्यक्रम को सफलता नहीं मिल सकती है।
5. मनोवृत्ति परिवर्तन में स्वयं शिक्षक एक विशेषज्ञ होने के नाते महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। वे छात्रों को उन प्रचारों से आगाह कर सकते हैं जिनसे उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन प्रतिकूल दिशा में हो सकता है। अत: शिक्षक छात्रों को विशेष सुझाव देकर उनकी मनोवृत्ति को प्रतिकूल दिशा में बदलने से रोक सकते हैं तथा अनुकूल दिशा में परिवर्तित होने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।
6. बालक उन मनोवृत्तियाँ को तेजी से स्वीकार कर लेते हैं जिन्हें वे यह समझते हैं कि वे उनके द्वारा किए गए मूल चिन्तन (original thinking) के परिणाम हैं। अत: शिक्षकों को चाहिए कि वे मनोवृत्ति परिवर्तन के कार्यक्रम को इस ढंग से एवं इस चतुराई से संचालित करें कि उनके द्वारा प्रस्तावित सुझाव को ही छात्र अपने मूल चिन्तन (original thinking) का परिणाम समझने लगें।
7. स्कूल में मनोवृत्ति परिवर्तन के कार्यक्रम में शिक्षकों को छात्रों के अभिभावक एवं माता-पिता को भी आमंत्रित करना चाहिए; क्योंकि घर जाने पर यदि माता-पिता शिक्षकों द्वारा मनोवृत्ति परिवर्तन के सुझाव की संपुष्टि न कर यदि विरोध करते हैं और उसे फालतू बकवास बताते हैं, तो मनोवृत्ति परिवर्तन का उद्देश्य पूरा नहीं होगा। मनोवृत्ति परिवर्तन के कार्यक्रम में यदि माता-पिता तथा अभिभावक भाग लेते हैं और उनकी उपस्थिति में शिक्षक कोई सुझाव देते हैं, तो इससे मनोवृत्ति परिवर्तन कार्यक्रम की सफलता अधिक होगी।

यदि उपर्युक्त तथ्यों को शिक्षक मनोवृत्ति परिवर्तन कार्यक्रम में सम्मिलित करते हैं, तो इससे उन्हें छात्रों की मनोवृत्ति को वांछित दिशा में परिवर्तित करने में काफी सफलता मिलेगी।

अवधान, अभिरुचि एवं मनोवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

(A Comparative Study of Attention, Interest and Attitude)

अवधान (attention), अभिरुचि एवं मनोवृत्ति एक-दूसरे से काफी संबंधित हैं। शिक्षा के दृष्टिकोण से इन तीनों में दो बिन्दुओं पर समानता (Similarity) है। पहला बिन्दु यह है कि ये तीनों ही मानसिक प्रक्रियाएँ (mental processes) हैं तथा दूसरा बिन्दु यह है कि इन तीनों में प्रेरणात्मक बल (motivational force) होता है।

अवधान (attention) का संबंध अभिरुचि (interest) से गहरा है। जिस वस्तु, व्यक्ति या घटना में हमारी अभिरुचि रहती है, उस ओर हमारा ध्यान जाता है तथा जिस वस्तु, व्यक्ति या घटना में हमारी अभिरुचि नहीं होती है, उस ओर हमारा ध्यान बिल्कुल ही नहीं जाता है। यही कारण है कि इवान्स[1] ने कहा है, "किसी खास समस्या या परिस्थिति पर ध्यान दिए रहना ही अभिरुचि है।" अत:, यदि यह कहा जाए कि ध्यान अभिरुचि का ही एक व्यक्त रूप है एवं अभिरुचि ध्यान या अवधान का एक अव्यक्त रूप है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। अत: ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू के समान हैं। फिर भी इन दोनों में निम्नांकित दो अन्तर हैं–

(*i*) अवधान का संबंध किसी बाह्य वस्तु से होता है जबकि अभिरुचि का संबंध बाह्य वस्तु से भी हो सकता है तथा स्वयं व्यक्ति का अपने-आप से भी हो सकता है।

(*ii*) व्यक्ति जिस विषय की ओर ध्यान देता है, उसमें उसकी अभिरुचि हो ही, यह आवश्यक नहीं है। कभी-कभी अभिरुचि नहीं रहने पर भी व्यक्ति को किसी वस्तु या घटना की ओर अन्य कई कारणों से ध्यान देना

1. The act of maintaining attention on a particular problem or situation, is called interest. –Evans: Pychology, 1978, p. 178

नोट

पड़ता है। जैसे कुछ छात्र पढ़ाई की ओर ध्यान अपनी रुचि के कारण नहीं बल्कि अभिभावक या माता-पिता के डर से देते हैं। स्पष्ट हुआ कि हर ध्यान की प्रक्रिया में अभिरुचि की प्रक्रिया शामिल ही हो, यह आवश्यक नहीं है।

अभिरुचि (interest) तथा मनोवृत्ति भी एक दूसरे से काफी संबंधित हैं। ये दोनों ही अर्जित प्रक्रियाएँ हैं। सामान्यत: यह देखा गया है कि छात्रों को जिस कार्य या विषय में अभिरुचि होती है, उसके प्रति उनकी मनोवृत्ति भी अनुकूल (favourable) होती है और जिस विषय या कार्य में छात्रों की अभिरुचि नहीं होती है, उसके प्रति उनकी मनोवृत्ति भी प्रतिकूल होती है। इन दोनों में फिर भी अन्तर है। मनोवृत्ति अनुकूल (favourable) या प्रतिकूल (unfavourable) कुछ भी हो सकती है परन्तु अभिरुचि के साथ ऐसी बात नहीं है। अभिरुचि केवल मात्रा (degree) से भिन्न होती है। किसी कार्य या घटना में छात्र की अभिरुचि कम या अधिक हो सकती है और अभिरुचि हमेशा सकारात्मक ही होती है नकारात्मक नहीं। दूसरा अंतर यह बताया गया है कि मनोवृत्ति में परिवर्तन थोड़ा कठिन होता है, परन्तु अभिरुचि में परिवर्तन उतना कठिन नहीं होता। अगर उपयुक्त प्रतिस्थापन (substitute) मिल जाता है, तो व्यक्ति की अभिरुचि कभी-कभी अचानक भी परिवर्तित हो जाती है। तीसरा अन्तर यह बताया गया है कि मनोवृत्ति में अभिरुचि की तुलना में प्रेरणात्मक बल (motivational force) अधिक होता है तथा यह बल तुलनात्मक रूप से अधिक टिकाऊ (stable) भी होता है।

22.1 अभिवृत्ति का अर्थ (Meaning of Attitudes)

व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष उसकी अभिवृत्तियाँ हैं। अभिवृत्ति वास्तव में एक मनो-सामाजिक प्रत्यय (Pycho-Social Concept) है जो विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्ति के द्वारा किये जाने वाले व्यवहार की प्रवृत्ति को बताता है। विभिन्न वस्तुओं, व्यक्तियों, संस्थाओं, स्थितियों, योजनाओं आदि के प्रति व्यक्ति विशेष के विचार व पूर्व धारणाएँ ही उस व्यक्ति की अभिवृत्तियों का निर्धारण करते हैं। अभिवृत्तियों की सहायता से व्यक्ति के व्यवहार का पूर्व आंकलन व विश्लेषण करना संभव होता है। मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन में अभिवृत्तियों को एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। यही कारण है कि अभिवृत्तियों के ज्ञान, तुलना व विभिन्न चरों से उनके संबंधों का अध्ययन करना मनोवैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों तथा शिक्षाविदों के लिए सदैव ही एक महत्त्वपूर्ण व रुचिकर विषय रहा है। अभिवृत्तियों के अध्ययन के लिए जहाँ एक ओर उनके सैद्धांतिक विवेचन की आवश्यकता होती है, वहीं दूसरी ओर उनके मापन का भी प्रश्न उठता है। नि:संदेह अभिवृत्तियों के मापन का अपना एक विशेष महत्त्व है। प्रस्तुत अध्याय में अभिवृत्तियों के मापन के विभिन्न पक्षों पर विचार किया गया है।

अभिवृत्ति क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देना व्यक्तित्व के अर्थ को स्पष्ट करने की तरह से एक कठिन कार्य है। अभिवृत्ति के मनोभावों (Feelings) अथवा विश्वासों (Beliefs) को इंगित करती हैं। ये बताती हैं कि व्यक्ति क्या महसूस करता है अथवा उसके पूर्व विश्वास क्या हैं? अभिव्यक्ति से अभिप्राय: व्यक्ति के उस दृष्टिकोण से है, जिसके कारण वह किन्हीं वस्तुओं, व्यक्तियों, संस्थानों, परिस्थितियों, योजनाओं आदि के प्रति किसी विशेष प्रकार का व्यवहार करता है। दूसरे शब्दों में अभिवृत्ति व्यक्ति के व्यक्तित्व की वे प्रवृत्तियाँ हैं, जो उसे किसी वस्तु, व्यक्ति आदि के संबंध में किसी विशिष्ट प्रकार के व्यवहार को प्रदर्शित करने का निर्णय लेने को प्रेरित करती है। अभिवृत्तियों का निर्माण व्यक्ति के द्वारा विगत में विभिन्न परिस्थितियों में अर्जित अनुभवों को सामान्यीकृत (Generalised) करने के फलस्वरूप होता है। अभिवृत्ति के निर्माण में व्यक्ति के व्यवहार के प्रत्यक्षात्मक, संवेगात्मक, प्रेरणात्मक तथा क्रियात्मक पक्ष निहित रहते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने 'अभिवृत्ति' शब्द को भिन्न-भिन्न ढंग से परिभाषित किया है।

थर्सटन एवं **चेव** के अनुसार अभिवृत्ति "किसी विशिष्ट प्रकरण के प्रति व्यक्ति की प्रवृत्तियों व भावनाओं पूर्वाग्रहों अथवा पक्षपातों, पूर्व निर्मित अभिप्रायों, विचारों, भय, दबावों तथा मान्यताओं का कुल योग है।"

नोट

रैमर्स, गेज तथा **रूमेल** के शब्दों में "अभिवृत्ति किसी मनोवैज्ञानिक वस्तु के प्रति, अनुभवों के द्वारा संगठित, ध नात्मक या ऋणात्मक प्रतिक्रिया करने की संवेगात्मक प्रवृत्ति है।"

गुड के अनुसार, "अभिवृत्ति किसी परिस्थिति, व्यक्ति या वस्तु के प्रति किसी विशेष ढंग से, किसी विशेष सघनता से प्रतिक्रिया करने की तत्परता है।"

थर्सटन के अनुसार, "अभिवृत्ति किसी मनोवैज्ञानिक वस्तु से संबंधित धनात्मक या ऋणात्मक प्रभाव की मात्रा है।"

फ्रीमैन के शब्दों में "अभिवृत्ति किन्हीं परिस्थितियों, व्यक्तियों या वस्तुओं के प्रति संगत ढंग से प्रतिक्रिया करने की स्वाभाविक तत्परता है, जिसे सीख लिया गया है तथा जो व्यक्ति विशेष के द्वारा प्रतिक्रिया करने का विशिष्ट ढंग बन गया है।"

उपरोक्त के अवलोकन से स्पष्ट है कि यद्यपि अभिवृत्तियों की विभिन्न परिभाषाओं में काफी भिन्नता दृष्टिगोचर होती है, फिर भी लगभग सभी परिभाषाएँ अभिवृत्ति के संबंध में निम्न कुछ विशेषताओं पर सहमत प्रतीत होती हैं–

1. अभिवृत्ति का संबंध किसी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, योजना आदि से होता है।
2. अभिवृत्ति धनात्मक/सकारात्मक (positive) भी हो सकती है। अथवा ऋणात्मक/नकारात्मक (negative) भी हो सकती है।
3. अभिवृत्ति अनुभवों के द्वारा विकसित होती है। दूसरे शब्दों में अभिवृत्ति की प्रकृति वातावरणजन्य होती है।
4. यद्यपि अभिवृत्ति पर्याप्त रूप से स्थाई प्रकृति की होती है, फिर भी समय-समय पर इनमें परिवर्तन संभव है।
5. अभिवृत्ति के विकास में प्रत्यक्षीकरण (perception) तथा संवेगात्मक (Emotional) कारकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।
6. अभिवृत्ति व्यक्तिगत होती है अर्थात् किसी मनोवैज्ञानिक वस्तु के प्रति विभिन्न व्यक्तियों की अभिवृत्ति में पर्याप्त अंतर हो सकता है।
7. विभिन्न वस्तुओं या व्यक्तियों के प्रति किसी एक ही व्यक्ति की अभिवृत्ति में भी पर्याप्त अंतर हो सकता है।
8. अभिवृत्ति सामान्य (किसी समूह के प्रति) भी हो सकती है तथा विशिष्ट (किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति) भी हो सकती है।
9. अभिवृत्ति व्यक्ति के व्यवहार को सार्थक रूप से प्रभावित करती है।
10. अभिवृत्तियाँ व्यक्ति के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों से संबंध रखती है।

अभिवृत्ति तथा अन्य प्रत्ययों में अन्तर (Difference Between Attitude and Other similar Concepts)

अभिप्रेरणा, अभिक्षमता, रुचि, मूल्य, विश्वास जैसे कुछ शब्दों को कभी-कभी कुछ व्यक्तियों के द्वारा भ्रमवश अभिवृत्ति के समानार्थक शब्दों के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, परन्तु वास्तव में ये शब्द अभिवृत्ति से पर्याप्त भिन्न अर्थ रखते हैं। इसलिए इन शब्दों तथा अभिवृत्ति शब्द के अर्थों के बीच अन्तर को स्पष्ट करना उचित ही होगा।

अभिवृत्ति तथा अभिप्रेरणा (Attitude and Motivation)

यद्यपि अभिवृत्ति तथा अभिप्रेरणा दोनों ही व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक हैं, फिर भी इन दोनों शब्दों में काफी अन्तर है। अभिप्रेरणा की तुलना में अभिवृत्ति अधिक स्थाई प्रकृति की होती है। अभिप्रेरणा तो किसी

नोट

समय या परिस्थिति विशेष में उत्पन्न होती है, जबकि अभिवृत्ति प्रायः लंबे समय तक विद्यमान रहती है। किसी अभाव या आवश्यकता के फलस्वरूप अभिप्रेरणा की उत्पत्ति होती है तथा अभाव के समाप्त हो जाने या आवश्यकता की पूर्ति हो जाने पर अभिप्रेरणा समाप्त हो जाती है। इसके विपरीत अभिवृत्ति व्यक्ति के स्वयं के अनुभवों पर आधारित होती है तथा अभाव के होने या न होने का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अभिप्रेरणा का संबंध क्रियात्मक पक्ष से अधिक होता है, जबकि अभिवृत्ति का संबंध ज्ञानात्मक व भावात्मक पक्षों से अधिक होता है। अभिप्रेरणा में वांछित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए क्रिया करने की प्रधानता होती है, जबकि अभिवृत्ति में अनुभवों को संगठित करने तथा उसके अनुसार कार्यों को करने में विचारों की प्रधानता रहती है। अभिवृत्ति का क्षेत्र अभिप्रेरणा की तुलना में अधिक व्यापक होता है। अभिवृत्तियों के निर्माण के पीछे अनेक अभिप्रेरणाएँ निहित हो सकती हैं।

अभिवृत्ति तथा मूल्य (Attitude and Value)

अभिवृत्ति तथा मूल्य दोनों ही शब्द किसी व्यक्ति के अन्य व्यक्तियों, वस्तुओं या परिस्थितियों से संबंधित मानसिक तत्वों को प्रकट करते हैं, परन्तु इन दोनों शब्दों में अंतर है। अभिवृत्ति आत्मगत होती है, जबकि मूल्य वस्तुगत होते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अभिवृत्ति के निर्धारण में व्यक्ति के 'स्व' का अधिक महत्त्व होता है, जबकि मूल्य के निर्धारण में संबंधित वस्तु या व्यक्ति का अधिक महत्त्व होता है। अभिवृत्ति किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति की जाने वाली प्रतिक्रिया प्रवृत्ति (Response Tendency) है। जब कोई अभिवृत्ति लक्ष्य बन जाती है, तो वह मूल्य का रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार से अभिवृत्ति मूल्य का आधार होती है।

अभिवृत्ति एवं विश्वास (Attitude and Belief)

अभिवृत्ति तथा विश्वास दोनों शब्द किसी व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति आदि के प्रति व्यक्ति की मनोस्थिति को निरूपित करते हैं, परन्तु ये दोनों शब्द भी परस्पर कुछ भिन्न अर्थ रखते हैं। विश्वास वास्तव में अभिवृत्ति का एक स्थायी तथा अभिव्यक्त रूप (Expressed Form) है। अभिवृत्तियों को प्रत्यक्ष रूप में अभिव्यक्त करना अत्यन्त कठिन कार्य है। व्यक्ति प्रायः अपनी अभिवृत्तियों को अपने विश्वासों के रूप में प्रदर्शित करता है।

अभिवृत्ति एवं रुचि (Attitude and Intrest)

अभिवृत्ति तथा रुचि दोनों ही मानव व्यक्तित्व के दो पहलू हैं, फिर भी इन दोनों शब्दों में अन्तर है। अभिवृत्ति धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों ही हो सकती है, जबकि रुचि केवल धनात्मक होती है। दूसरे शब्दों में अभिवृत्ति व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं की दोनों विमाओं–अनुकूल-प्रतिकूल, दुखान्त-सुखान्त, स्वीकृति-अस्वीकृति की ओर इंगित करती है, जबकि रुचि केवल एक ही विमा की ओर संकेत करती है। रुचि में व्यक्ति केवल उसी वस्तु के प्रति प्रतिक्रिया करता है, जिसे वह पसंद करता है, जो उसे सुख देती है, जो उसके अनुकूल है, अथवा जो उसके लिए लाभप्रद है। किसी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति में व्यक्ति की रुचि होने पर व्यक्ति उसके प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित कर लेता है। स्पष्ट है कि अभिवृत्ति रुचि से अधिक व्यापक होती है।

अभिवृत्ति एवं अभिक्षमता (Attitude and Aptitude)

अभिवृत्ति एवं अभिक्षमता दोनों एक-दूसरे से पर्याप्त भिन्नताएँ रखते हैं। अभिवृत्ति व्यक्ति का किसी वस्तु या व्यक्ति या परिस्थिति के प्रति एक विशिष्ट प्रकार का दृष्टिकोण है, जो उस वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति के प्रति व्यक्ति के अनुभवाधारित विचारों को इंगित करता है। इसके विपरीत अभिक्षमता व्यक्ति की वह मानसिक योग्यता है, जो किसी विशिष्ट क्षेत्र में उसकी सफलता की सम्भावना का संकेत करती है। अभिवृत्ति सदैव अर्जित होती है, जबकि अभिक्षमता का प्रस्फुटन व्यक्ति की जन्मजात योग्यता, वातावरण, शिक्षा तथा प्रशिक्षण की परस्पर अन्तर्क्रियाओं के

फलस्वरूप होता है तथा यह किसी विशिष्ट क्षेत्र में व्यक्ति की भावी सफलता की ओर संकेत करती है। स्पष्ट है कि अभिवृत्ति व्यक्ति के व्यक्तित्व का एक पक्ष है, जबकि अभिरुचि विशिष्ट प्रकार की मानसिक योग्यताएँ हैं।

नोट

टास्क अभिवृत्ति तथा रुचि में अंतर स्पष्ट कीजिए।

अभिवृत्ति एवं शील गुण (Attitude and Trait)

अभिवृत्ति तथा शील गुण में भी अन्तर है। शील गुण व्यक्तित्व की विशेषताओं को इंगित करने वाले विश्लेषणात्मक शब्द हैं, जबकि अभिवृत्तियाँ व्यक्ति के व्यवहार करने की प्रवृत्तियों को बताती है। अभिवृत्ति सकारात्मक या नकारात्मक दोनों ही प्रकार की हो सकती हैं, जबकि शील गुणों का इस तरह से वर्गीकरण उचित नहीं होता है। शील गुण अभिवृत्ति की अपेक्षा अधिक सामान्यीकृत होते हैं, जबकि अभिवृत्ति प्राय: विशिष्ट प्रकृति की होती है।

22.2 अभिवृत्तियों का मापन (Measurement of Attitudes)

नि:संदेह अभिवृत्तियों का सामाजिक विज्ञानों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा सार्थक स्थान है, यही कारण है कि मनोवैज्ञानिक, शिक्षाशास्त्री, प्रशासकगण, समाजशास्त्री आदि अभिवृत्तियों के मापन के प्रयास करते रहे हैं। अभिवृत्तियों की प्रकृति आन्तरिक होने के कारण इनका मापन करना सदैव ही कठिन समस्या रही है, फिर भी समय-समय पर आवश्यकताओं के अनुरूप अभिवृत्तियों के मापन के विभिन्न प्रयास मनोमितिकों के द्वारा किये जाते रहे हैं। अभिवृत्ति मापन के इतिहास के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि अभिवृत्तियों के मापन के प्रयास अपेक्षाकृत नवीन है। लगभग छ: दशक पूर्व ही अभिवृत्ति मापन के लिए विधिवत ढंग से परीक्षण बनाने की प्रविधियाँ विकसित की जा सकी थीं। इसके पूर्व तक साक्षात्कार तथा अवलोकन जैसी अपरिष्कृत विधियों की सहायता से ही अभिवृत्तियों का मापन करने का प्रयास किया जाता था। सन् 1927 में थर्सटन (Thurstone) ने तुलनात्मक निर्णय का नियम (Law of Comparative Judgement) का प्रतिपादन किया। इस नियम के प्रतिपादन ने अभिवृत्तियों को विधि वत ढंग से मापने का मार्ग प्रशस्त कर दिया तथा इस नियम के आधार पर अनेक मनोवैज्ञानिक परिमापन विधियाँ (Psychological Scaling Methods) विकसित की गयीं, जिनका प्रयोग आज भी अभिवृत्तियों को मापने के लिए किया जाता है। थर्सटन ने अपने तुलनात्मक निर्णय नियम का प्रयोग करते हुए सन् 1927 में युग्म-तुलनात्मक निर्णय विधि (Method of Paired Comparative Judgement) का विकास भी किया। दो वर्ष उपरान्त सन् 1929 में थर्सटन ने चेव के सहयोग से समदृष्टि अन्तर विधि (Method of Equal Appearing Interval) का प्रतिपादन किया। सन् 1932 में लिकर्ट ने योग निर्धारण विधि (Method of Summative Ratings) को विकसित किया। थर्सटन व चेव के द्वारा प्रस्तुत समदृष्टि अन्तर विधि तथा लिकर्ट के द्वारा प्रस्तुत योग निर्धारण विधि का वर्तमान समय में अभिवृत्ति मापन के लिए सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है तथा इन विधियों को अभिवृत्ति मापन के क्षेत्र में अमूल्य योगदान के रूप में स्वीकार किया जाता है। सफीर (Safeer) ने सन् 1937 में थर्सटन के द्वारा विकसित परन्तु अप्रकाशित एक विधि को क्रमबद्ध अन्तराल विधि (Method of Successive Intrval) के नाम से प्रस्तुत किया। गटमैन ने सन् 1945 में अभिवृत्ति मापन के लिए स्कैलोग्राम विधि (Scalogram Method) का प्रतिपादन किया। सन् 1948 में एडवर्डस तथा किलपैट्रिक ने मापनी भेदक विधि (Method of Scale Discrimination) का प्रतिपादन किया। आसगुड ने सन् 1957 में विभेद शाब्दिक विधि (Sementic Diffrential Method) को विकसित किया। रेमर्स ने सन् 1934 में एक ही वर्ग की अनेक वस्तुओं के प्रति अभिवृत्ति के मापन

नोट

के लिए मास्टर या सामान्यीकृत प्रकार की मापनी (Master or Generalised Type Scale) को प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त अन्य विद्वानों ने भी अभिवृत्ति मापन के क्षेत्र में अनेक प्रयास किये। स्पष्ट है कि विगत साठ वर्षों में अभिवृत्ति मापन के क्षेत्र में काफी विकास हुआ है तथा आधुनिक समय में विभिन्न वस्तुओं, व्यक्तियों, परिस्थितियों आदि के प्रति-अभिवृत्ति का मापन करने के लिए अनेक प्रकार के अभिवृत्ति मापन उपकरण उपलब्ध हैं। अभिवृत्ति के मापन की तीन मुख्य विधियाँ निम्नवत् हैं–

(*i*) प्रत्यक्ष प्रश्न विधि (Method of Direct Questioning)

(*ii*) प्रत्यक्ष अवलोकन विधि (Method of Direct Observation)

(*iii*) स्केलिंग विधि (Scaling Method)

प्रथम दो विधियों में अभिवृत्ति का मापन व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन के व्यवहार के माध्यम से करते हैं। इसलिए इन दोनों विधियों को व्यावहारिक विधि (Behavioural Techniques) या प्रत्यक्ष विधि (Direct Method) भी कहते हैं। स्पष्ट है कि व्यावहारिक विधियों में व्यक्ति से सीधे-सीधे प्रश्न पूछ कर अथवा उसके व्यवहार का प्रत्यक्ष अवलोकन करके उसकी अभिवृत्तियों को जाना जाता है। यह विधि अत्यन्त सरल है, परन्तु इसकी अपनी कुछ परिसीमाएँ हैं। अभिवृत्ति मापन की तीसरी विधि को मनोवैज्ञानिक विधि (Psychological Technique) या अप्रत्यक्ष विधि (Indirect Method) भी कहा जाता है। इस विधि के अंतर्गत मनोवैज्ञानिक सातत्य (Psychological Continuum) पर व्यक्ति की स्थिति को परिमापन (Scaling) करके उसकी अभिवृत्ति का मापन किया जाता है। परिमापन (Scaling) की अनेक विधियाँ हैं। प्रस्तुत अध्याय में व्यावहारिक विधियों का वर्णन संक्षेप में परंतु मनोवैज्ञानिक विधि को कुछ विस्तार से समझाया जा रहा है।

प्रत्यक्ष प्रश्न विधि (Method of Direct Questioning)

इस विधि में किसी व्यक्ति की किसी वस्तु, व्यक्ति आदि के प्रति अभिवृत्ति को ज्ञात करने के लिए सीधे-सीधे प्रश्न (Direct Questions) पूछे जाते हैं। व्यक्ति के द्वारा उन प्रश्नों पर दिये गये उत्तरों के द्वारा उसकी अभिवृत्ति के संबंध में जानकारी मिल जाती है। इस विधि की तार्किक मान्यता है कि यदि किसी वस्तु या व्यक्ति के संबंध में अन्य व्यक्तियों के विचारों को जानना चाहते हैं तो उसकी सर्वोत्तम विधि उससे प्रश्न पूछना है। प्रत्यक्ष प्रश्न करना वास्तव में कुछ उद्देश्यों की पूर्ति में बड़ा ही उपयुक्त व संतोषप्रद होता है। इस विधि का प्रयोग करके व्यक्तियों को उनकी अभिवृत्ति के आधार पर तीन वर्गों–(*i*) ऐसे व्यक्ति जिनकी अनुकूल अभिवृत्ति है, (*ii*) ऐसे व्यक्ति जिनकी प्रतिकूल अभिवृत्ति है, तथा (*iii*) ऐसे व्यक्ति जो यह कहते हैं कि वे अभिवृत्तियों के संबंध में कोई स्पष्ट मत नहीं बना पा रहे हैं, पर बाँटा जाना संभव है। उदाहरण के लिए किसी राष्ट्रीय सर्वेक्षण में आप से पूछा जाये कि आपकी मंडल आयोग के द्वारा संस्तुत पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण के संबंध में क्या अभिवृत्ति है? तो इसका अर्थ है कि साक्षत्कारकर्त्ता प्रत्यक्ष प्रश्न विधि की सहायता से आपकी अभिवृत्ति की जानकारी करके आपको उपरोक्त तीन वर्गों में से किसी एक वर्ग में वर्गीकृत करने का प्रयास कर रहा है। यदि आप आरक्षण के प्रति अपनी सहमति अथवा पंसद का प्रदर्शन करते हैं तो आपको उपरोक्त वर्णित आरक्षण के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति रखने वाले वर्ग में सम्मिलित किया जायेगा। इसके विपरीत यदि आप आरक्षण के प्रति अपनी असहमति अथवा नापसंद का प्रदर्शन करते हैं तो आपको उपरोक्त वर्णित आरक्षण के प्रति प्रतिकूल अभिवृत्ति वाले वर्ग में रखा जायेगा और यदि आप आरक्षण के प्रति अपने विचार व्यक्त करने में झिझक रहे हैं। या आपके विचारों में अस्पष्टता है तो आपको उपरोक्त वर्णित आरक्षण के प्रति अनिश्चित अभिवृत्ति वाले वर्ग में सम्मिलित किया जायेगा।

नोट

चित्र 22.1 अभिवृत्ति मापन की विधियाँ
(Methods of Attitude Measurement)

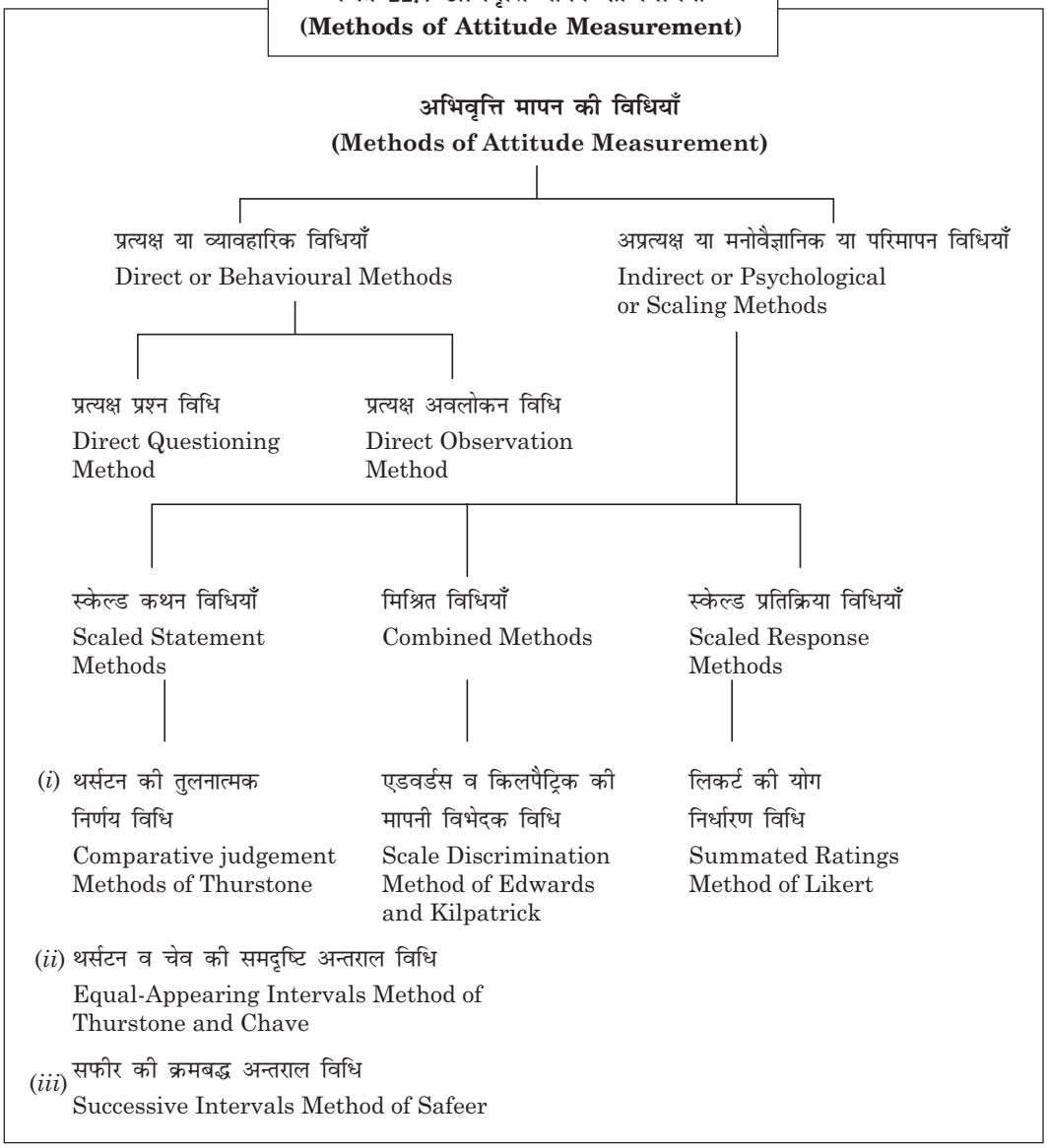

अभिवृत्ति ज्ञात करने की प्रत्यक्ष प्रश्न विधि कोई वैज्ञानिक विधि नहीं है। यद्यपि इस विधि में कम समय में अधिक व्यक्तियों की अभिवृत्ति का ज्ञान किया जा सकता है। यह विधि अत्यन्त सुगम है तथा अप्रशिक्षित व्यक्ति भी इस विधि का सफलतापूर्वक उपयोग कर सकते हैं, फिर भी इस विधि की कुछ सीमाएँ हैं। प्रथम, अनेक व्यक्ति अपने विचारों, भावों या अभिवृत्तियों को सार्वजनिक रूप से प्रकट करने में झिझक का अनुभव करते हैं, वे भय अथवा सामाजिक वांछनीयता, दबाव आदि के कारण अपने विचारों को प्रकट करने के लिए अनिच्छुक होते हैं। इस विधि से अभिवृत्ति का ठीक-ठीक मापन तभी संभव होता है जब सामाजिक वातावरण विभिन्न प्रकार के दबावों से मुक्त होता है तथा व्यक्ति सहर्ष अपने विचारों को सही-सही ढंग से प्रकट करने के लिए तत्पर होता है उदाहरण के लिए अनेक ऐसे व्यक्ति हैं, जो सती प्रथा, दहेज अथवा छूआछूत के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति रखते हैं, परन्तु सामाजिक भय तथा वांछनीयता के कारण अपने को इन प्रथाओं का विरोधी बताते हैं, एवं वास्तविक व्यवहार में वे इन प्रथाओं

नोट

के अनुरूप कार्य करते हैं। इन प्रथाओं के संबंध में यदि व्यक्तियों से गुप्त मतदान के द्वारा विचार माँगे जाएँ तो संभवत: गुप्त मतदान में अनेक परंपरावादी व्यक्ति इन प्रथाओं के पक्ष में मत देंगे, जबकि ऐसे व्यक्ति मुक्त मतदान में या तो अनिश्चित रहेंगे अथवा इन प्रथाओं के विरुद्ध मत देंगे। स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष प्रश्न विधि में व्यक्ति अपनी स्पष्ट तथा वास्तविक राय को विभिन्न सामाजिक कारणों से व्यक्त करने में झिझक सकता है जिसके कारण इस विधि से प्राप्त परिणाम कम वैध होते हैं।

प्रत्यक्ष प्रश्न विधि की द्वितीय परिसीमा इसकी विश्वसनीयता में कमी होना है। व्यक्ति कभी-कभी अपने विचारों के संबंध में अस्पष्ट होता है। उनकी किसी वस्तु या व्यक्ति के बारे में वास्तव में क्या राय है, वे उससे अनजान रहते हैं तथा क्षणिक उत्तेजनाओं में अपनी वास्तविक अभिवृत्ति से भिन्न विचारों का प्रदर्शन करते हैं। अनेक अध्ययनों में पाया गया है कि व्यक्ति की प्रदर्शित अभिवृत्ति तथा वास्तविक अभिवृत्ति में पर्याप्त अन्तर हो सकता है।

प्रत्यक्ष अवलोकन विधि (Method of Direct Observation)

अभिवृत्ति ज्ञात करने की प्रत्यक्ष अवलोकन विधि में व्यक्तियों के व्यवहार का अवलोकन करके उसकी अभिवृत्ति का पता लगाया जाता है। इस विधि की मान्यता है कि व्यक्ति के द्वारा अपने दिन-प्रतिदिन की दिनचर्या के दौरान किये जाने वाले व्यवहार के द्वारा किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा संस्था के प्रति उसकी अभिवृत्ति को ज्ञात किया जा सकता है। इस विधि के द्वारा भी व्यक्तियों को उनकी अभिवृत्ति के आधार पर तीन वर्गों–अनुकूल अभिवृत्ति, प्रतिकूल अभिवृत्ति तथा अनिश्चित अभिवृत्ति में बाँटा जा सकता है क्योंकि अवलोकित होने वाले व्यक्ति को अपने अवलोकित होने का ज्ञान नहीं होता है तथा वह अपने वास्तविक व्यवहार को प्रकट कर देता है। इसलिए प्रत्यक्ष प्रश्न विधि की अपेक्षा, प्रत्यक्ष अवलोकन विधि अधिक उपयुक्त है। उदाहरणार्थ यदि कोई व्यक्ति हरिजन के हाथ का बना भोजन नहीं करता है अथवा उसके यहाँ सामाजिक सौजन्यता के लिए नहीं जाता है अथवा अपने घर में उसको उचित आसान व सम्मान नहीं देता है, तो इससे यह अभिप्राय निकाला जा सकता है कि वह व्यक्ति हरिजनों के प्रति प्रतिकूल अभिवृत्ति रखता है।

नि:संदेह प्रत्यक्ष प्रश्न विधि की तुलना में प्रत्यक्ष अवलोकन विधि अधिक श्रेष्ठ है फिर भी इस विधि की भी अनेक सीमाएँ हैं। प्रथम, अधिक व्यक्तियों की अभिवृत्ति का मापन करने में अत्यधिक समय लगता है तथा कठिनता आती है। उदाहरणार्थ, यदि हम संपूर्ण भारतवर्ष (या किसी राज्य) के नागरिकों के किसी बड़े प्रतिदर्श की राष्ट्रपति प्रणाली के प्रति अभिवृत्ति (Attitude towards Presidential System) जानना चाहे तो प्रत्यक्ष अवलोकन विधि के द्वारा प्रतिदर्श के सभी नागरिकों के व्यवहार का अवलोकन करके उनकी अभिवृत्ति को ज्ञात करना अत्यन्त कठिन ही नहीं वरन् लगभग असंभव कार्य होगा। द्वितीय व्यक्ति सामाजिक कारणों से अपने कुछ वास्तविक परन्तु अवांछनीय व्यवहारों को छिपाकर करता है। उदाहरण के लिए प्रतिदिन शराब पीने वाला व्यक्ति भी सामाजिक कारणों से अन्य व्यक्तियों से छिपकर शराब तो पीता है, परन्तु शराब के विरुद्ध बातें कहता है। इसके विपरीत शराब के प्रति वास्तविक रूप में ऋणात्मक अभिवृत्ति रखने वाला व्यक्ति भी सामाजिक माँग के कारण अपने घर पर आयोजित पार्टी में शराब की व्यवस्था करने को विवश हो जाता है। इसी प्रकार से चलचित्र के प्रति ऋणात्मक अभिवृत्ति रखने वाला व्यक्ति भी अपने मित्रों के दबाव में आकर चलचित्र देखने जा सकता है तथा दहेज के प्रति धनात्मक अभिवृत्ति वाला व्यक्ति सामाजिक दबावों तथा कानूनी बंधनों के कारण दहेज लेने के विपरीत बातें करता है। स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष व्यवहार तथा वास्तविक अभिवृत्ति में संबंध का होना सदैव ही आवश्यक नहीं है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष प्रश्न तथा प्रत्यक्ष अवलोकन विधियों के द्वारा अभिवृत्ति मापन से प्राप्त परिणाम कम विश्वसनीय तथा वैध होते हैं। इसीलिए मनोवैज्ञानिकों ने अभिवृत्ति मापन की कुछ अधिक विश्वसनीय विधियों की खोज की है। इनके अंतर्गत परिमापन विधियाँ आती हैं, जिनकी विस्तार से आगे चर्चा की जाएगी।

परिमापन विधियाँ (Scaling Methods)

नोट

प्रत्यक्ष प्रश्न विधि तथा प्रत्यक्ष अवलोकन विधि के द्वारा अभिवृत्ति मापन में होने वाली कमियों के कारण अभिवृत्ति मापन के लिए परिमापन विधि (Scaling Method) का प्रदुर्भाव हुआ है, जिसके फलस्वरूप अभिवृत्ति मापनी (Attitude Scale) के निर्माण की अनेक विधियाँ विकसित हुई तथा उनके द्वारा अभिवृत्ति मापनियों का निर्माण करके अभिवृत्ति मापन के कार्य को अधिक तर्कसंगत ढंग से किया जाने लगा। भौतिक चरों के मापन के लिए भौतिक सातत्य (Physical Continuum) का प्रयोग किया जाता है, जो विभिन्न वस्तुओं को उनके गुणों की मात्रा के आधार पर क्रमबद्ध रूप में व्यवस्थित कर देता है। जैसे भार के मापन के लिए वस्तुओं को उनके भार के आधार पर 0 kg, 1 kg, 2 kg, 3 kg..... के सातत्य पर वर्गीकृत किया जाता है, लंबाई के मापन के लिए वस्तुओं को 0 cm. 1 cm, 2 cm..... के सातत्य पर वर्गीकृत किया जाता है तथा तापमान के लिए वस्तुओं को 0ºC, 1ºC, 2ºC ..... के सातत्य पर वर्गीकृत किया जाता है। ठीक इसी प्रकार से वस्तुओं या व्यक्तियों को उनसे संबंधित प्रतिक्रियाओं या निर्णयों (Judgements) के आधार पर मनोवैज्ञानिक सातत्यों (Psychological Continuum) पर क्रमबद्ध किया जा सकता है। कुछ मनोवैज्ञानिक सातत्यों को उदाहरणार्थ आगे प्रस्तुत किया गया है।

चित्र 22.2 मनोवैज्ञानिक सातत्य
(Psychological Continuum)

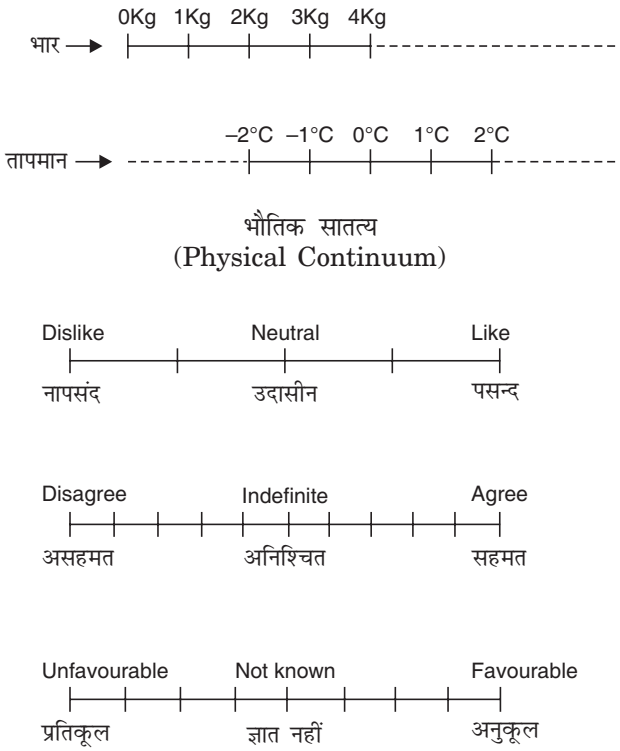

स्पष्ट है कि किसी मनोवैज्ञानिक सातत्य में किसी मनोवैज्ञानिक गुण (Psychological trait) के लिए संभव सभी मानों (Values) अथवा स्थितियों (Positions) की एक क्रमबद्ध व्यवस्था होती है। मनोवैज्ञानिक सातत्य को प्राय:

नोट

एक सीधी रेखा से अभिव्यक्त करते हैं, जिसके दोनों छोर (Both extremes) संबंधित मनोवैज्ञानिक गुण के न्यूनतम व अधिकतम मानों को अथवा गुण के दो विपरीत ध्रुवों (Opposite poles) को इंगित करते हैं। सातत्य के रूप में परिवर्तित किये जाने वाला मनोवैज्ञानिक गुण निश्चय हो सतत् प्रकृति (Continuous nature) का होता है, अर्थात् सातत्य पर स्थित किन्हीं भी दो बिन्दुओं या मानों, भले ही वे एक-दूसरे के कितने नजदीक क्यों न हों, के बीच तीसरा बिन्दु या मान सैद्धांतिक दृष्टि से संभव होता है। कभी-कभी व्यावहारिकता के कारण, मनोवैज्ञानिक सातत्य पर केवल कुछ निश्चित संख्या में बिन्दु या मान लिये जाते हैं, परन्तु सैद्धांतिक दृष्टि से सातत्पय पूर्णरुपेण सतत् होता है। जब किसी मनोवैज्ञानिक सातत्य को आंकिक इकाइयों (numerical units) में इस प्रकार से विभक्त कर दिया जाता है कि इसका प्रयोग किसी व्यक्ति या वस्तु के मनोवैज्ञानिक गुण को मापने के लिए किया जा सके, तब इसे मनोवैज्ञानिक मापनी (Psychological Scale) कहते हैं। दूसरे शब्दों में, मनोवैज्ञानिक मापनी वास्तव में मनोवैज्ञानिक सातत्य का कुछ आंकिक इकाइयों में विभाजन है, जिसे किसी गुण विशेष को मापने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इस प्रकार की मापनी तैयार करने की विधियों को ही मनोवैज्ञानिक परिमापन विधियाँ (Psychological Scaling Procedures) कहा जाता है। अत: अभिवृत्ति माप के संबंध में परिमापन (Scaling) से तात्पर्य मनोवैज्ञानिक उद्दीपकों (stimuli) को आंकिक मापनी या सातत्य (Numerical Scale or Continuum) पर व्यवस्थित (Placing) करने से है। परिमापन के अंतर्गत विभिन्न उद्दीपकों के आंकिक मूल्य (Numerical Values), जिन्हें मापनी मूल्य (Scale Values) कहते हैं, ज्ञात किये जाते हैं तथा मापनी मूल्यों के आधार पर उन्हें क्रमबद्ध करके मापनी या सातत्य (Scale of Continuum) का रूप दे देते हैं। अभिवृत्ति मापन के लिए प्रयुक्त की जाने वाली मापनियों के निर्माण में मनोवैज्ञानिक सातत्यों का ही प्रयोग किया जाता है। यही कारण है कि परिमापन विधियों को मनोवैज्ञानिक विधियों के नाम से भी संबोधित किया जाता है।

परिमापन विधियों (Scaling Methods) को उनकी प्रकृति के आधार पर दो भागों–(*i*) परिमापित कथन विधियाँ (Scaled Statement Methods) तथा (*ii*) परिमापित प्रतिक्रिया विधियाँ (Scaled Response Methods) में बाँटा जा सकता है। इन दोनों ही विधियों में अभिवृत्ति का मापन करने के लिए कुछ कथनों का प्रयोग किया जाता है। ये कथन किसी वस्तु, व्यक्ति या स्थान, जिसके प्रति अभिवृत्ति का मापन करना होता है, के संबंध में कुछ बात व्यक्त करते हैं। व्यक्ति के द्वारा इन कथनों पर दी गयी प्रतिक्रिया के आधार पर उस व्यक्ति की अभिवृत्ति का मापन किया जाता है। परिमापित कथन विधि में विभिन्न कथनों को विशेषज्ञों की सहायता से अभिवृत्ति के मनोवैज्ञानिक सातत्य (Psychological Continuum of Attitude) पर परिमापित कर लिया जाता है तथा यह माना जाता है कि भिन्न-भिन्न कथन भिन्न-भिन्न मात्रा में अभिवृत्ति को परिलक्षित करते हैं। परिमापित कथनों के कुछ उदाहरण सारणी 75 में दिये गये है। इन कथनों के अवलोकन से परिमापित कथनों का प्रत्यय स्पष्ट हो सकेगा। परिमापित कथन विधि के विपरीत परिमापित प्रतिक्रिया विधि में व्यक्तियों के द्वारा विभिन्न कथनों पर दी जाने वाली प्रतिक्रियाओं को मनोवैज्ञानिक सातत्य पर परिमापित किया जाता है। इस विधि में यह माना जाता है कि अभिवृत्ति मापनी में सम्मिलित किये गये सभी कथनों के द्वारा लगभग एक ही मात्रा में अभिवृत्ति की अभिव्यक्ति होती है, परन्तु विभिन्न कथनों पर विभिन्न व्यक्तियों की प्रतिक्रियाओं की सघनता (Intensity) अर्थात् कथन के प्रति उनके द्वारा व्यक्त अनुकूलता या प्रतिकूलता की सीमा भिन्न-भिन्न हो सकती है। परिमापित प्रतिक्रियाओं वाले कुछ अभिवृत्ति कथनों के उदाहरण सारणी 76 में प्रस्तुत किये गये हैं। आशा है कि पाठक इन कथनों के अवलोकन से परिमापित प्रतिक्रिया प्रत्यय को भली-भाँति समझकर परिमापित कथन व परिमापित प्रतिक्रिया के अन्तर को स्पष्ट ढंग से जान सकेंगे।

नोट

सारणी 22.1

स्केल्ड प्रतिक्रिया वाले कुछ कथन

(Some Statements with Scaled Responses)

क्रम	*कथन*	**प्रतिक्रिया विकल्प**				
		पूर्णतः असहमत	*कुछ असहमत*	*अनिश्चित*	*कुछ सहमत*	*पूर्णतः सहमत*
1.	अन्तर्जातीय विवाह से राष्ट्रीय एकता का विकास होता है।					
2.	अन्तर्जातीय विवाह करने से अनेक सामाजिक परेशानियाँ आती हैं।					
3.	अन्तर्जातीय विवाह मुक्त यौन व्यवहार का परिणाम होते हैं।					
4.	सभी प्रगतिशील व्यक्तियों को अन्तर्जातीय विवाह ही करना चाहिए।					
5.	अन्तर्जातीय विवाह से सामाजिक व्यवस्था पर आघात पहुँचता है।					

सारणी 22.2

कुछ स्केल्ड कथन (Some Scaled Statements)

कथन से परिलक्षित अभिवृत्ति	**कथन**		**प्रतिक्रिया**
अत्यधिक ऋणात्मक	1	अधिकांश अन्तर्जातीय विवाह असफल होते हैं।	हाँ/नहीं
अधिक ऋणात्मक	2	निम्न जातियों के व्यक्ति/महिलाएँ ही अन्तर्जातीय विवाह करना चाहते हैं।	हाँ/नहीं
कुछ ऋणात्मक	3	अन्तर्जातीय विवाह करने से समाज में सम्मान कम हो जाता है।	हाँ/नहीं
लगभग शून्य	4	अन्तर्जातीय विवाह में व्यर्थ के आडम्बर नहीं होते हैं।	हाँ/नहीं
कुछ धनात्मक	5	अन्तर्जातीय विवाह एक प्रगतिशील कदम है।	हाँ/नहीं
अधिक धनात्मक	6	अन्तर्जातीय विवाह जातीय संकीर्णता दूर करने में सहायक होते हैं।	हाँ/नहीं
अत्यधिक धनात्मक	7	मैं अपने पुत्र/पुत्री का अन्तर्जातीय विवाह ही करना चाहता हूँ।	हाँ/नहीं
अधिक धनात्मक	8	अन्तर्जातीय विवाह में पति-पत्नी में सामजंस्य अधिक होता है।	हाँ/नहीं
कुछ धनात्मक	9	अन्तर्जातीय विवाह में अधिक योग्य पति/पत्नी का चयन संभव होता है।	हाँ/नहीं
अत्यधिक ऋणात्मक	10	अन्तर्जातीय विवाह प्रायः मुक्त यौन (Free Sex) का परिणाम होते हैं।	हाँ/नहीं
कुछ धनात्मक	11	अन्तर्जातीय विवाह में दहेज प्रथा का उन्मूलन संभव है।	हाँ/नहीं
कुछ धनात्मक	12	अन्तर्जातीय विवाह भावात्मक एकता का विकास करता है।	हाँ/नहीं
अत्यधिक ऋणात्मक	13	अन्तर्जातीय विवाह समाज में अव्यवस्था फैलता है।	हाँ/नहीं
कुल धनात्मक	14	शिक्षित व्यक्ति को अन्तर्जातीय विवाह करना चाहिए	हाँ/नहीं

नोट

अभिवृत्ति मापनी (Attitude Scales)

वर्तमान समय में अभिवृत्तियों का मापन करने के लिए प्राय: अभिवृत्ति मापनियों (Attitude Scales) का ही प्रयोग किया जाता है। अभिवृत्ति मापनी वास्तव में अभिवृत्ति मापन की विभिन्न परिमापित विधियों (Scaled Methods) में से किसी एक विधि का अनुसरण करके तैयार किया गया मापन उपकरण है, जिसको प्रयोज्यों पर प्रशासित करके उनकी अभिवृत्तियों का मात्रात्मक मापन किया जा सकता है। अभिवृत्ति कथनों (Attitude Statements) के एक औपचारिक संकलन (Formal Collection) को ही अभिवृत्ति मापनी कहा जाता है। प्रयोज्य अभिवृत्ति मापनी के कथनों के संबंध में अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते हैं। उनकी प्रतिक्रियाओं को अंक प्रदान करके आंकिक रूप में परिवर्तित कर लिया जाता है। ये अंक ही अभिवृत्ति की मात्रा को इंगित करते हैं। जैसी कि पीछे चर्चा की जा चुकी है कि परिमापित विधियों को दो भागों में बाँटा जा सकता है। परिमापित कथन विधि में चयनित कथन विभिन्न मात्रा में अभिवृत्ति को परिलक्षित करते हैं, जबकि परिमापित प्रतिक्रिया विधि में चयनित कथन विभिन्न मात्रा में अभिवृत्ति को परिलक्षित करते हैं, जबकि परिमापित प्रतिक्रिया विधि में चयनित कथनों पर व्यक्तियों की प्रतिक्रियाओं की सघनता की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। इन दोनों ही प्रकार की विधियों का विभिन्न मनोवैज्ञानिक व मनोमितिकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से विवेचन व उपयोग करके अभिवृत्ति मापनियों की रचना की है। थर्स्टर्न की तुलनात्मक निर्णय विधि (Comparative Judgement Method of Thurstone), थर्स्टन व चेव की समदृष्टि अन्तराल विधि (Equal-Appearing Intervals Method of Thurstone and Chave) तथा सफीर की क्रमबद्ध अन्तराल विधि (Successive Interval Method and Safeer) प्रमुख व बहुतायत से प्रयुक्त की जाने वाली परिमापित कथन विधियाँ हैं। इन विधियों में कथनों को परिमापित करके उनके परिमापन मान (Scale Values) अर्थात् उनके द्वारा परिलक्षित अभिवृत्ति की मात्रा को ज्ञात करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रविधि का प्रयोग किया जाता है। परिमापित प्रतिक्रिया विधि में लिकर्ट की योग निर्धारण विधि (Summated Rating Method of Likert) ही सर्वाधिक प्रचलित है। इस विधि में कथनों के प्रति व्यक्ति के द्वारा दी जाने वाली प्रतिक्रियाओं के कई विकल्प (प्राय: पाँच या अधिक) प्रस्तुत किये जाते हैं। ये प्रतिक्रिया विकल्प भिन्न-भिन्न मात्रा में अभिव्यक्ति को इंगित करते हैं। विभिन्न वस्तुओं के प्रति अभिवृत्तियों का मापन करने के लिए उपरोक्त विधियों से अभिवृत्ति मापनियाँ तैयार की जा सकती हैं।

इस समय उपलब्ध अधिकांश अभिवृत्ति मापनियों की रचना समदृष्टि अन्तराल विधि अथवा योग निर्धारण विधि (लिकर्ट विधि) के द्वारा ही की गयी है।

क्या आप जानते हैं

वर्तमान समय में निर्माण की सरलता के लिए प्राय: योग निर्धारण विधि (लिकर्ट विधि) का तथा कम कथनों की सहायता से अभिवृत्ति मापने के लिए समदृष्टि अन्तराल विधि (थर्सटन व चेव विधि) का उपयोग किया जाता है।

22.3 अभिवृत्ति मापनी का निर्माण (Construction of Attitude Scale)

पहले अभिवृत्तियों तथा उनका मापन करने की विधियों के संबंध में चर्चा की जा चुकी है। नि:संदेह शिक्षाशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र जैसे व्यावहारिक विज्ञानों में अभिवृत्तियों का ज्ञान एवं उनका मापन एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अभिवृत्तियों के मापन के लिए प्राय: अभिवृत्ति मापनियों (Attitude Scales) का प्रयोग किया जाता है। यहाँ अभिवृत्ति मापनियों के निर्माण की कुछ प्रमुख तथा बहुतायत से प्रयुक्त की जाने वाली विधियों का वर्णन किया जा रहा है। आशा है कि पाठकगण इनके अध्ययन से अभिवृत्ति मापनी का निर्माण करने की कुछ विभिन्न विधियों का ज्ञान तथा कौशल प्राप्त कर सकेंगे एवं अभिवृत्ति मापनी का निर्माण करने में समर्थ हो सकेंगे।

अभिवृत्ति मापनी निर्माण के सोपान (Steps of Attitude Scale Construction) **नोट**

क्योंकि अभिवृत्ति मापनी कथनों का संकलन होती है। अत: किसी भी अन्य प्रमापीकृत मनोवैज्ञानिक परीक्षण की भाँति किसी अभिवृत्ति मापनी में भी सावधानीपूर्वक तैयार किए गए, सम्पादित किए गए तथा चुने गए कथनों को सम्मिलित किया जाता है। किसी प्रमापीकृत अभिवृत्ति मापनी के निर्माण में अन्य प्रमापीकृत मापन यंत्रों की तरह से चार मुख्य सोपानों–(*i*) अभिवृत्ति मापनी की योजना बनाना, (*ii*) अभिवृत्ति कथनों को तैयार करना, (*iii*) अभिवृत्ति कथनों का चयन करना तथा (*iv*) अभिवृत्ति मापनी का मूल्यांकन करना, का अनुसरण किया जाता है। अभिवृत्ति मापनी की योजना निर्माण नामक प्रथम सोपान के अन्तर्गत मापी जाने वाली अभिवृत्ति के प्रत्यय को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाता है मापनी के प्रकार, प्रशासन की समय अवधि, उसमें सम्मिलित किये जाने वाले कथनों की संख्या तथा कथनों के चयन की विधि आदि बातों का निर्धारण किया जाता है। मापनी निर्माण के दूसरे सोपान में अभिवृत्ति कथनों को तैयार किया जाता है। मापनी निर्माण में सम्मिलित करने के लिए ऐसे कथन तैयार किये जाते हैं, जो मापी जाने वाली अभिवृत्ति को सही-सही ढंग से एवं पूर्णरूपेण अभिव्यक्त (Express) कर सके। मापनी निर्माता कुछ कथन स्वयं तैयार कर सकता है जबकि शेष कथनों की रचना के लिए समाचार पत्रों में प्रकाशित संपादकीयों लेखों, संबंधित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों, पुस्तकों की विषय वस्तु, विशेषज्ञों से परामर्श व विचार-विमर्श तथा सामान्यजनों से बातचीत की सहायता ले सकता है। अभिवृत्ति कथनों (Attitude Statements) के निर्माण के लिए संकेत प्राप्त करने के लिए विभिन्न जागरूक एवं विशेषज्ञों से संबंधित विषय पर अपने विचारों, दृष्टिकोणों या भावों को अभिव्यक्त करने, कुछ लिखने अथवा कहने, के लिए भी कहा जा सकता है।

नोट्स अभिवृत्ति मापनी के लिए बनाये गये कथनों की भाषा सरल होनी चाहिए तथा उसकी भाषा में किसी भ्रम (Ambiguity) की कोई संभावना नहीं होनी चाहिए। कथन ऐसे होने चाहिए कि जो सकारात्मक अभिवृत्ति तथा नकारात्मक अभिवृत्ति वाले व्यक्तियों में विभेद कर सकें।

अभिवृत्ति कथनों की रचना के समय निम्न बातों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है–

(*i*) अभिवृत्ति कथन विगत के संदेर्भ में नहीं होने चाहिए, वरन् वर्तमान परिस्थितियों से ही संबंधित होने चाहिए।

(*ii*) अभिवृत्ति कथनों में तथ्यात्मक सूचनाओं (Factual Information) को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए।

(*iii*) ऐसे कथनों को नहीं बनाना चाहिए, जिनके एक से अधिक अर्थ निकल सकते हों या जिनमें किसी भ्रम की संभावना हो।

(*iv*) संबंधित मनोवैज्ञानिक वस्तु (Psychological Object) से संबंधित कथनों की ही रचना करनी चाहिए।

(*v*) ऐसे कथन नहीं बनाने चाहिए, जिन पर लगभग सभी व्यक्ति के द्वारा एक ही प्रकार की राय व्यक्त करने की संभावना हो।

(*vi*) ऐसे कथन तैयार किये जाने चाहिए, जो वांछित वस्तु या व्यक्ति के प्रति अभिवृत्ति की संपूर्ण सीमा (Entire Range) को अपने में समाहित कर सके।

(*vii*) कथनों की भाषा यथासंभव स्पष्ट, सरल तथा प्रत्यक्ष होनी चाहिए एवं उनमें प्रयुक्त शब्दों के अर्थ स्वस्पष्ट होने चाहिए।

(*viii*) कथन यथासंभव छोटे होने चाहिए। मापनी निर्माता को यह प्रयास करना चाहिए कि कथन पन्द्रह-बीस शब्दों के लगभग ही हों।

नोट

(*ix*) प्रत्येक कथन में संबंधित प्रकरण पर केवल एक पूर्ण विचार (One Complete Idea) ही समाहित किया जाना चाहिए।

(*x*) सदैव, हमेशा, सभी, कोई नहीं, कभी नहीं जैसे शब्द अनेकार्थकता (Ambiguity) उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिए इनका प्रयोग यथासंभव नहीं करना चाहिए।

(*xi*) कथनों को लिखते समय केवल, कदाचित, कभी-कभी जैसे शब्दों का प्रयोग अत्यधिक सावधानी पूर्वक करना चाहिए।

(*xii*) जहाँ तक संभव हो सके, संयुक्त (Compound) अथवा क्लिष्ट वाक्यों (Complex Sentences) का प्रयोग न करके सरल वाक्यों (Simple Sentences) के रूप में कथनों को लिखना चाहिए।

(*xiii*) कथनों में ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए, जिनका अर्थ वे व्यक्ति अथवा बालक न समझते हों, जिन पर अभिवृत्ति मापनी को प्रशासित किया जाना है।

(*xiv*) दोहरी नकारात्मकता (Double Negation) वाले कथनों के प्रयोग से यथासंभव बचना चाहिए।

अभिवृत्ति मापनी में सम्मिलित किये जाने वाले संभावित कथनों को तैयार करने के उपरांत, कथनों की भाषा संबंधी जटिलता व भ्रम (ambiguity and confusion) को दूर करने के लिए इनका पूर्व-परीक्षण (Pre-Tryout) किया जाता है। कथनों के पूर्व-परीक्षण में कथनों को कुछ व्यक्तियों से पढ़वाकर देखा जाता है तथा उनके द्वारा बताई जाने वाली भाषा संबंधी कठिनाइयों, भ्रमों अथवा अस्पष्टताओं को समझ करके, कथनों को तदनुसार सुधार लिया जाता है। तत्पश्चात् मापनी निर्माण का तीसरा परन्तु अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सोपान प्रारंभ होता है। इस सोपान के अंतर्गत मापनी के अंतिम प्रारूप में सम्मिलित किये जाने वाले उपयुक्त कथनों का चयन संभावित कथनों की सूची से किया जाता है क्योंकि मापनी की गुणवत्ता चुने जाने वाले कथनों की गुणवत्ता पर ही निर्भर करती है इसलिए कथनों का चयन मापनी निर्माण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पद माना जाता है। कथनों का चयन करने की अनेक विधियों का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिकों के द्वारा किया गया है। जैसी कि पिछले अध्याय में चर्चा की जा चुकी है, अभिवृत्ति मापने के लिए कथनों का चयन करने की विधियों को दो मुख्य प्रकारों–**परिमापित कथन विधियों** (Scaled Statement Methods) तथा **परिमापित प्रतिक्रिया विधियों** (Scaled Response Methods) में बाँटा जाता है। ये दोनों प्रकार की विधियाँ दो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से कथनों अथवा प्रतिक्रियाओं का परिमापन करती हैं। परिमापित कथन विधियों में मुख्यत: थर्सटन की युग्म तुलना विधि (Thurstone's Method of Paired Comparision), थर्सटन एवं चेव की समदृष्टि अंतर विधि (Thurstone and Chave's Method of Equal Appearing Intervals) तथा सफीर की क्रमबद्ध अंतर विधि (Saffir's Method of Successive Intervals) आती है। परिमापित प्रतिक्रिया विधियों में लिकर्ट की योग निर्धारण विधि (Likert's Method of Summated Ratings) सर्वाधिक प्रचलित है। इसके अतिरिक्त गटमैन की संचयी मापनी विधि (Guttman's Method of Commulative Scale), जिसे स्केलोग्राम विधि (Scalogram Method) भी कहते हैं तथा एडवर्ड्स व किलपैट्रिक की मापनी विभेदक विधि (Edwards and Kilpartrick's Scale Discrimination Methods) भी प्रचलित है। उपयुक्त कथनों का चयन करके चयनित कथनों को मापनी के रूप में व्यवस्थित कर लिया जाता है। तत्पश्चात् सामान्य निर्देश व प्रतिक्रिया व्यक्त करने के ढंग को करके मापनी को अन्तिम रूप दे दिया जाता है एवं मापनी की वांछित संख्या में प्रतियाँ तैयार कर ली जाती हैं।

मापनी के अंतिम प्रारूप के तैयार हो जाने पर प्रमापीकरण का अंतिम सोपान अर्थात् मापनी का मूल्यांकन करना आता है। इस सोपान के अंतर्गत मापनी के लिए विश्वसनीयता, वैधता तथा मानकों को ज्ञात किया जाता है। परीक्षण-पुनर्परीक्षण विधि, समान्तर विधि (यदि मापनी का दूसरा समरूप प्रारूप भी तैयार किया गया हो), अर्द्धविच्छेद विधि तथा तार्किक समतुल्यता विधि में से किसी एक या अनेक विधियों का प्रयोग करके अभिवृत्ति मापनी की विश्वसनीयता ज्ञात की जा सकती है। अभिवृत्ति मापनी के लिए प्राय: 80 या इससे अधिक का विश्वसनीयता गुणांक उपयुक्त माना जाता है। मापनी के लिए विषयवस्तु वैधता, समवर्ती वैधता या अन्वय वैधता का

नोट

निर्धारण किया जा सकता है। अभिवृत्ति मापनी के लिए प्राय: शतांशीय मानक, ज़ेड प्राप्तांक मानक, टी प्राप्तांक मानक, नवमानक (Stanines) आदि में से किसी एक या अधिक उपयुक्त प्रकार के मानकों को तैयार किया जा सकता है। मापनी निर्माता का अंतिम कार्य अभिवृत्ति मापनी निर्देशिका (Mannual) को तैयार करना होता है। मापनी निर्देशिका में मापनी के निर्माण के संबंध में समस्त सूचनाएँ संकलित की जाती हैं। मापनी निर्देशिक की सहायता से मापनी प्रयुक्त करने के इच्छुक व्यक्ति मापन के निर्माण से संबंधित विभिन्न जानकारी प्राप्त कर सकते हैं तथा आवश्यकतानुसार उसका उपयोग कर सकते हैं।

युग्म तुलना विधि (Method of Paired Comparisons)

युग्म तुलना विधि वास्तव में कथनों को मनोवैज्ञानिक सातत्य पर परिमापित करके उनके मापनी मूल्य ज्ञात करने की एक विधि है। इसीलिए इसे अभिवृत्ति मापन की परिमापित कथन विधियों के वर्ग के अंतर्गत रखा जाता है। युग्म तुलना विधि का आधार थर्सटन के द्वारा प्रतिपादित तुलनात्मक निर्णय नियम (law of Comparative Judgement) है। 1920 के दशक में थर्सटन ने अभिवृत्ति मापन से संबंधित अनेक लेखों का प्रकाशन किया। तुलनात्मक निर्णय का नियम किसी उद्दीपक को मनोवैज्ञानिक सातत्य (Psychological Continuum) पर क्रमबद्ध करने का एक तार्किक आधार प्रस्तुत करता है। तुलनात्मक निर्णय के नियम का प्रयोग करके विभिन्न प्रकार के आत्मगत (Subjective) अनुभवों तथा कि किन्हीं दिये गये उद्दीपकों (Stimuli) में से प्रत्येक में विभिन्न परन्तु अज्ञात मात्रा में ऐसी विशेषताएँ होती हैं, जिनका मापन करना है। मनोवैज्ञानिक परिमापन की प्रमुख समस्या है कि क्या इन उद्दीपकों को संबंधित विशेषता के आधार पर किसी मनोवैज्ञानिक सातत्य पर क्रमबद्ध किया जा सकता है। यहाँ यह बात स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक परिमापन विधियों के द्वारा किन्हीं उद्दीपकों के लिए प्राप्त किसी मनोवैज्ञानिक सातत्य को उन उद्दीपकों की सभी विशेषताओं के मापन के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है। इनके द्वारा केवल उद्दीपकों के किसी दिए हुए समुच्चय (Set) के विभिन्न उद्दीपकों को उनकी विभिन्न विशेषताओं के आधार पर भिन्न-भिन्न ढंग से मनोवैज्ञानिक सातत्यों में क्रमबद्ध किया जा सकता है।

तुलनात्मक निर्णय नियम के अनुसार किन्हीं भी दिये गये उद्दीपकों (Stimuli) के लिए मनोवैज्ञानिक सातत्य पर एक मॉडल विभेदक प्रक्रिया (Modal Discriminal Process) हो सकती है। विभेदक प्रक्रिया से अभिप्राय किसी व्यक्ति के द्वारा किसी दी गयी विशेषता के संबंध में किसी उद्दीपक पर प्रस्तुत की गयी प्रतिक्रिया अथवा निर्णय से है, क्योंकि विभिन्न व्यक्ति किसी दिये गये उद्दीपक पर भिन्न-भिन्न विभेदक प्रक्रियाएँ प्रस्तुत करते हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि विभेदक प्रक्रियाओं के वितरण के संबंध में कोई मान्यता बतायी जाए। थर्सटन ने कहा है कि किसी दिये गये उद्दीपक पर अनेक व्यक्तियों के द्वारा दी गयी विभेदक प्रक्रियाओं के वितरण को सामान्य प्रायिकता वक्र (Normal Probability Curve) के अनुरूप माना जा सकता है। किसी उद्दीपक या कथन पर विभिन्न व्यक्तियों के द्वारा दी गयी विभेदक प्रक्रियाओं के मध्यमान (या मध्यांक) तथा मानक विचलन को क्रमश: इस उद्दीपक या कथन का मापनी मान (Scale Value) तथा विभेदन प्रसार (Discriminal Dispersion) कहा जा सकता है। स्पष्टत: विभिन्न उद्दीपकों या कथनों के लिए मापनी मूल्यों (Scale Value) तथा विभेदक प्रसारों (Discriminal Dispersion) के मान भिन्न-भिन्न होंगे।

उदाहरणार्थ माना कि किसी मनोवैज्ञानिक वस्तु से संबंधित दो कथन i व j हैं। किसी बड़े समूह के व्यक्तियों से इन दोनों कथनों के संबंध में तुलनात्मक निर्णय करने के लिए कहा गया कि कथन i व j में कौन अधिक अनुकूल (Favourable) है। समूह के व्यक्तियों को यह अनुमति नहीं दी गयी थी कि वे कथन i व j को समान रूप से अनुकूल बता सकें। यदि समूह के आधे सदस्य ($p = .50$) कथन i को कथन j से अधिक अनुकूल बताते हैं तथा शेष आधे सदस्य ($q = .50$) कथन j को कथन i से अधिक अनुकूल बताते हैं तो यह कहा जा सकता है कि कथन i तथा कथन j दोनों समान रूप से उस विशेषता को इंगित करते हैं, जिसका मापन करने का प्रयास किया जा रहा

नोट

है, क्योंकि दोनों की कथनों की विभेदक प्रक्रिया (Model Discriminal Process) अर्थात् प्रकारान्तर से उनके मापनी मूल्य समान हैं।

सारणी 22.3

पी मैट्रिक्स को ज़ेड मैट्रिक्स में बदलने के लिए एन.पी.सी. सरलीकृत का सरल रूप

(Simplified Version of NPC to Convert p-Matrix into Z-Matrix)

p	*.00*	*.01*	*.02*	*.03*	*.04*	*.05*	*.06*	*.07*	*.08*	*.09*
.0	–	–2.33	–2.05	–1.88	–1.75	–1.65	–1.56	–1.48	–1.41	–1.34
.1	–1.28	–1.23	–1.18	–1.13	–1.08	–1.04	–.99	–.95	–.92	–.88
.2	–.84	–.81	–.77	–.74	–.71	–.67	–.66	–.61	–.58	–.55
.3	–.52	–.50	–.47	–.44	–.41	–.39	–.36	–.33	–.31	–.28
.4	–.25	–.23	–.20	–.18	–.15	–.13	–.10	–.08	–.05	–.03
.5	00	.03	.05	.08	.10	.13	.15	.18	.20	.23
.6	.25	.28	.31	.33	.36	.39	.41	.44	.47	.50
.7	.52	.55	.58	.61	.64	.67	.71	.74	.77	.81
.8	.84	.88	.92	.95	.99	1.04	1.08	1.13	1.18	1.23
.9	1.28	1.34	1.41	1.48	1.56	1.65	1.75	1.88	2.05	2.33

नोट: सारणी के प्रथम स्तम्भ व पंक्ति में p के मान प्रस्तुत किये गये हैं, जबकि मुख्य भाग में p के सापेक्ष z के मान दिये गये हैं।

इसके विपरीत यदि समूह के आधे से अधिक व्यक्ति ($p > .50$) कथन i को कथन j से अधिक अनुकूल बनाते हैं तो यह कहा जा सकता है कि न्यूनतम (Least) से अधिकतम (Most) के मनोवैज्ञानिक सातत्य पर कथन i की विभेदक प्रक्रिया (Model Discriminal Process) कथन j की तुलना में अधिक है। इसी प्रकार यदि आधे से कम व्यक्ति ($p < .50$) कथन i को कथन j से कम अनुकूल बताते हैं तो यह कहा जा सकता है कि न्यूनतम से अधिकतम के मनोवैज्ञानिक सातत्य पर कथन i की विभेदक प्रक्रिया (Model Discriminal Process) कथन j की तुलना में कम है। स्पष्ट है कि कथन i व कथन j से संबंधित विभेदक प्रक्रियाओं (Model Discriminal Process) की मनोवैज्ञानिक सातत्य पर स्थिति व्यक्तियों के द्वारा कथन i व कथन j पर दिये गये तुलनात्मक निर्णयों के अनुपात पर आधारित है। स्पष्ट है कि समूह के व्यक्तियों से उपरोक्त प्रकार के तुलनात्मक निर्णयों को प्राप्त करने के उपरांत कथन i को कथन j से अधिक अनुकूल बताने वाले व्यक्तियों की आवृत्ति ज्ञात की जा सकती है। यदि f_{ij} उन व्यक्तियों की आवृत्ति (संख्या) है जो कथन i को कथन j से अनुकूल बताते हैं तो इसको समूह के समस्त सदस्यों की संख्या N से भाग करके अनुपात में बदला जा सकता है। यदि

$$f_{ij} = \text{कथन } i > \text{कथन } j$$

तब

$$p_{ij} = \frac{f_{ij}}{N}$$

जहाँ p_{ij} कथन i को कथन j से अनुकूल निर्णय करने वाले व्यक्तियों का अनुपात है, क्योंकि कथन i व कथन j में से कथन i को अधिक पसंद करने वाले व्यक्तियों (f_{ij}) तथा कथन j को अधिक पसंद करने वाले व्यक्तियों (f_{ji}) का योग N के बराबर होगा, इसलिए

नोट

$$f_{ji} = N - f_{ij}$$

तथा $p_{ji} = 1 - p_{ij}$

सामान्य वक्र सारणी (Normal Curve Table) की सहायता से p_{ij} के मान को Z के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। विभिन्न p मानों को Z में बदलने के लिए सामान्य वक्र सारणी का एक सरल रूप इससे पहले सारणी में प्रस्तुत किया गया है। इस सरलीकृत सामान्य वक्र सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि यदि p_{ij} का मान क्रमशः .20, .50 तथा .66 हो तो Z के मान क्रमशः –.84, 0 तथा +.41 होंगे। अनुपात p_{ij} तथा सामान्य वक्र वितरण के तत्संबंधी मान Z_{ij} के संबंध को नीचे दिये चित्र में दर्शाया गया है।

चित्र 22.3

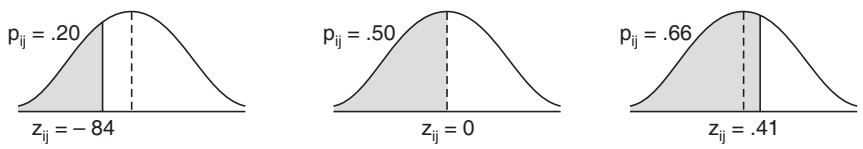

थर्सटन ने कुछ मान्यताओं के आधार पर यह सिद्ध किया कि किसी Z_{ij} को कथन i तथा कथन j के मापनी मूल्यों (Scale Values) के अंतर के बराबर माना जा सकता है। थर्सटन के इस उपनियम को तुलनात्मक निर्णय नियम का पाँचवां प्रकार (Case V of the law of Comparative Judgement) कहा जाता है। अतः यदि कथन i तथा कथन j के मापनी मूल्यों को S_i व S_j से व्यक्त किया जाए तो

$$Z_{ij} = S_i - S_j$$

यदि अनेक कथनों को दो-दो के जोड़े अर्थात युग्म बनाकर उन पर तुलनात्मक निर्णय कराया जाये तथा प्रत्येक युग्म के लिए उपरोक्त वर्णित समीकरण बनाया जाये तो गणितीय समीकरणों को हल करने की न्यूनतम वर्ग विधि (Least Squares Method) का प्रयोग करके विभिन्न कथनों के लिए मापनी मूल्य (Scale Values) ज्ञात किये जा सकते हैं।

सारणी 22.4: एफ मैट्रिक्स (F-Matrix)

कथन	***1***	***2***	***3***	**–**	**–**	***n***
1	f_{11}	f_{21}	f_{31}	–	–	f_{n1}
2	f_{12}	f_{22}	f_{32}	–	–	f_{n2}
3	f_{13}	f_{23}	f_{33}	–	–	f_{n3}
–	–	–	–	–	–	–
–	–	–	–	–	–	–
n	f_{1n}	f_{2n}	f_{3n}	–	–	f_{nn}

नोट

सारणी 22.5: पी मैट्रिक्स (P-Matrix)

कथन	1	2	3	–	–	n
1	p_{11}	p_{21}	p_{31}	–	–	p_{n1}
2	p_{12}	p_{22}	p_{32}	–	–	p_{n2}
3	p_{13}	p_{23}	p_{33}	–	–	p_{n3}
–	–	–	–	–	–	–
–		–	–	–	–	–
n	p_{1n}	p_{2n}	p_{3n}	–	–	p_{nn}

सारणी 22.6: ज़ेड मैट्रिक्स (Z-Matrix)

कथन	1	2	3	–	–	n
1	Z_{11}	Z_{21}	Z_{31}	–	–	Z_{n1}
2	Z_{12}	Z_{22}	Z_{32}	–	–	Z_{n2}
3	Z_{13}	Z_{23}	Z_{33}	–	–	Z_{n3}
–	–	–	–	–	–	–
–	–	–	–	–	–	–
n	Z_{1n}	Z_{2n}	Z_{3n}	–	–	Z_{nn}
योग	$\sum Z_{1i}$	$\sum Z_{2i}$	$\sum Z_{3i}$	–	–	$\sum Z_{ni}$
मध्यमान	$Z_1 = \frac{\sum Z_{1i}}{n}$	$Z_2 = \frac{\sum Z_{2i}}{n}$	$Z_3 = \frac{\sum Z_{3i}}{n}$	–	–	$Z_n = \frac{\sum Z_{ni}}{n}$

स्पष्ट है कि युग्म तुलना विधि से कथनों के मापनी मूल्य ज्ञात करने के लिए कथनों को दो-दो के जोड़े में व्यक्तियों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है तथा उनसे पूछा जाता है कि दिये गये विभिन्न जोड़ों के किस कथन से वे अधिक सहमत हैं। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति को जोड़ों में दिये गये दो कथनों के प्रति अपना तुलनात्मक निर्णय देना होता है। यदि कथनों की संख्या N होती है तो कुल $N(N-1)/2$ जोड़े बनते हैं। व्यक्तियों के द्वारा दी गयी प्रतिक्रियाओं के आधार पर पहले आवृत्ति मैट्रिक्स (Frequency Matrix), जिसे एफ मैट्रिक्स (F-matrix) कहते हैं, बनायी जाती है। एफ मैट्रिक्स विभिन्न कथनों को अन्य कथनों से अधिक पसंद करने वाले व्यक्तियों की आवृत्तियों को प्रस्तुत करती है। इसमें दी गयी आवृत्तियाँ इस बात की द्योतक होती है कि कितने व्यक्ति स्तंभ (Column) में दिये गये कथन (Stetment) को पंक्ति (Row) में दिये गये कथन से अधिक पसंद करते हैं। अत: प्रविष्टि f_{23} का अर्थ है उन व्यक्तियों की संख्या जो कथन 2 को कथन 3 की तुलना में अधिक पसंद करते हैं। स्पष्टत: f_{ij} कथन i को कथन j की तुलना में पसंद करने वाले व्यक्तियों की संख्या f_{ij} से इंगित होती है। यदि कुल व्यक्तियों की

नोट

संख्या N हो तो एक मैट्रिक्स की सभी आवृत्तियों को N से भाग देकर अनुपात मैट्रिक्स या पी मैट्रिक्स (Proportion Matrix of p-Matrix) में परिवर्तित किया जाता है। तत्पश्चात् सामान्य वक्र सारणी (NPC) की सहायता से विभिन्न p मानों के सापेक्ष Z मान ज्ञात करके Z मैट्रिक्स (Z-Matrix) तैयार की जाती है। पी मैट्रिक्स को ज़ेड मैट्रिक्स में बदलने के लिए एन.पी.सी. सारणी का सरलीकृत रूप सारणी 22.3 में दिया गया है। पाठकों की सरलता के लिए एफ, पी तथा ज़ेड मैट्रिक्स के प्रारूप क्रमशः सारणी 22.4, 22.5 तथा 22.6 में दिये गये हैं।

ज़ेड मैट्रिक्स की सहायता से विभिन्न कथनों के लिए मापनी मूल्यों (Scale Values) की गणना की जाती है। ज़ेड मैट्रिक्स के प्रथम स्तम्भ में दिये गये विभिन्न Z मूल्यों को पीछे वर्णित मापनी मूल्य के अंतर के समीकरण के आधार पर निम्न ढंग से लिखा जा सकता है।

$$Z_{11} = S_1 - S_1$$
$$Z_{12} = S_1 - S_2$$
$$Z_{13} = S_1 - S_3$$
$$- \quad - \quad - \quad -$$
$$- \quad - \quad - \quad -$$
$$Z_{1n} = S_1 - S_n$$

उपरोक्त दिये गये समीकरणों के दोनों पक्षों का योग करने पर

$$\sum Z_{1i} = n S_1 - \sum S_i$$

दोनों पक्षों को n से भाग देने पर

$$\frac{\sum Z_{1i}}{n} = S_1 - \frac{\sum S_i}{n}$$

जहाँ $\sum Z_{1i}/n$ ज़ेड मैट्रिक्स के प्रथम स्तम्भ में दिये गये समस्त z मानों का मध्यमान है, जिसे Z_i से लिखा जा सकता है तथा $\sum S_i/n$ सभी कथनों के मापनी मूल्यों का मध्यमान है, जिसे S से लिखा जा सकता है। दूसरे शब्दों में

$$Z_1 = S_1 - S$$

सामान्य रूप से इस समीकरण को निम्न ढंग से लिखा जा सकता है।

$$Z_i = S_i - S$$

जहाँ Z_i = ज़ेड मैट्रिक्स के i स्तम्भ में Z मानों का मध्यमान है।

S_i = कथन i का मापनी मूल्य है।

S = सभी कथनों के मापनी मूल्यों का मध्यमान है।

दिए गए समीकरण से स्पष्ट है कि ज़ेड मैट्रिक्स के स्तम्भों में अंकित ज़ेड मानों के मध्यमान विभिन्न कथनों के लिए मापनी मूल्यों को उनके मध्यमान से लिए गये विचलन के रूप में अभिव्यक्त करते हैं। स्पष्टतः इस प्रकार से प्राप्त सभी मापनी मूल्यों का योग शून्य के बराबर होगा, जिसे गणना की परिशुद्धता के लिए चेक के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। ऋणात्मक मापनी मूल्य वाले कथन सामान्य से कम अनुकूल तथा धनात्मक मूल्य वाले कथन सामान्य से अधिक अनुकूल होंगे। क्योंकि मनोवैज्ञानिक सातत्य पर मापनी मूल्य का मूल बिन्दु, जो सभी कथनों के

नोट

मापनी मूल्य का मध्यमान लिया गया है, मनचाहा (Arbitrary) है, इसलिए सभी मापनी मूल्यों को धनात्मक बनाने के लिए इनमें कोई भी स्थिरांक जोड़ा जा सकता है। स्थिरांक को जोड़ने से विभिन्न कथनों के मापनी मूल्यों में अंतर अथवा मनोवैज्ञानिक सातत्य पर कथनों की सापेक्षिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आता है। प्राय: सुविधा के लिए सर्वाधिक ऋणात्मक मूल्य के बराबर के स्थिरांक को जोड़कर सभी मापनी मूल्यों को धनात्मक बना लिया जाता है। इससे सर्वाधिक ऋणात्मक मापनी मूल्य वाले कथन का परिवर्तित मापनी मूल्य शून्य हो जाता है तथा अन्य सभी का परिवर्तित मापनी मूल्य धनात्मक हो जाता है।

कथनों के मापनी मूल्य ज्ञात करते समय कभी-कभी सभी व्यक्ति किसी युग्म में दिये गये दो कथनों में से किसी एक को अधिक पसंद करते हैं। तब अनुपात p का मान लगभग एक या लगभग शून्य आता है तथा परिणामत: Z का मान अत्यधिक (धनात्मक या ऋणात्मक) प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में ऐसे Z मानों का प्रयोग मध्यमान Z ज्ञात करते समय यथावत करना उचित नहीं होता है, क्योंकि अत्यधिक बड़े धनात्मक व ऋणात्मक Z मानों के कारण मध्यमान Z के मान को अनावश्यक रूप से बढ़ा या घटा देते हैं। इसलिए यदि जैड मैट्रिक्स में किसी Z का मान या किन्हीं Z के मान ± 2.00 से अधिक होते हैं तो इन्हें $+2.00$ या -2.00 के बराबर मानकर मध्यमान Z की गणना करना उचित होता है।

विभिन्न कथनों के मापनी मूल्य ज्ञात करने के पश्चात् इन सभी कथनों को (या इनमें से उपयुक्त छांटे गये कुछ कथनों को) यादृच्छिक क्रम (random order) में व्यवस्थित करके अभिवृत्ति मापनी तैयार कर ली जाती है। इस प्रकार से तैयार मापनी को उन व्यक्तियों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है, जिनकी अभिवृत्ति का मापन करना होता है। उनसे कहा जाता है कि वे बताएँ कि उन विभिन्न कथनों में से किन-किन कथनों से वह सहमत हैं तथा किन-किन कथनों से वे असहमत हैं। स्पष्ट है कि कथनों के प्रति सहमत तथा असहमत प्रतिक्रियाएँ व्यक्ति की उस मनोवैज्ञानिक वस्तु के प्रति अभिवृत्ति को व्यक्त करेंगे, जिससे संबंधित कथनों को बनाया गया है तथा मापनी मूल्य ज्ञात किये गये हैं। अधिक सकारात्मक अभिवृत्ति वाले व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है कि वह अधिक मापनी मूल्य वाले कथनों से सहमत होगा, जबकि कम अभिवृत्ति वाले व्यक्ति से अपेक्षा की जायेगी कि वह कम मापनी मूल्य वाले कथनों से सहमत होगा। अत: किसी व्यक्ति के लिए अभिवृत्ति प्राप्तांक ज्ञात करने के लिए उस व्यक्ति के द्वारा सहमत होने वाले कथनों के मापनी मूल्यों के आधार पर उस व्यक्ति का अभिवृत्ति प्राप्तांक ज्ञात किया जा सकता है। इसके लिए प्राय: मध्यांक (median) का उपयोग करते हैं। दूसरे शब्दों में यदि कोई व्यक्ति 2.5, 2.8 तथा 3.1 मापनी मूल्य वाले तीन कथनों से सहमति प्रकट करता है तो उसका अभिवृत्ति प्राप्तांक इन तीनों का मध्यांक, अर्थात् 2.8 होगा। इसी प्रकार से यदि कोई व्यक्ति .78, .95, .97 तथा 1.02 मापनी मूल्य वाले चार कथनों से सहमति प्रकट करता है तो उसका अभिवृत्ति प्राप्तांक इन चारों का मध्यांक अर्थात् .96 होगा।

पाठकों की सरलता के लिए एफ मैट्रिक्स, पी मैट्रिक्स तथा ज़ेड मैट्रिक्स तैयार करने की विधि को एक उदाहरण की सहायता से स्पष्ट किया जा रहा है। उदाहरणार्थ, माना किसी अभिवृत्ति मापनी के लिए कुल आठ कथन तैयार किये गये हैं, जिन्हें युग्म तुलना विधि से मनोवैज्ञानिक सातत्य पर क्रमबद्ध करके उनके मापनी मूल्य ज्ञात करने हैं। स्पष्ट है कि कथनों के कुल 28 युग्म या 28 जोड़े बनेंगे। उदाहरण के लिए यह भी माना कि कुल 150 व्यक्तियों ($N = 150$) को कथनों के ये जोड़े दिये गये तथा उनसे कहा गया कि वे प्रत्येक जोड़े के दो कथनों में से एक कथन जो उन्हें अधिक पसंद हो उसे बतायें। प्रत्येक जोड़े में कथनों को अधिक पसंद करने वाले व्यक्तियों की आवृत्तियाँ अलग-अलग ज्ञात की गयी। स्पष्टत: किसी भी जोड़े के लिए प्राप्त दो आवृत्तियों का योग सदैव ही N (अर्थात् 150) के बराबर होगा। इन आवृत्तियों को आवृत्ति मैट्रिक्स (F-Matrix) के रूप में सारणी 22.7 के अनुसार लिखा जा सकता है।

नोट

सारणी 22.7: अभिवृत्ति मापनी के लिए एफ मैट्रिक्स (N = 150)
(F-Matrix for the Attitude Scale)

कथन	*1*	*2*	*3*	*4*	*5*	*6*	*7*	*8*
1	75	123	65	140	100	115	138	83
2	27	75	53	133	88	110	119	55
3	85	97	75	118	78	122	100	115
4	10	17	32	75	108	105	145	75
5	50	62	72	42	75	99	87	66
6	35	40	28	45	51	75	128	90
7	12	31	50	5	63	22	75	48
8	67	95	35	75	84	60	102	75

एफ मैट्रिक्स में दी गयी संख्याएँ बताती हैं कि 150 व्यक्तियों में से कितने व्यक्ति स्तम्भ के कथन को पंक्ति के कथन की तुलना में अधिक पसंद करते हैं। कर्ण में प्रत्येक जगह $N/2$ अर्थात् 75 को रखा गया है। इस मैट्रिक्स की प्रत्येक आवृत्ति को N अर्थात् 150 से भाग देने पर आवृत्तियों के अनुपात प्राप्त हो सकेंगे, जिन्हें सारणी 22.8 में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी 22.8: सारणी 22.7 में दी गयी एफ मैट्रिक्स के लिए पी मैट्रिक्स
(p-Matrix for the F-Matrix given in Table 22.7)

कथन	*1*	*2*	*3*	*4*	*5*	*6*	*7*	*8*
1	.50	.82	.43	.93	.67	.77	.92	.55
2	.18	.50	.35	.89	.59	.73	.79	.37
3	.57	.65	.50	.79	.52	.81	.67	.77
4	.07	.11	.21	.50	.72	.70	.97	.50
5	.33	.41	.48	.28	.50	.66	.58	.44
6	.23	.27	.19	.30	.34	.50	.83	.60
7	.08	.21	.33	.03	.42	.17	.50	.32
8	.45	.63	.23	.50	.56	.40	.68	.50

पी मैट्रिक्स में दिये गये p मानों को सामान्य वक्र सारणी की सहायता से Z मानों में परिवर्तित करके Z मैट्रिक्स तैयार की जा सकती है। ज़ेड मैट्रिक्स के विभिन्न स्तम्भों में दिये गये Z मानों (+ 2.00 से अधिक या –2.00 से कम के Z मानों को क्रमशः + 2.00 व –2.00 मानते हुए) के मध्यमान ज्ञात किये गये हैं, जिन्हें जैड मैट्रिक्स में एक नई पंक्ति जोड़कर प्रस्तुत किया गया है। अब इस मध्यमान जैड मानों में सबसे बड़े ऋणात्मक मध्यमान Z मान के बराबर के स्थिरांक अर्थात् .62 को जोड़कर सभी मध्यमान Z मानों को धनात्मक बना लिया गया है। इस प्रकार से प्राप्त मान ही विभिन्न कथनों के मापनी मूल्य (Scale Values) हैं। मापनी मूल्यों को Z मैट्रिक्स के सबसे नीचे एक नई पंक्ति जोड़कर प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न कथनों के यह मापनी मूल्य की अभिवृत्ति के मनोवैज्ञानिक सातत्य को व्यक्त करते हैं। उपरोक्त सारणी 22.8 की पी मैट्रिक्स से बनायी गयी जैड मैट्रिक्स सारणी

नोट

में दी गयी है। सारणी 22.9 के अवलोकन से स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक सातत्य पर कथनों का क्रम 1, 3, 2, 8, 4, 5, 6, व 7 है, जहाँ कथन 1 निम्नतम तथा कथन 7 अधिकतम अभिवृत्ति को व्यक्त कर रहा है। मनोवैज्ञानिक सातत्य पर इन कथनों के मापनी मूल्यों को निम्न चित्र 22.4 के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

चित्र 22.4

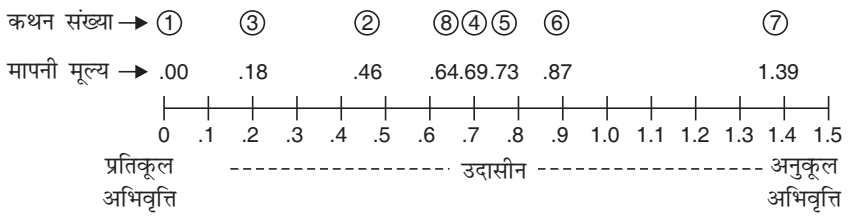

मनोवैज्ञानिक सातत्य पर विभिन्न कथनों की स्थिति
(Position of different Statements on the Psychological Continuum)

सारणी 22.9

सारणी 22.8 में दी गयी पी मैट्रिक्स के लिए ज़ेड मैट्रिक्स
(Z-Matrix for p-matrix given in Table 22.8)

कथन	*1*	*2*	*3*	*4*	*5*	*6*	*7*	*8*
1	.00	+92	–18	+1.48	+.44	+.74	+1.41	+.13
2	–.92	.00	–.39	+1.23	+.23	+.61	+.81	–.33
3	+.18	+.39	.00	+.81	+.05	+.88	+.44	+.74
4	–1.48	1.23	–.81	.00	+.58	+.52	+1.88	.00
5	–.44	–.23	–.05	–.58	.00	+.41	+.20	–.15
6	–.74	–.61	–.88	–.52	–.41	.00	+.95	+.25
7	–1.41	–.81	–.44	–1.88	–.20	–.95	.00	–.47
8	–.13	+.33	–.74	.00	–.15	–.25	+.47	.00
Σz	–4.94	–1.24	–3.49	.54	.84	1.96	6.16	.17
मध्यमान z	–.62	–.16	–.44	.07	.11	.25	.77	.02
मापनी मूल्य S = मध्यमान z + .62	.00	.46	.18	.69	.73	.87	1.39	.64

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि युग्म तुलना विधि से अभिवृत्ति मापनी का निर्माण करते समय निम्न सोपनों का अनुकरण किया जाता है–

नोट

(*i*) अभिवृत्ति कथनों (Attitude Statements) को तैयार करना तथा संपादित करना।

(*ii*) अभिवृत्ति कथनों को दो-दो के युग्मों (Pairs) में प्रस्तुत करना। यदि कुल n कथन है तो $n\,(n-1/2)$ युग्म बनेंगे।

(*iii*) अभिवृत्ति कथनों के युग्मों को व्यक्तियों के एक समूह के समक्ष प्रस्तुत करके प्रत्येक व्यक्ति से युग्म के ऐसे कथन को जानना, जो उसको उस युग्म के अन्य कथन से अधिक अनुकूल लगता हो।

(*iv*) व्यक्तियों के द्वारा कथनों के युग्मों पर प्रस्तुत प्रतिक्रियाओं की सहायता से F मैट्रिक्स तैयार करना।

(*v*) F मैट्रिक्स के प्रत्येक f मान को n से विभाजित करके p प्राप्त करना तथा उनकी सहायता से p मैट्रिक्स तैयार करना।

(*vi*) p मैट्रिक्स को सामान्य वक्र सारणी की सहायता से Z मैट्रिक्स में परिवर्तित करना।

(*vii*) Z मैट्रिक्स के विभिन्न स्तम्भों में दिये गये Z मानों का मध्यमान ज्ञात करना। मध्यमान ज्ञात करते समय यदि किसी z का मान ± 2 से अधिक होता है, तो ऐसे z मानों का मध्यमान ज्ञात करते समय ± 2.00 ही मानते हैं।

(*viii*) मापनी मूल्य ज्ञात करने के उपरांत कथनों को यादृच्छिक क्रम में व्यवस्थित करके अभिवृत्ति मापनी तैयार करना।

(*ix*) तैयार की गयी अभिवृत्ति मापनियों को उन व्यक्तियों पर प्रशासित करना, जिनकी अभिवृत्ति का मापन करना है। इन व्यक्तियों से मापनी में दिये गये विभिन्न कथनों के प्रति सहमति अथवा असहमति प्राप्त करना।

(*x*) व्यक्ति के द्वारा सहमति प्रकट किये गये समस्त कथनों में मापनी मूल्यों का मध्यांक ज्ञात करना, जो उस व्यक्ति के लिए अभिवृत्ति प्राप्तांक (Attitude Score) होगा।

(*xi*) मापनी की विश्वसनीयता, वैधता तथा मानक ज्ञात करना।

समदृष्टि अन्तराल विधि (Method of Equal-Appearing Intervals)

युग्म तुलना विधि के समान समदृष्टि अन्तराल विधि में भी कथनों को मनोवैज्ञानिक सातत्य पर परिमापित करके उनके मापनी मूल्य ज्ञात किये जाते हैं, इसीलिए समदृष्टि विधि को भी अभिवृत्ति मापन की परिमापित कथन विधि यों के वर्ग में रखा जाता है। युग्म तुलना विधि के द्वारा कथनों को परिमापित करके उनके मापनी मूल्य निकालने की विधि तभी लाभदायक है, जब परिमापित किये जाने वाले कथनों की संख्या कम होती है। युग्म तुलना विधि में कथनों के सभी संभव जोड़े बनाये जाते हैं तथा सभी जोड़ों पर व्यक्ति को तुलनात्मक निर्णय करने के लिए कहा जाता है। यदि कथनों की संख्या n होती है तो प्रत्येक व्यक्ति को $(n\,(n-1)/2)$ तुलनात्मक निर्णय देने होते हैं। बीस कथनों के लिए 190 तुलनात्मक निर्णय, पच्चीस कथनों के लिए 300 तुलनात्मक निर्णय, तीस कथनों के लिए 435 तुलनात्मक निर्णय, चालीस कथनों के लिए 780 तुलनात्मक निर्णय, पचास कथनों के लिए 1225 तुलनात्मक निर्णय तथा साठ कथनों के लिए 1770 तुलनात्मक निर्णयों की आवश्यकता होती है। स्पष्ट है कि यदि कथनों की संख्या अधिक होती है तो कथनों को युग्मों के रूप में प्रस्तुत करने में तथा उन पर निर्णय प्राप्त करने में अत्यधिक समय, धन तथा शक्ति का अपव्यय होता है। कथनों के विभिन्न युग्मों पर निर्णय देने के लिए ऐसी स्थिति में व्यक्तियों का मिलना तथा उनके द्वारा इस कार्य के लिए अपने समय को उपलब्ध कराना प्रायः संभव नहीं होता। कथनों की संख्या अधिक होने पर न केवल निर्णय लेने में अधिक समय लगता है, वरन् एफ मैट्रिक्स, पी मैट्रिक्स तथा ज़ेड मैट्रिक्स बनाकर गणना करने तथा कथनों के मापनी मूल्य ज्ञात करने में अत्यधिक समय लगता है तथा त्रुटि होने की संभावना बढ़ जाती है। युग्म तुलना विधि की इस कठिनाई को देखते हुए थर्सटन एवं चेव

नोट

(Thurstone and Chave) नामक मनोवैज्ञानिकों के द्वारा सन् 1929 में समदृष्टि अन्तराल विधि का प्रतिपादन किया गया। युग्म तुलना विधि के विपरीत समदृष्टि अन्तराल विधि में प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक कथन के लिए केवल एक निर्णय देना होता है। अपनी सरलता तथा सुगमता के कारण समदृष्टि अन्तराल विधि के द्वारा मापनी मूल्य ज्ञात करने की प्रविधि का प्रयोग व्यापक रूप से उन स्थितियों में किया जाता है, जब कथनों की संख्या अधिक होती है। यद्यपि समदृष्टि अन्तराल विधि का सर्वप्रथम वर्णन थर्सटन व चेव के द्वारा किया गया था, फिर भी मनोविज्ञान, अनुसंधान तथा मापन के साहित्य में इसे अभिवृत्ति मापनी निर्माण की थर्सटन विधि के रूप में अधिक जाना जाता है तथा इस विधि से तैयार मापनी को थर्सटन मापनी (Thurstone Scale) के नाम से पुकारा जाता है।

समदृष्टि अन्तराल विधि में किसी व्यक्ति, वस्तु या प्रक्रिया से संबंधित कथनों को विशेषज्ञों की सहायता से कथनों के द्वारा अभिवृत्ति को व्यक्त करने की सीमा के आधार पर 11 श्रेणियों में विभक्त करने का प्रयास किया जाता है। ये 11 श्रेणियाँ मनोवैज्ञानिक सातत्य (Psychological Continuum) पर लगभग समान अन्तराल पर स्थित होती है। इस मनोवैज्ञानिक सातत्य को चित्र 22.5 में प्रस्तुत किया गया है।

चित्र 22.5

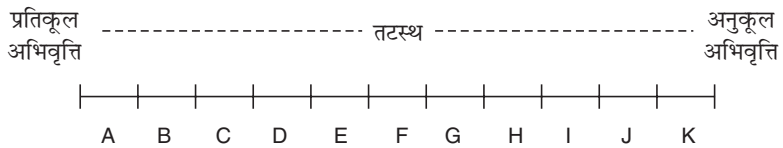

समदृष्टि अन्तराल विधि में प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक सातत्य

(Psychological Continuum Used in Equal-Appearing Intervals)

स्पष्ट है कि *A* श्रेणी में सर्वाधिक प्रतिकूल अभिवृत्ति व्यक्त करने वाले कथनों को रखा जायेगा, जबकि '*K*' श्रेणी में सर्वाधिक अनुकूल अभिवृत्ति व्यक्त करने वाले कथनों को रखा जायेगा। *F* श्रेणी के अंतर्गत तटस्थ तथा उदासीन अभिवृत्ति वाले कथनों को रखा जाता है। जैसे-जैसे '*F*' से श्रेणियाँ '*K*' की ओर बढ़ती है उनके द्वारा अभिव्यक्ति अभिवृत्ति की अनुकूलता की मात्रा भी बढ़ती जाती है तथा जैसे-जैसे श्रेणियाँ '*F*' से '*A*' की ओर जाती हैं, वैसे-वैसे कथनों द्वारा व्यक्त अभिवृत्ति में प्रतिकूलता की मात्रा भी बढ़ती जाती है तथा जैसे-जैसे श्रेणियाँ '*F*' से '*A*' की ओर जाती हैं, वैसे-वैसे कथनों द्वारा व्यक्त अभिवृत्ति में प्रतिकूलता की मात्रा भी बढ़ती जाती है। थर्सटन एवं चेव ने विशेषज्ञों/निर्णायकों (Experts/Judges) से विभिन्न कथनों को इन 11 श्रेणियों में विभक्त कराने के लिए कार्डस का प्रयोग किया। प्रत्येक कथन को एक-एक कार्ड पर लिखा गया था, तथा विशेषज्ञों/निर्णायकों को इन सभी कार्डों को उन पर लिखे कथनों के द्वारा व्यक्त की जाने वाली अभिवृत्ति की मात्रा को देखते हुए कार्डों '*A*' से '*K*' तक की 11 ढेरियों में बाँटने के लिए कहा गया था। यहाँ यह स्पष्ट समझ लेना होगा कि विशेषज्ञों को अपनी स्वयं की अभिवृत्ति की मात्रा को व्यक्त नहीं करना होता है, वरन् कथन के द्वारा किस सीमा तक अभिवृत्ति प्रतिबिम्बित (reflect) हो रही है, इसके आधार पर कार्डों को श्रेणीबद्ध करना होता है। कथनों के लिए विशेषज्ञों/निर्णायकों के निर्णयों को जानने की अनेक भिन्न-भिन्न विधियों का प्रयोग कालान्तर में अनुसंधानकर्त्ताओं, मापनी निर्माताओं तथा मनोवैज्ञानिकों ने किया है। कुछ ने कथनों को कागज पर मुद्रित कराकर उनके आगे 11 खाने या स्तम्भ प्रस्तुत किए, जिनमें से एक पर सही का निशान लगाकर विशेषज्ञ/निर्णायक को अपनी राय व्यक्त करनी होती है। कुछ ने कथनों के आगे '*A*' से '*K*' तक के 11 अक्षर अथवा एक से ग्यारह तक के अंक प्रस्तुत किये, जिनमें से किसी एक पर गोला बनाकर विशेषज्ञ को अपना निर्णय देना होता है। कुछ ने कथनों के साथ ग्यारह इंच लम्बी रेखा, जो अनुकूल

नोट

से प्रतिकूल तक के मनोवैज्ञानिक सातत्य को प्रकट करती है, को प्रस्तुत किया, जिस पर उपयुक्त स्थान पर ही सही का चिह्न लगाकर विशेषज्ञ को अपना निर्णय देना होता है। इन विभिन्न प्रकारों अथवा किसी अन्य प्रकार से या अन्य किसी विधि से कथनों के संबंध में विशेषज्ञों/निर्णायकों के निर्णय को जान लिया जाता है तथा कथनों को ग्यारह क्रमबद्ध भागों में विभक्त कर लिया जाता है। यद्यपि थर्सटन एवं चेव ने तीन सौ निर्णायकों से इस प्रकार के निर्णय कराए, परन्तु बाद में देखा गया कि कम संख्या में विशेषज्ञों के होने पर भी विश्वसनीय मापनी मूल्य प्राप्त हो जाते हैं। आजकल प्राय: तीस से लेकर पचास विशेषज्ञों अथवा निर्णायकों से प्राप्त निर्णयों के आधार पर मापनी मूल्य ज्ञात कर लिये जाते हैं।

थर्सटन एवं चेव की मान्यता थी कि इस प्रकार से ग्यारह ढेरियों (Piles) में विभक्त अभिवृत्ति कथनों के द्वारा व्यक्त की जाने वाली अभिवृत्ति की मात्रा में समान अन्तराल होता है तथा इन विभिन्न ढेरियों के कथनों को एक से ग्यारह तक के अंक प्रदान किये जा सकते हैं। स्पष्ट है कि A ढेरी के कार्डों को 1, B ढेरी के कार्डों को 2, C ढेरी के कार्डों को 3..... तथा K ढेरी के कार्डों को ग्यारह अंक दिये जायेंगे। दूसरे शब्दों में मनोवैज्ञानिक सातत्य में, जिस पर विशेषज्ञों ने कथनों को ग्यारह ढेरियों में बाँटा, ग्यारह बिन्दु निर्धारण मापनी है। इस ग्यारह बिन्दु निर्धारण मापनी के दोनों सिरे अभिवृत्ति की प्रतिकूलता तथा अनुकूलता को व्यक्त करते हैं। विशेषज्ञों के द्वारा विभिन्न कथनों पर दिये गये अंकों के आधार पर प्रत्येक कथन के लिए एक औसत मान ज्ञात किया जा सकता है, जो ग्यारह बिन्दु मनोवैज्ञानिक सातत्य पर उस कथन का मापनी मूल्य होगा। औसत मान के रूप में थर्सटन एवं चेव ने मध्यांक का प्रयोग किया। इस प्रकार से किसी कथन का मापनी मूल्य उस कथन पर विभिन्न विशेषज्ञों/निर्णायकों के द्वारा ग्यारह बिन्दु मापनी पर दिये अंकों का मध्यांक होगा।

समदृष्टि अन्तराल विधि से कथनों के मापनी मूल्य ज्ञात करने की विधि को एक उदाहरण के द्वारा आगे स्पष्ट किया जायेगा, परन्तु इससे पूर्व निर्णायकों के संबंध में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है। कथनों को ग्यारह बिन्दु मापनी अर्थात् मनोवैज्ञानिक सातत्य पर ग्यारह श्रेणियों में विभक्त करते समय कुछ विशेषज्ञ/निर्णायक इस कार्य में अरुचि के कारण लापरवाही अथवा असावधानी करते हैं। इसके अतिरिक्त कभी-कभी कुछ विशेषज्ञ भी निर्देशों को समझने में गलती कर जाते हैं। इसके अतिरिक्त कभी-कभी कुछ विशेषज्ञ कथनों के द्वारा अभिवृत्ति को व्यक्त करने की सीमा के आधार पर उन्हें श्रेणीबद्ध न करके अपनी स्वयं की अभिवृत्ति (own agreement or disagreement) के आधार पर श्रेणीबद्ध कर देते हैं। ऐसी स्थिति में ऐसे विशेषज्ञों के द्वारा किये गये त्रुटिपूर्ण निर्णयों को कथनों के मापन मूल्य ज्ञात करते समय अलग करना अत्यन्त आवश्यक होगा। थर्सटन एवं चेव ने अपने अध्ययन में 130 कथनों को विशेषज्ञों से ग्यारह श्रेणियों में बाँटने के लिए कहा था तथा उन्होंने उन विशेषज्ञों के निर्णयों को असावधानीपूर्वक किये निर्णय मानकर निरस्त कर दिया, जिन्होंने किसी भी एक श्रेणी में 30 या उससे अधिक कथनों को रखा था। इस प्रकार से उन्होंने 341 विशेषज्ञों में से 41 विशेषज्ञों के निर्णयों को कथन मापनी मूल्य ज्ञात करने में सम्मिलित नहीं किया। अत: किसी भी एक श्रेणी में 25% से अधिक कथनों को रखने वाले विशेषज्ञों के निर्णयों को इस आधार पर निरस्त किया जा सकता है कि उन्होंने अपने कार्य को सावधानीपूर्वक नहीं किया है तथा उनके निर्णयों को कथनों के मापनी मूल्य ज्ञात करते समय गणना कार्य में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए।

समदृष्टि अन्तराल विधि मापनी बनाते समय प्रारंभ में प्राय: अधिक संख्या में कथन तैयार किये जाते हैं तथा विशेषज्ञों के द्वारा कथनों के संबंध में दिये गये निर्णयों के आधार पर उनमें से कुछ उपयुक्त कथनों का चयन किया जाता है तथा इन चयनित कथनों से ही अभिवृत्ति मापनी के अंतिम प्रारूप को तैयार किया जाता है। कथनों का चयन करते समय उन पर विशेषज्ञों के द्वारा दिए गये निर्णयों के मध्यांक तथा चतुर्थांक विचलन Q की गणना की जाती है। मध्यांक विभिन्न कथनों के मापनी मूल्य को इंगित करता है जबकि चतुर्थांक विचलन Q यह बताता है कि किसी

नोट

कथन पर विशेषज्ञों के निर्णयों में परस्पर कितना अन्तर है। स्पष्ट है कि जिन कथनों पर विशेषज्ञों के निर्णय में विचलन कम होता है, अर्थात् जिन कथनों के संबंध में विशेषज्ञ अधिक एकमत होते हैं, वे कथन अधिक स्पष्ट तथा उपयुक्त माने जाने चाहिए। जब विशेषज्ञों के निर्णयों में अधिक एकरूपता (Agreement) होती है तो चतुर्थांक विचलन Q का मान कम आता है। चतुर्थांक विचलन Q का अधिक मान यह बताता है कि किसी कथन के द्वारा व्यक्त की जाने वाली अभिवृत्ति की मात्रा के संबंध में विशेषज्ञों के निर्णय परस्पर अधिक भिन्नता रखते हैं तथा ऐसे कथनों में निश्चय ही कुछ गड़बड़ है। थर्सटन तथा चेव ने माना कि चतुर्थांक विचलन Q का मान इस बात का द्योतक है कि कथन अस्पष्ट (Ambiguous) है। निर्णायकों के द्वारा किसी कथन की व्याख्या एक से अधिक प्रकार से करने के परिणामस्वरूप ही विशेषज्ञ कथन के द्वारा अभिव्यक्त अभिवृत्ति के संबंध में भिन्न-भिन्न निर्णय देते हैं तथा परिणामत: Q का मान अधिक आता है। अत: अभिवृत्ति मापनी के अंतिम प्रारूप में केवल उन्हीं कथनों को सम्मिलित किया जाना चाहिए, जिनके मापनी मूल्य के संबंध में विशेषज्ञ एकमत हों अर्थात् जिनका चतुर्थांक विचलन मान Q कम हो।

सामान्यत: समदृष्टि अन्तराल विधि के द्वारा तैयार किये गये अभिवृत्ति मापनी के अंतिम प्रारूप (Final Form) में काफी कम संख्या में कथनों को रखा जाता है। प्राय: 20 से 25 कथनों को लेकर अभिवृत्ति मापनी का अंतिम प्रारूप तैयार कर लिया जाता है। कथनों को छाँटते समय मापनी मूल्य S तथा चतुर्थांक विचलन Q दोनों को ध्यान में रखा जाता है। कथनों को इस तरह से छाँटते हैं कि कथनों के मापनी मूल्य S सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक सातत्य पर लगभग समान अन्तराल (Relativly Equally Space) में वितरित हों तथा उनके चतुर्थांक विचलन Q के मान अपेक्षाकृत कम हों। यदि लगभग समान मापंनी मूल्य वाले अनेक कथनों में से किसी एक का चयन करना होता है तो उस कथन का चयन किया जाता है, जिसका चतुर्थांक विचलन सबसे कम होता है, क्योंकि वह कथन सबसे कम भ्रमित (Least Ambigious) करने वाला माना जा सकता है।

मापनी मूल्य तथा चतुर्थांक विचलन के आधार पर अनेक कथनों में से कुछ कथनों का चयन करने के उपरान्त चयनित कथनों को यादृच्छिक क्रम में व्यवस्थित कर लिया जाता है तथा उन व्यक्तियों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है, जिनकी अभिवृत्ति का मापन करना होता है। व्यक्तियों को उन कथनों के प्रति अपनी सहमति अथवा असहमति व्यक्त करनी होती है। कोई व्यक्ति जिन कथनों के प्रति अपनी सहमति व्यक्त करता है, उन कथनों के मापनी मूल्यों की सहायता से उसका अभिवृत्ति प्राप्तांक ज्ञात किया जाता है जो अभिवृत्ति के आधार पर उस व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक सातत्य पर स्थिति को व्यक्त करता है। अभिवृत्ति प्राप्तांक ज्ञात करने के लिए मध्यमान अथवा मध्यांक की गणना की जाती है। दूसरे शब्दों में, कोई व्यक्ति जिन कथनों से सहमति प्रकट करता है, उन कथनों के मापनी मूल्यों का मध्यमान या मध्यांक ही उसका अभिवृत्ति प्राप्तांक होती है। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति पाँच कथनों से सहमति प्रकट करता है, जिनका मापनी मूल्य क्रमश: 4.6, 7.5, 6.3, 5.2 व 3.7 हों तथा मध्यांक विधि का प्रयोग किया जाये जो उसका अभिवृत्ति प्राप्तांक इन पाँचों मापनी मूल्यों का मध्यांक अर्थात् 5.2 होगा। मध्यमान का प्रयोग करने पर उसका अभिवृत्ति प्राप्तांक इन पाँचों मापनी मूल्यों मध्यमान अर्थात् 5.46 होगा। मापनी के अंतिम प्रारूप को तैयार करने के उपरांत उसकी विश्वसनीयता तथा वैधता ज्ञात की जाती है। समदृष्टि अन्तराल विधि में लगभग यह परम्परा बन गयी है कि अभिवृत्ति मापनी के दो समानान्तर प्रारूप तैयार किए जाएँ तथा उनको किसी बड़े प्रतिदर्श पर प्रशासित करके उनकी समानान्तर प्रारूप विश्वसनीयता की गणना की जाए। वैधता तथा मानक ज्ञात करने के लिए किसी भी उपयुक्त विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

पाठकों की सुविधा के लिए अभिवृत्ति कथनों के लिए विशेषज्ञों के निर्णय के आधार पर मध्यांक (मापनी मूल्य) तथा चतुर्थांक विचलन ज्ञात करने की विधि को एक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है। उदाहरण के लिए माना किसी अभिवृत्ति मापनी के लिए प्रारम्भ में 6 कथन बनाये गये हैं, जिन्हें 15 विशेषज्ञों को इस निर्देश के साथ दिया गया है कि वे इन कथनों के द्वारा अभिवृत्ति को व्यक्त करने के आधार पर इन्हें प्रतिकूल से अनुकूल के 11

नोट

बिन्दु मनोवैज्ञानिक सातत्य पर श्रेणीबद्ध कर दें। विशेषज्ञों के द्वारा दिये गये निर्णयों को सारणी 22.10 में प्रस्तुत किया गया है। मध्यांक व चतुर्थांक विचलन ज्ञात करने में सुविधा के लिए इस सारणी में $A, B, C...J, K$ के स्थान पर 1, 2, 3.....9, 10, 11 अंकों के द्वारा विशेषज्ञों के निर्णयों को व्यक्त किया गया है। मध्यांक (Md) व चतुर्थांक विचलन (Q) के मान ज्ञात करने की विधि सांख्यिकी के अध्ययन से स्वत: स्पष्ट हो सकेगी।

सारणी 22.10

कथनों पर विशेषज्ञों के द्वारा निर्णीत स्थिति तथा मापनी मूल्यों की गणना

(Experts Opinion and Scale Values for the Statements)

विशेषज्ञ	*कथन*					
	I	***II***	***III***	***IV***	***V***	***VI***
1	7	5	9	5	4	8
2	9	6	6	4	7	11
3	7	6	6	3	8	9
4	8	2	8	5	3	11
5	9	6	7	2	7	10
6	6	3	9	3	4	11
7	8	5	7	1	8	9
8	8	6	10	3	5	11
9	8	5	2	3	6	11
10	6	5	7	5	3	7
11	8	4	10	1	3	11
12	7	6	10	6	8	8
13	8	5	8	6	8	11
14	8	4	10	3	9	8
15	10	7	9	7	3	9
Md	8	5	9	3	6	10
Q	0.5	1.0	1.5	1.0	2.5	1.5

समदृष्टि अन्तराल विधि से कथनों के मापनी मूल्य ज्ञात करते समय प्राय: विशेषज्ञों/निर्णायकों की संख्या काफी बड़ी (50 या इससे अधिक) होती है। जिसकी वजह से उपरोक्त वर्णित सारणी बनाकर कथनों के लिए मध्यांक व चतुर्थांक विचलनों का मान ज्ञात करना कुछ जटिल व असुविधाजनक होता है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक कथन के लिए विशेषज्ञों के द्वारा दिये गये निर्णयों को अलग-अलग आवृत्ति वितरण के रूप में व्यवस्थित कर लेते हैं तथा आवृत्ति वितरण की सहायता से मध्यांक व चतुर्थांक विचलन ज्ञात कर लेते हैं। इस प्रकार के आवृत्ति वितरणों का एक उदाहरण सारणी 22.11 दिया गया है।

नोट

सारणी 22.11

समदृष्टि अन्तराल विधि में मापनी मूल्य ज्ञात करने के लिए आवृत्ति वितरण

(Frequency distribution for determining the Scale Values by Equal Appearing Intervals Method) (N = 20)

कथन Statement		मनोवैज्ञानिक सातत्य पर श्रेणियाँ											मापनी मूल्य Scale Value S	चतुर्थांक विचलन Q
		A 1	*B* 2	*C* 3	*D* 4	*E* 5	*F* 6	*G* 7	*H* 8	*I* 9	*J* 10	*K* 11		
I	*f*	0	0	0	0	22	28	45	40	37	20	8	7.63	1.20
	cf	0	0	0	0	22	50	95	135	172	192	200		
II	*f*	4	17	19	35	47	23	25	12	9	9	0	5.03	1.46
	cf	4	21	40	75	122	145	170	182	191	200	200		
III	*f*	0	0	0	0	0	8	27	35	62	38	30	8.96	1.02
	cf	0	0	0	0	0	8	35	70	132	170	200		
IV	*f*	35	46	53	30	25	11	0	0	0	0	0	2.86	1.10
	cf	35	81	134	164	189	200	200	200	200	200	200		

सारणी में वर्णित ढंग से प्रत्येक कथन के लिए विशेषज्ञों द्वारा दिय गये निर्णयों को वर्गीकृत करके भिन्न-भिन्न श्रेणियों के लिए आवृत्तियाँ (f) तथा संचयी आवृत्तियाँ (cf) ज्ञात कर ली जाती है। तत्पश्चात् सूत्रों का प्रयोग करके मापनी मूल्य (S) तथा चतुर्थांक विचलन (Q) ज्ञात कर लिये जाते हैं। मापनी मूल्य (S) (अर्थात् मध्यांक) ज्ञात करने के लिए निम्न का प्रयोग किया जाता है।

$$\text{मापनी मूल्य, } S = L + \left(\frac{\frac{N}{2} - cf_b}{f} \right)$$

जहाँ L = उस श्रेणी की निम्न सीमा है, जिसमें $N/2$ वीं संचयी आवृत्ति स्थित है। स्पष्टत: L का मान उस श्रेणी के लिए निर्धारित अंक में से 5 घटाकर प्राप्त किया जायेगा।

N = कुल आवृत्तियों की संख्या है। स्पष्टत: यह कुल निर्णायकों की संख्या होगा।

cf = $N/2$ वीं संचयी वाली श्रेणी से ठीक नीचे वाली श्रेणी की संचयी आवृत्ति है।

f = $N/2$ वीं संचयी आवृत्ति वाली श्रेणी की आवृत्ति है।

कथन 1 का मापनी मूल्य, $S_1 = 7.5 + \frac{100 - 95}{40} = 7.63$

कथन 2 का मापनी मूल्य, $S_2 = 4.5 + \frac{100 - 75}{47} = 5.03$

नोट

कथन 3 का मापनी मूल्य, $S_3 = 8.5 + \frac{100 - 70}{62} = 8.98$

कथन 4 का मापनी मूल्य, $S_4 = 2.5 + \frac{100 - 81}{53} = 2.86$

चतुर्थांक विचलन अर्थात Q का मान ज्ञात करने के लिए पहले प्रत्येक कथन के लिए Q_1 तथा Q_2 की गणना की जाती है। प्रथम चतुर्थांक Q_1 की गणना के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$Q_1 = L + \frac{\frac{N}{4} - cf_b}{f}$$

जहाँ L = उस श्रेणी की निम्न सीमा है, जिसमें $N/4$ वीं संचयी आवृत्ति स्थित है।

cf_b = $N/4$ वीं संचयी आवृत्ति से ठीक नीचे वाली श्रेणी की संचयी आवृत्ति है।

f = $N/4$ वी संचयी आवृत्ति वाली श्रेणी की आवृत्ति है।

तृतीय चतुर्थांक Q_3 की गणना के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$Q_3 = L + \frac{\frac{3N}{4} - cf_b}{f}$$

जहाँ L = उस श्रेणी की निम्न सीमा जिसमें $3N/4$ की संचयी आकृत्ति स्थित है।

cf_b = $3N/4$ वीं संचयी आवृत्ति वाली श्रेणी से ठीक नीचे वाली श्रेणी की संचयी आवृत्ति है।

f = $3N/4$ वीं संचयी आवृत्ति वाली श्रेणी की आवृत्ति है।

Q_1 तथा Q_3 को ज्ञात करने के उपरांत निम्न सूत्र से Q की गणना की जाती है–

$$Q = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

उपरोक्त वर्णत चार कथनों के लिए Q के मान क्रमशः 1.20, 1.46, 1.02 तथा 1.10 प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के सभी कथनों के लिए मापनी मूल्य (S) तथा Q के मानों को ज्ञात कर लिया जाता है। कथनों के लिए S तथा Q मानों को रेखाचित्रों तथा नोमोग्राफ (Nomographs) की सहायता से भी ज्ञात किया जा सकता है। विभिन्न कथनों के मापनी मूल्य ही मनोवैज्ञानिक सातत्य को अभिव्यक्त करने हैं। सरणी 22.11 में वर्णित कथनों के मापनी मूल्यों तथा चतुर्थांक विचलन मानों को रेखाचित्र के द्वारा चित्र 22.6 में प्रदर्शित किया गया है–

चित्र 22.6 मनोवैज्ञानिक सातत्य पर विभिन्न कथनों की स्थिति
(Position of different Statements on the Psychological Continuum)

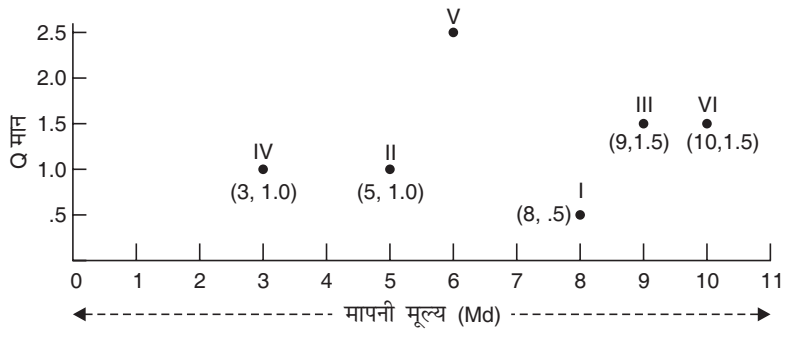

नोट

सभी कथनों के लिए मापनी मूल्यों व Q मानों की गणना करने के उपरांत इन दोनों मानों को दृष्टिगत रखते हुए कुछ कथनों का चयन करके मापनी का अंतिम रूप तैयार कर लिया जाता है। तत्पश्चात् मापनी की विश्वसनीयता व वैधता ज्ञात कर ली जाती है।

उपरोक्त विवेचन से स्पट है कि समदृष्टि विधि से अभिवृत्ति मापनी का निर्माण करते समय निम्न सोपानों का अनुसरण किया जाता है–

(*i*) बड़ी संख्या में, प्राय: 50 या इससे अधिक अभिवृत्ति कथनों (Attitude Statements) को तैयार करना तथा सम्पादित करना।

(*ii*) विशेषज्ञों के द्वारा अभिवृत्ति कथनों को प्रतिकूल से अनुकूल के ग्यारह बिन्दु मनोवैज्ञानिक सातत्य पर श्रेणीबद्ध कराना।

(*iii*) विशेषज्ञों के द्वारा दिये गये निर्णयों को अंकों में परिवर्तित करना तथा प्रत्येक कथन के लिए मध्यांक तथा चतुर्थांक विचलन की गणना करना। कथनों पर विशेषज्ञों के द्वारा दिये गए प्राप्तांकों के मध्यांक को कथनों का मापनी मूल्य कहेंगे।

(*iv*) मध्यांक तथा चतुर्थांक विचलन को दृष्टिगत रखते हुए अभिवृत्ति मापनी के लिए मापनी मूल्यों का इस प्रकार से चयन करना कि चयनित कथनों के मापनी मूल्य सम्पूर्ण सातत्य में लगभग समान अन्तराल पर वितरित हो तथा उनका चतुर्थांक विचलन यथासंभव कम हो।

(*v*) चयनित कथनों को यादृच्छिक क्रम में क्रमबद्ध करके अभिवृत्ति मापनी का अन्तिम प्रारूप तैयार करना।

(*vi*) इस प्रकार से तैयार अभिवृत्ति मापनी को उन व्यक्तियों पर प्रशासित करना, जिनकी अभिवृत्ति का मापन करना है तथा उनसे विभिन्न कथनों के प्रति अपनी सहमति या असहमति को इंगित करवाना।

(*vii*) किसी व्यक्ति के द्वारा जिन कथनों से सहमति प्रकट की गयी हो उन कथनों के मापनी मूल्यों का मध्यांक अथवा मध्यमान ज्ञात करना। यह मध्यमान अथवा मध्यांक ही उस व्यक्ति का अभिवृत्ति प्राप्तांक होगा।

(*viii*) अभिवृत्ति मापनी की विश्वसनीयता व वैधता ज्ञात करना तथा मानकों की गणना करना।

22.4 योग निर्धारण विधि (Method of Summated Ratings)

युग्म तुलना विधि तथा समदृष्टि अन्तराल विधि के विपरीत योग निर्धारण विधि में कथनों को **मनोवैज्ञानिक सातत्य** पर परिमापित करके उनके मापनी मूल्य ज्ञात नहीं किये जाते हैं, वरन् यह माना जाता है कि प्रत्येक कथन लगभग समान मात्रा में अभिवृत्ति को इंगित करता है तथा कथनों के ऊपर व्यक्तियों को अपनी परमापित प्रतिक्रिया देनी होती है। इसीलिए योग निर्धारण विधि का प्रतिपादन लिकर्ट (Likert) ने **सन् 1932** में किया था, इसलिए इसे अभिवृत्ति मापनी के निर्माण की लिकर्ट विधि भी कहा जाता है तथा इस विधि से बनी मापनी को लिकर्ट मापनी के नाम से पुकारा जाता है। लिकर्ट के द्वारा प्रतिपादित अभिवृत्ति मापनी निर्माण की इस विधि में प्रत्येक कथन के लिए पाँच प्रतिक्रियाएँ–अत्यधिक सहमत (Strongly Agree), सहमत (Agree), अनिश्चित (Undecided), असहमत (Disagree) तथा अत्यधिक असहमत (Strongly Disagree) प्रदान की जाती है। व्यक्ति को इन पाँच प्रतिक्रियाओं में से किसी एक का चयन करके कथन पर अपनी अभिवृत्ति की मात्रा को प्रतिबिम्बित करना होता है। प्रारम्भ में लिकर्ट ने किसी कथन के लिए इन पाँचों प्रतिक्रिया वर्गों को चयनित करने वाले व्यक्तियों की संख्याओं

नोट

(आवृत्तियों) का सामान्य वक्र प्रत्यावर्तन (Normal Curve Transformation) के द्वारा ज़ेड मान ज्ञात किया तथा इन ज़ेड मानों को ही विभिन्न प्रतिक्रिया वर्गों के लिए मापनी मूल्य स्वीकार किया गया। ज़ेड मान ज्ञात करने की प्रक्रिया सारणी 22.12 से स्पष्ट हो सकेगी। लिकर्ट ने पाया कि विभिन्न कथनों के पाँचों प्रतिक्रिया वर्गों के लिए मापनी मूल्य भिन्न-भिन्न प्राप्त होते हैं। यह प्रक्रिया अत्यन्त क्लिष्ट थी तथा इस प्रकार से ज्ञात किये गये मापनी मूल्यों की सहायता से किसी व्यक्ति का कुल अभिवृत्ति प्राप्तांक (Total attitude score) ज्ञात करना एक जटिल कार्य होता था।

परन्तु बाद में लिकर्ट ने पाया कि उपरोक्त वर्णित पाँचों प्रतिक्रिया वर्गों को क्रमशः 4, 3, 2, 1 व 0 के मापनी मूल्य देने से प्राप्त अभिवृत्ति प्राप्तांकों तथा सामान्य वक्र प्रत्यावर्तन से प्राप्त मापनी मूल्यों के प्रयोग से प्राप्त अभिवृत्ति प्राप्तांकों के मध्य लगभग पूर्ण धनात्मक (.99 से अधिक) सह-संबंध था। पहले दी गई सारणी से यह भी स्पष्ट है कि प्रथम के लिए विभिन्न प्रतिक्रिया श्रेणियों के मापनी मान 0, 1, 2, 2, व 3 हैं तथा दूसरे कथन के लिए मापनी मान क्रमशः 0, 1, 2, 3 व 4 हैं जो 0, 1, 2, 3 व 4 के वर्गीकरण के काफी नजदीक है। यही कारण है कि बाद में सामान्य प्रायिकता वक्र प्रत्यावर्तन के आधार पर प्राप्त मापनी मानों की सहायता से कुल अभिवृत्ति प्राप्तांक की गणना की विधि (Sigma Scoring Method) को जटिल मानकर त्याग दिया गया तथा 0, 1, 2, 3 व 4 की सरल प्रणाली को प्रयुक्त किया जाने लगा। अब अत्यधिक सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत तथा अत्यधिक असहमत प्रतिक्रियाओं को क्रमशः 0, 1, 2, 3 व 4 अंक प्रदान किये जाते हैं। लिकर्ट विधि से तैयार अभिवृत्ति मापनी पर किसी व्यक्ति का कुल अभिवृत्ति प्राप्तांक (Total Attitude Score) उसके द्वारा सभी कथनों पर प्राप्त अंकों का योग होता है, क्योंकि व्यक्ति को विभिन्न कथनों पर अपनी प्रतिक्रियाएँ निर्धारित करनी होती है तथा उन निर्धारण (Rating) के योग के द्वारा उसकी अभिवृत्ति प्राप्तांक को व्यक्त किया जाता है, इसलिए अभिवृत्ति मापन की इस विधि को **बर्ड** (Bird) ने योग निर्धारण की विधि (Method of Summative Rating) के नाम से पुकारा। लिकर्ट के द्वारा प्रतिपादित अभिवृत्ति मापनी निर्माण की इस विधि को वर्तमान में योग निर्धारण विधि से नाम से ही अधिक जाना जाता है। योग निर्धारण विधि के द्वारा अभिवृत्ति मापनी का निर्माण करते समय सर्वप्रथम बड़ी संख्या में अभिवृत्ति कथनों को तैयार किया जाता है। अभिवृत्ति कथनों को तैयार करते समय समाचार पत्रों के सम्पादकीय लेखों, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों, विशेषज्ञों के परामर्श तथा व्यक्तियों से सक्षात्कार के साथ-साथ पहले से उपलब्ध अभिवृत्ति मापनियों के कथनों की सहायता ली जा सकती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

दिए गए कथन के सामने सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए–

1. मनोवृत्ति जब एक बार निर्मित हो जाती है तो उसमें परिवर्तन लाना कठिन होता है। ☐
2. छात्रों पर शिक्षक की मनोवृत्ति का गहरा प्रभाव पड़ता है। ☐
3. अभिरुचि एवं मनोवृत्ति एक दूसरे से संबंधित हैं। ☐
4. अभिवृत्ति व्यक्ति के व्यवहार को सकारात्मक रूप में प्रभावित करती है। ☐

नोट

सारणी 22.12

सामान्य प्रायिकता वक्र प्रत्यावर्तन के द्वारा मापनी मूल्य

(Scale Values by NPC Transformation) (N = 200)

कथन ***State-ment***	*प्रतिक्रिया श्रेणी* ***Response Category***	*अत्यधिक सहमत* ***Strongly Agree***	*सहमत* ***Agree***	*अनिश्चित* ***Indefinite***	*असहमत* ***Dis-agree***	*अत्यधिक असहमत* ***Strongly Disagree***
I	आवृत्ति f	16	56	40	60	28
	आवृत्ति अनुपात p	.08	.28	.20	.30	.14
	संचयी आवृत्ति अनुपात cp	.08	.36	.56	.86	1.0
	मध्य बिन्दु संचयी अनुपात mcp	.04	20	.46	.71	.93
	Z (NPC सारणी से)	–1.75	–.84	–.10	.55	–1.48
	Z + 1.75 (धनात्मक बनाने के लिए)	0	.91	1.65	2.30	3.23
	निकटतम अंक में मापनी मान	0	1	2	2	3
II	आवृत्ति f	24	68	40	60	8
	आवृत्ति अनुपात p	.12	.34	.20	.30	.04
	संचयी आवृत्ति अनुपात cp	.12	.46	.66	.96	1.0
	मध्य बिन्दु संचयी अनुपात mcp	.06	.28	.56	.81	.98
	Z (NPC सारणी से)	–1.56	–.58	–.15	.88	2.05
	Z + 1.75 (धनात्मक बनाने के लिए)	0	.98	1.71	2.44	3.61
	निकटतम अंक में मापनी मान	0	1	2	2	4

विशेष–मध्यबिन्दु संचयी अनुपात ज्ञात करने के लिए श्रेणी आवृत्ति अनुपात (p) के आधे को उस श्रेणी से ठीक पूर्व के संचयी आवृत्ति अनुपात (cp) में जोड़ा जाता है।

कुछ कथन ऋणात्मक तैयार किये जाते हैं तथा कुछ धनात्मक बनाये जाते हैं। कथनों को तैयार करने के बाद उन्हें सावधानीपूर्वक सम्पादित किया जाता है तथा भाषा सम्बंधी जटिलताएँ व अस्पष्टताएँ दूर की जाती हैं। इसके लिए पूर्व जाँच विधि (Pre-Tryout) का भी प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार भली-भाँति तैयार किये गये व संपादित कथनों में से कुछ उपयुक्त कथनों का चयन कर लिया जाता है। लिकर्ट विधि में कथनों के चयन करने

नोट

का ढंग थर्सटन विधि में भिन्न है। थर्सटन विधि में विशेषज्ञों के द्वारा कथनों को मनोवैज्ञानिक सातत्य पर विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जाता था तथा मापनी मूल्य तथा चतुर्थांक विचलन के आधार पर अनुपयुक्त कथनों का चयन कर दिया जाता था। इसके विपरीत योग निर्धारण विधि में पद **विश्लेषण** तकनीक का प्रयोग करके कथनों की विभेदक क्षमता (Discriminating Power) ज्ञात की जाती है तथा विभेदक क्षमता के आधार पर कथनों का चयन किया जाता है। कम विभेदक क्षमता वाले कथनों को निरस्त कर दिया जाता है, जबकि अधिक विभेदक क्षमता वाले कथनों को उपयुक्त कथन मानकर परीक्षण में सम्मिलित किये जाने के लिए **स्वीकार** कर लिया जाता है। स्पष्ट है कि योग निर्धारण विधि में कथनों के मापनी मूल्य पहले से निर्धारित रहते हैं जिनके कारण इन्हें ज्ञात करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। कथनों की विभेदक क्षमता ज्ञात करने के लिए प्राय: **टी** परीक्षण का प्रयोग किया जाता है तथा जिन कथनों के लिस t मान सार्थक होते हैं, उन्हें विभेदक कथन मान लिया जाता है तथा जिनके लिए t का मान **असार्थक** होता है, उन्हें त्याग दिया जाता है। विभेदक क्षमता के आधार पर कथनों का चयन करने के लिए सर्वप्रथम तैयार किये गये कथनों को उन व्यक्तियों, जिनकी अभिवृत्ति के मापन के लिए अभिवृत्ति मापनी बनायी जा रही है, के एक बड़े प्रतिदर्श पर प्रशासित किया जाता है तथा प्रतिदर्श के प्रत्येक व्यक्ति के लिए कुल आभिवृत्ति प्राप्तांक (Total Attitude Scores) ज्ञात किये जाते हैं। प्राप्तांक ज्ञात करते समय प्रतिक्रियाओं को 0, 1, 2, 3, व 4 अंक प्रदान किये जाते हैं। अंक प्रदान करते समय कथनों की घनात्मकता व ऋणात्मकता (Positiveness and Negativenss) का ध्यान भी रखा जाता है। जब कथन धनात्मक होता है तो अत्यधिक सहमत प्रतिक्रिया के लिए 4, सहमत के लिए 3, अनिश्चित के लिए 2, असहमत के लिए 1 तथा अत्यधिक असहमत के लिए 0 अंक प्रदान किया जाता है। जब कथन ऋणात्मक होता है तो अंक प्रदान करने का क्रम (Order) बदल (Reverse) दिया जाता है, अर्थात् अत्यधिक सहमत प्रतिक्रिया के लिए 0, सहमत के लिए 1, अनिश्चित के लिए 2, असहमत के लिए 3 तथा अत्यधिक असहमत के लिए 4 अंक दिये जाते हैं। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि लिकर्ट विधि में कथनों की विभिन्न प्रतिक्रियाओं को अंक देने के लिए कुछ मापनी निर्माता 1, 2, 3, 4, 5 अंकों का प्रयोग भी करते हैं। वास्तव में 0, 1, 2, 3, 4, व 1, 2, 3, 4, 5 दोनों प्रणाली एक ही प्रकार की सूचनाएँ प्रदान करती हैं तथा दोनों प्रणालियों में केवल उदासीन या मध्यवर्ती बिन्दु की स्थिति का अन्तर है, क्योंकि लिकर्ट ने 0, 1, 2, 3, 4 का ही प्रयोग किया या इसलिए प्रस्तुत पुस्तक में इसी प्रणाली का प्रयोग किया गया है। विगत कुछ वर्षों से योग निर्धारण विधि से लिकर्ट प्रकार की मापनी तैयार करते समय कुछ मापनकर्ता 5 से कम या 5 से अधिक प्रतिक्रिया वर्गों का भी प्रयोग करने लगे हैं। उदाहरण के लिए तीन बिन्दु मापनी (0, 1 व 2) तथा सात बिन्दु मापनी (0, 1, 2, 3, 4, 5 व 6) भी काफी प्रचलित है। स्पष्ट है कि इनमें क्रमश: 1 तथा 3 अंक मनोवैज्ञानिक सातत्य पर उदासीन या मध्यवर्ती स्थिति को इंगित करते हैं।

विभिन्न कथनों के लिए किसी व्यक्ति के द्वारा दी गई प्रतिक्रियाओं का **अंकन** करने के बाद उसके सभी अंकों को **जोड़ने** पर उसका कुल **अभिवृत्ति प्राप्तांक** प्राप्त हो जाता है, जिसे उस व्यक्ति के उत्तर-पत्रक (Response Sheet) पर लिख देते हैं। प्रतिदर्श के विभिन्न व्यक्तियों के लिए कुल अभिवृत्ति प्राप्तांक प्राप्त करने के उपरांत सभी उत्तर-पत्रक (Response Sheet) को उनके कुल अभिवृति प्राप्तांक के आधार पर बढ़ते हुए क्रम में **क्रमबद्ध** कर लिया जाता है। इस क्रम में ऊपर की ओर अवस्थित अधिक अंक पाने वाले 27% उत्तर पत्रों को उच्च अभिवृत्ति समूह (High Attitude Group) के रूप में तथा नीचे की ओर अवस्थित कम अंक पाने वाले 27% उत्तर-पत्रक को निम्न अभिवृत्ति समूह (Low Attitude Group) के रूप में छांट लिया जाता है। यह माना जा सकता है कि ये दो समूह अभिवृत्ति कथनों के मूल्यांकन के लिए **कसौटी समूह** (Criterion Groups) हैं तथा किसी भी अच्छे कथन के लिए अधिक अंक (जैसे 4 या 3) प्राप्त करने वाले अधिकांश व्यक्ति उपरोक्त रूप से छांटे गये **उच्च अभिवृत्ति समूह** में होने चाहिए, जबकि कम अंक (जैसे 0 तथा 1) प्राप्त करने वाले अधिकांश व्यक्ति निम्न अभिवृत्ति समूह में होने चाहिए। दूसरे शब्दों में किसी भी अच्छे कथन को विभेदक होना चाहिए। इस

नोट

मान्यता के आधार पर कथनों का मूल्यांकन करने के लिए t परीक्षण का उपयोग किया जाता है। परीक्षण के लिए प्रत्येक कथन पर उच्च अभिवृत्ति समूह के व्यक्तियों के द्वारा प्राप्त अंकों का मध्यमान (M_H) तथा मानक विचलन (σ_H) ज्ञात किया जाता है। इसी प्रकार से प्रत्येक कथन पर निम्न अभिवृत्ति समूह के व्यक्तियों के द्वारा प्राप्त अंकों का मध्यमान (M_L) तथा मानक विचलन (σ_L) ज्ञात कर लेते हैं। यदि उच्च समूह में n_H तथा निम्न समूह में n_L व्यक्ति हों, तो अग्रांकित सूत्र का प्रयोग करके। अनुपात के मान की गणना की जा सकती है–

$$t = \frac{M_H - M_L}{\sqrt{\frac{\sigma_H^2}{n_H} = \frac{\sigma_L^2}{n_L}}}$$

जहाँ M_H = कथन पर प्राप्त अंकों के लिए उच्च समूह का मध्यमान

M_L = कथन पर प्राप्त अंकों के लिए निम्न समूह का मध्यमान

σ_H = कथन पर प्राप्त अंकों के लिए उच्च समूह का मानक विचलन

σ_L = कथन पर प्राप्त अंकों के लिए निम्न समूह का मानक विचलन

n_H = उच्च समूह में व्यक्तियों की संख्या

n_L = निम्न समूह में व्यक्तियों की संख्या

यदि उच्च समूह तथा निम्न समूह को छांटने के लिए समान प्रतिशत किया जाता है, जैसा कि ऊपर किया गया है, तो $n_H = n_L$ जिसे केवल n से भी लिखा जा सकता है। स्पष्ट है कि n उच्च समूह में या निम्न समूह में व्यक्तियों की संख्या है। तब उपरोक्त सूत्र को निम्न ढंग से लिखा जा सकता है–

$$t = \frac{M_H - M_L}{\sqrt{\frac{\sigma_H^2 + \sigma_L^2}{n}}}$$

पाठकों की सरलता के लिए लिकर्ट विधि में विभिन्न कथनों के लिए t मानों की गणना करने की विधि अग्रांकित उदाहरण से स्पष्ट हो सकेगी। **उदाहरणार्थ** माना कि कुछ कथनों को 60 व्यक्तियों पर प्रशासित किया गया तथा कुल अभिवृत्ति प्राप्तांक ज्ञात करने के बाद 27% के आधार पर उच्च व निम्न समूह बनाये गये। स्पष्टत: दोनों समूहों में 16-16 व्यक्ति होंगे। मध्यमान तथा मानक विचलन की गणना के लिए निम्न सूची प्रयुक्त की जा सकती है–

$$M = \frac{\sum X}{n}$$

तथा

$$\sigma = \sqrt{\frac{\sum X^2}{n} - M^2}$$

सारणी 22.13 में उच्च व निम्न अभिवृत्ति समूहों के लिए विभिन्न कथनों के मध्यमानों तथा मानक विचलनों की गणना प्रस्तुत की गयी है, जबकि सारणी 22.14 में विभिन्न कथनों के लिए उच्च व निम्न समूहों के मध्यमानों की तुलना करके टी मान ज्ञात किये गये है। टी मानों की सार्थकता के आधार पर कथनों को मापनी के अंतिम प्रारूप में सम्मिलित किये जाने के संबंध में निर्णय लिया जा सकता है।

नोट

सारणी 22.13

विभिन्न कथनों के लिए मध्यमान तथा मानक विचलन

(Means and S.Ds for different Statements)

उच्च अभिवृत्ति समूह (n_H = 16)						निम्न अभिवृत्ति समूह (n_L = 16)					
व्यक्ति	कथन संख्या					व्यक्ति	कथन संख्या				+
	I	II	III	IV	K		I	II	III	IV	K
1	3	4	3	4	4	1	2	4	2	3	1
2	4	3	4	3	2	2	1	2	2	2	3
3	3	2	3	2	4	3	0	2	1	4	0
4	4	4	4	2	3	4	1	1	3	3	0
5	4	3	4	2	4	5	2	4	0	2	0
6	2	4	4	2	4	6	0	2	2	2	2
7	4	2	4	4	3	7	2	1	0	2	2
8	2	0	4	0	4	8	0	2	2	3	0
9	1	2	4	3	3	9	0	4	1	0	1
10	4	2	2	4	4	10	0	1	1	2	1
11	3	4	4	1	4	11	1	1	0	2	0
12	0	3	3	4	3	12	4	1	2	1	1
13	4	3	4	1	3	13	1	2	1	1	1
14	4	2	4	3	3	14	1	1	0	1	0
15	3	4	4	3	2	15	3	1	1	1	0
16	2	1	3	3	3	16	2	0	1	1	0
M	2.94	2.29	3.63	2.56	3.25	M	1.25	1.81	1.19	1.88	75
S.D.	1.24	1.20	0.62	1.21	0.68	S.D.	1.81	1.22	1.91	1.02	0.93

नोट

सारणी 22.14

विभिन्न कथनों के लिए टी मान

(*t* Values for different Statements)

कथन संख्या	उच्च समूह (n_H = 16)		निम्न समूह (n_L = 16)		*t*	सार्थकता स्तर	टिप्पणी
	M	*S.D.*	*M*	*S.D.*			
I	2.95	1.24	.125	1.18	3.95	0.01	चयनित
II	2.96	1.20	1.81	1.22	2.06	0.05	?
III	3.63	0.62	1.19	0.91	8.86	0.01	चयनित
IV	2.56	1.21	1.88	1.02	1.72	NS	निरस्त
–	–	–	–	–	–	–	–
–	–	–	–	–	–	–	–
K	3.25	0.68	0.75	0.93	8.68	0.01	चयनित

जब उच्च तथा निम्न समूहों में व्यक्तियों की संख्या अधिक होती है, तब प्राय: मध्यमान तथा मानक विचलन की गणना करने के लिए आवृत्ति वितरण तैयार करना अधिक सुविधाजनक होता है। इसके लिए प्रत्येक कथन पर 4, 3, 2, 1 व 0 अंक पाने वाले व्यक्तियों की आवृत्तियाँ दोनों समूहों के लिए अलग-अलग ज्ञात कर लेते हैं। तत्पश्चात् सारणी 19.15 के अनुसार गणना कार्य कर लेते हैं। गणना के लिए निम्न सूत्रों को प्रयुक्त करते हैं–

सारणी 22.15

आवृत्ति वितरण के द्वारा विभिन्न कथनों के मध्यमानों की तुलना

(Comparision of Means for Different statements by Frequency Distribution)

कथन	उच्च समूह (n = 108)						निम्न समूह (n = 108)						*t*	स्तर	निर्णय
	X	*f*	*fx*	fx^2	M_H	σ_H	*X*	*f*	*fx*	fx^2	M_L	σ_L			
	4	25	100	400			4	19	76	304					
	3	40	120	360			3	20	60	180					चयनित
I	2	27	54	108	2.68	1.00	2	30	60	120	2.09	1.23	3.87	.01	
	1	15	15	15			1	30	30	30					
	0	1	0	0			0	9	0	0					
	4	45	180	720			4	4	16	64					चयनित
	3	31	93	279			3	8	24	72					

नोट

II	2 1 0	20 9 3	40 9 0	80 9 0	2.98	1.09	2 1 0	28 35 23	76 35 0	152 35 0	1.40	1.02	10.99	.01	
III	4 3 2 1 0	42 31 20 15 0	186 93 40 15 0	672 279 80 15 0	2.93	1.06	4 3 2 1 0	18 16 25 40 9	72 48 50 40 0	288 144 100 40 0	1.94	1.24	6.31	.01	चयनित

$$M = \frac{\sum f X}{n}$$

तथा

$$\sigma = \sqrt{\frac{\sum f X^2}{n} - M^2}$$

उपरोक्त वर्णित विधि से प्राप्त टी मान बताते हैं कि कोई कथन उच्च तथा निम्न समूहों में विभेद करने में किस सीमा सफल है। यदि t का मान सार्थक होता है तो कथन को विभेदक कथन स्वीकार किया जा सकता है। टी मान की सार्थकता के लिए .05 अथवा .01 सार्थकता स्तरों में से किसी एक को चुना जा सकता है। यहाँ एक दिशित परीक्षण (One tailed test) का प्रयोग किया जा रहा है, इसलिए यदि n का मान बड़ा होता है तो t का मान 1.65 से अधिक होने पर इसे .05 स्तर पर एवं 2.33 से अधिक होने पर .01 स्तर पर सार्थक माना जा सकता है। यदि n का नाम छोटा होता है तो t की सार्थकता के लिए t मूल्यों की सारणी देखने की आवश्यकता होती है। सारणी 22.16 में विभिन्न df's के लिए .05 व .01 स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक टी मानों को प्रस्तुत किया गया है। दो समूहों की तुलना के लिए प्रयुक्त t परीक्षण में df का मान $(n_H + n_L - 2)$ होता है। प्राय: **.01 स्तर पर सार्थक अन्तर** वाले कथनों को ही मापनी में सम्मिलित किया जाता है, जबकि असार्थक कथनों को निरस्त कर दिया जाता है। सार्थकता के **.05 स्तर** पर सार्थक कथनों को **कम अच्छा** माना जाता है तथा इन्हें मापनी में विशेष आवश्यकता पड़ने पर ही सम्मिलित किया जाता है।

सारणी 22.16

एक दिशित परीक्षण के लिए टी मान

(Table values of *t* for one tailed test)

df	*सार्थकता स्तर*	
	.05	**.01**
10	1.81	2.76
20	1.72	2.53
30	1.70	2.46
40	1.68	2.42
50	1.68	2.40
60	1.67	2.39

नोट

70	1.67	2.38
80	1.66	2.38
90	1.66	2.37
100	1-66	2.36
200	1.65	2.35
300	1.65	2.34
400	1.65	2.34
500 या अधिक	1.65	2.33

इस प्रकार से विभिन्न कथनों के लिए प्राप्त टी मानों के आधार पर कथनों की **विभेदक क्षमता** ज्ञात कर लेते हैं तथा सार्थक विभेदक क्षमता वाले कथनों को अभिवृत्ति मापनी में सम्मिलित किया जा सकता है, जबकि असार्थक विभेदक क्षमता वाले कथनों को अनुपयुक्त मानकर निरस्त कर दिया जाता है। योग निर्धारण विधि से अभिवृत्ति मापनी बनाते समय प्राय: 30-40 ऐसे कथनों को छांटा जाता है, जो उच्च तथा निम्न समूहों में विभेद करने में समर्थ हों। अत: अधिक टी मान वाले कथनों को मापनी में सम्मिलित करने के लिए छांट लेते हैं। इसके लिए सार्थक t मान वाले कथनों को उनके t मानों के आधार पर क्रमबद्ध कर लेते हैं तथा अधिक t मान वाले 30-40 (मापनी निर्माता जितनी संख्या में कथनों को अपनी मापनी में सम्मिलित करना चाहे) कथनों को छांट लिया जाता है। कथनों का चयन करते समय इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि कुछ कथन **धनात्मक** हों तथा कुछ कथन **ऋणात्मक** हों। प्राय: लगभग आधे कथन धनात्मक छांटे जाते हैं तथा शेष आधे ऋणात्मक कथनों को छांटा जाता है। दोनों प्रकार के कथनों को छांटने से व्यक्तियों के द्वारा अभिवृत्ति मापनी पर अपनी प्रतिक्रिया देते समय **प्रतिक्रिया प्रवृत्ति** (Response Sets) बनने की संभावना न्यून हो जाती है। यदि केवल ऋणात्मक या धनात्मक कथनों को मापनी में सम्मिलित किया जाता है तो प्रतिक्रिया प्रवृत्ति (Response Tendency) के बनने की संभावना रहती है। कथनों के विभेदक मान ज्ञात करने के लिए पद विश्लेषण की किसी अन्य विधि का प्रयोग भी किया जा सकता है। इस प्रकार से अंतिम रूप से छांटे गये कथनों को यादृच्छिक क्रम (Random Order) में व्यवस्थित करके अभिवृत्ति मापनी का रूप दे दिया जाता है। तैयार अभिवृत्ति मापनी को उन व्यक्तियों पर प्रशासित किया जाता है, जिसकी अभिवृत्ति का मापन करना होता है। व्यक्तियों को मापनी के विभिन्न कथनों पर अपनी प्रतिक्रिया अत्यधिक सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत तथा अत्यधिक असहमत के पाँच वर्गों में से किसी एक वर्ग का चयन करके देनी होती है। किसी व्यक्ति के द्वारा विभिन्न कथनों पर दी गयी प्रतिक्रियाओं को 4, 3, 2, 1 व 0 (यदि कथन ऋणात्मक है, तो 0, 1, 2, 3 व 4) अंकन प्रणाली की सहायता के अंक प्रदान किये जाते हैं। सभी कथनों पर पाये अंकों का योग ही उस व्यक्ति की कुल अभिवृत्ति को इंगित करेगा। मापनी के अंतिम प्रारूप को तैयार करने के उपरांत उसकी **विश्वसनीयता** तथा **वैधता** भी ज्ञात करने के लिए प्राय: परीक्षण-पुनर्परीक्षण विधि अथवा अर्द्धविच्छेद विधि का प्रयोग किया जाता है। मापनी के लिए **विषयवस्तु** वैधता अथवा समवर्ती वैधता ज्ञात की जा सकती है। मापनी पर प्राप्त अंकों की व्याख्या करने के लिए उन्हें मानकीकृत प्राप्ताकों में परिवर्तित किया जा सकता है। इसके लिए टी प्राप्तांकों (T-scores) प्रतिशतांकों (Percentcles)का प्रयोग किया जा सकता है। मापनी निर्माता मापनी पर प्राप्त अंकों को ही प्राप्तांकों में परिवर्तित करने के लिए प्रत्यावर्तन सारणी (Conversion Table) भी तैयार कर सकता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि योग निर्धारण विधि से अभिवृत्ति मापनी तैयार करते समय निम्न सोपानों का अनुसरण किया जाता है–

नोट

(*i*) कम से कम 50 या इससे अधिक संख्या में अभिवृत्ति कथनों (Attitude Statements) को तैयार करना तथा संपादित करना।

(*ii*) उन व्यक्तियों, जिनकी अभिवृत्ति का मापन करने के लिए मापनी तैयार की जा रही है, के किसी बड़े प्रतिदर्श पर मापनी को प्रशासित करना, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक कथन के लिए निर्धारित पाँच प्रतिक्रियाओं–अत्यधिक समहत, सहमत, अनिश्चित, असहमत, अत्यधिक असहमत में से किसी एक का चयन करके कथन के प्रति अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करनी होती है।

(*iii*) व्यक्तियों के द्वारा दी गयी प्रतिक्रियाओं को 4, 3, 2, 1 व 0, (यदि कथन धनात्मक है) अथवा 0, 1, 2, 3 व 4 (यदि कथन ऋणात्म है), अंकन प्रणाली से अंक प्रदान करना एवं प्रत्येक व्यक्ति के लिए कुल अभिवृत्ति प्राप्तांक ज्ञात करना।

(*iv*) उत्तर पत्रकों को कुल प्राप्तांकों के आधार पर क्रमबद्ध करना तथा 27% के विभेदीकरण के आधार पर उच्च तथा निम्न समूहों को छांटना।

(*v*) उच्च समूह के व्यक्तियों के द्वारा विभिन्न कथनों पर प्राप्त अंकों के मध्यमानों तथा मानक विचलनों की गणना करना।

(*vi*) निम्न समूह के व्यक्तियों के द्वारा विभिन्न कथनों पर प्राप्त अंकों के मध्यमानों तथा मानक विचलनों की गणना करना।

(*vii*) प्रत्येक कथन के लिए उच्च समूह तथा निम्न समूह के मध्यमानों की तुलना के लिए t अनुपात के मान की गणना करना।

(*viii*) सार्थक *t* मान वाले कथनों को *t* मान के आधार पर क्रमबद्ध करना तथा अधिक t मान वाले 30–40 कथनों का चयन करना।

(*ix*) चयनित कथनों की यादृच्छिक क्रम (Random Order) में व्यवस्थित करके अभिवृत्ति मापनी का अन्तिम रूप तैयार करना।

(*x*) अभिवृत्त मापनी को व्यक्तियों पर प्रशासित करना तथा ऊपर वर्णित विधि से कथनों का अंकन करके उनके कुल अभिवृत्ति प्राप्तांक ज्ञात करना।

(*xi*) अभिवृत्ति मापनी को व्यक्तियों पर प्रकाशित करना उसकी विश्वसनीयता एवं वैधता गुणांक ज्ञात करना।

(*xii*) मापनी पर प्राप्त अभिवृत्ति प्राप्तांकों को टी प्राप्तांकों अथवा प्रतिशतांकों में परिवर्तित करने के लिए प्रत्यावर्तन सारणी तैयार करना।

थर्सटन विधि की तुलना में लिकर्ट विधि की विशेषताएँ

(Merits of Likert Method in Comparision of Thurstone Method)

यद्यपि थर्सटन के द्वारा अभिवृत्ति मापनी के तैयार करने की विधि अभिवृत्ति मान के क्षेत्र में प्रथम सार्थक प्रयास था, परन्तु लिकर्ट के द्वारा प्रतिपादित विधि अपनी सरलता के कारण अधिक उपयोगी मानी जाती है। लिकर्ट विधि से अभिवृत्ति मापनी बनाने में समय तथा श्रम कम लगता है। इसके साथ-साथ लिकर्ट विधि में विशेषज्ञों के द्वारा कथनों को परिमापित कराकर उनके मापनी मूल्य ज्ञात किये जाने की आवश्यकता नहीं होती है वरन प्रयोज्यों से ही प्रतिक्रियाएँ प्राप्त करके कथनों का चयन कर लिया जाता है। लिकर्ट विधि में प्राप्तांकों का अंकन भी अपेक्षाकृत सरल है तथा प्राप्त परिणाम अधिक विश्वसनीय एवं वैध होता है। लिकर्ट तथा थर्सटन विधियों की तुलना निम्न सारणी 22.17 में प्रस्तुत की गयी है।

नोट

सारणी 22.17

लिकर्ट एवं थर्सटन विधियों की तुलना
(Comparision of Likert and Thurstone Methods)

लिकर्ट विधि (योग निर्धारण विधि)	थर्सटन विधि (समदृष्टि अन्तराल-विधि)
1. अभिवृत्ति मापनी तैयार करना अपेक्षाकृत सरल कार्य होता है।	1. अभिवृत्ति मापनी तैयार करना अपेक्षाकृत क्लिष्ट कार्य होता है।
2. यह विधि समय तथा श्रम की दृष्टि से मितव्ययी है।	2. यह विधि समय तथा श्रम की दृष्टि से अधिक व्ययी है।
3. इस विधि में विशेषज्ञों की आवश्यकता कथनों का चयन करने के लिए नहीं होती है।	3. इस विधि में विशेषज्ञों की आवश्यकता कथनों का चयन करने के लिए होती है।
4. इस विधि में कथनों का चयन उच्च व निम्न समूहों के लिए कथनों के मध्यमानों की तुलना के लिए टी मानों की गणना करके किया जाता है।	4. इस विधि में कथनों का चयन विशेषज्ञों के द्वारा कथनों को मनोवैज्ञानिक सातत्य पर श्रेणीबद्ध कराकर तथा मध्यांक व चतुर्थांक विचलन ज्ञात करके किया जाता है।
5. लिकर्ट विधि में सभी कथनों को समान भार (Weightage) दिया जाता है।	5. इस विधि में सभी कथनों को उनके मापनी मूल्य (Scale Value) के अनुरूप भार दिया जाता है।
6. लिकर्ट विधि सरल होने के कारण अप्रशिक्षित या अल्प प्रशिक्षित व्यक्तियों के द्वारा भी प्रयुक्त की जा सकती है।	6. थर्सटन विधि से अभिवृत्ति मापनी बनाने के लिए समुचित प्रशिक्षण लेना आवश्यक है।
7. लिकर्ट मापनी से प्राप्त परिणाम अधिक विश्वसनीय होते हैं।	7. थर्सटन विधि से प्राप्त परिणाम अपेक्षाकृत कम विश्वसनीय होते हैं।
8. यह परिमापित प्रतिक्रिया विधि है, जिसमें व्यक्तियों के द्वारा विभिन्न कथनों पर दी गयी प्रतिक्रियाओं को अभिवृत्ति सातत्य पर परिमापित किया जाता है।	8. यह परिमापित कथन विधि है, जिसमें विभिन्न कथनों को अभिवृत्ति सातत्य पर परिमापित किया जाता है।

चित्र 22.7 युग्म तुलना तथा समदृष्टि अन्तराल विधि से प्राप्त मापनी मूल्यों के बीच संबंध
(Relation between Scale Values from Paired Comparision Method and Equal Appearing Interval Method)

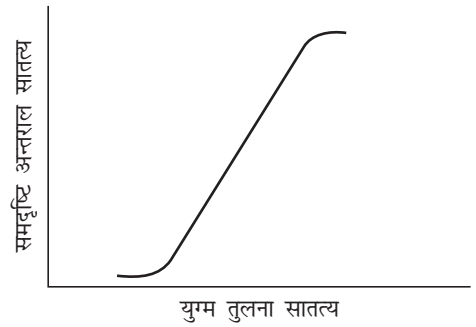

22.5 अन्य विधियाँ (Other Methods)

नोट

उपरोक्त वर्णित युग्म तुलना विधि, समदृष्टि अन्तराल विधि तथा योग निर्धारण विधि के अतिरिक्त अभिवृत्ति मापनी के निर्माण के लिए कुछ अन्य विधियों को भी प्रतिपादित किया गया है। इन विधियों का संक्षिप्त वर्णन आगामी पृष्ठों पर किया गया है। इच्छुक पाठक इन विधियों के विस्तृत अध्ययन के लिए अभिवृत्ति मापनी निर्माण विषय पर उपलब्ध साहित्य का अध्ययन कर सकते हैं।

(1) क्रमबद्ध अन्तराल विधि (Method of Successive Intervals)

अभिवृत्ति मापनी निर्माण की समदृष्टि अन्तराल विधि में यह माना गया था कि मनोवैज्ञानिक सातत्य पर विभिन्न बिन्दुओं के बीच लगभग समान अन्तराल होता है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं हो पाता है। विशेषकर मनोवैज्ञानिक सातत्य के दोनों छोरों (Extremes) पर स्थित बिन्दुओं के लिए, कथनों के लिए युग्म तुलना विधि तथा समदृष्टि अन्तराल विधि से ज्ञात मापनी मूल्यों के बीच सैद्धांतिक संबंध ज्ञात करने पर यह पाया गया कि मनोवैज्ञानिक सातत्य के दोनों छोरों पर स्थित कथन युग्म तुलना विधि में प्राप्त मापनी मूल्यों की तुलना में समदृष्टि अन्तराल विधि से प्राप्त मापनी मूल्य कम फैलाव रखते थे, जबकि इसके अतिरिक्त शेष कथनों के दोनों विधियों से प्राप्त मापनी मूल्य लगभग रेखीय संबंध रखते थे।

ऐसी परिस्थिति में यह वांछनीय था कि किसी ऐसी परिमापन विधि की खोज की जाए, जिसमें समदृष्टि अन्तराल विधि जैसी सुगमता हो, परन्तु जो युग्म तुलना विधि से प्राप्त मापनी मूल्यों से संपूर्ण सातत्य पर रेखीय संबंध रखने वाले मापनी मूल्य प्रदान कर सके। इसके लिए ऐसी अनेक विधियाँ विकसित की गयी जो मनोवैज्ञानिक सातत्य पर अन्तरालों की दूरी की असमानताओं को समाप्त कर सकें। सफीर (Saffir) ने 1937 में थर्सटन के द्वारा विकसित परन्तु अप्रकाशित विधि (Method of Successive Intervals) के नाम से प्रकाशित किया। **गिलफर्ड** (Guilford) ने 1938 में निरपेक्ष मापनी विधि (Method of Absolute Scaling) के नाम से, **एटनीव** (Attneave) ने 1949 में क्रमबद्ध अन्तराल विधि (Method of Graded Dichotomies) के नाम से तथा **गारनर व हेक** (Garner and Hake) ने 1951 में समान **विभेदकता मापनी विधि** (Method of Equal Discriminability) के नाम से इन विधियों को थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया। परन्तु आजकल क्रमबद्ध अन्तराल विधि के नाम से ही इन सभी विधियों को जाना जाता है।

क्रमबद्ध अन्तराल विधि वास्तव में समदृष्टि अन्तराल विधि का ही एक परिवर्तित रूप है। इस विधि में भी प्रत्येक निर्णायक को प्रत्येक कथन पर एक-एक निर्णय देना होता है। इसलिए इस विधि का प्रयोग तब सुविधाजनक है, जब कथनों की संख्या अधिक होती है। इस विधि में ग्यारह बिन्दु या नौ बिन्दु या सात बिन्दु जैसा कोई मनोवैज्ञानिक सातत्य अपना जा सकता है। विशेषज्ञों के द्वारा कथनों को मनोवैज्ञानिक सातत्य की विभिन्न श्रेणियों में क्रमबद्ध करने के उपरांत संचयी अनुपातों की सहायता से कथनों के मापनी मूल्य ज्ञात किये जाते हैं। तत्पश्चात् समदृष्टि अन्तराल विधि के अनुरूप की उपयुक्त कथनों का चयन करके अभिवृत्ति मापनी तैयार कर लेते हैं, जिसके प्रशासन तथा अंकन की विधि समदृष्टि अन्तराल विधि के अनुरूप होती है।

2. संचयी विधि अथवा स्केलोग्राम विधि (Cumulative Method or Scalogram Method)

स्केलोग्राम विधि वास्तव में अभिवृत्ति मापनी तैयार करने की विधि न होकर अभिवृत्ति मापनी के मूल्यांकन की एक विधि है, जिसमें यह ज्ञात किया जाता है कि क्या कोई दी गयी अभिवृत्ति मापनी गटमैन के द्वारा विवेचित की गयी एक विशेष प्रकार की अभिवृत्ति मापन के अनुरूप है अथवा नहीं। गटमैन ने कहा कि यदि कोई अभिवृत्ति मापनी अथवा कथनों का समुच्चय किसी एक अभिवृत्ति का मापन कर रहा है अर्थात् यदि वह एक विमीय मापनी (Unidimensional Scale) है, तो इस अभिवृत्ति मापनी पर अधिक अंक पाने वाले व्यक्ति कम अंक पाने वाले

नोट

किसी अन्य व्यक्ति से मापनी के सभी कथनों पर या तो अधिक अंक प्राप्त करेगा अथवा उसके बराबर अंक प्राप्त करेगा। यदि मापनी इस शर्त को पूरा करती है तो उसे संचयी मापनी (Cumulative Scale) अथवा गटमैन स्केल (Guttman Scale) के नाम से संबोधित किया जा सकता है। स्केलोग्राम विश्लेषण में किसी मापनी पर व्यक्तियों के द्वारा दी गयी प्रतिक्रियायों का विश्लेषण किया जाता है तथा यह देखा जाता है कि किस सीमा तक कोई दी गयी प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण किया जाता है तथा यह देखा जाता है कि किस सीमा तक कोई दी गयी अभिवृत्ति मापनी गटमैन मापनी की शर्तों को पूरा कर रही है। इसके लिए पुन: प्रस्तुति सूचकांक या IOR (Index of reproducibility) की गणना की जाती है। (IOR पुन: प्रस्तुति सूचकांक वास्तव में उस सीमा को व्यक्त करता है जिस सीमा तक मापनी पर प्राप्त कुल अंकों के द्वारा ही विभिन्न व्यक्तियों के विभिन्न कथनों के प्राप्तांक पुन: प्रस्तुत (Reproduce) किये जा सकते हैं। गटमैन ने अपनी संचयी मापनी के निर्माण के लिए कोई विशेष ढंग नहीं बतलाया है तथा कहा कि अनुभव व अन्तर्दृष्टि के आधार पर कथनों का चयन किया जा सकता है। उसने यह भी कहा कि कथनों का चयन करते समय सजातीयता का ध्यान रखना चाहिए।

3. मापनी भेदक विधि (Scale Discrimination Method)

एडवर्ड तथा किलपैट्रिक (Edward and Kilipatric) ने सन् 1948 में अभिवृत्ति मापनी तैयार करने की एक विधि का प्रतिपादन किया, जिसे उन्होंने मापनी भेदक विधि (Scaled Discrimination Technique) के नाम से पुकारा। इस विधि में उन्होंने थर्सटन की समदृष्टि अन्तराल विधि तथा लिकर्ट की पद विश्लेषण विधि का प्रयोग करते हुए ऐसे कथनों को छांटने की कोशिश की जो गटमैन मापनी की शर्तों को पूरा कर सकें। मापनी भेदक विधि से अभिवृत्ति मापनी तैयार करने के सोपान लगभग वही हैं, जो समदृष्टि अन्तराल विधि के हैं। सर्वप्रथम अनेक मनोवैज्ञानिक कथनों को एकत्रित करके उनको सावधानीपूर्वक सम्पादित किया जाता है। तत्पश्चात् समदृष्टि अन्तराल विधि से कथनों के मापनी मूल्य तथा Q मूल्य ज्ञात किये जाते हैं। अधिक Q मूल्यों वाले लगभग 50% कथनों को निरस्त कर दिया जाता है तथा शेष 50% कथनों को लिकर्ट मापनी के रूप में व्यक्तियों के एक बड़े समूह पर प्रशासित किया जाता है तथा प्रत्येक कथन के लिए विभेदक क्षमता ज्ञात की जाती है। एडवर्ड तथा किलपैट्रिक ने विभेदक क्षमता ज्ञात करने के लिए फाई गुणांक (Phi-Coefficient) का प्रयोग किया। फाई गुणांक ज्ञात करने के लिए उच्च व निम्न समूहों में व्यक्तियों के द्वारा किसी कथन पर व्यक्त की गई प्रतिक्रिया आवृत्तियों के आधार पर उन्हें दो वर्गों – उच्च वर्ग व निम्न वर्ग में वर्गीकृत किया जाता है। आवृत्तियों को सारणी 22.8 के अनुसार व्यवस्थित करके फाई गुणांक की गणना की जा सकती है।

चित्र 22.8: फाई गुणांक ज्ञात करना
(Determining Phi Coefficient)

प्रतिक्रिया वर्ग	समूह		कुल
	निम्न	उच्च	
उच्च वर्ग	a	b	$a + b$
निम्न वर्ग	c	d	$c + d$
कुल	$a + c$	$b + d$	

$$\phi = \frac{bc - ad}{\sqrt{(a+b)(b+d)(a+c)(b+d)}}$$

नोट

विभिन्न कथनों के लिए प्रतिक्रियाओं को उच्च व निम्न वर्गों में विभाजित करते समय $(a + d)$ के मान को अल्पतम (minimize) करने की कोशिश की जाती है। दूसरे शब्दों में प्रतिक्रियाओं को इस तरह से संयोजित (Combined) किया जाता है कि $(a + d)$ का मान न्यूनतम प्राप्त हो। फाई गुणांक ज्ञात करने के लिए नोमोग्राफ (nomograph) का प्रयोग भी किया जा सकता है।

सभी कथनों के लिए फाई गुणांकों की गणना करने के बाद में थर्सटन विधि के द्वारा ज्ञात मापनी मूल्यों तथा फाई गुणांकों को दृष्टिगत रखकर कथनों का अंतिम रूप से चयन कर लिया जाता है। इस प्रकार से चयनित कथनों को उनके थर्सटन मापनी मूल्यों के क्रम में व्यवस्थित अभिवृत्ति मापनी का रूप दे दिया जाता है। यह अभिवृत्ति मापनी प्रयोज्यों पर प्रशासित की जा सकती है, जिनमें व्यक्तियों को विभिन्न कथनों के लिए अपनी सहमति अथवा असहमति की सीमा को लिकर्ट विधि के अनुरूप अभिव्यक्त करना होता है। किसी कथन पर प्रतिक्रियाओं का अंकन करने के लिए फाई गुणांक ज्ञात करते समय बनाई गयी प्रतिक्रिया वर्गों के अनुरूप, निम्न प्रतिक्रिया वर्ग के लिए 0 व उच्च प्रतिक्रिया वर्ग के लिए 1 अंक का प्रयोग किया जाता है।

22.6 सारांश (Summary)

- अभिवृत्तियाँ व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष होती हैं। अभिवृत्तियों के विधिवत मापन का कार्य लगभग साठ वर्ष पूर्व ही प्रारंभ हो सका है। पहले प्रत्यक्ष प्रश्न विधि तथा प्रत्यक्ष अवलोकन विधि की सहायता से अभिवृत्तियों का मापन किया जाता था, परन्तु इन विधियों की सीमाओं को दृष्टिगत रखते हुए मनोवैज्ञानिकों ने परिमापित विधियों का प्रतिपादन किया। परिमापित विधियों को दो मुख्य भागों, परिमापित कथन विधियाँ तथा परिमापित प्रतिक्रिया विधियों में बाँटा जा सकता है। वर्तमान समय में लिकर्ट की योग निर्धारण विधि, जो परिमापित प्रतिक्रिया विधि है तथा थर्स्टन व चेव की समदृष्टि अन्तराल विधि, जो कि परिमापित कथन विधि है, ही सर्वाधिक प्रचलित हैं तथा वर्तमान में उपलब्ध अधिकांश अभिवृत्ति मापनियाँ इन दोनों विधियों के द्वारा ही तैयार की गयी हैं।
- किसी भी अन्य परिमापीकृत परीक्षण की तरह से अभिवृत्ति मापनी के निर्माण में चार मुख्य सोपानों का अनुसरण किया जाता है। ये चार सोपान क्रमशः (i) मापनी की योजना बनाना, (ii) अभिवृत्ति कथनों को तैयार करना, (iii) अभिवृत्ति कथनों का चयन करना तथा (iv) अभिवृत्ति मापनी की विश्वसनीयता व वैधता सुनिश्चित करना तथा मानक ज्ञात करना है।
- मापनी निर्माण के प्रथम सोपान के अन्तर्गत अभिवृत्ति मापनी के संबंध में विभिन्न बातें जैसे मापनी का प्रकार, कथनों की संख्या, अभिवृत्ति की परिभाषा आदि का निर्धारण किया जाता है। द्वितीय सोपान में विभिन्न स्रोतों से अभिवृत्ति कथनों को एकत्रित करके सम्पादित किया जाता है। तृतीय सोपान के अन्तर्गत उपयुक्त कथनों का चयन किया जाता है। कथनों के चयन के लिए युग्म तुलना विधि, समदृष्टि अंतराल विधि, योग निर्धारण विधि अथवा किसी अन्य विधि का प्रयोग किया जा सकता है। कथनों के चयन के लिए प्रायः थर्सटन व चेव की समदृष्टि अन्तराल विधि तथा लिकर्ट की योग निर्धारण विधि का प्रयोग अधिक किया जाता है। इन दोनों विधियों में भी लिकर्ट की योग निर्धारण विधि अपनी सरलता व सुगमता के कारण अधिक प्रचलित है। मापनी निर्माण के चतुर्थ सोपान में चयनित कथनों की सहायता से तैयार किये गये मापनी के अन्तिम प्रारूप की विश्वसनीयता व वैधता ज्ञात की जाती है तथा मानकों की तालिका तैयार की जाती है।

नोट

22.7 शब्दकोश (Keywords)

1. **अभिवृत्ति**–मनोवृत्ति
2. **यादृच्छिक**–बेतरतीब

22.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अभिवृत्ति से आप क्या समझते हैं? अभिवृत्ति तथा अन्य प्रत्ययों में अंतर समझाइए।
2. अभिवृत्ति मापन की विधियों को विस्तार से समझाइए।
3. अभिवृत्ति मापनी क्या है? अभिवृत्ति मापनी के सोपान पर चर्चा कीजिए।
4. योग-निर्धारण विधि समझाइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (✓) 2. (×) 3. (✓) 4. (✓)

22.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली*
2. मनोविज्ञान–*डॉ. सरयू प्रसाद, आगरा बुक स्टोर, आगरा।*
3. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
4. मनोविज्ञान–*मानव व्यवहार का अध्ययन–ब्रजकुमार मिश्र, पी.एच.आई. लर्निंग, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 23: अभिक्षमता (Aptitude)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

23.1 अभिक्षमता का अर्थ (Meaning of Aptitude)

23.2 अभिक्षमता का मापन (Measurement of Aptitude)

23.3 सामान्य अभिक्षमता परीक्षण (General Aptitude Tests)

23.4 भेदक अभिक्षमता परीक्षण (Differential Aptitude Tests)

23.5 विशिष्ट अभिक्षमता परीक्षण (Special Aptitude Tests)

23.6 सारांश (Summary)

23.7 शब्दकोश (Keywords)

23.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

23.9 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अभिक्षमता का अर्थ एवं अभिक्षमता मापन को समझने में।
- सामान्य, भेदक एवं विशिष्ट अभिक्षमता परीक्षणों के विषय में जानकारी प्राप्त करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

दिन प्रतिदिन के जीवन में प्राय: विभिन्न व्यक्तियों यथा अध्यापकों, अभिभावकों, प्रशासकों, अधिकारियों, समीक्षकों आदि को कहते सुना जा सकता है कि अमुक छात्र की यान्त्रिक कार्यों में विशेष रुचि है इसलिए इसे अभियंता बनाना चाहिए, अमुक छात्र में बड़ा होकर एक अच्छा संगीतकार बनने की सम्भावना है, अमुक बालिका बड़ी होकर एक गृहणी के रूप में अधिक सफल सिद्ध होगी अथवा अमुक व्यक्ति एक प्रतिभाशाली व योग्य प्रशासक बन सकेगा। इस प्रकार के कथनों से इन व्यक्तियों का तात्पर्य होता है कि सम्बन्धित छात्र, बालिका या व्यक्ति में कुछ ऐसी प्रतिभा, योग्यता या क्षमता दृष्टिगोचर हो रही है जो किसी विशिष्ट क्षेत्र में सफलता प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। ऐसी प्रतिभा, योग्यता या क्षमता प्राय: जन्मजात होती हैं तथा मनोविज्ञान की भाषा में इसे अभिक्षमता (Aptitude) कहा जाता है। शैक्षिक, व्यावसायिक तथा मनोवैज्ञानिक परामर्श व मार्गदर्शन के कार्य में अभिक्षमताओं

नोट

के ज्ञान का विशेष महत्त्व होता है। बालकों की अभिक्षमताओं को पहचान कर उन्हें उन्हीं क्षेत्र विशेष में शिक्षित व प्रशिक्षित किया जाना चाहिए जिनमें उनकी सफलता प्राप्त करने की सम्भावना हो। अभिक्षमता विहीन क्षेत्रों ने बालकों को आगे बढ़ने के लिए बाध्य करना वास्तव में समय, धन व शक्ति का अपव्यय ही होता है। प्रवेश तथा रोजगार के लिए अभ्यर्थियों का चयन करते समय भी व्यक्तियों की अभिक्षमताओं को ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक होता है। प्रस्तुत अध्यय में अभिक्षमताओं के मापन की चर्चा की गई है।

23.1 अभिक्षमता का अर्थ (Meaning of Aptitude)

अभिक्षमता किसी क्षेत्र विशेष में व्यक्ति की कार्य कुशलता की विशिष्ट योग्यता (specific ability) तथा विशिष्ट क्षमता (specific potentiality) को इंगित करती है।

बिंघम के अनुसार– "किसी विशिष्ट प्रशिक्षण के उपरान्त दिये गये क्षेत्र में कुछ ज्ञान या कौशल या प्रतिक्रियओं को समुच्चय को अर्जित करने की किसी व्यक्ति की योग्यता को लाक्षणिक रूप से व्यक्त करने वाली विशेषता अथवा दशाओं का समुच्चय अभिक्षमता है।" (An aptitude is a characteristic or set of conditions, that are symptomatic to the individual's ability to acquire with some specified training some knowledge or skill or a set of responses in a given field.)

फ्रीमैन के शब्दों में, "अभिक्षमता ऐसी विशेषताओं के समूह का द्योतक है जो (प्रशिक्षण के उपरान्त) किसी विशिष्ट ज्ञान, कौशल या संगठित प्रतिक्रियाओं के समुच्चय को अर्जित करने के व्यक्ति की योग्यता का द्योतक, है जैसे भाषा बोलने, संगीतकार बनने, यान्त्रिक कार्य करने की योग्यता।''

(An aptitude is a city combination of characteristics indicative of an individuals's capaticy to acquire (with training) some specific knowledge, skill, or set of organized responses, such as he ability to speak a language, to become a musician, to do mechanical work.)

नोट्स

दक्षता में न केवल कुछ चालक व हस्तक्रियाओं में कुशलता वरन् अन्य कार्यकुशलता जैसे–भाषा, इतिहास, अर्थशास्त्र, गणित, विज्ञानादि में भी व्यक्ति की योग्यताएँ समाहित रहती हैं।

अभिक्षमता के अर्थ के सम्बन्ध में उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अभिक्षमता से हमारा तात्पर्य व्यक्ति के उस रुझान, रुचि या योग्यता से है जो किसी विशिष्ट कार्य, पाठ्यक्रम या व्यवसाय में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक व महत्त्वपूर्ण होती है। पाठकों को अभिक्षमता तथा कुशलता व दक्षता के बीच के अन्तर को भी समझ लेना होगा। कुशलता (Skills) से तात्पर्य किसी दिये गए कार्य को सुगमता एवं परिशुद्धता से करने की योग्यता से होता है। दक्षता (Proficiency) शब्द का अर्थ भी बहुत कुछ यही है, परन्तु यह कुशलता से अधिक व्यापक (Comprehensive) होता है। दक्षता में न केवल कुछ गामक व हस्त क्रियाओं (Motor and Manual activities) में कुशलता (skills) सम्मिलित रहती है वरन् अन्य क्रियाओं में कुशलता जैसे भाषा, इतिहास, अर्थशास्त्र, गणित, विज्ञान आदि में व्यक्ति की योग्यताएँ भी समाहित रहती हैं। अभिक्षमता (Aptitude) से अभिप्राय उपयुक्त परिस्थितियों में किसी क्षेत्र विशेष में दक्षता अर्जित करने की क्षमता से होता है। दूसरे शब्दों में अभिक्षमता किसी क्षेत्र विशेष में सफलता प्राप्त करने का पूर्व कथन (prediction) करने वाली बीजभूत योग्यता (Potential Abilities) को इंगित करती है। अभिक्षमता का वास्तविक आशय आगे दिए गए चित्र 20.1 से स्पष्ट हो सकेगा।

बिंघम (Bingham) ने अभिक्षमता की पाँच प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया है ये पाँच विशेषताएँ निम्नवत् हैं– नोट

(*i*) किसी व्यक्ति की वर्तमान अभिक्षमता उसके वर्तमान गुणों का एक ऐसा समुच्चय है जो उसकी भावी क्षमताओं की ओर संकेत करता है।

(*ii*) किसी व्यक्ति की अभिक्षमता किसी कार्य को करने में उसकी समुपयुक्तता (Fitness) को व्यक्त करती है।

(*iii*) अभिक्षमता किसी मूर्त (Concrete) वस्तु या योग्यता का नाम न होकर एक अमूर्त्त (Abstract) संज्ञा है जो व्यक्ति के सम्पूर्ण वयक्तित्व के एक विशेष गुण को व्यक्त करती है।

(*iv*) अभिक्षमता वर्तमान में होने पर भी भविष्य की क्षमताओं का प्रतीक होती है।

(*v*) अभिक्षमता की योग्यता, रुचि तथा सन्तुष्टि से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

बिंघम ने अभिक्षमता की उपरोक्त वर्णित पाँच विशेषताओं के अतिरिक्त, अभिक्षमता की निम्न तीन मान्यताओं का भी वर्णन किया है–

(1) किसी व्यक्ति की समस्त अभिक्षमताएँ समान रूप में नहीं होती है। व्यक्ति की विभिन्न अभिक्षमताओं में अन्तर होना स्वाभाविक ही है। व्यक्ति में किसी कार्य की अभिक्षमता कम हो सकती है तथा किसी कार्य की अभिक्षमता अत्यधिक हो सकती है।

(2) अभिक्षमता की प्रकृति वैयक्तिक होती है। दूसरे शब्दों में अभिक्षमताओं में व्यक्तिगत भिन्नताएँ पाई जाती है। किन्हीं भी दो व्यक्तियों की अभिक्षमताओं में अन्तर का होना स्वाभाविक होता है।

(3) यद्यपि किसी व्यक्ति की अभिक्षमताएँ स्थिर रहती हैं फिर भी इनमें परिवर्तन आ सकते हैं। परन्तु ये परिवर्तन क्रमिक तथा अत्यन्त अल्प मात्र होते हैं।

23.2 अभिक्षमता का मापन (Measurement of Aptitude)

अभिक्षमता के मापन के लिए अभिक्षमता परीक्षणों (Aptitude Tests) का प्रयोग किया जाता है। **फ्रीमैन** (Freeman) के अनुसार "अभिक्षमता परीक्षण वह है जिसकी रचना किसी विशेष प्रकारकी तथा किसी सीमित क्षेत्र की क्रिया करने की बीजभूत योग्यता को मापने के लिए की जाती है।" (An aptitude tests is one designed to measure a person's potential ability in an activity of a specialized kind and within a restricted range.)

क्या आप जानते हैं अभिक्षमता परीक्षण के निर्माण की विधि लगभग वही है जो किसी बुद्धि परीक्षण के निर्माण में प्रयुक्त की जाती है। दोनों प्रकार के परीक्षणों में मुख्य अन्तर उन कार्यों व क्रियाओं अर्थात विषय वस्तु (Content) का भिन्न-भिन्न होना है जिनको दोनों परीक्षणों में प्रयुक्त किया जाता है।

अभिक्षमता परीक्षणों को उनकी प्रकृति के आधार पर तीन भागों में बाँटा जा सकता है–

(*i*) **सामान्य अभिक्षमता परीक्षण** (General Aptitude Test)

(*ii*) **भेदक अभिक्षमता परीक्षण** (Differential Aptitude Tests)

(*iii*) **विशिष्ट अभिक्षमता परीक्षण** (Specified Aptitude Tests)

नोट

चित्र 23.1: सम्प्राप्ति, योग्यता तथा अभिक्षमता की तुलना
(Comparision of Achievement, Afility and Aptitude)

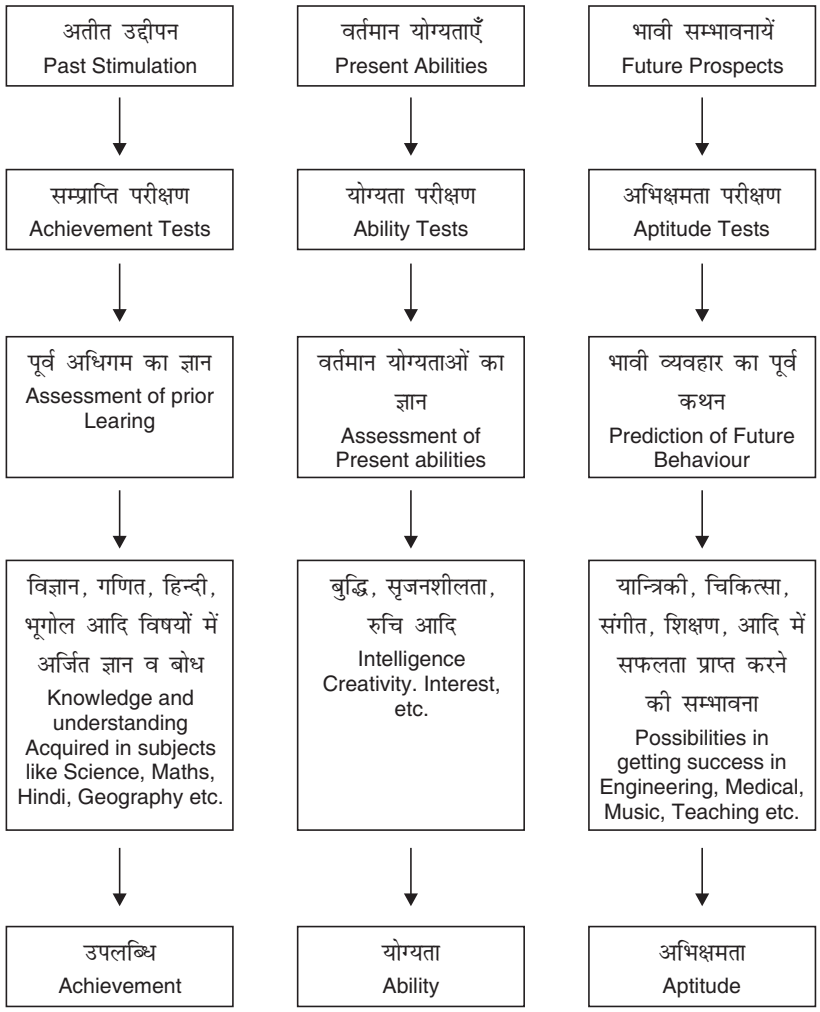

23.3 सामान्य अभिक्षमता परीक्षण (General Apitude Tests)

सामान्य अभिक्षमता परीक्षण वे हैं जो किसी भी सामान्य कार्य क्षमता का मापन करते हैं। ये परीक्षण प्राय: व्यक्ति की सामान्य बुद्धि (General Intelligence). मानसिक योग्यता (Mental Ability) अथवा सीखने की योग्यता (Learning Ability) का मापन करते हैं। इस प्रकार के परीक्षण व्यक्ति की सामान्य भावी सफलता को इंगित करते हैं। क्योंकि सामान्य बुद्धि परीक्षणों के द्वारा छात्रों की विद्यालयी सफलता का सफलतापूर्वक पूर्व कथन किया जा सकता है। इसलिए कुछ विद्वान इन्हें शैक्षणिक अभिक्षमता परीक्षण (Scholastic Aptitude tests) के नाम से पुकारना अधिक उपयुक्त समझते हैं। स्पष्ट है कि अभिक्षमता परीक्षण वर्ग में सामान्य बुद्धि परीक्षण अथवा सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षण जैसे मापन उपकरण रखे जाते हैं।

23.4 भेदक अभिक्षमता परीक्षण (Differential Aptitude Tests)

नोट

इस प्रकार के अभिक्षमता परीक्षण प्राय: शृंखला प्रकार के परीक्षण (Battery Type Tests) होते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इस प्रकार के अभिक्षमता परीक्षण या तो अनेक परीक्षण का समूह या शृंखला होती है अथवा इस प्रकार के परीक्षणों में अनेक-उप-परीक्षण होते हैं। ये विभिन्न परीक्षण या उप-परीक्षण व्यक्ति की भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की अभिक्षमताओं को इंगित करते हैं तथा जिन पर व्यक्ति के द्वारा प्राप्त अंकों का तुलनात्मक विवेचन करके व्यक्ति की अधिक अभिक्षमता वाले क्षेत्रों (Areas) को ज्ञात कर लिया जाता है। क्योंकि ये परीक्षण व्यक्ति की विभिन्न अभिक्षमताओं में विभेद को व्यक्त करते हैं। इसलिए इन्हें भेदक अभिक्षमता परीक्षण (Differential Aptitude Tests) कहा जाता है। इस प्रकार के परीक्षणों में प्राय: शाब्दिक, बोध, आंकिक बोध, स्थानगत बोध, यान्त्रिक बोध, लिपिकीय क्षमता, स्वभावगत झुकाव (Behavioural tendencies) आदि से सम्बन्धित उप-परीक्षण होते हैं। विभेदक अभिक्षमता परीक्षण (DAT), सामान्य अभिक्षमता परीक्षण बैटरी (GATB), अभिक्षमता सर्वेक्षण (A.S) तथा अभिक्षमता वर्गीकरण परीक्षण (ACT) कुछ प्रमुख विदेशी अभिक्षमता परीक्षण हैं। इन में से कुछ का भारतीय दशाओं में अनुशीलन भी किया जा चुका है तथा इन अनुशीलनों को भारत में बहुतायत से प्रयुक्त किया जाता है। भेदक अभिक्षमता प्रकार के किसी मौलिक व सफल परीक्षण का निर्माण भारत में अभी तक नहीं हो सका है। विभेदक अभिक्षमता परीक्षण की प्रकृति से पाठकों को अवगत कराने की दृष्टि से अमेरिका की मनोवैज्ञानिक कारपोरेशन के द्वारा प्रकाशित विभेदक अभिक्षमता (DAT) का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

टास्क क्या कारण है कि भेदक अभिक्षमता की तरह किसी मौलिक व सफल परीक्षण का निर्माण भारत में अभी तक संभव नहीं हो सका है। इस पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

अमेरिका की मनोवैज्ञानिक कारपोरेशन (Psychological Corporation) के द्वारा प्रकाशित तथा बैनेट (Bannett), सीशोर (Seashore) तथा वेसमैन (Wesman) के द्वारा तैयार किया गया विभेदक अभिक्षमता परीक्षण, जिसे संक्षेप में D.A.T. कहते हैं, एक अत्यधिक प्रसिद्ध तथा बहुतायत से प्रयुक्त किया जाने वाला परीक्षण है। यह परीक्षण कक्षा 8 से कक्षा 12 तक के लिए है तथा इसके दो प्रारूप (Form S and T) उपलब्ध हैं। प्रत्येक प्रारूप में आठ-आठ उप-परीक्षण हैं जो दो परीक्षण पुस्तिकाओं में व्यवस्थित रहते हैं। एक परीक्षण पुस्तिका में शाब्दिक तर्क (Verbal Reasoning या VR), आंकिक योग्यता (Numerical Ability या NA), अमूर्त तर्क (Abstract Reasoning या AR) तथा लिपिकीय गति व परिशुद्धता (Clerical Speed and Accuracy या CSA) नामक चार उप-परीक्षण होते हैं, जिनके लिए क्रमश: 30, 30, 25 व 6 मिनट (कुल 91 मिनट) का समय निर्धारित रहता है। दूसरी परीक्षण पुस्तिका में यान्त्रिक तर्क (Mechanical reasoning या MR), स्थानगत सम्बन्ध (Space Relations या SR), वर्ण विन्यास (Spelling या SP) तथा भाषा प्रयोग (Language Usage या LU) नामक चार उप-परीक्षण होते हैं जिनके लिए क्रमश: 30, 25, 10 व 25 मिनट (कुल 90 मिनट) का समय निर्धारित रहता है। यद्यपि आठों परीक्षणों का समय निर्धारित है फिर भी केवल लिपिकीय गति व परिशुद्धता का परीक्षण गति परीक्षण (Speed Test) है, शेष सभी परीक्षण शक्ति परीक्षण (Power Test) है। सम्पूर्ण परीक्षण को परिस्थितिनुसार दो, चार या छह सत्रों में प्रशासित किय जा सकता है। आठों परीक्षणों पर अलग-अलग प्राप्तांक प्राप्त होते हैं। परीक्षण निर्माताओं ने VR + NA नामक एक नवाँ परीक्षण प्राप्तांक भी इंगित किया है। जिसे सामान्य शैक्षणिक अभिक्षमता (General Scholastic Aptitude) के रूप में व्यक्त किया जाता है। इन नौ प्राप्तांकों को प्रतिशतीय क्रमांक (Percentile Ranks) तथा स्टेनाइन (Stanines) में परिवर्तित किया जा सकता है। लिपिकीय परीक्षण के लिए

नोट

समतुल्य विधि तथा अन्य परीक्षणों के लिए अर्द्धविच्छेद विधि का प्रयोग करने पर विभिन्न उप-परीक्षणों के विश्वसनीयता गुणांक लड़कों के लिए 79 से 97 तथा लड़कियों के लिए 80 ये 97 के बीच पाये गये। इस परीक्षण श्रृंखला की पूर्व कथन वैधता (Predictive Validity) तथा समवर्ती वैधता (Concurrent Validity) ज्ञात की गई है।

विभिन्न विषयों में छात्रों के द्वारा अर्जित ग्रेडों को DAT के द्वारा पूर्व कथित करने से सम्बन्धित अनुसंधान कार्यों के परिणाम निम्नवत हैं–

(*i*) VR + NA, LU तथा VR प्राप्तांकों से अंग्रेजी विषय के ग्रेडों का सर्वोत्तम पूर्व कथन किया जा सकता है।

(*ii*) VR + NA, या केवल NA प्राप्तांकों से गणित विषय के ग्रेडों का सर्वोत्तम पूर्व कथन किया जा सकता है।

(*iii*) VR + NA, VR, NA या LU प्राप्तांकों से विज्ञान विषय के ग्रेडों का सर्वोत्तम पूर्व कथन किया जा सकता है।

(*iv*) VR + NA, VR, NA या LU प्राप्तांकों से सामाजिक अध्ययन विषय के ग्रेडों का भी सर्वोत्तम पूर्व कथन किया जा सकता है।

(*v*) DAT के सर्वोत्तम उप-परीक्षण प्राप्तांकों तथा विभिन्न विषयों में ग्रेडों के मध्य सहसम्बन्ध गुणांकों का मान 40 से 60 के बीच था।

(*vi*) VR + NA प्राप्तांकों तथा सामान्य बुद्धि परीक्षणों पर प्राप्त अंकों के मध्य उच्च सहसम्बन्ध गुणांक, 70 से, 85 के बीच प्राप्त हुए।

23.5 विशिष्ट अभिक्षमता परीक्षण (Special Aptitude Tests)

इस प्रकार के अभिक्षमता परीक्षण वे परीक्षण हैं जो किन्ही/किसी विशिष्ट क्षेत्र में व्यक्ति की अभिक्षमता का मापन करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। जैसे यान्त्रिक अभिक्षमता परीक्षण, संगीत अभिक्षमता परीक्षण, शिक्षण अभिक्षमता परीक्षण तथा चिकित्सकीय अभिक्षमता परीक्षण क्रमशः यान्त्रिक, संगीत, शिक्षण व चिकित्सा के क्षेत्र में किसी व्यक्ति की अभिक्षमता का मापन करने के लिए तैयार किये जाते हैं। विभिन्न विशिष्ट अभिक्षमताओं का मापन करने के लिए तैयार किये गये कुछ प्रमुख विदेशी परीक्षण निम्नवत हैं–

(*i*) सीशोर संगीत प्रतिभा परीक्षण

Seashore Measures of Musical Talent

(*ii*) विंग संगीत बुद्धि के प्रमापीकृत परीक्षण

Wing standardized Tests of Musical Intelligence

(*iii*) संगीत अभिक्षमता प्रोफाइल

Musical Aptitude profile

(*iv*) हॉर्न कला अभिक्षमता सूची

Horn Art Aptitude Inventory

(*v*) मियर कला परीक्षण

Meier Art Tests

(*vi*) ग्रेवस डिजाइन निर्णय परीक्षण

Graves Design Judgement Tests

नोट

(*vii*) मिनिसोटा लिपिकीय परीक्षण
Minnesota Clerical Test

(*viii*) यान्त्रिक बोध के परीक्षण
Tests of Mechanical Comprehension

(*ix*) चिकित्सा महाविद्यालय प्रवेश परीक्षण
Medical College Admission Test

(*x*) कानून विद्यालय प्रवेश परीक्षण
Law School Admission Test

(*xi*) पूर्व-अभियान्त्रिकी योग्यता परीक्षण
Pre-Engineering Ability Test

भारतवर्ष में भी कुछ अभिक्षमता परीक्षणों का निर्माण मनोविज्ञानशालाओं, शैक्षिक व व्यावसायिक परामर्श संस्थाओं तथा अनुसंधानकर्त्ताओं के द्वारा किया गया है। इनमें से कुछ परीक्षण निम्नवत हैं–

(*i*) यान्त्रिक अभिक्षमता परीक्षण – आत्मानन्द शर्मा

(*ii*) लिपिकीय अभिक्षमता परीक्षण – किरन गुप्ता

(*iii*) वैज्ञानिक अभिक्षमता परीक्षणमाला – के. के. अग्रवाल

(*iv*) अध्यापन अभिक्षमता परीक्षण – सिंह एवं शर्मा

(*v*) डी. ए. टी. के प्रारूप एल का अनुशीलन – जे. एम. ओझा

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान की पूर्ति करें–

1. VR + NA या केवल NA प्राप्तांकों से ..... विषय के ग्रेडों का सर्वोत्तम पूर्व कथन किया जा सकता है।
2. DAT के सर्वोत्तम उप-परीक्षण प्राप्तांकों तथा विभिन्न विषयों में ग्रेडों के मध्य सह-संबंध गुणांकों का मान ..... के बीच था।
3. सीशोर संगीत प्रतिभा परीक्षण ..... परीक्षण के अंतर्गत आता है।
4. भारत में यांत्रिक अभिक्षमता परीक्षण करने का श्रेय ..... को है।

चिकित्सा महाविद्यालयों में प्रवेश के लिए ली जाने वाली पूर्व-चिकित्सा परीक्षा (Pre Medical Test), अभियान्त्रिकी उपाधि पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए ली जाने वाली प्रवेश परीक्षा (Adminision Test), बी. एड. कक्षाओं के लिए ली जाने वाली बी. एड. प्रवेश परीक्षा (B.Ed. Admission Test) तथा विधि कक्षाओं के लिए ली जाने वाली विधि प्रवेश परीक्षा (Law Admission Test) अप्रमापीकृत प्रकार के अभिक्षमता परीक्षण ही हैं।

23.6 सारंश (Summary)

- किसी क्षेत्र विशेष में व्यक्ति की सफलता की सम्भावना को बताने वाली विशिष्ट योग्यता तथा क्षमता को अभिक्षमता के नाम से जाना जाता है। अभिक्षमता से किसी क्षेत्र विशेष में व्यक्ति की सफलता या असफलता

नोट

का पूर्व अनुमान लगाया जा सकता है। अभिक्षमताएँ व्यक्ति की भावी सम्भावनाओं को इंगित करती हैं। अभिक्षमताओं के मापन के लिए अभिक्षमता परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है।

- अभिक्षमता परीक्षणों को तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है– (*i*) सामान्य अभिक्षमता परीक्षण, (*ii*) विभेदक अभिक्षमता परीक्षण, तथा (*iii*) विशिष्ट अभिक्षमता परीक्षण। सामान्य अभिक्षमता परीक्षण व्यक्ति की सामान्य योग्यताओं व क्षमताओं का मापन करते हैं। इनकी प्रकृति प्राय: सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षणों या सामान्य बुद्धि परीक्षणों जैसी होती है जो व्यक्ति की सामान्यीकृत सफलता या असफलता का पूर्वानुमान बताने में सक्षम होते हैं। विभेदक अभिक्षमता परीक्षण व्यक्ति की विभिन्न क्षेत्रों में अभिक्षमताओं को इंगित करते हैं। ये परीक्षण प्राय: शृंखला प्रकार के परीक्षण होते हैं। विशिष्ट अभिक्षमता परीक्षण किसी विशिष्ट क्षेत्र में व्यक्ति की अभिक्षमता का मापन करते हैं। भारतवर्ष में अभिक्षमता परीक्षणों के निर्माण की दिशा में काफी कम कार्य हुआ है।

23.7 शब्दकोश (Keywords)

1. **अभिक्षमता**–रुझान, योग्यता

23.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. अभिक्षमता किसे कहते हैं? परिभाषा सहित समझाइए।
2. अभिक्षमता मापन हेतु प्रयोग में लाए जाने वाले विभिन्न परीक्षणों पर प्रकाश डालिए।
3. भेदक तथा विशिष्ट अभिक्षमता परीक्षणों की विशेषताएँ बताइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. गणित 2. 40 से 60 3. विशिष्ट अभिक्षमता 4. आत्मानंद शर्मा

23.9 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. बच्चों में शिक्षा का महत्त्व एवं जानकारियाँ–*सीमा चोपड़ा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
2. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
3. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
4. मनोविज्ञान–*मानव व्यवहार का अध्ययन–ब्रजकुमार मिश्र, पी.एच.आई. लर्निंग नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 24: वैयक्तिक भिन्नता
(Individual Differences)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

24.1 वैयक्तिक भिन्नता का अर्थ व स्वरूप (Meaning and Nature of Individual Difference)

24.2 वैयक्तिक भिन्नता के कारण (Causes of Individual Differences)

24.3 वैयक्तिक भिन्नता के प्रकार (Varieties of Individual Differences)

24.4 वैयक्तिक भिन्नता के ज्ञान का शिक्षा में महत्त्व (Importance of the Knowledge of Individual Difference)

24.5 वैयक्तिक भिन्नता को प्रभावित करने वाले कारक (Factor Influencing Individual Differences

24.6 सारांश (Summary)

24.7 शब्दकोश (Keywords)

24.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

24.9 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- वैयक्तिक भिन्नता के अर्थ एवं स्वरूप को समझने में।
- वैयक्तिक भिन्नता के कारणों को समझने में।
- वैयक्तिक भिन्नता के प्रकार को समझने में।
- वैयक्तिक भिन्नता का ज्ञान एवं शिक्षा में उसके महत्त्व को समझने में।
- वैयक्तिक भिन्नता को प्रभावित करने वाले कारक तत्वों को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

वैयक्तिक भिन्नता प्रकृति का स्वाभाविक गुण एवं देन है। सामान्य रूप से सभी व्यक्ति समान दिखाई देते हैं, किन्तु उनका सूक्ष्म अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उनमें परस्पर कुछ अन्तर अवश्य है। कोई भी दो व्यक्ति शारीरिक बनावट, मानसिक योग्यता तथा व्यक्तित्व के गुणों आदि में समान नहीं दिखाई देते। इस प्रकार की भिन्नता में प्रकृति

नोट

और वातावरण दोनों का हाथ होता है। एक ही माता-पिता की संतान में शारीरिक बनावट, मानसिक शक्तियों, व्यवहार तथा शैक्षिक उपलब्धियों में बहुत भिन्नता दिखाई देती है। व्यक्तिगत भिन्नता का आधार वंशानुक्रम तथा वातावरण से प्राप्त गुण होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं जो कि उसे दूसरे से भिन्न व्यक्ति के रूप में, प्रस्तुत करती हैं। व्यक्तिगत भेद का वैज्ञानिक अध्ययन कुछ समय पूर्व ही आरम्भ हुआ है। मनोविज्ञान का विकास तथा व्यवहार सम्बन्धी अध्ययन जैसे-जैसे होता गया, शिक्षाशास्त्रियों का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट हुआ। सर्वप्रथम 19वीं शताब्दी में सर फ्रांसिस गाल्टन (Galton) का ध्यान वंशानुक्रम का अध्ययन करते समय इस ओर गया। इसके बाद 20वीं शताब्दी में इसका अध्ययन **पियर्सन** (Pearson), **कैटेल** (Cattel) तथा **टरमैन** (Terman) आदि मनोवैज्ञानिकों ने किया। फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में इन अध्ययनों के आधार पर वैयक्तिक भिन्नता के कारणों को जानकर, शिक्षाशास्त्रियों ने, शिक्षा की योजना, उपयुक्त एवं उपयोगी शिक्षा प्रणालियों एवं सिद्धान्तों का निर्माण किया। इन शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने बाल-केन्द्रित शिक्षा को प्रोत्साहित किया, जिससे बालक की आयु, बुद्धि, रुचि, योग्यता तथा क्षमता का अध्ययन भली-भाँति करके, उनके लिए उपयुक्त शिक्षा की व्यवस्था की जा सके। प्रत्येक बालक की शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक उन्नति वैयक्तिक भेद के अनुसार होती है। **स्किनर** महोदय ने कहा है– "बालक की प्रत्येक सम्भावना के विकास का एक विशिष्ट काल होता है। यह विशिष्ट काल वैयक्तिक भेद के अनुसार प्रत्येक में भिन्न-भिन्न होता है, यदि उचित समय पर इस सम्भावना को विकसित करने का प्रयत्न न किया गया तो उसके नष्ट हो जाने का भय रहता है।" अत: व्यक्तित्व के विकास के लिए वैयक्तिक भेद (भिन्नता) के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था करना अनिवार्य है।

24.1 वैयक्तिक भिन्नता का अर्थ व स्वरूप (Meaning and Nature of Individual Difference)

वैयक्तिक भिन्नता या व्यक्तिगत भेद का अर्थ एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से रूप, रंग, शारीरिक गठन, विशिष्ट योग्यताओं, बुद्धि, रुचि, स्वभाव, उपलब्धियों तथा व्यक्तित्व के अन्य गुणों आदि में भिन्नता से है। संसार में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो किसी दूसरे व्यक्ति से पूर्ण रूप से मिलता-जुलता हो। एक परिवार में एक ही माता-पिता के दो पुत्र या जुड़वाँ भाई-बहनों में भी समानता नहीं पाई जाती।

नोट्स

व्यक्तिगत भेद के अन्तर्गत व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विशेषताओं पर ध्यान दिया जाता है और इन्हीं विशेषताओं के आधार पर वह एक विशेष व्यक्ति बनता है।

शिक्षा के क्षेत्र में, प्राचीन समय से ही व्यक्तिगत भेद का अन्तर मानसिक योग्यता के आधार पर किया जाता है जिसके कारण उनमें कम या अधिक भिन्नता होती है। **स्किनर** के अनुसार, "आज हमारा यह विचार है कि व्यक्तिगत विभिन्नताओं में सम्पूर्ण व्यक्तित्व का कोई भी ऐसा पहलू सम्मिलित हो सकता है, जिसकी माप की जा सकती है।" **स्किनर** की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि व्यक्तिगत भिन्नताओं में व्यक्तित्व के वे सभी पहलू आ जाते हैं, जिनकी माप की जा सकती है। वैयक्तिक भिन्नता के अंतर्गत किन पहलुओं का समावेश होता है यह जानने पर व्यक्तिगत भेद का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। **टेलर** महोदय के अनुसार इन माप किये जाने वाले विभिन्न पहलुओं में 'शरीर के आकार और स्वरूप शारीरिक कार्यों में गति सम्बन्धी क्षमताओं, बुद्धि, उपलब्धि, ज्ञान, रुचियों, अभिवृत्तियों और व्यक्तित्व के लक्षणों में माप की जा सकने वाली विभिन्नताओं की उपस्थिति सिद्ध हो चुकी है।" (Measurable differences have been shown to exist in physical size and shape, physicological func-

नोट

tions, motor capacities, intelligence, achievement and knowledge, interests, attitudes and personality traits.)

शिक्षा मनोविज्ञान का सम्बन्ध शिक्षार्थी से होता है इसलिए शैक्षिक दृष्टि से व्यक्तिगत भिन्नता का अध्ययन करना आवश्यक है। कक्षा में भिन्न-भिन्न योग्यताओं और उपलब्धि वाले बालक होते हैं। इनके व्यक्तित्व में भी भिन्नता पाई जाती है जिसका प्रभाव उनके शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ता है और उनमें परस्पर अन्तर पाया जाता है। आज केवल ज्ञानार्जन सम्बन्धी या विषय योग्यता से सम्बन्धित भिन्नता पर ही ध्यान नहीं दिया जाता है बल्कि उनके शारीरिक, भावात्मक, नैतिक व सामाकजिक गुणों में अन्तर को व्यक्तिगत भिन्नता के अन्तर्गत रखकर उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है। उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि शैक्षिक दृष्टि से व्यक्तिगत भिन्नता उन सभी क्षमताओं और लक्षणों आदि से सम्बन्धित हैं जिनसे व्यक्तित्व का विकास या निर्माण होता है।

उपर्युक्त विचारों से यह स्पष्ट हो गया है कि प्रत्येक व्यक्ति में शारीरिक, मानसिक योग्यताएँ तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी लक्षणों (Traits) में जो भिन्नताएँ होती हैं, वे ही वैयक्तिक भिन्नता के आधार हैं।

वैयक्तिक भिन्नता के आधार– वैयक्तिक भिन्नता के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं–

(1) वंशानुक्रम, (2) पर्यावरण।

(1) वंशानुक्रम– वंशानुक्रम माता-पिता एवं अन्य पूर्वजों से सन्तान को प्राप्त होने वाला गुण है जिसमें शारीरिक, मानसिक और व्यवहारिक गुण सम्मिलित होते हैं। इन्हीं के आधार पर प्रत्येक मनुष्य में विभिन्नता और समानता भी दिखाई देती है। वैयक्तिक विभिन्नता का प्रमुख आधार वंशानुक्रम है। वंशानुक्रम के कारण ही व्यक्ति में शारीरिक और मानसिक भिन्नता पाई जाती है।

(2) पर्यावरण– मानव-विकास में पर्यावरण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पर्यावरण के अन्तर्गत वे सभी वस्तुएँ आ जाती हैं जो मानव-विकास एवं उसके सामाजिक सम्बन्धों को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार पर्यावरण या वातावरण का अर्थ व्यापक है। व्यक्ति जिस वातावरण में रहता है उसका उस पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। पर्यावरण के आधार तथा उसके प्रभावों से ही वैयक्तिक भिन्नता विकसित होती है। इसका विस्तृत वर्णन आगे किया जा रहा है।

24.2 वैयक्तिक भिन्नता के कारण (Causes of Individual differences)

मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तिगत भिन्नता के कई कारण बताये हैं जिनमें प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

(1) वंशानुक्रम (Heredity)– वैयक्तिक भिन्नता का प्रमुख कारण वंशानुक्रम है। मनोवैज्ञानिक **गाल्टन, पियर्सन, टरमैन, मैक्डूगल तथा बिने** आदि ने अपने प्रयोगों से सिद्ध कर दिया है कि व्यक्तियों के शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक विशेषताओं का प्रमुख कारण वंशानुक्रम ही है। पैतृक गुणों का संक्रमण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में होता रहता है और इसी कारण व्यक्ति, व्यक्ति में भिन्नता दिखाई देती है। उदाहरणार्थ- प्राय: तीव्र बुद्धि के माता-पिता की संतानें तीव्र बुद्धि और मन्द बुद्धि के माता-पिता की सन्तानें मन्द बुद्धि की होती हैं। कभी-कभी एक ही माता-पिता की सन्तानों में विभिन्नता पाई जाती हैं। वे मानसिक शक्तियों, स्वभाव और अन्य गुणों में एक दूसरे से कुछ-कुछ भिन्न अवश्य होते हैं। यह वंशानुक्रम के कारण होते हैं।

(2) वातारण (Environment)– वैयक्तिक भिन्नता का दूसरा कारण वातावरण है। वातावरण के अन्तर्गत पारिवारिक, सामाजिक, भौगोलिक और सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है। व्यक्ति जिस प्रकार के वातावरण में रहता है, उसी के अनुसार उसका शारीरिक, मानसिक विकास, रहन-सहन, व्यवहार आचार-विचार आदि होते हैं। उदाहरणार्थ शिक्षित और सुसंकृत परिवार का बालक अशिक्षित परिवार के बालक से भिन्न होता है। गाँव और नगरों के बच्चों में तथा ठण्डे देश और गर्म देश के बच्चों में पर्याप्त भिन्नता दिखाई देती है। जिस देश का

नोट

प्राकृतिक वातावरण ठण्डा होता है वहाँ के लोग बलवान और परिश्रमी और गर्म देश के लोग प्राय: निर्बल तथा आलसी होते हैं।

(3) आयु व बुद्धि (Age and Intelligence)– बालक का शारीरिक विकास, मानसिक और संवेगात्मक विकास उसकी आयु के अनुसार होता है। इसलिए विभिन्न आयु के बालकों में अन्तर दिखाई देता है। बुद्धि को जन्मजात क्षमता माना जाता है। फिर भी इस क्षमता का विकास आयु और पर्यावरण से सम्बन्धित होता है। बुद्धि के कारण भी व्यक्तियों में भिन्नता पाई जाती है। अत: बुद्धि में अन्तर होने के कारण व्यक्ति को ऐसी श्रेणी में क्रमबद्ध किया जाता है जो प्रतिभावान से लेकर मूर्ख हो सकते हैं। बुद्धि की भिन्नता व्यक्तियों में बहुत अन्तर उत्पन्न कर देती है।

(4) स्वास्थ्य–शारीरिक स्वास्थ्य के कारण भी व्यक्तिगत भिन्नता पाई जाती है। कुछ लोग स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट, कुछ साधारण तथा कुछ दुर्बल होते हैं, इसलिए उनमें शारीरिक शक्ति और कार्य-क्षमता में भिन्नता पाई जाती है। शारीरिक स्वास्थ्य का मानसिक स्वास्थ्य से सम्बन्ध होता है। पूर्ण स्वस्थ और अस्वस्थ व्यक्ति में बहुत अन्तर दिखाई देता है। वैयक्तिक भेद का आधार शारीरिक स्वास्थ्य भी है।

(5) जाति, प्रजाति एवं राष्ट्र (Caste, Race and Nation)– व्यक्तिगत भिन्नता के कारणों में जाति, प्रजाति तथा देश का भी प्रमुख स्थान होता है। उदाहरणार्थ ब्रह्मण जाति के व्यक्ति अध्ययनशील, क्षत्रिय जाति के व्यक्ति युद्धप्रिय, साहसी और वैश्य जाति के व्यक्ति व्यापार में कुशल होते हैं। नीग्रो प्रजाति के बालकों से अमेरिकन प्रजाति के बालक अधिक तेज, बुद्धिमान और कार्यकुशल पाये जाते हैं। उसी प्रकार एक राष्ट्र के व्यक्तियों में शारीरिक, बौद्धिक, भावात्मक विशेषताएँ दूसरे राष्ट्र के व्यक्तियों से भिन्न होती हैं। इन्ही व्यक्तिगत भिन्नताओं के कारण ही हम विभिन्न देश के व्यकितयों को सरलतापूर्वक पहचान लेते हैं।

(6) शिक्षा एवं आर्थिक दशा (Education and Economical Condition)– शिक्षा द्वारा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है। और वह शिष्ट, गम्भीर और विचारशील बनता है। शिक्षा ही उसे अशिक्षित और अशिष्ट व्यक्ति से भिन्न बना देती है। परिवार की आर्थिक स्थिति भी शारीरिक, शैक्षिक, भावात्मक तथा सामाजिक विकास को प्रभावित करती है।

(7) लिंग-भेद (Sex-Differences)– बालक बालिकाओं के शारीरिक विकास, मानसिक तथा संवेगात्मक विकास में अंतर होता है। बालिकाओं का विकास शारीरिक दृष्टि से बालक से पहले होता है। इस विकास-भेद के कारण मानसिक विकास में भी अन्तर होता है और दोनों के स्वभाव तथा व्यक्तित्व के अन्य गुणों में भी समानता दिखाई देती है। उदाहरणार्थ- बालक स्वभाव से कठोर, साहसी, परिश्रमी तथा बालिकाएँ कोमल, दयालु, लज्जाशील और शान्तिप्रिय होती हैं।

(8) परिपक्वता (Maturity)– परिपक्वता का सम्बन्ध सामान्यत: व्यक्ति की आयु (Age) से होता है। बालक के जन्म के बाद धीरे-धीरे शारीरिक, मानसिक परिपक्वता आती है। कुछ बालकों में शारीरिक और मानसिक विकास तीव्र गति से होता, उनमें परिपक्वता जल्दी आती है। बालक की शिक्षा का परिपक्वता से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह परिपक्वता किसी बालक में देर से और किसी में जल्दी आती है। अत: वैयक्तिक भिन्नता का यह भी एक महत्त्वपूर्ण कारण है।

(9) गत्यात्मक योग्यता (Motor Ability)– गति-सम्बन्धी योग्यता के कारण के कुछ लोग कार्य शीघ्रता और कुशलतापूर्वक कर लेते हैं। गतिवाही योग्यता या कुशलता (Motor skill) में आयु के साथ वृद्धि होता है। इस कारण भी भिन्न अवस्थाओं में, भिन्न व्यक्तियों में और अन्तर दिखाई देता है।

(10) पृष्ठभूमि (Background)– विद्यालयों में आने वाले भिन्न-भिन्न बालक जिन परिवारों और समुदायों से आते हैं उनकी पृष्ठभूमि में अन्तर होता है। उदाहरण के लिए उच्च शिक्षित धनी परिवार के बालक में और अशिक्षित

नोट

निम्न वर्ग के बालक में पर्याप्त भिन्नता दिखाई देती है। बालक के संवेगात्मक, सामाजिक, नैतिक और सौन्दर्यात्मक विकास पर उसके परिवार और समाज का प्रभाव पड़ता है। पारिवारिक और सामाजिक पृष्ठभूमि के भिन्न होने पर वैयक्तिक भेद दिखाई देता है।

(11) मानसिक विकास का प्रभाव– सभी बालकों में मानसिक योग्यताओं का विकास समान रूप से नहीं होता। मानसिक योग्यताओं के अन्तर्गत बुद्धि, कल्पना, प्रत्यक्षीकरण, तर्क-शक्ति, निर्णय-शक्ति, स्मृति और सीखने की क्षमता आदि आती है। इन सब में बुद्धि का सबसे अधिक महत्त्व होता है। बालक की शारीरिक आयु और मानसिक आयु में अन्तर होने के कारण भी व्यक्तिगत भेद पाया जाता है।

(12) संवेगों का प्रभाव– संवेगों के कारण भी व्यक्ति में भिन्नता दिखाई देती है। विभिन्न संवेगों के कारण ही कोई व्यक्ति क्रोधी, लड़ाकू और कठोर दिखाई देता है, जबकि दूसरा व्यक्ति हँसमुख, शान्तिप्रिय एवं दयालु है। इस प्रकार वैयक्तिक भिन्नता पर सांवेगिक तत्वों का भी प्रभाव पड़ता है।

(13) विशेष योग्यताएँ (Special Abilities)– प्रत्येक व्यक्ति में सामान्य के अतिरिक्त कुछ-न-कुछ विशेष योग्यताएँ होती हैं। ये विशेष योग्यताएँ मानसिक, कलात्मक, व्यक्तित्व सम्बन्धी तथा गत्यात्मक कुशलता से सम्बन्धित होती हैं। सभी व्यक्ति एक ही प्रकार का कार्य नहीं करते। वे जब अपनी रुचि, रुझान और विशेष योग्यता के अनुसार अपना व्यवसाय चुनते हैं तब सफल होते हैं। विशेष योग्यताओं के कारण ही वैज्ञानिक, डॉक्टर, इन्जीनियर, शिक्षक, राजनीतिज्ञ, कलाकार और संगीतकार में वैयक्तिक विभिन्नता दिखाई देती है।

(14) ग्रहण-शक्ति– मनोवैज्ञानिक प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि ग्रहण-शक्ति किसी में कम और किसी में ज्यादा होती है। ग्रहण-शक्ति में भिन्नता होने के कारण कोई बालक किसी विषय को जल्दी समझा लेता है और याद कर लेता है और कोई देर से समझता है। एक ही कक्षा में किसी बालक के सीखने की गति तेज होती है और किसी की धीमी होती है। कोई परीक्षा में सर्वोच्च अंक प्राप्त करता है तो कोई साधारण अंक प्राप्त करता है। इस आधार पर भी हम उन्हें तीव्र बुद्धि या मंद बुद्धि का बालक कहते हैं। इस प्रकार ग्रहण-शक्ति के कारण भी वैयक्तिक भेद दिखाई देता है।

(15) व्यक्तित्व– व्यक्तित्व व्यक्ति के सभी गुणों का योग होता है। प्रत्येक व्यक्ति में दूसरे व्यक्ति से शारीरिक, संवेगात्मक तथा बौद्धिक गुण भिन्न होते हैं। शारीरिक दृष्टि से सुन्दर-असुन्दर, मोटे-दुबले, संवेगात्मक दृष्टि से उग्र, कठोर, लड़ाकू, विनम्र, शांतिप्रिय, शिष्ट और बौद्धिक दृष्टि से बुद्धिमान तथा बुद्धिहीन व्यक्तित्व वाले व्यक्ति पाये जाते हैं। इस प्रकार व्यक्तित्व के कारण भी वैयक्तिक भिन्नता पाई जाती है।

वैयक्तिक भिन्नता के उपर्युक्त कारण सामान्यत: सभी व्यक्तियों की भिन्नताओं से सम्बन्धित हैं। विद्यालय में पढ़ने वाले छात्रों में पाये जाने वाले व्यक्तिगत भेदों के कुछ कारणों का उल्लेख **गैरिसन व अन्य** ने इस प्रकार किया है– "बालकों की विभिन्नताओं के मुख्य कारणों को प्रेरणा, बुद्धि, परिपक्वता और वातावरण सम्बन्धी उद्दीपन की विभिन्नताओं के मुख्य कारणों की प्रेरणा, बुद्धि, परिपक्वता और वातावरण सम्बन्धी उद्दीपन की विभिन्नताओं द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।" (The difference among children may best be accounted for by variation in motivation, intelligence, maturation and environmental stimulation.)

24.3 वैयक्तिक भिन्नता के प्रकार (Varieties of Individual Differences)

दो व्यक्तियों में जिन कारणों से भिन्नता पाई जाती है उन्हीं के आधार पर व्यक्ति भेद या विभिन्नता के प्रकार निश्चित किये गये हैं। व्यक्तिगत भेद के प्रकार निम्नांकित क्षेत्रों में दिखाई देते हैं–

(1) शारीरिक विकास में भिन्नता (Physical Difference)– शारीरिक भिन्नता के अन्तर्गत रूप-रंग, शारीरिक गठन, भार, कद, यौन-भेद तथा शारीरिक परिपक्वता आती है। कुछ व्यक्ति मोटे, कुछ दुबले, कुछ लम्बे, कुछ नाटे,

नोट

कुछ गोरे, कुछ सुन्दर और कुछ कुरूप होते हैं। मनोवैज्ञानिकों की धारणा है कि इन सबका प्रभाव योग्यता, बुद्धि, स्वभाव, प्रवृत्ति और रुचि पर पड़ता है।

(2) मानसिक भिन्नता (Mental Difference)– मानसिक भिन्नता के अन्तर्गत निम्नांकित बातों का समावेश होता है–

(क) बौद्धिक विकास सम्बन्धी भिन्नता।

(ख) मूल प्रकृति सम्बन्धी भिन्नता।

(ग) ज्ञानोपार्जन या सीखने में भिन्नता।

(घ) रुचि सम्बन्धी भिन्नता।

(ङ) स्वभाव सम्बन्धी भिन्नता।

(क) बौद्धिक भिन्नता के कारण– कोई प्रतिभाशाली, कोई अत्यधिक बुद्धिमान, कोई कम बुद्धिमान और कोई साधारण या मन्द बुद्धि या मूर्ख होता है। इस योग्यता की जाँच बुद्धि-परीक्षणों द्वारा की जाती है।

(ख) मूल प्रवृत्ति सम्बन्धी भिन्नता के कारण– कुछ व्यक्ति उदार हृदय, कुछ कठोर हृदय, कुछ हँसमुख, प्रसन्नचित्त तथा कुछ सदा उदास और रोनी सूरत बनाये रहते हैं। इसी प्रकार किसी में संग्रह प्रवृत्ति तो किसी में जिज्ञासा प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल होती है। जिज्ञासु व्यक्ति सदा नयी बातों को सीखने और जानने का प्रयास करता है।

(ग) ज्ञानोपार्जन या सीखने में भिन्नता– शिक्षा के क्षेत्र में व्यक्तिगत भिन्नता का तात्पर्य यह है कि विद्यार्थी के पढ़ने-लिखने और विभिन्न पाठ्य-विषयों में पाया जाने वाला अन्तर जिसके कारण उसकी उपलब्धि में अन्तर पाया जाता है। उपलब्धि परीक्षाओं द्वारा यह ज्ञात होता है कि बालकों की सीखने की क्षमता में भी भिन्नता पाई जाती है। छात्रों के सीखने की क्षमता में अन्तर होने के कारण अध्यापक को व्यक्तिगत एवं कक्षा-विधियों को आवश्यकतानुसार अपनाना चाहिए।

(घ) रुचि सम्बन्धी भिन्नता के कारण– कुछ बालक पढ़ने में और कुछ खेलने में तेज होते हैं। बालक और वयस्क की रुचि में, बालक और बालिकाओं की रुचि में और स्त्री और पुरुष की रुचि में अन्तर होता है।

(ङ) स्वभावगत भिन्नता के कारण– कोई व्यक्ति उग्र, उद्दंड तथा कोई नम्र और सुशील होता है। इसी प्रकार बालक और बालिका के स्वभाव में भी अन्तर होता है।

(3) व्यक्तित्व सम्बन्धी भिन्नता– मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों के कारण किसी व्यक्ति को अन्तर्मुखी (Introvert), किसी को बहिर्मुखी (Extrovert) प्रवृत्ति का कहा है। व्यक्तित्व की भिन्नता के भी कई भेद हैं। व्यक्तिगत भिन्नता का ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्यक्तित्व संबंधी भिन्नता के विषय में जानना आवश्यक है। इसका उल्लेख आगे के अध्याय में किया गया है।

वैयक्तिक गुणों में विचलनशीलता– पूर्व पृष्ठों में वैयक्तिक भेद के स्वरूप, कारण आधार एवं क्षेत्रों का वर्णन किया गया है। इस विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि विभिन्न कारणों से एक व्यक्ति दूसरे से भिन्न होता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी एक ही व्यक्ति में जो दूसरे से भिन्न गुण पाये जाते हैं उनमें भी असमानता या भिन्नता दिखाई देती है। एक ही व्यक्ति के गुण, योग्यता या कुशलता में जो विभिन्ना या असमानता पाई जाती है उसे गुणों की विचलनशीलता (Trait Variability) कहते हैं। उदाहरणार्थ– यदि एक छात्र की विभिन्न योग्यताओं का परीक्षण किया जाये तो किसी में वह औसत से ऊपर और किसी में वह औसत से नीचे दिखाई देती है। इस प्रकार एक व्यक्ति एक विषय में तीव्र बुद्धि का और दूसरे विषय में मंद बुद्धि का हो सकता है जैसे कलाकार कला में तीव्र दिखाई देता है किन्तु गणित में मंद बुद्धि का परिचय देता है। शैक्षिक दृष्टि से गुणों की विचलनशीलता का बहुत महत्त्व है।

नोट

क्या आप जानते हैं एक ही व्यक्ति के गुण, योग्यता या कुशलता में जो विभिन्नता या असमानता पाई जाती है उसे गुणों की विचलनशीलता (Trait Varibility) कहते हैं।

24.4 वैयक्तिक भिन्नता के ज्ञान का शिक्षा में महत्त्व (Importance of the Knowledge of Individual Difference)

आधुनिक मनोवैज्ञानिक बालकों की शिक्षा में वैयक्तिक विभिन्नताओं को बहुत महत्त्व देते हैं। वैयक्तिक विभन्नता का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर शिक्षक अपने छात्र का अधिक हित कर सकता है। प्राय: प्रत्येक कक्षा में सामान्य छात्रों के अलावा कुछ मंद बुद्धि और प्रतिभाशाली छात्र भी रहते हैं। कक्षा-शिक्षण सामान्य बुद्धि के बालकों के लिए ही उपयुक्त होता है। मंद बुद्धि और प्रतिभाशाली बालक इससे अधिक लाभ नहीं उठा पाते हैं, क्योंकि सभी को सामान्य रूप से एक ही पद्धति से शिक्षा दी जाती है। सभी छात्रों को एक ही विधि और एक ही प्रकार की शिक्षा देने से कोई लाभ नहीं होता, अत: बालकों की व्यक्तिगत भिन्नताओं को दृष्टि में रखते हुए उनकी शिक्षा में अग्रलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

दिए गए कथन के सामने सही (✓) अथवा गलत (×) निशान लगाए–

1. व्यक्तियों के शारीरिक मानसिक और चारित्रिक विशेषताओं का प्रमुख आधार वंशानुक्रम ही है। ☐
2. ग्रहण शक्ति सभी व्यक्तियों में समान होती है। ☐
3. छात्रों को एक ही पद्धति में शिक्षा देना न्यायपूर्ण होगा। ☐
4. परिपक्वता का संबंध सामान्यत: व्यक्ति की आयु से होता है। ☐

(1) कक्षा का सीमित आकार– बालक की व्यक्तिगत भिन्नता को ध्यान में रखते हुए एक कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या अधिक न होनी चाहिए। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि कक्षा में 20 या 25 छात्र से अधिक छात्र न हों। कक्षा में अधिक छात्र होने से शिक्षक उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकता। इस सम्बन्ध में **रॉस** (Ross) ने कहा है– "प्रत्येक अध्यापक की संरक्षता में छात्रों की संख्या इतनी कम होनी चाहिए कि वह उन्हें व्यक्तिगत रूप से भली-भाँति जान सके, क्योंकि इस ज्ञान के बिना वह उनसे ऐसे कार्यों को करने के लिए कह सकता है जो उनमें से बहुतों के स्वभाव के अनुसार उनके लिए असम्भव हो।"

(2) छात्रों का वर्गीकरण– प्रत्येक कक्षा में बालकों को उनकी वैयक्तिक भिन्नता के आधार पर समरूप समूहों (Homogeneous) में विभाजित कर देना चाहिए। इस प्रकार से विभाजन में मानसिक योग्यता के साथ-साथ बालकों की शारीरिक आयु, सामाजिक तथा संवेगात्मक प्रवृत्ति का भी ध्यान रखना चाहिए। बुद्धि-लब्धि के आधार पर तीव्र, सामान्य और मंद बुद्धि बालकों को अलग-अलग वर्गों (Sections) में रखना चाहिए। इस प्रकार के कक्षा-विभाजन से प्रत्येक प्रकार के बालकों को प्रगति करने का अवसर मिलता है।

(3) पाठ्यक्रम-निर्माण– वैयक्तिक विभिन्नता के अनुसार बालक तथा बालिकाओं की रुचि, बौद्धिक स्तर, अभियोग्यता (Aptitude), अभिवृत्ति तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का निर्माण करना चाहिए।

नोट

पाठ्यक्रम में विविध प्रकार के विषयों का समावेश हो। पाठ्यक्रम लचीला (Flexible) होना चाहिए। **स्किनर** महोदय का भी विचार है कि बालकों की विभिन्नताओं के चाहे जो भी कारण हों, वास्तविकता यह है कि विद्यालय को विभिन्न पाठ्यक्रमों के द्वारा उनकी विभिन्नताओं का सामना करना चाहिए।

(4) शिक्षण-विधि का चयन– व्यक्तिगत भेद के आधार पर ही शिक्षण-पद्धतियों का प्रयोग करना चाहिए। एक ही पद्धति से समस्त विद्यार्थियों को पढ़ाना अमनोवैज्ञानिक है।

(5) वैयक्तिक शिक्षण की व्यवस्था– आधुनिक शिक्षा जगत में व्यक्तिगत रूप से दी जाने वाली कई प्रकार की शिक्षा-प्रणालियों का जन्म हुआ जिनमें निम्नलिखित विधियाँ हैं–

(क) डाल्टन योजना, (ख) प्रोजेक्ट योजना, (ग) माण्टेसरी, (घ) किन्डरगार्टेन प्रणाली, (ङ) विनेटिका योजना (Winnetia Plan)– इस प्रणाली का आविष्कार **कॉर्लेटन वाशबर्न** (Corleton Washburn) ने किया। इस प्रणाली में सीखने वाले को स्वयं अपनी गति के अनुसार सीखने का अवसर दिया जाता है। वैयक्तिक शिक्षण पर बल देते हुए **रॉस** ने कहा है– "कठिनाई का वास्तविक समाधान प्रकारों के अनुसार वर्गीकरण नहीं है वरन् व्यक्तिगत शिक्षण है जैसा कि मान्टेसरी-पद्धति अथवा डाल्टन प्रणाली में है, जिनकी सफलता में संदेह के लिए कोई स्थान नहीं है।"

टास्क वर्तमान सरकारी शिक्षातंत्र के परिप्रेक्ष्य में समझाइए कि क्या वैयक्तिक भिन्नता के आधार पर शिक्षा देने का प्रयास सफल हो सकता है? पक्ष अथवा विपक्ष में तर्क दीजिए।

(6) शैक्षिक निर्देशन– व्यक्तिगत विभिन्नता की जानकारी प्राप्त करके शिक्षक छात्रों को शैक्षिक निर्देशन दे सकता है। शिक्षक उन्हें यह बता सकता है कि वे हाई-स्कूल या इण्टर की कक्षाओं में कौन से विषय लें।

(7) व्यावसायिक निर्देशन– छात्रों के शारीरिक, मानसिक एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों का अध्ययन करके ही, उन्हें अनुकूल व्यवसाय चुनाव में सहायता दी जा सकती है। शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य 'जीविकोपार्जन' है। अत: जीवनयापन के लिए किसी-न-किसी व्यवसाय को चुनना पड़ता है। अत: वैयक्तिक भिन्नता के अनुसार उन्हें व्यावसायिक निर्देशन देना आवश्यक है।

(8) लिंग भेद के अनुसार शिक्षा– बालक तथा बालिकाओं की रुचियों, क्षमताओं, योग्यताओं और आवश्यकताओं में अन्तर होता है। अत: उनकी शिक्षा का आयोजन भी इन भिन्नताओं को ध्यान रखकर करना चाहिए। प्रारम्भिक शिक्षा में उनका पाठ्यक्रम समान हो सकता है किन्तु माध्यमिक कक्षाओं में पाठ्यविषयों में कुछ अन्तर अवश्य होना चाहिए जैसे आजकल हाईस्कूल कक्षा में बालिकाओं के लिए गृह-विज्ञान तथा बालकों के लिए गणित पढ़ना अनिवार्य है।

(9) गृहकार्य– छात्रों को गृहकार्य देते समय भी उनकी वैयक्तिक भिन्नता पर ध्यान देना आवश्यक है। तीव्र बुद्धि, तथा मंद बुद्धि छात्रों को क्रमश: कठिन एवं सरल गृहकार्य देना उपयुक्त होगा।

(10) विद्यालय, परिवार तथा समाज में सहयोग– वैयक्तिक भिन्नता को प्रभावित करने वाले अनेक कारकों में– विद्यालय, परिवार और समाज का प्रभाव भी महत्त्वपूर्ण कारक (Factors) है। अत: शिक्षा-मनोविज्ञान के अनुसार शिक्षा में बालक के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए इन तीनों संस्थाओं में परस्पर सहयोग होना चाहिए।

नोट

(11) बहुउद्देश्यीय विद्यालयों की स्थापना– बालक की विशिष्ट योग्यताओं के अनुसार उनके लिए बहुउद्देश्यीय विद्यालायों की स्थापना करनी चाहिए, जिनमें शिल्पकारी, लकड़ी, चमड़े का कार्य तथा अन्य तकनीकी विषयों की शिक्षा का प्रबन्ध हो।

उपर्युक्त विवेचन से व्यक्तिगत विभिन्नताओं के ज्ञान का शैक्षिक महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

24.5 वैयक्तिक भिन्नता को प्रभावित करने वाले कारक (Factor Influencing Individual Differences)

जॉन इवेनसिविच (Jhon Ivancevich) और माइकल मैट्सन (Michacl Mattson) के अनुसार व्यावहारिक ढंग से वैयक्तिक भिन्नता को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक हैं–जनसांख्यिकी, क्षमता एवं कौशल, दृष्टिकोण, मनोवृत्ति, व्यक्तित्व आदि। आगे इस महत्त्वपूर्ण घटकों पर प्रकाश डाला गया है–

1. जनसांख्यिकी– वैयक्तिक भिन्नता को प्रभावित करने वाले जनसांख्यिकीय कारक के रूप में जाति, आयु, लिंग आदि कारक रहे हैं। संगठन उन व्यक्तियों को पसंद करते हैं जो शिक्षित युवक हैं एवं बेहतर सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से संबंध रखते हैं तथा जो दूसरों की तुलना में और बेहतर प्रदर्शन करने में विश्वास करते हैं। ऐसे युवा वर्ग की सदैव आवश्यकता बनी रहती है। जनसांख्यिकीय कारकों का अध्ययन करने वाले प्रबंधकों को यह सही व्यक्ति के चुनावों में सहायता प्रदान करता है।

2. योग्यता एवं कौशल– किसी कार्य को करने के लिए व्यक्ति की शारीरिक क्षमता भी महत्त्वपूर्ण है। कौशल को बेहतर प्रदर्शन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। व्यक्तिगत व्यवहार और प्रदर्शन उच्च क्षमता एवं कौशल से प्रभावित है। किसी संगठन से जुड़ा व्यक्ति इस रूप में बेहतर प्रदर्शन कर सकता है कार्य की आवश्यकतानुसार उसमें क्षमता एवं योग्यता है। एक प्रबंधक, किसी कर्मचारी की क्षमता और कौशल को, कार्य की आवश्यकता में बेहद महत्त्वपूर्ण तत्व मानता है।

3. धारणा– सार्थक ढंग से पर्यावरणीय उद्दीपकों की व्याख्या करने के लिए संज्ञानात्मक प्रक्रिया को धारणा के रूप में संदर्भित किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आधार पर पर्यावरणीय उद्दीपकों को व्यवस्थिति एवं व्याख्यायित कर सकता है। कुछ और कारक हैं जो व्यक्ति की धारणा को प्रभावित करते हैं। धारणा अथवा दृष्टिकोण का अध्ययन प्रबंधकों के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रबंधकों के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि कार्य के अनुकूल वातावरण बनाएँ जो कर्मचारियों को सुखद अनुभव प्रदान करे।

4. मनोवृत्ति– एक निश्चित उद्देश्य हेतु मनोवृत्ति को व्यक्तियों या परिस्थितियों के अनुकूल अथवा प्रतिकूल प्रतिक्रियात्मक रुझान के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। कारक जैसे–परिवार, समाज, संस्कृति, सहयोगी एवं संस्थात्मक कारक मनोवृत्ति के गठन को प्रभावित करते हैं। संस्थाओं में ऐसे प्रबंधकों की आवश्यकता है जो अध्ययन करके अलग-अलग कार्यों की आवश्यकतानुरूप वातावरण तैयार करें जिससे कर्मचारियों के लिए सकारात्मक माहौल तैयार हो।

5. व्यक्तित्व– व्यक्तित्व के भिन्न-भिन्न गुण एवं विशेषताओं के अध्ययन व्यक्तित्व के रूप में परिभाषित कर सकते हैं व्यक्तित्व को किसी व्यक्ति की खूबियों और उसमें मौजूद विशिष्ट लक्षणों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत उन सम्बन्धों और अन्त:क्रिया को रखा जा सकता जो एक व्यक्ति दूसरे लोगों और परिस्थितियों से बनाता है। किसी के व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों में वंशावली परिवार, समाज, संस्कृति और अवस्थाएँ आदि हैं यह एक तथ्य है कि कोई व्यक्ति जब किसी संगठनात्मक वातावरण का सामना करता है तो उसके प्रति कुछ अलग ही प्रतिक्रिया देता है। व्यक्तित्व को मानव का सबसे उलझा हुआ पहलू माना जा सकता

नोट

है, जो उसके व्यवहार को काफी हद तक प्रभावित किसी के व्यक्तित्व का अध्ययन उस व्यक्ति को समझने का अवसर प्रदान करता है। व्यक्तित्व ही उन्हें किसी संगठनात्मक लक्ष्य की प्राप्ति में सहायता देता है यह भी एक तथ्य है कि विभिन्न पर्यावरणीय प्रभाव में अलग प्रतिक्रियाएँ होती हैं। सभी संगठन अपने कर्मचारी से एक खास तरह के व्यवहार की माँग करते हैं, जिसका निरीक्षण वे सीखने, प्रदर्शन, प्रशिक्षण आदि माध्यमों से करते हैं।

24.6 सारांश (Summary)

- प्रत्येक व्यक्ति में कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं जो कि उसे दूसरे से भिन्न व्यक्ति के रूप में, प्रस्तुत करती हैं। व्यक्तिगत भेद का वैज्ञानिक अध्ययन कुछ समय पूर्व ही आरम्भ हुआ है। मनोविज्ञान का विकास तथा व्यवहार सम्बन्धी अध्ययन जैसे-जैसे होता गया, शिक्षाशास्त्रियों का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट हुआ। सर्वप्रथम 19वीं शताब्दी में सर फ्रांसिस गाल्टन (Galton) का ध्यान वंशानुक्रम का अध्ययन करते समय इस ओर गया। इसके बाद 20वीं शताब्दी में इसका अध्ययन **पियर्सन** (Pearson), **कैटेल** (Cattel) तथा **टरमैन** (Terman) आदि मनोवैज्ञानिकों ने किया। फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में इन अध्ययनों के आधार पर वैयक्तिक भिन्नता के कारणों को जानकर, शिक्षाशास्त्रियों ने, शिक्षा की योजना, उपयुक्त एवं उपयोगी शिक्षा प्रणालियों एवं सिद्धान्तों का निर्माण किया।
- वैयक्तिक भिन्नता या व्यक्तिगत भेद का अर्थ एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से रूप, रंग, शारीरिक गठन, विशिष्ट योग्यताओं, बुद्धि, रुचि, स्वभाव, उपलब्धियों तथा व्यक्तित्व के अन्य गुणों आदि में भिन्नता से है।
- **स्किनर** के अनुसार, "आज हमारा यह विचार है कि व्यक्तिगत विभिन्नताओं में सम्पूर्ण व्यक्तित्व का कोई भी ऐसा पहलू सम्मिलित हो सकता है, जिसकी माप की जा सकती है।" **स्किनर** की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि व्यक्तिगत भिन्नताओं में व्यक्तित्व के वे सभी पहलू आ जाते हैं, जिनकी माप की जा सकती है।
- वैयक्तिक भिन्नता के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं–(1) वंशानुक्रम, (2) पर्यावरण।
- मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तिगत भिन्नता के कई कारण बताये है–वंशानुक्रम, वातावरण, आयु व बुद्धि, स्वास्थ्य, जाति, प्रजाति एवं राष्ट्र, शिक्षा एवं आर्थिक दशा, लिंग-भेद, परिपक्वता, गत्यात्मक योग्यता, पृष्ठभूमि, मानसिक विकास का प्रभाव, संवेगों का प्रभाव, विशेष योग्यताएँ, ग्रहण-शक्ति, व्यक्तित्व।

24.7 शब्दकोश (Keywords)

1. **विचलनशीलता**–इधर-उधर होना, परिवर्तनशीलता

24.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. वैयक्तिक भिन्नता के अर्थ एवं स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
2. वैयक्तिक भिन्नता के कारण समझाइए।
3. वैयक्तिक भिन्नता कितने प्रकार की होती है।
4. वैयक्तिक भिन्नता के ज्ञान का शिक्षा में महत्त्व दर्शाइए।
5. वैयक्तिक भिन्नता को प्रभावित करने वाले कारक तत्वों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment) नोट

1. (✓) 2. (×) 3. (×) 4. (✓)

24.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. बच्चों में शिक्षा का महत्त्व एवं जानकारियाँ–*सीमा चोपड़ा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
2. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली*
3. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
4. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.एच. सिन्हा और रचना शर्मा, अटलांटिक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 25: मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

25.1 मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ (Meaning of Mental Health)

25.2 मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ (Meaning of Mental Hygiene)

25.3 बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालने वाले कारक (Factors which Adversely Affect Child's Mental Health)

25.4 सारांश (Summary)

25.5 शब्दकोश (Keywords)

25.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

25.7 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- मानसिक स्वास्थ्य एवं मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ समझने में।
- बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालने वाले तत्वों के विषय में जानकारी प्राप्त करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

व्यक्ति के शरीर में मस्तिष्क का महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि व्यक्ति जो भी कार्य करता है वह अपने मस्तिष्क के संकेत पर या मन के अनुसार करता है। जब तक हमारा मन स्वस्थ नहीं रहता है, तब तक हम किसी भी कार्य को ठीक से नहीं कर सकते। जिन लोगों का मस्तिष्क स्वस्थ नहीं रहता वे जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का सामना सफलतापूर्वक नहीं कर पाते, वे सदा एक प्रकार से मानसिक उलझन या परेशानी में रहते हैं। इसका कारण मानसिक दुर्बलता या किसी प्रकार का विकार होता है। आज व्यक्ति का जीवन अधिक जटिल बनता जा रहा है। उन्हें जीवन में पग-पग पर कठिनाइयों और निराशाओं का सामना करना पड़ता है, मानसिक उलझनों के कारण वे समाज में अपने को समायोजित नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में व्यक्ति के लिए मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होना आवश्यक है। संसार में वे ही व्यक्ति भौतिक और सामाजिक परिस्थितियों में अपने को समायोजित (Adjust) कर पाते हैं जिनका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होता है। मानव-जीवन में शारीरिक स्वास्थ्य के समान ही मानसिक स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है।

शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। इसलिए शिक्षा मनोविज्ञान के अन्तर्गत मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है, क्योंकि शिक्षण-प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए शिक्षण और शिक्षार्थी दोनों के मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान के स्वरूप पर विचार करने के उपरान्त बालक के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों तथा मानसिक स्वास्थ्य में उन्नति करने के प्रयासों पर प्रकाश डालते हुए हम शिक्षा में मानसिक स्वास्थ्य के महत्त्व की चर्चा करेंगे।

नोट

नोट्स

शिक्षा-मनोविज्ञान के अन्तर्गत शिक्षा द्वारा व्यक्तित्व विकास के उपायों पर विचार किया जाता है। व्यक्ति का विकास तभी सम्भव है, जब बालक के शरीर और मन पूर्ण रूप से स्वस्थ हों, क्योंकि शरीर और मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

25.1 मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ (Meaning of Mental Health)

उपर्युक्त विचारों से यह स्पष्ट होता है कि मानसिक स्वास्थ्य के द्वारा ही व्यक्ति जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में अपने को समायोजित कर सकता है। मानसिक स्वास्थ्य के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने निम्नांकित परिभाषाएँ दी हैं–

1. हेडफील्ड (Headfield)– "साधारण शब्दों में हम कह सकते हैं कि मानसिक स्वास्थ्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व का पूर्ण सामंजस्य के साथ कार्य करना है।" (In general terms we may say that mental health is the full harmonious functioning of the whole personality.)

2. लैडेल (Ledell)–"मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है–वास्तविकता के धरातल पर वातावरण से पर्याप्त सामंजस्य करने की योग्यता।" (Mental health means the ability to make adequate adjustments to the environment on the plane of reality.)

3. कुप्पूस्वामी (Kuppuswamy)–"मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है–दैनिक जीवन में भावनाओं, इच्छाओं, महत्वाकांक्षाओं, आदर्शों में सन्तुलन रखने की योग्यता। इसका अर्थ है–जीवन की वास्तविकताओं को सामना करने और उनको स्वीकार करने की योग्यता।" (Mental health means, the ability to balance feelings, desires, ambitions and ideals in one's daily. It means the ability to face and accept the reality of life.)

25.2 मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ (Meaning of Mental Hygiene)

मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान को, 'मानसिक आरोग्य' नाम भी दिया गया है। मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ है–मन को स्वस्थ या निरोग रखने वाला विज्ञान। जिस प्रकार शारीरिक स्वास्थ्य-विज्ञान का सम्बन्ध शरीर के स्वास्थ्य से होता है, उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का सम्बन्ध मानसिक स्वास्थ्य से होता है।

जिससे व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास हो सके ताकि व्यक्ति जीवन की सरल और कठिन दोनों प्रकार की परिस्थितियों में समायोजन स्थापित करने में समर्थ हो। इस विज्ञान के अर्थ को अधिक स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने निम्नांकित परिभाषाएँ दी हैं–

1. ड्रेवर (Drever)–"मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ है–मानसिक स्वास्थ्य के नियमों की खोज करना और उनको सुरक्षित रखने के उपाय करना।" (Mental hygiene means investigation of the laws of mental health and taking of measures for its preservation.)

नोट

2. हेडफील्ड (Headfield)–"मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का सम्बन्ध मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा और मानसिक अव्यवस्थापन को दूर करने से है।" (Mental hygiene is concerned with the maintenance of Mental health and the prevention of mental disorder.)

3. क्रो और क्रो (Crow and Crow)–"मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान वह विज्ञान है जो मानव कल्याण के विषय में बताता है और मानव सम्बन्धों के सब क्षेत्रों को प्रभावित करता है।" (Mental hygiene is a Science that deals with the human welfare and pervades all fields human relationships.)

ए.जे. रोजानफ (Rojanoff A.J.)–"मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान व्यक्ति की कठिनाइयों को दूर करने में सहायता देता है तथा कठिनाइयों के समाधान के लिए साधन प्रस्तुत करता है।" (Mental hygiene endeavours to aid people toward of troubles as well as to furnish ways of handling troubles.)

कालसनिक (Kolesnik)–"मानसिक स्वाथ्य-विज्ञान नियमों का समूह है जो व्यक्ति को स्वयं तथा दूसरों के साथ शान्ति से रहने के योग्य बनाता है।" (Mental hygiene is a set of conditions which enable a person to live at peace with himself and others.)

वेबस्टर डिक्शनरी (Webster's Dictionary) में मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया गया है–"मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान वह विज्ञान है जिसके द्वारा हम मानसिक स्वास्थ्य को स्थिर रखते हैं तथा पागलपन और स्नायु सम्बन्धी रोगों को पनपने से रोकते हैं। साधारण स्वास्थ्य-विज्ञान में केवल शारीरिक स्वास्थ्य पर ही ध्यान दिया जाता है, परन्तु मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान में मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य को भी सम्मिलित किया जाता है, क्योंकि बिना शारीरिक स्वास्थ्य के मानसिक स्वास्थ्य सम्भव नहीं है।"

इस कथन के अनुसार शिक्षण-प्रक्रिया में शिक्षार्थी एवं शिक्षक दोनों के मानसिक स्वास्थ्य का ठीक होना अनिवार्य है। मानसिक रूप से स्वस्थ न होने पर बालक को शिक्षा ग्रहण करने में तथा शिक्षक को शिक्षण-कार्य में सफलता नहीं मिलती। अत: उनके मानसिक अस्वास्थ्य के कारणों पर तथा मानसिक स्वास्थ्य को अच्छा बनाए रखने वाले उपायों पर विचार करना आवश्यक है।

क्या आप जानते हैं मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान के अन्तर्गत मन को स्वस्थ रखने के नियमों और उपयोग का अध्ययन किया जाता है।

25.3 बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालने वाले कारक (Factors which Adversely Affect Child's Mental Health)

बालकों के मानसिक स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालने वाले अनेक कारण या कारक होते हैं। ये कारक निम्नलिखित हैं–

1. वंशानुक्रम का प्रभाव–दोषपूर्ण वंशानुक्रम के कारण बालक में मानसिक दुर्बलता जैसे–बुद्धि की कमी या स्नायु सम्बन्धी रोग पाये जाते हैं। इस कारण वह मानसिक रूप से अस्वस्थ रहता है।

2. शारीरिक स्वास्थ्य का प्रभाव–शारीरिक स्वास्थ्य का मानसिक स्वास्थ्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। रोगी व्यक्ति नयी परिस्थितियों से सामंजस्य करने में कठिनाई का अनुभव करता है।

3. शारीरिक दोष या विकार का प्रभाव–शारीरिक दोष दुर्घटना या बीमारी आदि के कारण आ जाते हैं। शारीरिक दोष के कारण भी बालक में हीनता की भावनाएँ पैदा हो जाती हैं। उसके लिए हीनता की भावनाएँ अपने साथियों और समाज के बीच समायोजन की समस्याएँ पैदा कर देती हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

उपयुक्त विकल्प चुनिए–

1. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की निम्नलिखित परिभाषाएँ किसने दी है–
   "मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान वह विज्ञान है, जो मानव कल्याण के विषय में बताता है और मानव-संबंधों के सभी क्षेत्रों को प्रभावित करता है।"
   (क) हेडफील्ड (ख) क्रो और क्रो (ग) ड्रेवर
2. "साधारण शब्दों में हम कह सकते हैं कि मानसिक स्वास्थ्य संपूर्ण व्यक्तित्व का पूर्ण सामंजस्य के साथ कार्य करना है।"
   (क) लैडेल (ख) कुप्पूस्वामी (ग) हेडफील्ड
3. "मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है–वास्तविकता के धरातल पर वातावरण से पर्याप्त सामंजस्य करने की योग्यता।"
   (क) वेबस्टर डिक्शनरी (ख) लैडेल (ग) ड्रेवर

4. परिवार से सम्बन्धित कारण–बालक के व्यक्तित्व पर परिवार सम्बन्धी निम्नांकित कारकों का प्रभाव पड़ता है–

(क) परिवार का वातावरण–यदि परिवार के सदस्यों में सदा लड़ाई-झगड़ा या पारस्परिक संघर्ष होता रहता है तो बालक पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

(ख) परिवार की निर्धनता–परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण बालक कठोर और उग्र हो जाता है, उसमें सुरक्षा का अभाव, आत्मविश्वास की कमी तथा हीनता की भावना पैदा हो जाती है और ये सब बातें उसके मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालती हैं।

(ग) परिवार का कठोर अनुशासन–यदि बालक को छोटी-छोटी बातों पर डाँट-फटकार पड़ती रहती है तो उसमें आत्महीनता की भावना उत्पन्न हो जाती है। ऐसे वातावरण में वह मानसिक रूप से अस्वस्थ रहता है।

(घ) माता-पिता का अनुचित पक्षपात–यदि परिवार में माता-पिता किसी कारणवश किसी बच्चे को कम और किसी को अधिक स्नेह करते हैं, तब भी उन बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ता है जिन्हें कम स्नेह मिलता है। ऐसी स्थिति में अन्य भाई-बहनों से या परिवार के अन्य बच्चों से ईष्या-द्वेष के भाव रखते हैं। उनमें झगड़ालू प्रवृत्ति पैदा हो जाती है और वे सदा दूसरों को हानि पहुँचाने का प्रयत्न करते रहते हैं।

(ङ) माता-पिता की अत्यधिक ममता–बहुत से माता-पिता इकलौते बच्चों को या मुश्किल से जीवित रहने वाले बच्चों या अमीरी आदि के कारणों से बच्चों को अत्यधिक स्नेह करते हैं। इससे भी बालकों को हानि होती है। उनमें आत्मनिर्भरता का अभाव पाया जाता है। वे जीवन की कठिनाइयों का सामना करने में असमर्थ होत हैं।

(च) माता-पिता के ऊँचे आदर्शों का प्रभाव–जिस परिवार में माता-पिता ऊँचे नैतिक आदर्शों वाले होते हैं, वे अपने बच्चों से भी उन्हीं आदर्शों के अनुकूल आचरण करने की आशा करते हैं। इन ऊँचे आदर्शों के बोझ से दबकर बच्चों को ये हानियाँ उठानी पड़ती हैं–वे साधारण जीवन से दूर रहकर, कल्पना लोक में विचरण करने लगते हैं। इस प्रकार वे संसारिक समस्याओं को हल नहीं कर पाते। उसके मन में **भावना-ग्रन्थियाँ** पड़ जाती हैं। उनके मन में आदर्श और यथार्थ के बीच सदा संघर्ष

नोट

होता रहता है। फलस्वरूप स्नायुमंडल (Nervous System) प्रभावित होता है और उनमें स्नायु सम्बन्धी रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

टास्क 'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है।' इस कथन में से स्वस्थ मस्तिष्क के आशय पर विचार कीजिए।

5. मनोवैज्ञानिक कारण–मानसिक अस्वास्थ्य के उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त कुछ ऐसे मनोवैज्ञानिक कारण हैं जो मानसिक अस्वास्थता या मानसिक विकार उत्पन्न करने में सहायक होते हैं, जिन्हें मानसिक संघर्ष, संवेगात्मक तनाव, भावना-ग्रन्थियाँ, चिन्ता, मानसिक दुर्बलता और थकान आदि कहा जाता है। इनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इन सबका बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

6. समाज से सम्बन्धित कारण–बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर समाज के दोषपूर्ण संठन और वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। असंगठित समाज के बालकों का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं रह सकता, क्योंकि यहाँ के वातावरण में सदा कलह, लड़ाई-झगड़े, विभिन्न प्रकार की सामाजिक बुराइयाँ जैसे–चोरी, झूठ, बेईमानी आदि दिखाई देती हैं। इस प्रकार के समाज में पलने वाले बालकों में संवेगात्मक अस्थिरता, ईर्ष्या, द्वेष, कलह, आचरणहीनता आदि दुर्गुण स्थान बना लेते हैं। समाज के जातीय और धार्मिक संघर्ष, धनी और निर्धन वर्ग की दूरी, ऊँच-नीच की भावनाएँ, विभिन्न समूहों में ईर्ष्या, द्वेष, असहयोग आदि–बालकों में मानसिक तनाव पैद कर देते हैं। समाज की इस प्रकार की स्थिति और वातावरण बालक के मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं।

7. विद्यालय से सम्बन्धित कारण–परिवार के बाद बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर विद्यायल का भी अवांछनीय प्रभाव इस प्रकार पड़ता है।

(क) **विद्यालय का वातावरण**–यदि विद्यालय में बालक पर अत्यधिक नियंत्रण रखा जाता है उसकी इच्छाओं का दमन किया जाता है या पाठ्य विषयान्तर क्रियाओं में भाग नहीं लेने दिया जाता, तब उसके मानसिक स्वास्थ्य में बाधा पड़ती है। यदि विद्यालय तथा कक्षा में सदा कड़े अनुशासन और भय का वातावरण रहता है, तो बालक मानसिक रूप से अस्वस्थ रहता है।

(ख) **दोषपूर्ण पाठ्यक्रम**–यदि बालकों को उनकी रुचि, आवश्यकताओं और योग्यताओं के अनुसार पाठ्यक्रम नहीं मिलता तो वे पढ़ने में रुचि नहीं लेते और परीक्षा में असफल हो जाते हैं, इससे उनका मानसिक स्वास्थ्य खराब हो जाता है। जब उन्हें पाठ्य-विषय नहीं याद हो पाता तो वे सदा चिन्तित और भयभीत रहते हैं कि उन्हें में दण्ड मिलेगा। प्राय: ऐसे बालक मानसिक तनाव की स्थिति में रहते हैं और अपराध-प्रवृत्ति के शिकार हो जाते हैं। प्राय: वे पाठशाला से भाग जाते हैं।

(ग) **अनुपयुक्त शिक्षण-विधियाँ**–यदि शिक्षक वैयक्तिक भिन्नता पर ध्यान न देकर, अमनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करते हैं, तो बालक को ज्ञानार्जन में कठिनाई होती है और वह जब कुछ, सीख नहीं पाता तो निराश हो जाता है।

(घ) **दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली**–वर्तमान समय में आत्मनिष्ठ परीक्षाएँ प्रचलित हैं, उनसे बालक की वास्तविक प्रगति और योग्यता का सही मूल्यांकन नहीं हो पाता। प्राय: परीक्षा के अनेक दोषों के कारण योग्य बालकों को कक्षोन्नति नहीं मिल पाती और भाग्यवश किन्हीं कारणों से अयोग्य बालक अच्छी तरह उत्तीर्ण हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में योग्य बालक निरुत्साहित होकर आत्मविश्वास खोने लगते हैं और अयोग्य बालक भी पढ़ने में रुचि नहीं लेते हैं। इस प्रकार के बालक विद्यालय तथा समाज में अपने का समायोजित नहीं कर पाते।

नोट

(ङ) **प्रतियोगिता की भावना**–प्रतियोगिता की भावना, जिसमें ईर्ष्या, द्वेष और घृणा के भाव होते हैं वह भी बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं।

(च) **शिक्षक के व्यक्तित्व का प्रभाव**–यदि शिक्षक में संवेगात्मक अस्थिरता होती है तो वह बालक से उचित व्यवहार नहीं कर पाता। उसका व्यवहार कठोर और पक्षपातपूर्ण हो जाता है। यदि वह छोटी-छाटी बात पर दण्ड देता या डाँटता रहता है तो बालकों का मस्तिष्क असन्तुलित हो जाता है। ऐसी स्थिति में बालक अधिक उग्र और उद्दण्ड बन जाते हैं या सदा भयभीत से रहते हैं और भावना-ग्रन्थियों के शिकार बन जाते हैं।

25.4 सारांश (Summary)

- व्यक्ति के शरीर में मस्तिष्क का महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि व्यक्ति जो भी कार्य करता है वह अपने मस्तिष्क के संकेत पर या मन के अनुसार करता है। जब तक हमारा मन स्वस्थ नहीं रहता है, तब तक हम किसी भी कार्य को ठीक से नहीं कर सकते।
- संसार में वे ही व्यक्ति भौतिक और सामाजिक परिस्थितियों में अपने को समायोजित (Adjust) कर पाते हैं जिनका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होता है।
- शिक्षा-मनोविज्ञान के अन्तर्गत शिक्षा द्वारा व्यक्तित्व विकास के उपायों पर विचार किया जाता है। व्यक्ति का विकास तभी सम्भव है, जब बालक के शरीर और मन पूर्ण रूप से स्वस्थ हों, क्योंकि शरीर और मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। इसलिए शिक्षा मनोविज्ञान के अन्तर्गत मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है।
- मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान को, 'मानसिक आरोग्य' नाम भी दिया गया है। मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ है–मन को स्वस्थ या निरोग रखने वाला विज्ञान। जिस प्रकार शारीरिक स्वास्थ्य-विज्ञान का सम्बन्ध शरीर के स्वास्थ्य से होता है, उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का सम्बन्ध मानसिक स्वास्थ्य से होता है। मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान के अन्तर्गत मन को स्वस्थ रखने के नियमों और उपयोग का अध्ययन किया जाता है।
- **वेबस्टर डिक्शनरी** (Webster's Dictionary) में मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया गया है–"मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान वह विज्ञान है जिसके द्वारा हम मानसिक स्वास्थ्य को स्थिर रखते हैं तथा पागलपन और स्नायु सम्बन्धी रोगों को पनपने से रोकते हैं। साधारण स्वास्थ्य-विज्ञान में केवल शारीरिक स्वास्थ्य पर ही ध्यान दिया जाता है, परन्तु मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान में मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य को भी सम्मिलित किया जाता है, क्योंकि बिना शारीरिक स्वास्थ्य के मानसिक स्वास्थ्य सम्भव नहीं है।"
- इस कथन के अनुसार शिक्षण-प्रक्रिया में शिक्षार्थी एवं शिक्षक दोनों के मानसिक स्वास्थ्य का ठीक होना अनिवार्य है। मानसिक रूप से स्वस्थ न होने पर बालक को शिक्षा ग्रहण करने में तथा शिक्षक को शिक्षण-कार्य में सफलता नहीं मिलती।

25.5 शब्दकोश (Keywords)

1. **समायोजित करना**–आवश्यकता अथवा परिस्थितिनुसार ढलना।

नोट

25.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. मानसिक स्वास्थ्य से आप क्या समझते हैं?
2. मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान किसे कहते हैं? उपयुक्त परिभाषाओं के साथ समझाइए।
3. बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालने वाले कारकों का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (ख) 2. (ग) 3. (ख)

25.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. मनोविज्ञान–*मानव व्यवहार का अध्ययन–ब्रजकुमार मिश्र, पी.एच.आई. लर्निंग, नई दिल्ली।*
2. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
3. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
4. मनोविज्ञान–*डॉ. सरयू प्रसाद, आगरा बुक स्टोर, आगरा।*

नोट

इकाई 26: तनाव या प्रतिबल का अर्थ एवं विशेषताएँ (Meaning and Characteristics of Stress)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

26.1 तनाव या प्रतिबल का अर्थ एवं विशेषताएँ (Meaning and Characteristics of Stress)

26.2 तनाव की प्रतिक्रियाएँ (Reactions to Stress)

26.3 तनाव के प्रति की गई प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Influencing Reactions to Stress)

26.4 तनाव का मापन (Measurement of Stress)

26.5 तनाव के कारण या स्रोत (Sources or Causes of Stress)

26.6 तनाव कम करने के उपाय (Strategies for Coping Stress)

26.7 प्रतिबल या तनाव का प्रबंधन (Management of Stress)

26.8 सारांश (Summary)

26.9 शब्दकोश (Keywords)

26.10 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

26.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- तनाव का अर्थ एवं उसकी विशेषताओं को समझने में।
- तनाव की प्रतिक्रिया को समझने में।
- तनाव के प्रति की गई प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करने वाले कारकों को जानने में।
- तनाव का मापन, उसका कारण अथवा स्रोत को समझने में।
- तनाव को कम करने के उपाय एवं तनाव के प्रबंधन को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

तनाव हमेशा से मानव जीवन को प्रभावित करता रहा है। हम जब कभी असंतुष्ट होते हैं तो तनाव में आ जाते हैं और जब तक हमारी समस्या का निदान नहीं हो जाता तब तक तनाव की स्थिति बनी रहती है। शिक्षा मनोविज्ञान

नोट

के अंतर्गत मनोवैज्ञानिक तनाव की प्रक्रिया को समझने, उसका मापन करने के साथ-साथ उसे कम करने अथवा उसके निराकरण के उपाय सुझाते हैं।

26.1 तनाव या प्रतिबल का अर्थ एवं विशेषताएँ (Meaning and Characteristics of Stress)

तनाव या प्रतिबल (stress) आधुनिक समाज की एक बड़ी समस्या है। आधुनिक शोधों से यह पता चलता है कि करीब 75% रोगों का कारण यही तनाव होता है। यहाँ तक हृदय रोग एवं कैंसर जैसे जानलेवा रोगों में भी तनाव की भूमिका स्थापित हो चुकी है। प्रश्न यह उठता है कि तनाव का क्या अर्थ होता है? मनोवैज्ञानिकों ने तनाव को परिभाषित करने में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों को अपनाया है जो इस प्रकार हैं–

(*i*) कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तनाव को उद्दीपक (stimulus) कारकों के रूप में समझने की कोशिश की है और कहा है कि कोई भी घटना (event) या परिस्थिति जो व्यक्ति को असाधारण अनुक्रिया करने के लिए बाध्य करता है तनाव कहलाता है। घटनाएँ जैसे भूकंप, अगजनी, नौकरी छूट जाना, व्यवसाय का खत्म हो जाना, प्रियजनों की मृत्यु आदि कुछ प्रमुख घटनाएँ हैं जो व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करती हैं। ऐसे भौतिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय कारकों को जो तनाव उत्पन्न करते हैं, आसेधक (stressor) कहा जाता है।

(*ii*) कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तनाव को अनुक्रिया (response) के रूप में परिभाषित करने की कोशिश की है। यहाँ मनोवैज्ञानिकों द्वारा कठिन परिस्थितियों में व्यक्ति द्वारा किए गए मनोवैज्ञानिक एवं दैहिक अनुक्रियाओं पर बल डाला गया है। जब व्यक्ति इस विशेष तरह की मनोवैज्ञानिक अनुक्रियाएँ जैसे चिन्ता, क्रोध, आक्रमकता आदि एवं दैहिक अनुक्रियाएँ जैसे पेट की गड़बड़ी, नींद न आना, रक्त चाप में वृद्धि आदि दिखलाता है तो हम कहते हैं कि व्यक्ति में तनाव उत्पन्न हो गया है। इस क्षेत्र के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हैन्स सेली[1] (Hans Selye, 1979) ने तनाव को एक अनुक्रिया के रूप में ही परिभाषित करते हुए कहा है– "तनाव से तात्पर्य शरीर द्वारा आवश्यकतानुसार की गई अविशिष्ट अनुक्रिया से होता है।" इस परिभाषा की एक विशेषता यह है कि इसमें तनाव को एक अविशिष्ट अनुक्रिया (nonspecific response) कहा गया है, जिससे सेली का तात्पर्य यह था कि ऐसी अनुक्रियाएँ किसी खास तरह के आसेधक या तनाव उत्पन्न करने वाले उद्दीपक से संबंधित नहीं होती है बल्कि एक ही तरह की अनुक्रियाएँ तनाव उत्पन्न करने वाले किसी भी उद्दीपक द्वारा उत्पन्न की जाती है।

(*iii*) मनोवैज्ञानिकों का तीसरा समूह वह है जिसने उपर्युक्त दोनों ही दृष्टिकोणों के अनुसार तनाव को न सिर्फ उद्दीपक और न ही सिर्फ अनुक्रिया बल्कि इन दोनों के संबंध (relationship) के आधार पर परिभाषित करने की कोशिश की है। इस उपागम को संबंधात्मक उपागम (transactional approach) कहा जाता है। ऐसे मनोवैज्ञानिकों का मत है कि कुछ परिस्थिति या घटनाएँ निश्चित रूप से ऐसी होतीं हैं जो सभी व्यक्तियों के लिए तनावपूर्ण होती हैं। कई ऐसी भी घटनाएँ या परिस्थितियाँ होती हैं जो कुछ व्यक्तियों में तनाव उत्पन्न कर सकती हैं। अत: तनाव को उद्दीपक के रूप में सार्थक ढंग से परिभाषित नहीं किया जा सकता है। उसी तरह से तनावपूर्ण घटनाओं के प्रति की जाने वाली अनुक्रियाओं। यहाँ तक की दैहिक अनुक्रियाओं को मनोवैज्ञानिक कारकों द्वारा आसानी से प्रभावित किया जा सकता है। अत: मात्र अनुक्रिया के रूप में भी तनाव को ठीक ढंग से समझा नहीं जा सकता है। संबंधात्मक उपागम के अनुसार तनाव

1. "Stress refers to nonspecific response of the body to any demand made upon it."
—Hans Selye: The stress of life, 1979, p.40

नोट

को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि व्यक्ति परिस्थिति या घटना का मूल्यांकन अपनी आवश्यकताओं या अभिप्रेरकों तथा वैसी परिस्थिति से निबटने के मौजूद साधन के रूप में किस तरह से करता है। दूसरे शब्दों में, इस उपागम के अनुसार तनाव व्यक्ति तथा वातावरण (जिससे व्यक्ति को खतरा महसूस होता है तथा उनके साधनों को चुनौती मिलती है) के बीच एक खास संबंध को प्रतिबिम्बित करता है। इन उपागम के प्रमुख समर्थक **लेजारस** एवं **फोल्कमैन** (Lazarus and Folkman, 1984) एवं टेलर (Taylor, 1991) रहे हैं।

लेजारस एवं फोल्कमैन (Lazarus and Folkman), टेलर (Taylor) आदि के विचारों को संचित करते हुए **मार्गन, किंग, विस्ज** एवं **स्कौपलर**[1] (Morgan, King, Weisz and Schopler, 1986) ने तनाव की एक उत्तम परिभाषा इस प्रकार दी है–"हम लोग तनाव को एक आन्तरिक अवस्था के रूप में परिभाषित करते हैं जो शरीर के दैहिक माँगों (बीमारी की अवस्थाएँ, व्यायाम, अत्यधिक तापक्रम आदि) या वैसे पर्यावरणीय एवं सामाजिक परिस्थितियाँ जैसे सचमुच हानिकारक, अनियंत्रण योग्य तथा निबटने (coping) के मौजूद साधनों को चुनौती देने वाले के रूप में मूल्यांकन किया जाता है, से उत्पन्न होता है।" इसी तरह से वुड एवं वुड[2] (Wood and Wood, 1999) ने तनाव को इस प्रकार परिभाषित किया है, "अधिकतर मनोवैज्ञानिकों ने एक ऐसी अवस्था के प्रति दैहिक तथा मनोवैज्ञानिक अनुक्रिया को तनाव कहा है जो व्यक्ति को चुनौती देता है या धमकी देता है तथा जिसमें अनुकूलन या समायोजन के कुछ प्रारूप की जरूरत होती है।"

बेरोन[3] (Baron, 1992) ने भी तनाव (stress) को कुछ इसी अर्थ में परिभाषित किया है– "तनाव एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है जो हम लोगों में वैसी घटनाओं के प्रति अनुक्रिया के रूप में उत्पन्न होती है जो हमारे दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक कार्यों को विघटित करता है या विघटित करने की धमकी देता है।"

यदि हम उपर्युक्त दोनों विस्तृत परिभाषाओं का विश्लेषण करें तो तनाव के स्वरूप के बारे में निम्नांकित विशेषताएँ प्रकाश में आएँगी।

1. तनाव एक बहुआयामीय प्रक्रिया (multi-facted process) है जो आसेधकों (stressors) के मूल्यांकन के बाद उसके प्रति की गयी एक तरह की अनुक्रिया है।
2. सामान्यत: यह समझा जाता है कि तनाव जीवन की नकारात्मक घटनाओं (negative events) या दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं से होता है। परन्तु सच्चाई यह है कि तनाव स्वीकारात्मक घटनाओं (positive events) से भी व्यक्ति में उत्पन्न होता है। जैसे–किसी उच्च कुल में शादी होना, अच्छे पद पर प्रोन्नति होना, बहुत बड़ा पुरस्कार या इनाम पाना आदि कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जिनसे व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता

---

1. "We will define stress as an internal state which can be caused by physical demands on the body (diseased conditions, exercise, extremes of temperature and the like) or by environmental and social situations which are evaluated as potentially harmful, uncontrollable or exceeding our resources for coping".

   –Morgan, King, Weisz and Schopler, Introduction to Psychology, 1986, p. 321.

2. "Most psychologists difine stress as the physiological and psychological response to a condition that threatens or chellenges the individual and requires some form of adaptation or adjustment."

   –Wood and Wood : The World of Psychology, 1999, p. 469.

3. "Stress is many-facted process that occurs in us in response to events that disrupt or threaten to disrupt our physical or psychological functioning"

   –Baron: Psychology, 1992, p. 443

नोट

है। यही कारण है कि मशहूर कैनाडियन शरीर विज्ञानी (physiologist) हैन्स सेली ने तनाव या प्रतिबल को दो भागों में बाँटा है–स्वीकारात्मक तनाव (positive stress) तथा नकारात्मक तनाव (negative stress)। उन्होंने स्वीकारात्मक तनाव को यूस्ट्रेस (eustress) तथा नकारात्मक तनाव को डिसस्ट्रेस (distress) की संज्ञा दी है। इन कारणों से तनाव को एक बहुआयामी प्रक्रिया कहा गया है।

3. तनाव में जो घटनाएँ, परिस्थितियाँ आदि होती हैं (जिनसे तनाव उत्पन्न होता है) वे व्यक्ति के नियंत्रण के बाहर होती हैं। यदि किसी विशेष कारण से परिस्थिति व्यक्ति के नियंत्रण में हो जाती है तो तनाव कम हो जाता है।

4. तनाव में मनोवैज्ञानिक (psychological) तथा दैहिक (psysiological) दोनों तरह की अनुक्रियाएँ होती हैं। दूसरे शब्दों में, तनाव में व्यक्ति मानसिक रूप से तथा शारीरिक रूप से क्षुब्धता (disturbance) का अनुभव करता है।

5. तनाव थोड़े समय के बाद समाप्त भी हो सकता है या लम्बे समय तक चल भी सकता है। तनाव कम समय तक चलेगा या लम्बे समय तक चलेगा, यह बहुत कुछ तनाव उत्पन्न करने वाली घटनाओं या परिस्थितियों के स्वरूप पर निर्भर करता है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि तनाव परिस्थिति या घटना का मूल्यांकन करने के बाद उसके प्रति की गयी एक विशेष अनुक्रिया होती है जिसमें व्यक्ति अपने मानसिक एवं दैहिक कार्यों को विघटित होते हुए पाता है।

26.2 तनाव की प्रतिक्रियाएँ (Reactions to Stress)

जब व्यक्ति तनाव (stress) में होता है, तो वह उसे अनुभव करता है तथा उसके प्रति प्रतिक्रिया (React) करता है। इस तरह की प्रतिक्रियाओं को पूर्णरूपेण समझने के लिए निम्नलिखित दो बिन्दुओं को ध्यान में रखना आवश्यक है।

(*i*) व्यक्ति तनाव के प्रति सम्पूर्ण रूप से प्रतिक्रिया करता है। इसका मतलब यह हुआ कि तनाव मनोवैज्ञानिक (psychological) तथा दैहिक (physiological) दोनों तरह की प्रतिक्रिया (reactions) न कि कोई एक तरह की प्रतिक्रिया व्यक्ति में पैदा करता है। तनाव व्यक्ति के तंत्रिका तंत्र के कई भागों यथा–हाइपोथैलमस तथा स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (autonamic nervous system) को प्रभावित करता है जो शरीर के मनोवैज्ञानिक प्रकार्यों अर्थात् संवेग एवं अभिप्रेरकों को तथा शरीरिक प्रकार्य जिसमें अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के कार्य भी सम्मिलित होते हैं, को नियंत्रित करता है। इस तरह से तनाव व्यक्ति के दैहिक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों तरह के कार्यों को प्रभावित करता है।

(*ii*) चाहे तनाव दैहिक हो या मनोवैज्ञानिक, तनाव के प्रति व्यक्ति के मन (mind) तथा शरीर (body) की प्रतिक्रियाएँ (reactions) काफी समान होती हैं। हालांकि तनाव का प्रत्येक स्रोत विशिष्ट तरह की समंजन प्रतिक्रिया (coping reactions) उत्पन्न करता है। सभी तनावों के प्रति व्यक्ति में एक सामान्य प्रतिक्रिया (general reaction) भी उत्पन्न होता है जो हाइपोथैलमस, एड्रीनल ग्रन्थि तथा स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के अनुकम्पी तंत्र (sympathetic system) के अंतर्संबंध अनुक्रियाओं पर आधारित होता है।

तनाव में व्यक्ति दो तरह की अनुक्रियाएँ या प्रतिक्रियाएँ करता है जो निम्नांकित हैं–

(क) मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ (Psychological reactions)

(ख) दैहिक प्रतिक्रियाएँ (Physiological reaction)

इन दोनों तरह की प्रतिक्रियाओं का वर्णन निम्नांकित है– नोट

(क) मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ (Psychological reactions): तनाव में कई तरह की मनोवैज्ञानिक या मानसिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं। दूसरे शब्दों में, तनाव में व्यक्ति का मानसिक कार्यों में एक तरह का विघटन (disruption) या क्षुब्धता पायी जाती है। इन सभी तरह के मानसिक विघटनों को निम्नांकित दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है।

1. संज्ञानात्मक विकृति (Congnitive impairment): तनाव में स्पष्ट संज्ञानात्मक विकृति (cognitive impairment) पायी जाती है। व्यक्ति में एकाग्रता (concentration) की क्षमता कम हो जाती है तथा वह अपने चिन्तन को तार्किक रूप से संगठित नहीं कर पाता है। चिन्तन में चिंता की भूमिका बढ़ जाती है और व्यक्ति परिस्थिति के विभिन्न पहलुओं को ठीक ढंग से प्रत्यक्षण नहीं कर पाता है। अवधान विस्तार कम हो जाता है तथा ध्यान या अवधान में क्षणभंगुरता बढ़ जाती है। स्मृति शक्ति भी इसमें कमजोर पड़ जाती है। दूसरे शब्दों में, तनाव में व्यक्ति के संज्ञानात्मक कार्य (cognitive functioning) में एक तरह की असामान्यता आ जाती है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए शोधों से यह भी स्पष्ट है कि तनाव की परिस्थिति में व्यक्ति कुछ वैसा व्यवहारात्मक पैटर्न दिखलाता है जिसे वह गत समय में कर चुका होता है। जैसे– जिन व्यक्तियों में सतर्क एवं चौकन्ना करने की प्रवृत्ति पहले से अधिक होती है, वे तनाव की स्थिति में और भी अधिक सतर्क एवं चौंकन्ना हो जाते हैं तथा जो आक्रमक प्रकृति के होते हैं, उनमें तनाव होने पर पहले से आक्रामकता और भी बढ़ जाती है और उनके सभी व्यवहारों में आक्रमकता के स्पष्ट सबूत मिलते हैं। इसका कारण बतलाया गया है कि तनाव से व्यक्ति में इस तरह की संज्ञानात्मक विकृति उत्पन्न हो जाती है कि व्यक्ति समस्या के समाधान के वैकल्पिक साधनों (alternative means) का प्रत्यक्षण नहीं कर पाता है तथा अपने व्यवहार में दृढ़ता (rigidity) दिखाता है।

2. सांवेगिक अनुक्रियाएँ (Emotional responses)–तनाव में व्यक्ति तरह-तरह की सांवेगिक अनुक्रियाएँ विशेषकर ऋणात्मक सांवेगिक अनुक्रियाएँ (negative emotional responses) करता है। ऐसी सांवेगिक अनुक्रियाओं में निम्नांकित प्रमुख हैं–

***(i)* चिन्ता** (Anxiety)–जब व्यक्ति तनावपूर्ण परिस्थिति में घिर जाता है तो उसमें सबसे पहले जो सांवेगिक अनुक्रिया होती है वह चिन्ता (anxiety) की होती है। चिन्ता एक ऐसी अप्रिय सांवेगिक अवस्था है जिसमें व्यक्ति में डर, आशंकाएँ, परेशानी आदि की प्रधानता होती है। चिन्ता मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है–सामान्य (normal) तथा स्नायुविकृत (neurotic)। सामान्य चिन्ता का स्वरूप समायोजी (adaptive) होता है और इस तरह की चिन्ता तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के साथ समायोजन करने में व्यक्ति की मदद करती है। स्नायुविकृत चिन्ता (neurotic anxiety) में व्यक्ति तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति से इतना अधिक डर जाता है या आशंकित हो जाता है कि इसके कारण वैसी परिस्थिति के साथ उसके निबटने की क्षमता लगभग समाप्त हो जाती है और वह अपने आप को बेसहारा महसूस करता है। फ्रायड (Freud) के अनुसार चिन्ता का कारण अचेतन का संघर्ष (unconscious conflict) होता है।

***(ii)* क्रोध एवं आक्रामकता** (Anger and Aggression)–तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों के प्रति एक अन्य संवेगात्मक अनुक्रिया (anger) भी होती है जिससे बाद व्यक्ति आक्रमक व्यवहार (aggressive behaviour) करने लगता है। मनुष्यों तथा पशुओं पर किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि तनाव उत्पन्न करने वाले उद्दीपक या परिस्थिति के प्रति प्राणी में पहले क्रोध उत्पन्न होता है और यदि ऐसे उद्दीपक प्राणी के सामने अधिक समय तक बने रहे तो वह उनके प्रति आक्रामकतापूर्ण व्यवहार भी करने लगता है।

नोट

क्या आप जानते हैं बच्चों पर किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि जब उन्हें लक्ष्य वस्तु (goal object) तक पहुँचने से रोक दिया जाता है तो उनमें एक तरह की कुण्ठा (frustration) उत्पन्न होती है और उस कुण्ठा से फिर उनमें आक्रमण-व्यवहार का जन्म होता है और वे लक्ष्य वस्तु की ओर आक्रामकता दिखलाने लगते हैं।

कभी-कभी लक्ष्य वस्तु या स्रोत (sources) जो व्यक्ति में कुण्ठा उत्पन्न करता है, अस्पष्ट होता है। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति यह नहीं जानता कि उसे किस वस्तु पर आक्रमण करना चाहिए परन्तु उसमें क्रोध (anger) रहता है। ऐसी परिस्थिति में वह अपनी आक्रमकता को दिखाने के लिए उपयुक्त वस्तु की खोज करता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कुण्ठा उत्पन्न करने वाला स्रोत अधिक शक्तिशाली होता है, जिसके कारण उसके प्रति व्यक्ति आक्रमकता नहीं दिखा पाता है। इन सारी परिस्थितियों में व्यक्ति की आक्रमकता किसी विशेष व्यक्ति या वस्तु की ओर होती है न कि वास्तविक वस्तु या व्यक्ति की ओर विस्थापित हो जाती है। इस तरह की आक्रामकता को विस्थापित आक्रामकता (displaced aggression) कहा जाता है।

***(iii)* भावशून्यता तथा विषाद** (empathy and depression)–तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के प्रति कुछ लोगों में क्रोध एवं आक्रमकता का व्यवहार न होकर ठीक उसके विपरीत भावशून्यता तथा विषाद का भाव विकसित हो जाता है। सामान्यत: यह देखा गया है कि अगर तनावपूर्ण परिस्थिति व्यक्ति के सामने बनी होती है और व्यक्ति उसके साथ निबटने में सफल नहीं होता है, तो वह उनके प्रति भावशून्यता या उदासीनता विकसित कर लेता है जो बाद में व्यक्ति में विषादी प्रवृत्ति (depressive tendency) उत्पन्न कर देता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि कुण्ठा उत्पन्न करने वाले उद्दीपक के प्रति की गयी प्रतिक्रिया (reaction) को व्यक्ति अन्य व्यवहारों के समान सीखता है। जैसे–जो व्यक्ति तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के प्रति आक्रामकता दिखाकर कभी सफलता प्राप्त नहीं कर पाता है, तो वह उसके प्रति उदासीन रहने की अनुक्रिया करना सीख लेता है और इससे धीरे-धीरे फिर उसमें दिखाई गयी प्रवृत्ति मजबूत हो जाती है। पशुओं तथा मनुष्यों पर किए गए अध्ययनों से यह भी स्पष्ट हुआ है कि प्राणी जब तनावपूर्ण परिस्थिति में अपने आप को घिरा हुआ पाता है तो वह अपने आप को नि:सहाय (helpless) पाता है। इन अध्ययनों से ही मनोविज्ञान में अर्जित नि:सहायता (learned helplessness) के संप्रत्यय का विकास हुआ है जिसमें **सैलिगमैन** (Seligman) का योगदान सबसे महत्त्वपूर्ण है।

(ख) दैहिक प्रतिक्रियाएँ (physiological reaction)–तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति या उद्दीपक के प्रति व्यक्ति दैहिक प्रतिक्रियाएँ (physiological reactions) भी करता है। अक्सर देखा गया है कि तनावपूर्ण परिस्थिति से घिर जाने पर व्यक्ति में पेट की गड़बड़ी, हृदय गति का असामान्य होना, श्वसन गति में परिवर्तन आदि होते हैं। ये सभी दैहिक प्रतिक्रियाओं (physiological reactions) के उदाहरण हैं। ऐसी दैहिक प्रतिक्रियाओं (physiological reactions) को निम्नांकित दो शीर्षकों के तहत बाँटकर अध्ययन किया गया है–

1. आपातकालीन अनुक्रियाएँ (emergency responses)–तनाव उत्पन्न करने वाले उद्दीपक के प्रति व्यक्ति के शरीर में कुछ ऐसी अनुक्रियाएँ होती है जिसे आपाकालीन अनुक्रियाएँ (emergency responses) कहा जाता है। ऐसी अनुक्रियाओं के माध्यम से शरीर में यकृत (liver) अतिरिक्त मात्रा में चीनी का उत्सर्जन करता है ताकि शरीर की मांसपेशियों को अधिक-से-अधिक शक्ति मिल पाये। शरीर में कुछ ऐसे हारमोन्स (harmones) निकलने लगते हैं जो चर्बी तथा प्रोटीन को चीनी में बदल देते हैं जिससे शारीरिक कार्य के लिए पर्याप्त ऊर्जा व्यक्ति को मिलने लगती है। व्यक्ति के हृदय, रक्त चाप तथा श्वसन गति में वृद्धि हो जाती है तथा मांसपेशियों में तनाव भी

नोट

काफी बढ़ जाता है। लार तथा श्लेष्मा (mucus) की मात्रा में काफी कमी आ जाती है ताकि फेफड़े को अधिक-से-अधिक वायु प्रवेश करने के रास्ते में कही कोई रुकावट नहीं आए। शायद यही कारण है कि तनावपूर्ण परिस्थिति में व्यक्ति को मुँह सूखा होने का अनुभव होता है। इन्डोरफिन्स (endorphins) जो एक तरह का स्वाभाविक दर्दनाशक है, की मात्रा में वृद्धि हो जाती है तथा शरीर के सतही क्षेत्रों में पाये जाने वाली रक्त नलिकाएँ थोड़ी संकुचित हो जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप तनावपूर्ण परिस्थिति से निपटने में यदि शरीर में कहीं कुछ कट-फट भी जाता है, तो रक्त व्यक्ति के शरीर से कम मात्रा में निकलता है। शरीर का प्लीहा (spleen) अधिक मात्रा में रक्त में लाल कण का उत्सर्जन करते हैं ताकि अधिक-से-अधिक ऑक्सीजन शरीर के अंगों को मिल सके। इतना ही नहीं हड्डी मज्जा (bone marrow) से अधिक श्वेत रक्त कण का उत्सर्जन होने लगता है ताकि शरीर किसी प्रकार के सम्भावित संक्रामण (infection) से ठीक ढंग से निपट सके।

उक्त सभी तरह की आपातकालीन अनुक्रियाओं का उद्देश्य मात्र एक ही होता है–तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के साथ ठीक ढंग से निपटना तथा उसके साथ उपर्युक्त समायोजन (adjustment) करना। ये सभी दैहिक अनुक्रियाएँ स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (antononic nervous system) तथा अन्त:स्रावी ग्रन्थि (endocrine gland) खासकर एड्रीनल ग्रन्थि तथा पीयूष ग्रन्थि (pituitary gland) की मदद से नियमित एवं नियंत्रित होती है। प्राय: ऐसी परिस्थिति में स्वायत्त तंत्रिका तंत्र अपना कार्य हाइपोथैलेमस (hypothalamus) के नियंत्रण में करता है। इस तरह की दैहिक अनुक्रियाओं के पैटर्न जो जटिल होने के साथ-ही-साथ जन्मजात भी होते हैं, को कैनन (Cannon, 1920) ने 'भिड़ो या भागो अनुक्रिया' (fight or flight response) कहा है। क्योंकि ऐसी अनुक्रियाएँ व्यक्ति को परिस्थिति से भिड़ जाने या उससे भाग जाने के लिए तैयार करता है। उसे सेली (Seyle, 1979) ने चेतावनी प्रतिक्रिया (alarm response) कहा है। क्योंकि ऐसी अनुक्रियाएँ व्यक्ति को परिस्थिति से भिड़ जाने या उससे भाग जाने के लिए तैयार करती हैं।

2. सामान्य अनुकूलन संलक्षण (General Adaptiation Syndrome or GAS)–GAS के संप्रत्यय का प्रतिपादन सेली (Selye, 1979) द्वारा किया गया। इसके माध्यम से सेली ने तनावपूर्ण परिस्थिति में होने पर पशुओं द्वारा दिखलाये जाने वाले दैहिक परिवर्तनों (physiological changes) का वर्णन किया है। यद्यपि ऐसे परिवर्तन पशुओं में होते पाये गए हैं फिर भी सेली का मत है कि इस तरह का शारीरिक परिवर्तन मनुष्यों में भी होता है अगर उन्हें आसेधकों (stressors) या तनाव उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों से लगातार लम्बे समय तक घिरा रहना पड़ता है। GAS में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों की व्याख्या तीन अवस्थाओं (stages) में बाँटकर की गयी है जो निम्नांकित हैं–

(*i*) चेतावनी प्रतिक्रिया की अवस्था (Stage of alarm reaction)

(*ii*) प्रतिशोध की अवस्था (Stage of resistance)

(*iii*) समापन की अवस्था (Stage of exhaustion)

इन तीनों अवस्थाओं का वर्णन इस प्रकार है–

(*i*) चेतावनी प्रतिक्रिया की अवस्था (Stage of alarm reaction)–जब व्यक्ति तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति या घटना जिसे आसेधक (stressor) कहा जाता है, से घिर जाता है और उससे प्रभावित होता है तो उसमें सबसे पहले जो शारीरिक परिवर्तन होते हैं, उसे चेतावनी प्रतिक्रिया (alarm reaction) की संज्ञा दी जाती है। इस अवस्था में व्यक्ति का शरीर अपने आप को आसेधक के प्रति तात्कालिक अनुक्रिया (immediate response) करने के लिए तत्पर करता है। अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र (sympathetic nervous system) उत्तेजित हो जाता है और व्यक्ति आसेधक की चुनौती या धमकी से निपटने के लिए तैयार होता है। इस अवस्था की दो उपअवस्थाएँ (substages) होतीं हैं–आघात अवस्था (shock phase) तथा प्रतिआघात अवस्था (countershock phase)। आघात अवस्था में अवरोधक

नोट

से पहली बार सामना होने से एक तरह का शारीरिक आघात व्यक्ति को लगता है जिसमें शारीरिक तापक्रम तथा रक्तचाप गिर जाता है, हृदय गति कम हो जाती है तथा मांसपेशियाँ सुस्त हो जातीं हैं। इस अवस्था के तुरंत बाद प्रतिआघात अवस्था उत्पन्न होती है जिसमें शरीर अपने रक्षा प्रक्रमों को बढ़ा देता है और सभी तरह की आपातकालीन अनुक्रियाएँ जैसे हृदय गति, रक्त चाप एवं श्वसन आदि में तीव्रता आ जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि आसेधक से निबटने की प्रतिशोध क्षमता (resistance capacity) बढ़ने लगती है जैसा कि आगे दिए गए चित्र 26.1 में ऊपरी वक्र (curve) जो मौलिक आसेधक (original stressor) के हैं, से पता चलता है। चित्र से स्पष्ट है कि प्रतिआघात अवस्था में वक्र ऊपर की ओर बढ़ने लगता है।

(ii) **प्रतिरोध की अवस्था** (Stage of resistance)–अगर व्यक्ति के सामने आसेधक (stressor) की मौजूदगी जारी रहती है, तो GAS की दूसरी अवस्था अर्थात् प्रतिरोध की अवस्था का प्रारंभ होता है जहाँ शरीर आसेधक की निरंतर मौजूदगी से उत्पन्न प्रभाव को अवरुद्ध करता है। इस अवस्था में शरीर में कुछ हारमोन्स (hormones) निकलते हैं जिनसे प्रतिरोध की मात्रा में वृद्धि हो जाती है अर्थात् इन हारमोन्स के सहारे शरीर अपने मुख्य प्रक्रमों को मज़बूत कर आसेधक के प्रभावों से अपने आप को बचाता है। पीयूष ग्रन्थि (pituitary gland) के कुछ कोशिकाओं (cells) द्वारा शरीर की रक्तधारा में एक विशेष हारमोन्स जिसमें एड्रोनोकोरटिकोट्रोपिक (adrenocorticotropic ACTH) प्रधान है, विशेष रूप से उत्सर्जित किया जाता है। (ACTH) का स्राव अंशत: एक दूसरे तरह के रासायनिक पदार्थ कौरटिकोट्रोपीन रीलीजिंग फैक्टर (corticotropin-releasing factor) या CRF कहा जाता है तथा जो हाईपोथैलमस (hypothalamus) द्वारा उत्सर्जित होता है, द्वारा नियंत्रित होता है। आसेधक (stressors) से हाईपोथेलेमस उत्तेजित हो जाता है जिसके फलस्वरूप CRF अधिक मात्रा में पीयूष ग्रन्थि (pituitary gland) में भेजे जाते हैं जो ACTH की मात्रा को रक्त में बढ़ा देता है। ACTH की मात्रा रक्त में अधिक होने से आसेधक के प्रभावों को शरीर पर पड़ने से रोका जाता है। इस तरह से प्रतिरोध स्तर (resistance level) बढ़ जाता है। इतना ही नहीं, ACTH एड्रीनल ग्रन्थि के कार्टेक्स (cortex) को भी उत्तेजित करता है जिससे कोर्टिसल (cortisol) नामक हारमोन्स शरीर के रक्त में मिलता है और इससे भी आसेधकों के प्रभावों से लड़ने की क्षमता शरीर में बढ़ती है। परन्तु इस हारमोन्स का अधिकतम स्तर का बना रहना शरीर के लिए हानिकारक होता है।

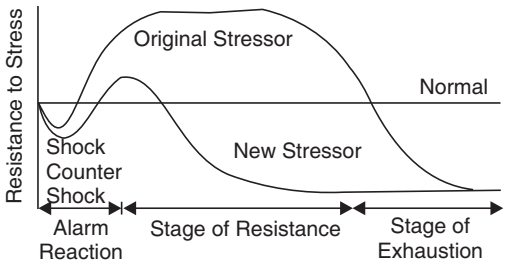

चित्र 26.1 सामान्य अनुकूलन संलक्षण (GAS)

अगर इसी अवस्था में व्यक्ति के सामने कोई नया आसेधक (stressor) आ जाता है तो इस नये आसेधक के प्रति व्यक्ति की प्रतिरोध शक्ति काफी कम हो जाती है। जैसा कि चित्र में नया आसेधक (new stressor) के वक्र में दिखलाया गया है।

(iii) **समापन की अवस्था** (Stage of exhaustion): GAS की तीसरी अवस्था समापन की अवस्था (stage of exhaustion) है जिसमें मौलिक आसेधक (original stressors) तथा नया आसेधक (new stressors) दोनों के ही प्रति अनुक्रिया करने की क्षमता में काफी कमी आ जाती है और प्राणी में शिथिलन बढ़ जाता है। वह निष्क्रिय-सा हो जाता है तथा बीमार पड़ जाता है। यह भी देखा गया है कि आसेधक-उत्पन्न हारमोन्स (stressor-induced hormones) का स्तर अधिक समय तक बने

नोट

रहने से व्यक्ति में आंत का घाव (stomach ulcer), दमा, उच्च रक्त चाप, कैंसर के होने की सम्भावना एवं मधुमेह (diabetes) आदि रोग हो जाते हैं और व्यक्ति की मृत्यु की सम्भावना काफी बढ़ जाती है।

स्पष्ट है कि आसेधकों (stressors) के प्रति व्यक्ति न केवल मनोवैज्ञानिक बल्कि दैहिक प्रतिक्रियाएँ भी करता है। चूंकि इन आसेधकों से उत्पन्न तनाव व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है, अत: इसके कारणों तथा उससे निपटने के उपायों पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

26.3 तनाव के प्रति की गई प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Influencing Reactions to Stress)

जैसा कि हम जानते हैं, तनाव के प्रति सभी व्यक्ति एक ही तरह की प्रतिक्रिया न करके भिन्न-भिन्न तरह की प्रतिक्रियाएँ करता है। दूसरे शब्दों में, तनाव के प्रति की गयी प्रतिक्रियाओं में वैयक्तिक विभिन्नता होती है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस वैयक्तिक विभिन्नता के कारणों को समझने की कोशिश की गयी है। इन लोगों के शोधों के अनुसार निम्नांकित कुछ ऐसे कारक हैं जिनसे ऐसी प्रतिक्रियाएँ प्रभावित होती हैं–

1. पूर्व अनुभूति (Prior experience): जब व्यक्ति को तनावपूर्ण घटना का सामना करने की पूर्व अनुभूति होती है, तो सामान्यत: यह देखा गया है कि तनाव के प्रति की गई उसकी प्रतिक्रियाएँ कम गंभीर होती हैं। जैसे–किसी उग्रवादी क्षेत्र में यदि कोई किसी आफिसर का चौथी बार तबादला (posting) होता है, तो वह वैसे पुलिस आफिसर की तुलना में कम तनावपूर्ण प्रतिक्रियाएँ करेगा जिसे पहली बार वैसे क्षेत्र में भेजा जा रहा है।

2. सामाजिक समर्थन (Social support): जिन व्यक्तियों को अपने परिवार, दोस्त, पास-पड़ोस आदि से अधिक सामाजिक समर्थन प्राप्त होता है, तनावपूर्ण परिस्थिति या आसेधकों (stressors) के प्रति उनकी प्रतिक्रियाएँ कम गंभीर होती हैं। सामाजिक समर्थन के होने से इन प्रतिक्रियाओं की गंभीरता में किस तरह से कमी आती है, यह तो स्पष्ट नहीं है परन्तु हेलर, स्विन्डल तथा डुसेनवरी (Heller, Swindle and Dusenbury, 1986) ने यह दावा किया है कि जब व्यक्ति अपने तनाव के बारे में दूसरों से बातचीत करता है, उनसे राय प्राप्त करता है, और उनसे उनका साथ होने का वादा मिलता है, तो इनसे स्वभावत: तनाव के प्रति की गयी प्रतिक्रियाओं की गंभीरता कम हो जाती है।

जिन व्यक्तियों को सामाजिक समर्थन पर्याप्त मिलता है, वे जीवन की नकारात्मक घटनाओं के प्रति जो प्रतिक्रियाएँ करते हैं, उनमें तुलनात्मक रूप से चिंता, विषाद (depression) तथा स्वास्थ्य समस्याएँ (health problems) कम होतीं हैं। जैसे–डीऊ, रैगनी तथा निमोरविक्ज (Dew, Ragni and Nimorwicz, 1990) ने अपने अध्ययन में पाया कि एड्स (AIDS) रोग से ग्रसित व्यक्ति में इसके जानलेवा स्वरूप के कारण उत्पन्न तनाव चिंता, निराशा तथा विषाद की मात्रा उस परिस्थिति में काफी कम दिखी जब उन्हें पर्याप्त सामाजिक समर्थन दिया गया। उसी तरह से केण्डाल-टैकेट (Kendall-Tackett, 1993) ने अपने अध्ययन में पाया है कि लैंगिक रूप से बच्चों में तुलनात्मक रूप से उस परिस्थिति में तनाव की प्रतिक्रियाएँ कम गंभीर हुईं जब उन्हें ऐसी परिस्थिति में अपने माँ का समर्थन प्राप्त था। सामाजिक समर्थन का यह पहलू कि जब व्यक्ति तनाव से उत्पन्न अनुभूतियों को दूसरों से कह देता है, तो उसके मन का बोझ कम हो जाता है, का प्रयोगात्मक अध्ययन गहन रूप से किया गया है। इस तथ्य की संपुष्टि पेन्नबेकर तथा वील्ल (Pennebaker and Beall, 1986) ने अपने बहुचर्चित अध्ययन में किया है। यह अध्ययन कॉलेज छात्रों पर किया गया था। छात्रों का दो समूह था। छात्रों के एक समूह को लगातार चार रात में प्रत्येक दिन की आघातजन्य घटनाओं (traumatic events) को लगातार 15 मिनट तक लिखकर बतलाना था जिनमें उन्हें घटनाओं का वर्णन करने के साथ ही साथ उनके द्वारा उत्पन्न भावों (feelings) का भी उल्लेख करना था। तुलना के लिए छात्रों का एक अन्य समूह था जिसे प्रयोगकर्त्ता के द्वारा दिये गए कुछ महत्त्वहीन विषयों के बारे में उन्हें लिखना था। ऐसा देखा गया कि जब छात्र अपने जीवन के आघातजन्य घटनाओं को विशेषकर परिवार में

नोट

किसी की मृत्यु के बारे में लिख रहे थे, तो उनमें उदासी एवं विषादी प्रवृत्तियाँ तीव्र हो गयीं तथा रक्तचाप भी थोड़ा बढ़ गया। फिर 6 महीने के बाद यह पाया गया कि जिन छात्रों ने अपने ऋणात्मक भावों (negative feelings) को अन्य छात्रों से कह दिया था, वे अब न केवल कम तनाव का अनुभव कर रहे थे बल्कि तनाव के प्रति उनकी प्रतिक्रियाएँ भी काफी कम गंभीर थीं। स्पष्ट हुआ कि सामाजिक समर्थन से तनाव के प्रति की गयी प्रतिक्रियाएँ कम गंभीर हो जाती हैं।

3. भविष्यसूचकता तथा नियंत्रण (Predictability and control): तनाव के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रिया की गंभीरता बहुत हद तक तनाव की भविष्य सूचकता तथा उस पर नियंत्रण की क्षमता द्वारा प्रभावित होती है। यदि परिस्थिति ऐसी है जिसमें तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के बारे में पहले से ही पूर्वकथन किया जा सकता है तो इससे तनाव के प्रति की जाने वाली प्रतिक्रिया की गंभीरता कम हो जाती है। उसी तरह से जब व्यक्ति यह पाता है कि तनाव की परिस्थिति पर वह अपना नियंत्रण रख सकता है, तो इससे भी तनाव के प्रति की गई प्रतिक्रियाओं की गंभीरता कम हो जाती है। इपस्टीन तथा रोऊपेनियन (Epstein and Roupenian, 1970) ने एक अध्ययन किया जिसमें प्रयोज्यों के तीन समूह ने भाग लिया। तीनों समूह को ध्यानपूर्वक एक विशेष तरह की आवाज उत्पन्न होने की बारम्बारता को गिनना था। दस-दस बार की गिनती पूरी होने पर प्रयोज्यों के एक समूह को 95% समय में वैद्युतीय आघात (electric shock) दिया गया था, दूसरे समूह को 50% समय में वैद्युतीय आघात दिया गया तथा तीसरे समूह को मात्र 5% समय में ही वैद्युतीय आघात दिये गए। स्पष्टत: तीसरे समूह के लिए वैद्युतीय आघात की भविष्यसूचकता सबसे कम थी क्योंकि इसमें अनिश्चितता (uncertainty) कम थी जबकि पहले समूह में आघात की भविष्यसूचकता सबसे अधिक थी। परिणाम में देखा गया कि यद्यपि तीसरे समूह को बहुत ही कम आघात दिया गया था, फिर भी इस समूह में मौजूद अनिश्चितता के कारण अन्य दोनों समूहों की तुलना में अनुकम्पी स्वायत्त उत्तेजन (sympathetic automonic arousal) काफी अधिक हुआ अर्थात् तनाव की प्रति की गई प्रतिक्रियाओं का स्वरूप अधिक गंभीर था। एबोट्ट स्कोयेन तथा बाडिया (Abbott, Schoen and Badia, 1986) ने इस अध्ययन के परिणाम का गहन विश्लेषण करके यह भी स्पष्ट कर दिया है कि अगर तनाव लम्बे समय तक जारी रहता है, तो भविष्यवाची तनाव (predictable tension) अभविष्यवाची तनाव (unpredictable tension) की तुलना में अधिक तनावपूर्ण साबित होता है।

4. संज्ञानात्मक कारक (Cognitive factors): तनाव के प्रति की गई प्रतिक्रियाओं में वैयक्तिक विभिन्नता का एक कारण यह है कि व्यक्ति इस तनावपूर्ण परिस्थिति या घटना के बारे में किस तरह से सोचता है। इस तथ्य के प्रबल समर्थक लेजारस (Lazarus, 1982) हैं। कुछ लोग ऐसी घटनाओं या उद्दीपकों की व्याख्या तनाव उत्तेजक ढंग से करते हैं जिससे इनके प्रति की जाने वाली प्रतिक्रियाएँ अधिक गंभीर हो जाती हैं। दूसरे तरफ कुछ लोग ऐसी घटनाओं या उद्दीपकों की व्याख्या उन्हें कम महत्त्व देते हुए करते हैं जिनसे इनके प्रति की जाने वाली प्रतिक्रियाएँ कम गंभीर हो जाती हैं। रौथ एवं कोहेन (Roth and Cohen, 1986) ने आसेधकों (stressors) के प्रति सूचनाओं को संसाधित करने की दो तरह की शैलियों (styles) की पहचान की है–सुग्राहक (sensitizers) तथा दमनकारक (repressors)। सुग्राहक वैसे व्यक्ति होते हैं जो सूचनाओं को सक्रिय होकर ग्रहण करते हैं तथा तनावपूर्ण घटनाओं के बारे में सोचते हैं। दमनकारक वैसे व्यक्ति होते हैं जो तनावपूर्ण घटनाओं के बारे में नहीं सोचते हैं और उनसे प्राप्त होने वाली सूचनाओं से अपने आप को दूर रखते हैं। दमनकारक लोग कम ही समय में तनाव से प्रभावी ढंग से निपट तो लेते हैं परन्तु दीर्घकालीन समंजन (long-term coping) की क्षमता बहुत हद तक वे खो देते हैं। मिलर तथा मॉर्गन (Miller and Morgan, 1983) ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि जब आरोधकों के बारे में पर्याप्त महत्त्वपूर्ण सूचना उपलब्ध नहीं होती है तो वैसी परिस्थिति में दमनकारी शैली (repressive style) हानिकारक नहीं होते हैं परन्तु ऐसी ही परिस्थिति में सुग्राही शैली लाभदायक नहीं होता है। जैसे–इन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि वैसे रोगी जिनका डॉक्टरों द्वारा आपरेशन किया जाने वाला था तथा जो सुग्राही (sensitizers) थे, को जब होने वाले सर्जरी के बारे में अधिक सूचना दे दी गयी, तो वे कम तनाव का

अनुभव किये परन्तु दमनकारकों को कम मात्रा में तनाव का अनुभव तब हुआ जब उन्हें ऐसी सूचनाएँ कम मात्रा में दी गयीं। नोट

5. टाइप ए व्यक्तित्व (Type A Personality): टाइप ए व्यक्तित्व प्रकार से भी तनाव के प्रति की गई प्रतिक्रिया में अंतर होता है। टाइप ए व्यक्तित्व की कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं जिनसे तनाव के प्रति की गई प्रतिक्रियाएँ निर्धारित होती हैं। फ्रिडमैन तथा रोजेनमैन (Friedman and Rosenman, 1574), डायमंड (Diamond, 1982) तथा मैथ्यूज (Matthews, 1982) के अनुसार टाइप ए व्यक्तित्व की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

(*i*) उच्च प्रतियोगिता की भावना, कार्य, खेलकूद आदि में उच्च महत्त्वाकांक्षा एवं अधिक उर्जस्विता (driving) दिखलाना।

(*ii*) तेजी से किसी कार्य को करना, समय-अत्यावश्यकता (time urgency) पर बल डालना तथा प्राय: दो कार्य एक ही समय में करने की तीव्र प्रवृत्ति दिखलाना।

(*iii*) वर्कएहोलिक (Workaholic) तथा आराम के लिए कम समय लेना।

(*iv*) जोर-जोर से बोलना

(*v*) आवेगशीलता (impulsivity), डाह (hostile) तथा दूसरों के प्रति प्राय: आक्रमकपूर्ण व्यवहार करना।

इन विशेषताओं का जिनमें अनुपस्थिति होती है, उसे टाइप बी व्यक्तित्व (Type B Personality) कहा जाता है। अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि टाइप ए व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में चक्रीय-हृदय रोग (Coronary Heart Disease or CHD) होने की संभावना प्रबल होती है। सच्चाई यह है कि टाइप ए व्यक्तित्व परोक्ष रूप से दो प्रमुख जोखिम कारकों (risk factors) के कारण CHD से जुड़े होते हैं–उच्च रक्तचाप (high blood pressure) तथा कोलेस्ट्रोल का उच्च स्तर (high level of Cholesterol)। एक सिद्धांत के अनुसार-टाइप ए व्यक्ति तनाव के प्रति अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा दैहिक रूप से अधिक प्रतिक्रिया करते हैं। हेनेस तथा उनके सहयोगियों (Haynes et. al., 1980) तथा मैथ्यूज (Mathews, 1982) ने अपने-अपने अध्ययनों से इस तथ्य की संपुष्ट की है कि टाइप ए व्यक्ति तनाव के प्रति प्रतिक्रिया उच्च रक्तचाप दिखाकर करते हैं। ठीक उसी तरह से विलियम्स तथा उनके सहयोगियों (Williams et. al. 1992) ने अपने अध्ययन में पाया है कि टाइप ए व्यक्तित्व के द्वारा तनाव के प्रति प्रतिक्रिया किये जाने पर रक्त में इपाइनफ्राइन (epinephrine) तथा नोरइपाइनफ्राइन (norepinephrien) की मात्रा में तथा ककांली मांसपेशियों में रक्त प्रवाह तुलनात्मक रूप से अधिक बढ़ जाती है। इन परिवर्तनों का सीधा संबंध कोलेस्ट्रोल प्लेक[1] (Cholesterol plaque) से होता है जो हृदय की धमनियों में कड़ापन उत्पन्न कर CHD के उत्पन्न होने की संभावना को मजबूत कर देता है।

स्पष्ट हुआ कि तनाव के प्रति व्यक्ति जो प्रतिक्रियाएँ करता है उनमें विभिन्नता के कई कारण होते हैं।

26.4 तनाव का मापन (Measurement of Stress)

शोधकर्त्ताओं ने तनाव को मापने का सफल प्रयास किया है और इसके लिए उन्होंने निम्नांकित चार प्रमुख प्रविधि यों का वर्णन किया है–

1. आत्म-रिपोर्ट विधि (Self-report method)–यह एक ऐसी विधि है जिसमें तनाव से प्रभावित व्यक्ति सांवेगिक तकलीफ, उससे जीवन में होने वाले परिवर्तन तथा तनाव की गंभीरता (severity) आदि के बारे में बतलाता है। उसके द्वारा बतलाये गए सूचकांकों (indices) के आधार पर तनाव के बारे में मापन किया जाता है।

1. धमनियों के भीतर कोलेस्ट्रोल के जमे हुए थक्के को प्लेक (Plaque)कहा जाता है।

नोट

होल्मस तथा राहे (Holmes and Rahe, 1967) द्वारा निर्मित सामाजिक पुनर्समायोजन रेटिंग मापनी (Social readjustment rating scale), नूतन अनुभूतियों का ही अनुसूची (schedule of recent experiences) तथा कैन्नर एवं उनके सहयोगियों (Kanner et. al; 1981) द्वारा निर्मित 'हास्सेल' मापनी (Hassles scales) प्रश्नावलियों का उपयोग आत्म-रिपोर्ट विधि के अन्तर्गत किया जाता है।

2. व्यवहारपरक विधियाँ (Behavioural methods)–इस विधि में तनाव का मापन इस परिस्थिति में किये गए कार्यों के निष्पादन के आधार पर किया जाता है। यदि निष्पादन में ऐसी परिस्थिति में तेजी से गिरावट आती है, तो समझा जाता है कि तनाव की गंभीरता व्यक्ति के लिए काफी है।

3. दैहिक सूचकांक विधि (Physiological indices method)–इसमें तनाव का मापन व्यक्ति के शरीर में हुए कुछ रसायनिक परिवर्तनों जैसे केटकोलामाइन्स तथा 17-हाईड्रोक्सीकार्टीकासटराड्स (17-hydroxycorticosteriods) का रक्त स्तर में तथा मूत्रीय स्तर (urinary level) में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर तनाव का मापन होता है।

इनमें से प्रत्येक विधि के कुछ दोष हैं जिनके चलते उनका उपयोग काफी सोच-समझकर किया जाता है। ऐसे अवगुणों का उल्लेख यहाँ आवश्यक है जो इस प्रकार है–

(*i*) पहली विधि जो आत्म-रिपोर्ट पर आधारित है, पर इसलिए पूर्ण विश्वास नहीं किया जाता है क्योंकि व्यक्ति प्राय: अपने आप को अच्छे ढंग से उपस्थित करने की कोशिश करता है और इस कोशिश में वह तनाव की एक सही तस्वीर प्रस्तुत नहीं करता है।

(*ii*) व्यवहारपरक विधि को इसलिए दोषपूर्ण माना जाता है क्योंकि इसमें कार्य निष्पादन की व्याख्या विभिन्न ढंग से की जा सकती है। जैसे, किसी कार्य परिस्थिति में निष्पादन में ह्रास का कारण तनाव न होकर व्यक्ति के अभिप्रेरण में कमी, संज्ञानात्मक दाब (cognitive strain) तथा थकान भी होता है।

(*iii*) तनाव को दैहिक सूचकांकों द्वारा मापन करने के लिए यह आवश्यक है कि कुछ सम्बद्ध उपकरण खरीदे जाएँ और ऐसा करना सचमुच अपने आप में एक तनावपूर्ण अनुभूति होगा।

(*iv*) जैव-रसायनिक परिवर्तनों के आधार पर तनाव को मापना बहुत विश्वनीय नहीं रह जाता है क्योंकि शरीर में इस ढंग का परिवर्तन अन्य कारणों से भी होता है। जैसे, केटकोलामाइन स्राव (catecolamine secretion) में वृद्धि न केवल तनाव में बल्कि अन्य परिस्थितियों में भी होती है। अत: इस वृद्धि का कारण मात्र तनाव को मानना ठीक नहीं है।

स्पष्ट हुआ कि तनाव मापने की कई विधियाँ हैं। यद्यपि प्रत्येक विधि में कुछ खामियाँ (limitation) हैं, फिर भी उनका उपयोग परिस्थित के अनुसार किया जाता है। बॉम (Baum, 1982) के अनुसार तनाव के सही मापन के लिए यह आवश्यक है कि इन विभन्न मापकों का उपयोग एक साथ किया जाए ताकि उससे प्राप्त परिणाम अधिक विश्वसनीय हो सकें।

26.5 तनाव के कारण या स्रोत (Sources or Causes of Stress)

व्यक्ति में किन कारणों से तनाव उत्पन्न होता है, इसका गहन अध्ययन मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है और कई कारकों की एक सूची तैयार की गयी है जिनसे व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। ऐसे कारकों में निम्नांकित प्रमुख हैं–

1. तनावपूर्ण जीवन की घटनाएँ (stressful life events)
2. प्रेरकों का संघर्ष (conflict of motives)

नोट

3. दिन प्रतिदिन की उलझन (daily hassles)
4. कार्य उत्पन्न तनाव (work-related sources)
5. पर्यावरणीय स्रोत (environmental sources),

1. तनावपूर्ण जीवन की घटनाएँ (stressful life events)–व्यक्ति की जिन्दगी में तरह-तरह की घटनाएँ घटती रहतीं हैं। कुछ सुखद होतीं हैं तथा कुछ दुखद होतीं हैं। इन दोनों तरह की घटनाओं की प्रमुख जरूरत यह होती है कि व्यक्ति उनके साथ पुनर्समायोजन (re-adjustment) करें। मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि ऐसी घटनाओं के प्रति जब व्यक्ति ठीक ढंग से समायोजन नहीं कर पाता है तो वे तनाव (stress) उत्पन्न करती हैं और व्यक्ति में दैहिक एवं सांवेगिक विकृतियाँ (emotional disorders) उत्पन्न कर देती हैं। इस सिलसिले में होलम्स एवं राहे (Holmes and Rahe, 1967) का अध्ययन काफी महत्त्वपूर्ण रहा है। इन्होंने जीवन की तनावपूर्ण घटनाओं के महत्त्व को मापने के लिए एक विशेष मापनी (scale) अर्थात् मात्रा उत्पादन (magnitude production) की विधि द्वारा विकसित किया है जिसे सामाजिक पुर्नसमायोजन रेटिंग मापनी (social Re-adjustment rating scale or SRRS) कहा गया है। इस मापनी में विभिन्न तरह की 43 घटनाओं जैसे पति या पत्नी की मृत्यु, तलाक, वैवाहिक अलगाव (marital separation), शादी, परिवार के किसी सदस्य की बीमारी, अवकाश प्राप्ति, किसी गहरे दोस्त की मृत्यु, परिवार में किसी नये सदस्य की प्राप्ति, गर्भ, घर के किसी सदस्य का गुम हो जाना, ससुराल वालों से झगड़ा, घर बदलना, खाने की आदत में परिवर्तन, हल्का फुल्का कानूनी उल्लंघन आदि को सम्मिलित किया गया है तथा सबसे अधिक तनावपूर्ण से सबसे कम तनावपूर्ण होने की दिशा में श्रेणीबद्ध (ranking) किया गया है। इन विभिन्न घटनाओं का जीवन परिवर्तन इकाई मूल्य (life change unit value) जो 100 से 1 के बीच होता है, भी निर्धारित किया गया। जीवन परिवर्तन इकाई मूल्य से यह पता चलता है कि ऐसी घटनाओं के होने पर कितना पुनर्समायोजन (re-adjustment) की जरूरत व्यक्ति को पड़ती है। जैसे–इस मापनी में सबसे अधिक तनावपूर्ण जीवन घटना पति या पत्नी की मृत्यु बतलाया गया है। जिसका इकाई मूल्य 100 है। उसी तरह से अवकाश प्राप्ति (retirement) का इकाई मूल्य 45 बतलाया गया है तथा सबसे अंतिम श्रेणी में अर्थात् 43rd श्रेणी में मामूली कानूनी उल्लंघन (minor violation of law) को रखा गया है जिसका इकाई मूल्य 1 बतलाया गया है। यह पता लगाने के लिए कि व्यक्ति एक खाास अवधि जैसे पिछले एक या दो साल में कितना तनाव (stress) का अनुभव करता है, उसे मापनी के 43 एकांशों में से उन एकांशों पर चिह्न लगाने के लिए कहा जाता है, जो उक्त अवधि में उनके लिए सही पाये गए। इसके बाद एकांशों के संबंधित इकाई मूल्यों को जोड़ दिया जाता है जिसे कुल तनाव प्राप्तांक (total stress score) कहा जाता है। यह प्राप्तांक जितना ही अधिक होता है, उनमें तनाव उतना ही अधिक होता समझा जाता है और उनका सांवेगिक एवं दैहिक स्वास्थ्य खराब होने की संभावना उतनी ही अधिक होती है। सामान्यत: जब इस मापनी पर किसी व्यक्ति का 250 या उससे अधिक प्राप्तांक मात्र एक साल की अवधि के जीवन घटना परिवर्तनों के आधार पर आता है तो उसका जीवन तनावपूर्ण समझा जाता है और अगले साल के भीतर उसे सांवेगिक एवं दैहिक रूप से बीमार पड़ने की संभावना बढ़ जाती है। सामान्यत: 150 या उससे कम कुल प्राप्तांक वाले व्यक्ति को सामान्य, 150 से 199 के बीच प्राप्तांक लाने वाले का हल्का तनाव (mild stress), 200 से 299 प्राप्तांक लाने वाले को साधारण तनाव (moderate stress) तथा 300 से ऊपर प्राप्तांक लाने वाले व्यक्ति को जीवन के बड़े तनावपूर्ण घटना से ग्रस्त समझा जाता है। होलम्स एवं मासूद (Holmes and Masuda, 1974) ने भी एक अध्ययन करके एक दिखलाया है कि वैसे व्यक्ति जिनका कुल प्राप्तांक उक्त जीवन घटना परिवर्तन मापनी पर 300 या उससे ऊपर आया, वे अगले 9 महीनों में उन व्यक्तियों की तुलना में भयंकर रूप से बीमार पड़े, जिनका कुल तनाव प्राप्तांक 200 या उससे नीचे था। इन अध्ययनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जितना ही अधिक तनावपूर्ण घटनाएँ किसी व्यक्ति की जिन्दगी में घटती हैं उसमें तनाव की मात्रा उतनी ही अधिक होती है तथा उसके स्वास्थ्य पर उतना ही अधिक बुरा प्रभाव पड़ता है।

नोट

यद्यपि जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना-परिवर्तनों को तनाव (stress) का एक प्रमुख कारण बतलाया गया है फिर भी निम्नांकित कुछ ऐसे तथ्य हैं जिनसे उक्त संबंध पर आशंकाएँ होती हैं–

(*i*) तनाव (stress) के प्रभावों को कुछ सामान्य स्वास्थ्य आदत (health habit) जैसे–विशेष तरह का भोजन करने की आदत, सिगरेट पीने की आदत, शराब पीने की आदत से उत्पन्न प्रभावों से अलग करना कठिन है। व्यक्ति अपने जीवन की घटनाओं में हुए प्रमुख परिवर्तनों के साथ समायोजन करने में संभव है कि वह और अधिक शराब पीना शुरू कर दे या सिगरेट पीना प्रारंभ कर दे। ऐसी परिस्थिति में उसमें उत्पन्न बीमारी या सांवेगिक एवं दैहिक अवस्थाओं के कारण स्वास्थ्य आदत अधिक खराब हो जाएगी तथा जीवन की प्रमुख घटनाएँ कम होंगी।

(*ii*) अगर जीवन की परिवर्तित घटना ही सिर्फ तनाव का कारण होती तो कोई भी घटना समान ढंग से सभी व्यक्तियों में तनाव उत्पन्न करती है परन्तु ऐसा नहीं होता है। ऐसा देखा गया है कि कुछ घटनाएँ कुछ व्यक्ति में अधिक तनाव उत्पन्न करती हैं परन्तु वही घटनाएँ दूसरे व्यक्ति में तनाव उत्पन्न नहीं कर पातीं। इतना ही नहीं, यह भी देखा गया है कि साधारण-सी घटना कुछ व्यक्ति में अधिक सांवेगिक एवं दैहिक क्षति उत्पन्न करती है परन्तु कभी-कभी अधिक तनावपूर्ण घटना भी कुछ व्यक्तियों में अधिक सांवेगिक एवं दैहिक क्षति उत्पन्न नहीं कर पाती। ऐसे वैयक्तिक विभिन्नताओं से इस ओर संकेत मिलता है कि तनाव का कारण सिर्फ घटना विशेष को मानना पूर्णत: तर्क संगत नहीं है।

(*iii*) जीवन घटना मापनी (life scale events) के कुछ एकांश ऐसे हैं जिन्हें सांवेगिक एवं दैहिक अस्वस्थता का परिणाम (result) न कि कारण माना जा सकता है। जैसे–किसी व्यक्ति के खराब सांवेगिक या दैहिक स्वास्थ्य के कारण उसमें वैवाहिक एवं आर्थिक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं जो तनाव का कारण बन सकती हैं।

(*iv*) जीवन घटना मापनी की एक महत्त्वपूर्ण परिकल्पना यह है कि परिवर्तन अपने आप में तनावपूर्ण (stressful) होता है। परन्तु बाद में किए गए शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि धनात्मक परिवर्तनों का संबंध स्वास्थ्य से नहीं होता है और कभी-कभी तो ऐसा होता है कि परिवर्तन न होने से ही व्यक्ति में तनाव होता है। इससे यह पता चलता है कि कोई भी जीवन घटना तनावपूर्ण होगा या नहीं, यह बहुत कुछ व्यक्ति के व्यक्तिगत इतिहास एवं वर्तमान जीवन परिस्थिति पर निर्भर करता है।

इन परिस्थितियों के बावजूद जीवन घटना में होने वाले परिवर्तन को तनाव का एक मुख्य कारण बतलाया गया है।

2. प्रेरकों का संघर्ष (Conflict of motives)–जब अभिप्रेरकों के बीच संघर्ष होता है, तो इससे व्यक्ति में तनाव (stress) उत्पन्न होता है। ऐसी परिस्थिति में जिस अभिप्रेरक की तुष्टि नहीं होती है, उससे व्यक्ति में कुण्ठा उत्पन्न होती है जो तनाव का एक प्रमुख स्रोत होता है। जैसे–एक छात्र जो वर्ग में उत्तम अंक नहीं प्राप्त कर सकता है, खेल के मैदान में ख्याति पाकर अपने मानसिक संघर्ष को दूर तो करता है, परन्तु फिर भी उसमें तनाव यह सोचकर अवश्य होगा कि इसका निष्पादन वर्ग में उत्तम नहीं है। व्यक्ति के जीवन में कई ऐसे मानसिक संघर्ष होते हैं जो तनाव उत्पन्न करते हैं। इनमें सहयोग बनाम प्रतियोगिता, स्वतंत्रता बनाम निर्भरता (independence vs dependence), घनिष्ठता बनाम पृथकता (intimacy vs isolation) तथा आवेग अभिव्यक्ति बनाम नैतिक मानक (impulse expression vs moral standard) आदि प्रमुख हैं।

नोट्स

हमारे समाज में प्रतियोगिता तथा सफलता पर अधिक बल डाला जाता है परन्तु साथ-ही-साथ समाज सहयोगिता के दृष्टिकोण को भी महत्त्वपूर्ण मानता है। परिणामस्वरूप मानसिक संघर्ष होता है और तनाव उत्पन्न होता है।

नोट

उसी तरह से व्यक्ति में दूसरों के साथ रहने तथा दूसरों के सुख-दुख में हाथ बँटाने की इच्छा का टकराव इस बात से हो सकता है कि यदि ऐसा अधिक करते हैं तो इससे हमें परिवार के लोग तिरस्कृत कर देंगे और हम अकेले हो जाएँगे। यह स्थिति भी व्यक्ति में तनाव (stress) उत्पन्न कर सकती है। उसी तरह से कभी-कभी व्यक्ति दूसरों पर अधिक निर्भरता दिखाता है परन्तु साथ-ही-साथ वह यह भी सोचता है कि वयस्क होकर दूसरों पर निर्भर रहना अच्छी बात नहीं हैं। इससे भी व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। कुछ क्षेत्र में जैसे–यौन एवं आक्रामकता ऐसे होते हैं जिसमें व्यक्ति की अपनी इच्छाएँ नैतिक तनाव मानकों (normal standards) से टकराती हैं और यदि व्यक्ति इन मानकों की अवहेलना करता है तो इससे उसमें दोष-भाव (guilt feeling) उत्पन्न होता है जो तनाव का एक स्रोत बन जाता है।

स्पष्ट हुआ कि विरोधी अभिप्रेरकों के बीच समझौते का प्रयास अपने आप में तनाव (stress) की उत्पत्ति करता है।

1930 में कर्टलेविन (Kurt Lewin) ने दो विरोधी झुकावों के रूप में संघर्ष का वर्णन किया है–उपागम (approach) तथा परिहार (avoidance)। जब व्यक्ति को दो वांछनीय विकल्पों के बीच चुनना आवश्यक हो जाता है, तो इसे उपागम-उपागम संघर्ष (approach-approach conflict) कहा जाता है। परिहार-परिहार संघर्ष (avoidance-avoidance conflict) में व्यक्ति को दो आवांछनीय विकल्पों के बीच किसी एक को चुनने के लिए बाध्य किया जाता है। तीसरे तरह के संघर्ष को उपागम-परिहार संघर्ष (approach-avoidance conflict) कहा जाता है जहाँ व्यक्ति को एक ही पसंद (choice) में वांछनीय एवं अवांछनीय दोनों ही अभिप्रेरकों का सामना करना पड़ता है। अध्ययनों से यह पता चला है कि इन तीनों में उपागम-परिहार संघर्ष तनाव या प्रतिबल का सबसे मजबूत स्रोत है।

3. दिन-प्रतिदिन की उलझन (Daily hassles)–जिन्दगी की बड़ी एवं महत्त्वपूर्ण घटना तो निश्चित रूप से तनाव के स्रोत हैं परन्तु दिन-प्रतिदिन की छोटी-मोटी उलझनों से भी तनाव उत्पन्न होता पाया गया है। ऐसी उलझनें चूंकि व्यक्ति की जिन्दगी में लगभग अक्सर होती है, इसलिए तनाव उत्पन्न करने में इनका महत्त्व कम नहीं है। इस तथ्य की संपुष्टि लेजारस तथा उनके सहयोगियों (Lazarus et. al. 1985) एवं कैनर तथा उनके सहयोगियों (Kanner et. al., 1981) द्वारा किये गए अध्ययनों से होती है। दिन-प्रतिदिन की उलझन (hassles) जिनसे अक्सर व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होते देखा गया है, उन्हें निम्नांकित छः भागों में बाँटा जा सकता है–

- ***(i)* पर्यावरणीय उलझन** (environmental hassles)–इसमें आवाज, शोरगुल, अपराध, पास-पड़ोस से होने वाले बक-झक आदि को रखा गया है।
- ***(ii)* घरेलू उलझन** (household hassles)– इसमें भोजन बनाना, बर्तन धोना, घर की सफाई, कपड़ा या अन्य सामान खरीदना आदि से सम्बन्ध कारकों को रखा गया है।
- ***(iii)* आन्तरिक भाव से सम्बद्ध उलझन** (inner concern hassles)–इसमें अकेले होने का भाव, किसी से मनमुटाव या झगड़ा हो जाने पर भाव आदि कारकों को रखा गया है।
- ***(iv)* समयाभाव से उत्पन्न उलझन** (hassles due to time)–इसमें बहुत सारी चीजों को एक दिए गए समय के भीतर पूरा कर लेने तथा एक ही साथ बहुत सारे उत्तरदायित्वों को निभाने आदि कारकों को रखा गया है।
- ***(v)* आर्थिक उत्तरदायित्व से उत्पन्न उलझन** (hassles arising due to financial responsibility)– इसमें धन बचाने तथा कमाने से संबंधित कारकों तथा उनकी आर्थिक जवाबदेही स्वीकार करना आदि सम्मिलित होता है, जिसका भार सामाजिक एवं कानूनी रूप से सचमुच उन पर नहीं पड़ना चाहिए था।

नोट

***(vi)* कार्य उलझन** (work hassles)–कार्य (job) से असंतुष्टि, पदोन्नति के अवसर का न होना तथा किसी भी समय कार्य से हटाये जाने की संभावना आदि को रखा गया है।

लेजारस एवं उनके सहयोगियों (Lazarus et. al; 1985) एवं कैनर तथा उनके सहयोगियों (Kanner et al 1981) ने अपने शोधों के आधार पर उक्त उलझनों को मापने के लिए एक उलझन मापनी (Hassles scale) विकसित की है। इस मापनी पर व्यक्ति उन घटनाओं के बारे में बतलाता है जिनसे वह गत महीनों में उलझन में पड़ा हुआ था। इस अध्ययन पर आये प्राप्तांकों तथा व्यक्ति द्वारा दिखलाये गये मानसिक लक्षणों के बीच धनात्मक संबंध (positive correlation) पाए गए। अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि दिन-प्रतिदिन की उलझनों से भी व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है और इससे उसमें सांवेगिक एवं दैहिक अस्वस्थता उत्पन्न होती है।

4. कार्य से उत्पन्न तनाव (Stress produced by work)–व्यक्ति जिस कार्य को करता है, उससे संबंधित कुछ कारक हैं जो उसमें तनाव (stress) उत्पन्न करते हैं– जैसे–किसी कर्मचारी को बहुत कम समय में बहुत सारे कार्य यदि करने के लिए कहा जाता है, तो इससे स्वभावत: उसमें तनाव उत्पन्न हो जाता है। ऊब (boredom) का भाव विकसित होता है जो बाद में तनाव उत्पन्न करता है। इतना ही नहीं, यदि कर्मचारी (employee) यह अनुभव करता है कि काम करने का मौलिक वातावरण (physical environment) ठीक नहीं है, अर्थात् उसमें रोशनी, हवा, आवाज, नियंत्रण आदि का ठीक प्रबंध नहीं है, तो भी उसमें कार्य असंतुष्टि (job dissatisfaction) होती है जिससे फिर व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। उसी तरह से कार्य (job) से संबद्ध कुछ अन्य कारण भी हैं जिनसे व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। इनमें भूमिका संघर्ष (role-conflict) तथा निष्पादन मूल्यांकन (performance appraisal) प्रधान है। भूमिका संघर्ष की स्थिति में किसी कार्य-पालक (executive) या मैनेजर से कर्मचारियों के विभिन्न समूहों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रत्याशाएँ विकसित होती हैं जिसे पूरा करना व्यवस्थापक के लिए संभव नहीं हो पाता है जिसके परिणामस्वरूप उसमें तनाव उत्पन्न होता है। उदाहरण के रूप में विश्वविद्यालय में कुलपति के पद को ही ले लें। कर्मचारी उनसे अच्छी सेवा शर्तें की माँग करता है, शिक्षकगण उत्तम शैक्षिक माहौल बनाये रखने पर बल डालते हैं, छात्रगण उनसे नियमित पढ़ाई कराने की उम्मीद रखते हैं या सरकार उन्हें अपने साधनों (resources) की पहचान करते हुए कार्य करने पर बल डालती है। इस तरह की विरोधी प्रत्याशाओं के कारण जिनको पूरा करना उनके लिए संभव नहीं है, भूमिका संघर्ष उत्पन्न होता है जो उनमें तनाव उत्पन्न करता है। उसी तरह से यदि कर्मचारी के निष्पादन का मूल्यांकन करने का तरीका कुछ ऐसा है जिसे कर्मचारी उचित समझते हैं, तो इससे उनमें तनाव उत्पन्न नहीं होता है। परन्तु यदि वे यह समझते हैं कि तरीका अनुचित है तो इससे स्वभावत: उनमें तनाव उत्पन्न होगा।

जब कार्य पर तनाव अत्यधिक तीव्र होता है और व्यक्ति उससे अपने आप को छुटकारा नहीं दिला पाता है, तो इससे उसमें एक विशेष अवस्था जिसे 'बर्नआउट' (Brunout) कहा जाता है, उत्पन्न होता है। इसमें कर्मचारी काफी निराश असंतुष्ट, कार्य पर अक्षमता तथा मनोवैज्ञानिक रूप से कमजोर दिखते हैं। बर्नआउट के अंतिम चरण में व्यक्ति कार्य करने में असमर्थ रहता है। राईस (Rice, 1987) के अनुसार बर्नआउट कार्य तनाव का लक्षण नहीं है बल्कि अप्रबंधित कार्य तनाव (unmanaged work stress) का परिणाम है।

5. पर्यावरणीय स्रोत (Environmental sources)–तनाव उत्पन्न होने का कारण पर्यावरण (environment) भी होता है। कुछ पर्यावरणी कारक ऐसे हैं जो स्वाभाविक होते हैं और व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करते हैं। जैसे–भूकंप, आगजनी, तीव्र आंधी, तूफान आदि कुछ ऐसे ही कारक हैं जो व्यक्ति में तनाव (stress) उत्पन्न करते हैं। कास्ल (Kasl, 1990) के अनुसार, ऐसे स्वाभाविक पर्यावरणीय कारकों का अध्ययन तो उस समय नहीं किया जा सकता है जिस समय इनकी प्रबलता होती है परन्तु बाद में व्यक्तियों की अनुभूति के आधार पर यह अंदाज़ा लगाया जाता है कि ऐसी स्वाभाविक घटनाएँ व्यक्ति में काफी तनाव उत्पन्न करती हैं। इन स्वाभाविक कारकों के अलावा कुछ पर्यावरणीय कारक ऐसे हैं जो मनुष्यों द्वारा निर्मित हैं और व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करते हैं। जैसे–शोरगुल प्रदूषण

नोट

(noise pollution), अणु परीक्षण (nuclear test) से उत्पन्न स्थिति कुछ ऐसे कारकों के उदाहरण हैं जिनसे व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। बाम तथा उनके सहयोगियों (Baum et al. 1983) ने अपने अध्ययन में पाया कि अणु परीक्षण के स्थान से नजदीक में रहने वाले व्यक्तियों में उन व्यक्तियों की तुलना में अधिक तनाव उत्पन्न हुआ जो उस स्थान से दूर रहते हैं। इसी तरह से कोहेन तथा उनके सहयोगियों (Cohen et al; 1986) ने एक अध्ययन किया जिसका उद्देश्य शोरगुल का तनाव पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना था। इस प्रयोग में एक व्यस्त हवाई अड्डा (busy aerodram) के नजदीक के स्कूली बच्चों की तुलना उन स्कूली बच्चों से की गयी जिनका स्कूल ऐसे जगह पर अवस्थित था जो एकान्त एवं सुनसान जगह पर था जहाँ काफी शांति बनी रहती थी। परिणाम में देखा गया कि पहले तरह के स्कूली बच्चों में दूसरे तरह के स्कूली बच्चों की तुलना में तनाव अधिक होता था। जिसकी अभिव्यक्ति उनके बढ़े हुए रक्त चाप तथा मानकीकृत परीक्षणों (standardized tests) पर खराब निष्पादन से पता चलता है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति में तनाव (stress) कई कारणों से उत्पन्न होता है। यदि हम तनाव को कम करने के उपाय पर सोचते हैं तो हमें इन कारकों को भी ध्यान में रखना होगा।

26.6 तनाव कम करने के उपाय (Strategies for Coping Stress)

तनाव का कारण चाहे जो भी हो, यह व्यक्ति के सांवेगिक एवं दैहिक स्वास्थ्य पर खराब असर डालता है। अत: इसे कम करने के उपायों पर मनोवैज्ञानिकों ने गम्भीरता से सोचा है। तनाव को कम करने से सम्बद्ध व्यवहार को समायोजी व्यवहार (coping behaviour) कहा जाता है। समायोजी व्यवहार को मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। जैसे, गुडस्टीन एवं लेनियोन[1] (Goodstein and Lanyon, 1975) ने समायोजी व्यवहार को इस प्रकार परिभाषित किया हैं–

"समायोजी व्यवहार से तात्पर्य उस सीमा से होता है जहाँ तक व्यक्ति कम-से-कम तीन तरह के चुनौतियों से निबटने में सक्षम होता है–(1) भौतिक वातावरण से मिलने वाली प्रत्यक्ष चुनौतियाँ (2) अपनी दैहिक सीमाओं से मिलने वाली चुनौतियाँ (3) अन्तरवैयक्तिक चुनौतियाँ।" लेजारस तथा लाउनियर[1] (Lazarus and Launier, 1978) ने भी समायोजी व्यवहार को इस ढंग से परिभाषित करते हुए कहा है, "पर्यावरणीय एवं आंतरिक मांगों तथा उनके बीच के संघर्षों को नियंत्रण करने (अर्थात् उसे वश में करने, सहने, या कम करने) के क्रिया-उन्मुख एवं अंत: मानसिक दोनों तरह के प्रयासों को समायोजी व्यवहार कहा जाता है।" वुड एवं वुड[2] (Wood and Wood, 1989) के अनुसार, "समायोजी व्यवहार से तात्पर्य विचार एवं क्रिया के माध्यम से किए गए व्यक्ति के उस प्रयास से होता है जिसके द्वारा वह भार डालने वाला या अपने ऊपर हावी होने वाली समझे जाने वाली माँगों के साथ निपटता है।"

उक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर समायोजी व्यवहार (coping behaviour) के कई विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है जो निम्नांकित हैं–

---

1. "By coping we mean the degree to which individuals are able to meet and master atleast three kinds of challenges to their existence: (1) direct challenges from the physical environment (2) challenges steming from their physical limitation (3) interpersonal challenges."

   —Goodstein and Lanyon : Adjustment, Behaviour and Personality: 1975, p. 14-15.

2. "Coping consists of efforts, both action-oriented and intrapsyhic,to manage (that is, master, tolerate, reduce, minimize) environmental and internal demands and conflicts among them."

   –Lazarus and Launier: Internal and External determinants of behaviour, 1978, p. 311

नोट

(*i*) समायोजी व्यवहार व्यक्ति तथा पर्यावरण की माँगों के बीच किया गया किसी एक समय का क्रिया व्यवहार नहीं होता है बल्कि इन दोनों के अपने-अपने प्रसाधनों, मूल्यों एवं माँगों के बीच एक विशेष समय तक लगातार चलने वाली अन्त:क्रिया है। अत: यह एक प्रक्रिया (process) या उपाय (stretegy) है।

(*ii*) समायोजी व्यवहार में तनावयुक्त उद्दीपकों या परिस्थितियों के प्रति कई तरह की क्रियाएँ एवं प्रतिक्रियाएँ की जाती हैं।

(*iii*) इस तरह से समायोजी व्यवहार (coping behaviour) में पर्यावरण की माँग, शारीरिक सीमाओं एवं अंतरवैयक्तिक चुनौतियाँ तीनों तरह के कारकों को व्यक्ति अपने मूल्यों, प्रसाधनों आदि के साथ इस ढंग से व्यवस्थित करता है कि उनका कम-से-कम प्रभाव स्वयं व्यक्ति पर पड़ सके।

(*iv*) समायोजी व्यवहार प्रयासयुक्त (effortful) होता है, यह अपने आप नहीं होता है।

(*v*) समायोजी व्यवहार एक सीखा गया व्यवहार होता है।

लैजारस एवं फौल्कमैन (Lazarus and Folkman, 1984) के अनुसार इन सभी उपायों को निम्नांकित दो भागों में बाँटा गया है–

1. समस्या-केन्द्रित समायोजी उपाय (Problem-focused coping strategies)–इस तरह के उपाय में व्यक्ति तनावपूर्ण परिस्थिति या समस्या का मूल्यांकन करता है और कुछ ऐसा उपाय करता है जिसमें वह उसे परिवर्तन कर सकने में या उससे दूर कहने में सफल हो सके। इन उपायों का उपयोग व्यक्ति तब करता है जब वह यह देखता है कि समस्या जो तनाव उत्पन्न कर रही है, अधिक गंभीर नहीं है तथा उस समस्या के स्वरूप में कुछ परिवर्तन ला सकता है। इस उपाय में समस्या जो तनाव उत्पन्न कर रही है, व्यक्ति उसे स्पष्ट करता तथा परिभाषित करता है, फिर उसका वैकल्पिक समाधान (alternative solution) ढूँढ़ता हैं। उन सभी समाधानों के सम्भावित लाभ एवं हानियों के रूप में उनका मूल्यांकन करता है। उसमें से सही विकल्प को चुनकर फिर उसे कार्य रूप देता है। व्यक्ति इन क्रमिक उपायों को कितना सही-सही और मुस्तैदी से कार्य रूप देता है, यह उसके गत अनुभूतियों, बौद्धिक क्षमता तथा आत्म-नियंत्रण की क्षमता आदि पर निर्भर करता है। इस तरह से व्यक्ति समस्या के स्वरूप को परिवर्तित करके तनाव को कम करने की कोशिश करता है। यहाँ विशेष रूप से निम्नांकित उपाय (strategies) अधिक लाभकारी सिद्ध हुए हैं।

टास्क क्या आप सामाजिक समर्थन को तनाव कम करने में सहायक समझते हैं? पक्ष अथवा विपक्ष में अपने विचार प्रस्तुत करें।

***(i)* आमने-सामने का समायोजी व्यवहार** (Conforntational coping)–इस तरह के समायोजी उपाय (coping stretegy) में व्यक्ति समस्या के आमने-सामने खड़ा होकर उसका मुकाबला करता है तथा उससे निपटने की कोशिश करता है। जैसे–यदि कोई पदाधिकारी अपने अधीनस्थ से काफी खफा है और उसे निलंबन की धमकी देता है, तो वह अपने इस पदाधिकारी के सामने खड़ा होकर यह जानना चाहेगा कि उसकी गलती क्या है क्या अपने पदाधिकारी को यह विश्वास दिलाने की कोशिश करेगा कि वे अपना विचार बदल दें। होलाहान एवं मूस (Holaham and Moos, 1987) ने अपने अध्ययन के आधार पर

3. "Coping refers to a person efforts through action and thought to deal with demands perceived as taxing or overwhelming."

–Wood and Wood: The World of Psychology, 1999. p. 478

नोट

यह बतलाया है कि मुकाबला (corforntation) की प्रविधि परिहार (avoidance) की तुलना में अधिक लाभकारी सिद्ध हुई है। जो व्यक्ति समस्या के साथ स्वयं निपटने की कोशिश करते हैं, वे न केवल समस्या का ठीक ढंग से समाधान ही करते हैं बल्कि भविष्य में तनावपूर्ण परिस्थिति के साथ सांवेगिक ढंग से निपटने की क्षमता भी विकसित कर लेते हैं। फेल्टन (Felton, 1984) द्वारा किये गये शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि जिन लोगों द्वारा तनावपूर्ण परिस्थिति से निपटने के लिए परिहार प्रविधि का उपयोग अधिक किया जाता है, उनमें अतिरिक्त तनाव उत्पन्न होने का जोखिम अधिक रहता है तथा साथ-ही-साथ स्वास्थ्य समस्याएँ (health problem) भी अधिक उत्पन्न होते हैं। परन्तु समायोजी उपाय के रूप में परिहार हमेशा एक बुरी प्रविधि नहीं है। जब व्यक्ति के सामने लघु एवं कोई साधारण तरह का तनाव आता है, तो उससे परिहार प्रविधि अपनाकर आसानी से तनाव को कम किया जा सकता है। इस प्रविधि में व्यक्ति अपने आप को उस तनावपूर्ण परिस्थिति से अलग कर लेता है।

***(ii)* सामाजिक समर्थन** (Social support)–व्यक्ति तनावपूर्ण परिस्थिति से किस तरह से निपटता है, यह न केवल आंतरिक स्रोत (internal source) बल्कि बाह्य स्रोत (external source) अर्थात् उसके सामाजिक समर्थन पर निर्भर करता है। कोब्ब (Cobb, 1976) ने सामाजिक समर्थन की परिस्थिति को परिभाषित करते हुए कहा है कि इससे तात्पर्य उस विशेष सूचना से होता है जो व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों द्वारा पसंद किया जाना है, सम्मान दिया जाना है, महत्त्व दिया जाना है तथा उसकी उचित देख-भाल किया जाना है। जब किसी व्यक्ति को अन्य लोगों के सामाजिक समर्थन का एहसास होता है, तो वह तनावपूर्ण परिस्थिति से काफी ठीक ढंग से निपटता है तथा उसे स्वास्थ्य संबंधी सदस्य जैसे चाचा, चाची, मामा, मामी कोई संगठन जैसे क्लब या राजनैतिक पार्टी कुछ भी हो सकते हैं।

हाऊस (House, 1981), स्केफर तथा उनके सहयोगियों (Schaefer et al, 1981) द्वारा किये गये शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि सामाजिक समर्थन के विभिन्न प्रारूपों को मुख्यत: तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है– ठोस मदद (tangible assistance) सूचना (information) तथा सांवेगिक समर्थन (emotional support)। ठोस मदद में व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों द्वारा सामाजिक समर्थन के रूप में धन, भोजन या अन्य सम्बद्ध चीजें दी जाती हैं ताकि वह तनावपूर्ण परिस्थिति से निपट सके। सूचना में व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों द्वारा कुछ इस ढंग के विचार प्रदान किये जाते हैं जिनके माध्यम से वह आसानी से तनावपूर्ण परिस्थिति के साथ निबट सकें। सांवेगिक समर्थन जो सामाजिक समर्थन के रूप में तनावपूर्ण परिस्थिति से निपटने का सबसे महत्त्वपूर्ण संयंत्र है, में परिवार, दोस्त या पास-पड़ोस के लोगों द्वारा इस ढंग से व्यवहार किया जाता है मानों वे भी समस्यात्मक परिस्थिति से निपटने में उनके साथ हैं।

कोहेन तथा विल्स (Cohen and Wills 1985) द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि सामाजिक समर्थन तनाव की परिस्थिति में उत्पन्न दु:ख को काफी कम करने में सहायक होता है। कुलिक एवं माहेलर (Kulik and Mahler, 1989) ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि सामाजिक समर्थन से व्यक्ति में कोई बीमारी होने की संभावना में कमी हो जाती है, व्यक्ति किसी बीमारी से जल्दी चंगा होता है तथा गंभीर बीमारियों से मृत्यु होने की संभावना भी कम हो जाती है। बर्कमैन तथा सीमी (Berkman and Syme, 1979) ने एक अध्ययन में 7,000 वयस्क जो कैलिफोर्निया में रह रहे थे, से अपने सामाजिक एवं सामुदायिक संबंधों के बारे में बतलाने के लिए कहा और तब गत सात सालों में अपने परिवार के मृत्यु दर (mortality rate) के बारे में भी बतलाने के लिए कहा गया। परिणाम में देखा गया कि जिन वयस्कों के सामाजिक एवं सामुदायिक समर्थन तथा संबंध काफी अच्छे थे, उनकी मृत्यु दर इस अवधि में उन वयस्कों की मृत्यु दर की अपेक्षा जिनके सामाजिक एवं सामुदायिक संबंध अच्छे नहीं थे, काफी कम पाये गए। इतना ही नहीं, यह भी पाया गया कि अन्य व्यक्तियों से मिलने वाले सामाजिक समर्थन से व्यक्ति में उत्तम आदतें भी विकसित होती हैं।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान की पूर्ति करें–

1. मनोवैज्ञानिकों का पहला समूह तनाव को ..... के रूप में समझता है–

   (क) विशिष्ट कारक (ख) उद्दीपन कारक (ग) मनोवैज्ञानिक कारक

2. मनोवैज्ञानिकों का दूसरा समूह तनाव को ..... के रूप में परिभाषित करता है–

   (क) उद्दीपन (ख) अनुक्रिया (ग) प्रतिक्रिया

3. आपातकालीन प्रतिक्रियाएँ तनाव की ..... प्रतिक्रिया के अन्तर्गत आती है–

   (क) मानसिक (ख) आत्मिक (ग) दैहिक,

4. आत्म-रिपोर्ट विधि ..... की एक विधि है–

   (क) तनाव-मापन (ख) बुद्धि मापन (ग) समायोजन

***(iii)* योजनाबद्ध समस्या समाधान** (Planful problem solving)–इस तरह के समायोजी उपाय (coping strategy) में व्यक्ति तनाव उत्पन्न करने वाली समस्या से निपटने के लिए एक योजना (plan) बनाता है और उसी के अनुरूप व्यवहार करके समस्या का समाधान करता है। जैसे, एक बेरोजगार युवक बेरोजगारी से उत्पन्न तनाव को कम करने के लिए रोजगार समाचार में अपनी योग्यता के अनुरूप छपे विज्ञापनों को पढ़कर अपने वायो-डाटा को नियोजकों (employers) के पास भेजकर अपनी समस्या का समाधान कर तनाव को कम कर लेता है।

समस्या-केन्द्रित उपाय (problem-focused strategy) के तहत कुछ उपाय कभी-कभी ऐसे भी होते हैं जिनमें व्यक्ति का ध्यान समस्या के स्वरूप को परिवर्तित करने की ओर न जाकर स्वयं अपनी ओर जाता है और वह अपने आप में कुछ परिवर्तन लाकर समस्या का समाधान करता है। इसमें व्यक्ति अपनी आकांक्षा स्तर (level of aspiration) में परिवर्तन लाने की कोशिश करता है, वह संतुष्टि के वैकल्पिक माध्यमों (alternative sources) की खोज कर लेता है तथा नये-नये कौशलों को सीख लेता है। इन आन्तरिक उपायों से भी तनाव उत्पन्न करने वाली समस्या के साथ उत्तम ढंग से निपटा जाता है।

2. संवेग केन्द्रित समायोजी उपाय (Emotion-focused coping strategies)–इस तरह के उपाय में व्यक्ति समस्या से उत्पन्न सांवेगिक अनुक्रिया पर ध्यान केन्द्रित करता है। व्यक्ति समस्या के स्वरूप को परिवर्तित करने की कोशिश नहीं करता है परन्तु समस्या से उत्पन्न चिंता को कम करने का उपाय करता है। इन उपायों का उपयोग वहाँ किया जाता है जहाँ व्यक्ति को यह महसूस होने लगता है कि तनाव उत्पन्न करने वाली समस्या इतनी गंभीर है कि उसे बदला नहीं जा सकता है तथा व्यक्ति में तनाव अधिक मात्रा में उत्पन्न हो रहा है। इसके तहत निम्नांकित दो तरह के उपायों का वर्णन किया गया है–

(क) व्यवहारात्मक उपाय (Behavioural strategy)–इस उपाय में कुछ खास-खास तरह के व्यवहार करके व्यक्ति अपने तनाव को दूर करने का प्रयास करता है। जैसे–वह समस्या से ध्यान हटाकर किसी दूसरी चीज में ध्यान लगाता है, शराब तथा सिगरेट अधिक मात्रा में पीने लगता है तथा समय प्रबंधन में प्रत्येक दिन किये वाले कार्यों की एक क्रमबद्ध सूची बनाकर उसी के अनुरूप कार्य करता है। इसका फायदा यह होता है कि व्यक्ति को ऐसे कार्यों से बाधा नहीं उत्पन्न होती है, जो उसके मुख्य लक्ष्ण में बाधक हो सकता है।

(ख) संज्ञानात्मक उपाय (Cognitive strategy)–इस उपाय में व्यक्ति तनावपूर्ण परिस्थिति के अर्थ में परिवर्तन लाकर तनाव को कम करने की कोशिश करता है। इस तरह से व्यक्ति यहाँ तनावपूर्ण परिस्थिति

नोट

का पुनर्मूल्यांकन (reappraisal) करता है। यह पुनर्मूल्यांकन वास्तविक होता है जहाँ व्यक्ति गंभीरता से सोचने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि समस्या सचमुच उतनी गंभीर नहीं थी। इस प्रक्रिया को मिकेनबाँम (Meichambaunm, 1977) ने संज्ञानात्मक पुनर्संरचना (cognitive restructuring) कहा है। परन्तु कभी-कभी ऐसा करने में हम लोग वास्तविकता को विकृत (distort) कर देते हैं तथा अपने आप को एक तरह से धोखा देते हैं। ऐसे संज्ञानात्मक उपायों को फ्रायड (Freud) ने रक्षा प्रक्रम (defense mechanism) कहा है जिनमें निम्नांकित सात प्रमुख हैं–

(1) दमन (repression)–इसमें तनावपूर्ण समस्या से उत्पन्न चिन्ताओं, यादों आदि व्यक्ति के चेतन से निकलकर अचेतन में चले जाते हैं क्योंकि वे मानसिक रूप से कष्टकारी होती हैं। इसे दमन (repression) की प्रक्रिया कहा जाता है जो दलन (suppression) से भिन्न होता है जहाँ व्यक्ति चिंता उत्पन्न करने वाली इच्छाओं एवं यादों को जान-बूझकर चेतन से हटाये रखता है ताकि वह किसी दूसरे तथ्य पर ध्यान दे सके। अत: दमन में व्यक्ति अपनी इच्छाओं एवं यादों से अवगत नहीं होता है जबकि दलन में व्यक्ति को यह पता होता है कि किन-किन इच्छाओं एवं यादों को चेतन से अलग किया है।

(2) प्रतिक्रिया निर्माण (reaction formation)–इसमें व्यक्ति तनाव उत्पन्न करने वाले इच्छा या विचार के ठीक विपरीत इच्छा या विचार विकसित करके तनाव को कम करता है। भ्रष्टाचार से चिन्तित एवं तनावग्रस्त एक नेता प्राय: भ्रष्टाचार के खिलाफ भाषण देकर अपना मानसिक बोझ एवं उलझन कम कर लेता है।

(3) यौक्तिकीकरण (rationalization)–इसमें व्यक्ति अपने अयुक्तिसंगत व्यवहारों को एक युक्तिसंगत एवं तर्कसंगत व्यवहार के रूप में परिणत कर अपने आप को संतुष्ट कर अपना मानसिक तनाव दूर करता है। इस तरह से यौक्तिकीकरण से दो उद्देश्यों की पूर्ति होती है–पहला तो यह कि जब व्यक्ति लक्ष्य पर पहुँचने में असमर्थ रहता है, तो इससे उत्पन्न कुण्ठा की गंभीरता को यौक्तिकीकरण कम कर देता है तथा दूसरा यह कि वह व्यक्ति द्वारा किए गए व्यवहार के लिए एक स्वीकार्य अभिप्रेरक (acceptable motive) प्रदान करता है। जैसे–एक छात्र समय पर परीक्षा भवन में नहीं पहुँचने पर यह यौक्तिकीकरण कर सकता है कि उसके कमरे के सहयोगी (room-mate) ने उसे ठीक समय पर सुबह नहीं उठाया। यहाँ छात्र परीक्षा भवन में सही समय पर नहीं पहुँचने से उत्पन्न तनाव को एक युक्तिसंगत व्यवहार के माध्यम से दूर करना चाहता है। संभव है कि उसके दोस्त ने सचमुच में उसे ठीक समय पर नहीं उठाया हो, परन्तु परीक्षा भवन में समय पर पहुँचने की जवाबदेही उस पर है न कि उसके दोस्त पर।

(4) प्रक्षेपण (projection)–इस तरह के रक्षा प्रक्रम में व्यक्ति अपना तनाव दूर करने के लिए अपनी गलतियों, असफलाताओं आदि का आरोपण दूसरों पर करता है और इस तरह से अपने आप को दोषमुक्त समझता है जिससे उसमें शांति एवं आत्म-संतोष उत्पन्न होता है। सचमुच प्रक्षेपण एक तरह का यौक्तिकीकरण ही है परन्तु इसका महत्त्व अलग से इसलिए है क्योंकि यह हमारे समाज में अधिक व्यापक तौर पर उपयोग किया जाता है। परीक्षा में असफलता होने पर छात्र अपना तनाव प्राय: यह कहते हुए कम करता है कि शिक्षक ने ठीक ढंग से पढ़ाया नहीं था या उसे माता-पिता द्वारा घरेलू कार्यों में परीक्षा की अवधि में काफी व्यस्त रखा गया था। ऐसा सोचने से स्वभावत: वह अपने को दोषी नहीं पाता है और तब उसका तनाव कम हो जाता है।

(5) विस्थापन (displacement)–विस्थापन भी एक महत्त्वपूर्ण संज्ञानात्मक रक्षा प्रक्रम (cognitive defense mechanism) है। जिसके माध्यम से व्यक्ति अपना तनाव कम करता है। इसमें कष्टकर अभिप्रेरक एवं संघर्षों से उत्पन्न तनाव को मौलिक वस्तु जो ऐसे कष्टकर अभिप्रेरकों एवं संघर्षों की उत्पत्ति

नोट

करती है, से असम्बद्ध वस्तुओं या परिस्थितियों के प्रति स्थानान्तर करके कम करता है। जैसे–माता-पिता द्वारा डाँट पड़ने पर यदि कोई बालक अपने छोटे भाई को पीटकर अपना तनाव दूर करता है तो यह विस्थापन का उदाहरण होगा। स्पष्ट है कि विस्थापन में व्यक्ति अपना तनाव उस वस्तु या व्यक्ति के प्रति प्रतिक्रिया करके करता है, जो उसे कम खतरनाक या कम भय उत्पन्न करने वाला दिखता है।

(6) अस्वीकार (denial)–जब बाहरी वास्तविकता (external reality) इतना अधिक कष्टकर या दुखदायी हो जाती है कि व्यक्ति उसको सहन नहीं कर सकता है, तो ऐसी परिस्थिति में उस वास्तविकता के अस्तित्व को मानने से इन्कार करके वह अपना तनाव दूर करता है। जैसे– घातक रूप से बीमार शिशु के माता-पिता अपना तनाव यह सोचकर कम कर लेते हैं कि शिशु को कुछ भी ऐसा घातक बीमारी नहीं हुई है। हालांकि बीमारी के परिणाम (outcome) को भी वह अच्छी तरह से समझते हैं।

(7) बौद्धिकीकरण (intellectualization)–बौद्धिकीकरण एक ऐसा रक्षा प्रक्रम है जिसमें व्यक्ति तनावपूर्ण परिस्थिति से उसके बारे में अमूर्त (abstract) ढंग से सोचकर एक तरह की निर्लिप्तता या अलगाव (detatchment) विकसित कर लेता है जिसके परिणामस्वरूप वह अपना तनाव कुछ कम कर पाता है। जैसे–एक डॉक्टर जिन्हें लगातार रोगी की जिन्दगी-मौत से जुझना पड़ता है, में उनकी अवस्थाओं को देखकर उनमें तनाव उत्पन्न होता है। परन्तु जब वह इन रोगियों के प्रति सांवेगिक रूप से आवेष्टन (involvement) न दिखाकर एक तरह का अलगाव विकसित कर लेता है जिससे उसका तनाव कम हो जाता है और वह रोगी का ठीक ढंग से उपचार करने में सफल हो पाता है।

स्पष्ट हुआ कि तनाव की गंभीरता को कम करने के कई उपायों का वर्णन किया गया है। फिर भी ये सारे उपाय अपने उद्देश्य में अधिक सफल नहीं हो पाये हैं क्योंकि समाज के अधिकतर व्यक्तियों में तनाव की गंभीरता इतनी बुरी तरह से छायी हुई है कि उनका सांवेगिक एवं दैहिक स्वास्थ्य दिनों-दिन खराब होता जा रहा है। अत: इस सिलसिले में अभी बहुत कुछ करना बाकी है जिसे मनोवैज्ञानिकों ने एक चुनौती के रूप में लिया है।

नवीनतम शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि समायोजी व्यवहार (coping behaviour) के सामयिक पहलू (temporal aspect) भी होते हैं। व्यक्ति तनाव के साथ समायोजन तनाव उत्पन्न होने के बाद भी कर सकता है। बीह एवं मैकग्राथ (Beehr and McGrath, 1996) ने निम्नांकित पाँच ऐसी परिस्थितियों का वर्णन किया है जो विशेष सामयिक संदर्भ (temporal context) उत्पन्न करते हैं तथा जिसमें व्यक्ति समायोजी व्यवहार करता है–

(क) निरोधक समायोजी (Preventive coping)–यह एक ऐसा समायोजी व्यवहार है जिसे व्यक्ति तनाव उत्पन्न करने वाली घटना से बहुत पहले ही करना प्रारंभ कर देता है। जैसे, धुम्रपान करने वाला व्यक्ति फेफड़े का कैंसर उत्पन्न होने की जोखिम से दूर रहने के ख्याल से धुम्रपान करना जब छोड़ देता है, तो इसे एक निरोधक समायोजी व्यवहार का उदाहरण माना जाएगा।

(ख) प्रत्याशी समायोजी (anticipatory coping)–जब व्यक्ति यह अनुमान लगाकर समायोजी व्यवहार करता है कि तनाव उत्पन्न करने वाली घटना अब तुरंत होने वाली है, तो इस तरह के समायोजी व्यवहार को प्रत्याशी समायोजी कहा जाता है। जैसे–यदि तुरंत सर्जिकल आपरेशन होने के अनुमान के फलस्वरूप व्यक्ति प्रशांतक (tranquilzer) लेता है, तो इस तरह के समायोजी व्यवहार को प्रत्याशी समायोजी व्यवहार कहा जाता है।

(ग) गत्यात्मक समायोजी (dynamic coping)–इस तरह का समायोजी व्यवहार व्यक्ति तब करता है जब तनावपूर्ण परिस्थिति से गुजर रहा होता है। जैसे; जब व्यक्ति चिरकालिक दर्द को कम करने के ख्याल से अपना ध्यान उससे हटाकर किसी अन्य वस्तु पर करता है, तो इसे गत्यात्मक समायोजी व्यवहार की संज्ञा दी जाती है।

नोट

(घ) प्रतिक्रियात्मक समायोजी (reactive coping)–इस तरह का समायोजी व्यवहार तनाव उत्पन्न करने वाली घटना घटने के बाद व्यक्ति अपनाता है। जैसे, एक पैर काट दिये जाने पर जब व्यक्ति अपने जीवन शैली में परिवर्तन लाकर उसके साथ समायोजन करता है, तो इसे प्रतिक्रियात्मक समायोजी व्यवहार कहा जाता है।

(ङ) अवशिष्ट समायोजी (residual coping)–यह एक ऐसा समायोजी व्यवहार है जिसमें व्यक्ति तनाव उत्पन्न होने के बहुत बाद उसके गहरे प्रभावों से निपटने के लिए व्यवहार करता है। जैसे, कोई आघातीय घटना (traumatic event) होने के बहुत बाद जब व्यक्ति उसके बारे में अपने भयावह चिंतन को नियंत्रित करके उसके साथ समायोजन करता है, तो उसे अवशिष्ट समायोजी व्यवहार कहा जाता है।

स्पष्ट हुआ कि समायोजी व्यवहार के सामयिक पहलू भी होते हैं जो काफी सार्थक हैं। अभी नवीनतम अध्ययनों से यह भी पता चला है कि पुरुष एवं महिलाएँ उपर्युक्त समायोजी उपायों (coping strategies) के चयन में एक-दूसरे से भिन्नता दिखलाते हैं। अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि पुरुषों द्वारा समस्या-केन्द्रित समायोजी उपाय (problem focused coping strategies) का अधिक उपयोग किया जाता है जबकि महिलाओं द्वारा संवेग केन्द्रित उपाय (emotion focused strategy) जिसमें अन्य लोगों से सामाजिक समर्थन हासिल करने की कोशिश की जाती है, अधिक उपयोग किया जाता है, प्टेक, स्मीथ तथा डोज (Ptacek, Smith and Dodge, 1994) द्वारा किये गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि इसका कारण यह है कि जिंदगी के आरंभ से ही पुरुषों एवं महिलाओं को तनाव के साथ निपटने के लिए अलग-अलग रास्तों पर चलने के लिए सिखाया जाता है। परन्तु पोर्टर तथा स्टोन (Porter and Stone, 1995) द्वारा किये गए अध्ययन से यह निष्कर्ष शक के घेरे में आ जाता है, क्योंकि इनके अध्ययनों में यह पाया गया कि महिला एवं पुरुष अनुभव किए गए तनाव की मात्रा के ख्याल से आपस में एक-दूसरे से कम भिन्न होते हैं या फिर उस तनाव से निपटने के लिए जिन उपायों (strategies) का सहारा लेते हैं उनमें भी आपस में कम अन्तर होता है। परन्तु इन दोनों में अपनी-अपनी समस्याओं की अंतर्वस्तु (content) के ख्याल में अवश्य अन्तर होता है। पुरुषों द्वारा कार्य-सम्बद्ध समस्याओं के बारे में अधिक बतलाया जाता है जबकि महिलाओं द्वारा अपने से सम्बद्ध समस्याओं, मातृत्व-पितृत्व से सम्बद्ध समस्या तथा अन्य लोगों के साथ अंतर्क्रियाओं से सम्बद्ध समस्याओं पर अधिक बल डाला जाता है।

कुछ अध्ययनों से यह भी पता चला है कि समायोजी उपायों (coping strategies) पर संस्कृति (culture) का भी प्रभाव पड़ता है। चांग (Chang, 1996) ने एक अध्ययन किया जिसमें विशेष रूप से इस तथ्य पर विचार किया गया कि एशियन छात्रों तथा यूरोपियन छात्रों में आशावादी, निराशावादी तथा समायोजी उपायों (coping strategies) के ख्याल से कोई अंतर होता है या नहीं। परिणाम में यह देखा गया कि एशियन छात्र तुलनात्मक रूप से अधिक आशावादी थे तथा समस्या परिहार (problem avoidance) तथा सामाजिक प्रत्याहार (social withdrawal) को समायोजी उपाय के रूप में अधिक उपयोग करते थे।

26.7 प्रतिबल या तनाव का प्रबंधन (Management of Stress)

जैसा कि हम जानते हैं, व्यक्ति दिन-प्रतिदिन की जिंदगी में होने वाले तनावों को दूर करने के लिए तरह-तरह के उपायों को अपनाता है। परन्तु ऐसे उपाय हमेशा कई कारणों से कारगर साबित नहीं हो पाते हैं। इन कारणों में सबसे प्रमुख कारण प्रतिबल या तनाव की गंभीरता है या उसकी नवीनता है। ऐसी परिस्थितियों से निपटने के लिए स्वास्थ्य मनोवैज्ञानिकों (health psychologists) ने प्रतिबल प्रबंधन (stress management) की कुछ प्रविधियों की ओर ध्यान दिया है। उन प्रविधियों पर विचार करने के पहले यहाँ बता देना उचित समझते हैं कि प्रतिबल प्रबंधन क्या है? प्रतिबल प्रबंधन से तात्पर्य एक ऐसे कार्यक्रम से होता है जिसमें लोगों को तनाव के स्रोतों से अवगत कराते

नोट

हुए उनसे निपटने के आधुनिक एवं वैज्ञानिक तरीकों के बारे में शिक्षा दी जाती है। इतना ही नहीं, ऐसे कार्यक्रम में तनाव को कम करने के कौशलों का अभ्यास भी करवाया जाता है।

तनाव प्रबंधन के कई तरीके हैं जिनमें मूलत: तीन अवस्थाएँ सम्मिलित होती हैं–

(1) पहली अवस्था में तनाव प्रबंधन में सम्मिलित होने वाले व्यक्ति यह सीखते हैं कि तनाव क्या होता है?

(2) दूसरी अवस्था में वे तनाव को दूर करने या कम करने के कौशलों को सीखते हैं तथा उनका इस कार्य में अभ्यास भी कराया जाता है।

(3) अंतिम अवस्था में लक्षित तनावपूर्ण परिस्थितियों (targeted stressful situations) में वे तनाव प्रबंधन प्रविधियों का अभ्यास करते हैं तथा उनकी प्रभावशीलता को मॉनीटर करते हैं।

उक्त तीनों अवस्थाओं पर आधारित अमेरिका में एक अति महत्त्वपूर्ण तनाव प्रबंधन कार्यक्रम (stress management programme) विकसित किया गया है जिसे 'कामवैट स्ट्रेस नाऊ' (Combat Stress Now or CSN) कहा जाता है जिसका सफलतापूर्वक उपयोग उन कॉलेज छात्रों के लिए किया गया जो शैक्षिक जीवन के तनावों से निपटने में कठिनाई अनुभव करते हैं।

लेहरेर एवं उलफोल्क (Lehrer and Wollfolk, 1993) के अनुसार तनाव प्रबंधन की कई प्रविधियाँ (techniques) हैं जिन्हें मोटे तौर पर दो मुख्य भागों में बाँटा गया है–

(क) वैयक्तिक उपागम (Individual approach)

(ख) पर्यावरणीय परिवर्तन उपागम (Environmental change approach)

इन दोनों उपागमों के तहत आने वाली प्रविधियों का वर्णन निम्नांकित हैं–

(क) वैयक्तिक उपागम (Individual approach)–इसके तहत तनाव प्रबंधन के लिए मुख्यत: व्यक्ति विशेष पर कार्य किया जाता है जिसमें निम्नांकित प्रविधियों को रखा गया है–

***(i)* उत्तेजन की कमी** (arousal reduction)–इस प्रविधि में व्यक्ति को मांसपेशियों के शिथिलीकरण (relaxation) का प्रशिक्षण दिया जाता है और इस कार्य में कभी-कभी वायोफीडवैक (biofeedback) का भी सहारा लिया जाता है। ऐसा देखा गया कि इस तरह से व्यक्ति को प्रशिक्षित करने से वह इस कौशल का उपयोग फिर धीरे-धीरे अपने वास्तविक जिंदगी के तनावों को कम करने के लिए सफलतापूर्वक करने लगता है। डेविसन एवं थॉम्पसन (Davison and Thompson, 1988) ने इस क्षेत्र में किये गए अध्ययनों की समीक्षा करने के बाद यह बताया है कि इस तरह के प्रशिक्षण का स्थायी लाभ तभी मिलता है जब इस तरह के शिथिलीकरण का अभ्यास लगातार व्यक्ति करता है।

***(ii)* संज्ञानात्मक पुनर्संरचना** (Cognitive restructuring)–इस प्रविधि के मुख्य प्रवर्त्तक मिकेनबॉम (Meichambaunm, 1977), इल्लिस (Ellis, 1962) तथा बेक (Beck) है। यह एक ऐसी प्रविधि है जिसमें व्यक्ति के विश्वास तंत्रों (belief systems) में परिवर्तन लाने की कोशिश की जाती है ताकि वह अपने जिंदगी की अनुभूतियों की एक उचित एवं सही व्याख्या प्रस्तुत कर सके एवं अपने संवेगों एवं स्पष्ट व्यवहार में वांछित परिवर्तन ला सके। इल्लिस एवं बेक का मत है कि व्यक्ति में तनावग्रस्त अनुभूतियों के उत्पन्न होने के कारण अयौक्तिक विश्वास (irrational belief) होता है। ऐसे विश्वास के कारण व्यक्ति दूसरों से और यहाँ तक कि स्वयं से अधिक अपेक्षाएँ करने लगता है और तनावग्रस्त हो जाता है। संज्ञानात्मक पुनर्संरचना की प्रविधि में ऐसे विश्वासों को दूर करके उनकी जगह को दूर रखने में समर्थ हो सके। फोल्कमैन तथा लेजारस (Folkman and Lazarus, 1984) ने अपने अध्ययन के आधार पर इस तथ्य का समर्थन किया है।

नोट

(iii) व्यवहारात्मक कौशल प्रशिक्षण (Behavioural skills traning)–तनाव प्रबंधन की यह एक ऐसी प्रविधि है जिसमें व्यक्ति को व्यवहार से सम्बद्ध कुछ ऐसे कौशलों (skills) को सिखलाया जाता है जिनका उपयोग करके वह अपने तनाव को कम कर सकता है। जैसे समय प्रबंधन (time management) एक ऐसा ही कौशल है जिसे सिखा कर व्यक्ति अपने दिन-प्रतिदिन की जिंदगी के तनाव को कम कर सकता है। अक्सर देखा गया है कि व्यक्ति को कम समय में जरूरत से ज्यादा काम कभी-कभी करना होता है जो स्पष्टत: तनाव का एक कारण बनता है। समय प्रबंधन में व्यक्ति को इस बात का प्रशिक्षण दिया जाता है कि वह ऐसी परिस्थिति से किस तरह निबटेगा। स्पष्ट हुआ कि इस प्रविधि में व्यक्ति को कुछ विशेष व्यवहारात्मक कौशल (behavioural skills) सिखाया जाता है ताकि वह दिन-प्रतिदिन की घटनाओं से होने वाले तनावों पर नियंत्रण रख सके।

(iv) बायोफीडबैक (Biofeedback)–1970 के दशक में तनाव (stress) को कम करने के लिए नयी प्रविधि की लोकप्रियता बढ़ी जिसे बायोफीडवैक (biofeedback) कहा गया। बायोफीडवैक एक ऐसी विशिष्ट प्रविधि है जिसके माध्यम से तनाव के दैहिक पहलुओं (physiological aspects) को मॉनीटर एवं नियंत्रित किया जाता है। इसमें व्यक्ति को किसी विशेष आंतरिक अंग के कार्यों के बारे में पुनर्निवेशन (feedback) दिया जाता है जो सामान्यत: व्यक्ति के चेतन नियंत्रण से बाहर होता है और व्यक्ति को उसे पहचान करके नियंत्रित करना पड़ता है जैसे, रोगी का संबंध किसी एक ऐसी मशीन से स्थापित किया जा सकता है जो हृदय गति को आवाज (tone) में बदल देता हो ताकि व्यक्ति यह समझ सके कि हृदय कितना तेजी या मंद गति से धड़क रहा है। प्रयास एवं त्रुटि की प्रक्रिया से व्यक्ति धीरे-धीरे इस स्वायत्त अनुक्रिया (autonomic response) को नियंत्रण करना सीख लेता है। अब व्यक्ति यह महसूस कर सकता है कि इन आवाजों पर ध्यान न देकर यदि सांस की गति पर ध्यान केन्द्रित किया जाए, तो इससे उसकी हृदय गति को आसानी से कम किया जा सकता है।

बायोफीडबैक का उपयोग न केवल सामान्य तनाव को कम करने में बल्कि उच्च रक्त चाप, चिरकालिक दर्द, मांसपेशीय संकुचन कम होने सिरदर्द (muscle-contraction headaches) आदि के उपचार में भी किया जाता है। परन्तु यह प्रविधि कीमती (costly) होने के कारण अधिक लोकप्रिय नहीं हो पायी। इसकी लोकप्रियता का एक कारण यह भी था कि इससे अधिक उत्तम परिणाम अन्य प्रविधि से मिलने लगे।

(v) विश्रांति या तनाव मुक्ति प्रविधि (Relaxation techniques)–कई तरह की विश्रांति या तनावमुक्ति प्रविधि (relaxation techiques) ऐसे उपलब्ध हैं जिनसे व्यक्ति तनाव कम करने के लिए सफलतापूर्वक उपयोग करता है। जब व्यक्ति विश्रांति की अवस्था में होता है, तो व्यक्ति के शरीर में उत्तेजना (arousal) कम होता है जिसका मतलब यह हुआ कि व्यक्ति तनाव के प्रति प्रतिक्रिया करने के प्रति कम उन्मुखता दिखलाता है। इस तरह से विश्रांति प्रविधि में व्यक्ति अपने शरीर को निम्न उत्तेजना के सुखद अवस्था में ले जाना सीखता है तथा तनाव से साहचर्यित असामान्य तनाव की अवस्था को कम करना भी सीख लेता है। विश्रांति प्रविधियाँ जिनका उपयोग व्यक्ति तनाव को कम करने में करता है, कई हैं। इनमें निम्नांकित प्रमुख हैं–

(1) ऐवरली (Everly, 1989) के अनुसार, विश्रांति प्रविधि का एक प्रारूप वह है जिसमें शरीर की विभिन्न मांसपेशियाँ समूहों का प्रगतिशील विश्रांति (projective relexation) होती है। यहाँ पूर्वकल्पना यह होती है कि चूँकि तनाव एवं चिंता का संबंध मांसपेशियाँ तनाव (muscle tension) से होता है, अत: मांसपेशीय तनाव को कम करके भी तनाव एवं चिंता के भाव को कम किया जा सकता है। प्रगतिशील विश्रांति में व्यक्ति क्रमबद्ध रूप से शरीर की कुछ मांसपेशियों को विशेषकर शरीर के निचले हिस्से की मांसपेशियों से प्रारंभ होकर चेहरे की मांसपोशियों (facial muscles) को शिथिल (relax) तब तक

नोट

करता है जब तक कि पूर्ण शरीर विश्रांति की अवस्था में न आ जाए। इस ढंग के सतत् अभ्यास से व्यक्ति में शांति का भाव उत्पन्न होता है तथा फिर वह एक कम तानवपूर्ण मनोवृत्ति विकसित कर लेता है।

(2) विश्रांति प्रविधि का दूसरा प्रारूप नियंत्रित श्वसन (controlled breathing) है। चूँकि विश्रांति की अवस्था गहरे एवं लम्बे श्वसन (breaths) से सम्बद्ध होती है, इसलिए इस ढंग का श्वसन पैटर्न उत्पन्न करके हम व्यक्ति में जान-बूझकर विश्रांति उत्पन्न कर सकते हैं। पहले, व्यक्ति एक लम्बी गहरी सांस लेता है जिसमें मुँह के माध्यम से व्यक्ति के फेफड़े में हवा भर जाती है। इस तरह से गहरी सांस जो कम-से-कम 10 सेकंड तक की होता है, के बाद व्यक्ति फिर छोटी सांस लेता है। इस प्रक्रिया को बार-बार दोहराने से तनाव-उत्पन्न दर्द काफी हो जाता है। इस तथ्य की पुष्टि तर्क एवं उनके सहयोगियों (Turk et al. 1977) तथा विसेनबर्ग (Weisenberg, 1977) के अध्ययनों से हुई है।

कुछ अध्ययनों से इस तथ्य को समर्थन मिला है कि विश्रांति प्रविधियों को लगातार अभ्यास में रखने से असंक्रामक तंत्र (imumune system) को उन्नत बनाने में काफी मदद मिलती है। काईकोल्ट-ग्लेजर एवं उनके सहयोगियों (Kiecolt-Glaser et al; 1984) ने एक अध्ययन किया जिसमें प्रथम वर्ष के कुछ मेडिकल छात्रों को यादृच्छिक ढंग से दो समूहों में बाँटा गया–विश्रांति समूह (relaxation group) तथा नियंत्रित या तुलनात्मक समूह (comparison group)। विश्रांति समूह के छात्रों को परीक्षा प्रारंभ होने के पहले वाले महीने में 5 से 10 विश्रांति सत्र (relaxation session) में अभ्यास दिया गया परन्तु तुलनात्मक समूह को कोई ऐसा प्रशिक्षण नहीं दिया गया। परीक्षा के समय दोनों समूहों के असंक्रामक तंत्र (immune systme) के कार्यों में कमी होते देखी गयी (अर्थात् टी-कोशिकाओं (T-cells) का प्रतिशत कम हो गया) परन्तु विश्रांति समूह के सदस्यों द्वारा चिन्ता कम महसूस की गयी तथा इस समूह के वैसे सदस्य जिन्होंने अधिक बार विश्रांति सत्र में अभ्यास किया थे, उनमें उन सदस्यों की तुलना में जिन्होंने कम बार विश्रांति सत्र में अभ्यास किये थे, टी-कोशिकाओं का प्रतिशत अधिक होते पाया गया। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि विश्रांति से तनाव एवं सम्बद्ध चिन्ता में कमी आती है। काईकोल्ट-ग्लेजर एवं उनके सहयोगियों (Kiecolt-Glaser et al; 1985) ने एक अन्य अध्ययन किया जिसमें 45 वृद्ध लोगों को तीन समूहों में बाँटा गया एक समूह को विश्रांति प्रशिक्षण (relaxation training) दिया गया, दूसरे समूह को पर्याप्त सामाजिक सम्पर्क (Socical contact) प्रदान किया गया तथा तीसरे समूह को नियंत्रित समूह (control group) के रूप में रखा गया है। प्रथम दो समूहों के सदस्यों को एक महीने तक सप्ताह में तीन बार प्रशिक्षण दिया गया। महीना समाप्त होने पर यह देखा गया कि विश्रांति समूह के असंक्रामक तंत्र के कार्यों में काफी उन्नति (improvement) देखी गयी। परन्तु उसके एक महीना बीत जाने के बाद यह देखा गया कि विश्रांति का यह उन्नत प्रभाव लगभग समाप्त हो गया जो अपने आप में यह बतलाता है कि विश्रांति का अभ्यास सतत् बने रहने से ही उसका प्रभाव स्पष्ट दिखता है।

(ख) पर्यावरणीय परिवर्तन उपागम (Environmental changes approach)–वैयक्तिक उपागम में उन प्रविधियों पर बल डाला जाता है जो व्यक्ति को विशेष तरह के वातावरण (environment) के साथ समंजन स्थापित करने के लिए तैयार करता है। परन्तु पर्यावरणीय परिवर्तन उपागम में वातावरण को ही एक समस्या मानकर तथा उसमें परिवर्तन करके तनाव को कम करने का कौशल सिखाता है। इसमें सामाजिक समर्थन (social support) की भूमिका को काफी महत्त्वपूर्ण बताया गया है। कोहेन तथा विल्स (Cohen and Wills, 1985) ने सामाजिक समर्थन के दो प्रकार बताये हैं–संरचनात्मक सामाजिक समर्थन (structual social support) तथा कार्यात्मक सामाजिक समर्थन (functional social support)। संरचनात्मक सामाजिक समर्थन से तात्पर्य व्यक्ति के सामाजिक संबंधों के नेटवर्क जैसे उसके वैवाहिक स्तर तथा दोस्तों की संख्या आदि से होता है। कार्यात्मक सामाजिक समर्थन से तात्पर्य व्यक्ति के संबंधों की गुणवत्ता (quality) से है। जैसे, क्या व्यक्ति को यह विश्वास है कि संकट की घड़ी में वह अपने संबंधियों को अपने पास बुला सकता है? यदि हाँ, तो यह समझा जायेगा कि व्यक्ति को कार्यात्मक सामाजिक समर्थन भी प्राप्त है। गुडनाऊ एवं ग्रेडी (Goodnow anad Grady, 1990),

नोट

सीमैन तथा सीमी (Seeman and Syme, 1990) द्वारा किये गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ कि निम्न सामाजिक समर्थन से व्यक्ति में तनाव होता है और फिर कई तरह के शारीरिक एवं मानसिक रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। अत: इस उपागम में कुछ इस तरह का प्रशिक्षण व्यक्ति को दिया जाता है जिसके सहारे वह अपने सामाजिक समर्थन के स्तर को मजबूत करके अपने इर्द-गिर्द के वातावरण को इस तरह से परिवर्तित कर देता है कि उसमें तनाव न के बराबर होता है। इस क्षेत्र में सामुदायिक मनोविज्ञानियों (community psychologists) द्वारा किया गया योगदान भी काफी सराहनीय है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि तनाव या प्रतिबल प्रबंधन की कई प्रविधियाँ हैं। इन प्रविधियों का संयुक्त रूप से उपयोग करके व्यक्ति तनावमुक्त जिंदगी व्यतीत कर सकता है।

26.8 सारांश (Summary)

- तनाव या प्रतिबल (stress) आधुनिक समाज की एक बड़ी समस्या है। आधुनिक शोधों से यह पता चलता है कि करीब 75% रोगों का कारण यही तनाव होता है।
- कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तनाव को उद्दीपक (stimulus) कारकों के रूप में समझने की कोशिश की है और कहा है कि कोई भी घटना (event) या परिस्थिति जो व्यक्ति को असाधारण अनुक्रिया करने के लिए बाध्य करता है तनाव कहलाता है। घटनाएँ जैसे भूकंप, अगजनी, नौकरी छूट जाना, व्यवसाय का खत्म हो जाना, प्रियजनों की मृत्यु आदि कुछ प्रमुख घटनाएँ हैं जो व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करती हैं।
- कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तनाव को अनुक्रिया (response) के रूप में परिभाषित करने की कोशिश की है।
- मनोवैज्ञानिकों का तीसरा समूह वह है जिसने उपर्युक्त दोनों ही दृष्टिकोणों के अनुसार तनाव को न सिर्फ उद्दीपक और न ही सिर्फ अनुक्रिया बल्कि इन दोनों के संबंध (relationship) के आधार पर परिभाषित करने की कोशिश की है। इस उपागम को संबंधात्मक उपागम (transactional approach) कहा जाता है। ऐसे मनोवैज्ञानिकों का मत है कि कुछ परिस्थिति या घटनाएँ निश्चित रूप से ऐसी होतीं हैं जो सभी व्यक्तियों के लिए तनावपूर्ण होती हैं। कई ऐसी भी घटनाएँ या परिस्थितियाँ होती हैं जो कुछ व्यक्तियों में तनाव उत्पन्न कर सकती हैं। अत: तनाव को उद्दीपक के रूप में सार्थक ढंग से परिभाषित नहीं किया जा सकता है।
- जब व्यक्ति तनाव (stress) में होता है, तो वह उसे अनुभव करता है तथा उसके प्रति प्रतिक्रिया (React) करता है।
- मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ (Psychological reactions): तनाव में कई तरह की मनोवैज्ञानिक या मानसिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं। दूसरे शब्दों में, तनाव में व्यक्ति का मानसिक कार्यों में एक तरह का विघटन (disruption) या क्षुब्धता पायी जाती है।
- तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति या उद्दीपक के प्रति व्यक्ति दैहिक प्रतिक्रियाएँ (physiological reactions) भी करता है। अक्सर देखा गया है कि तनावपूर्ण परिस्थिति से घिर जाने पर व्यक्ति में पेट की गड़बड़ी, हृदय गति का असामान्य होना, श्वसन गति में परिवर्तन आदि होते हैं। ये सभी दैहिक प्रतिक्रियाओं (physiological reactions) के उदाहरण हैं।
- तनाव के प्रति सभी व्यक्ति एक ही तरह की प्रतिक्रिया न करके भिन्न-भिन्न तरह की प्रतिक्रियाएँ करता है। दूसरे शब्दों में, तनाव के प्रति की गयी प्रतिक्रियाओं में वैयक्तिक विभिन्नता होती है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस वैयक्तिक विभिन्नता के कारणों को समझने की कोशिश की गयी है। इन लोगों के शोधों के अनुसार

नोट

निम्नांकित कुछ ऐसे कारक हैं जिनसे ऐसी प्रतिक्रियाएँ प्रभावित होती हैं–(1) पूर्व अनुभूति (2) सामाजिक समर्थन (3) भविष्यसूचकता तथा नियंत्रण (4) संज्ञानात्मक कारक (5) टाइप ए व्यक्ति।

- शोधकर्त्ताओं ने तनाव को मापने का सफल प्रयास किया है और इसके लिए उन्होंने निम्नांकित चार प्रमुख प्रविधियों का वर्णन किया है–(1) आत्म-रिपोर्ट विधि (2) व्यवहारपरक विधियाँ (3) दैहिक सूचकांक विधि।
- व्यक्ति में किन कारणों से तनाव उत्पन्न होता है, इसका गहन अध्ययन मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है और कई कारकों की एक सूची तैयार की गयी है जिनसे व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। 1. तनावपूर्ण जीवन की घटनाएँ 2. प्रेरकों का संघर्ष 3. दिन प्रतिदिन की उलझन 4. कार्य उत्पन्न तनाव 5. पर्यावरणीय स्रोत।
- तनाव का कारण चाहे जो भी हो, यह व्यक्ति के सांवेगिक एवं दैहिक स्वास्थ्य पर खराब असर डालता है। अत: इसे कम करने के उपायों पर मनोवैज्ञानिकों ने गम्भीरता से सोचा है। तनाव को कम करने से सम्बद्ध व्यवहार को समायोजी व्यवहार (coping behaviour) कहा जाता है। समायोजी व्यवहार को मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। जैसे, गुडस्टीन एवं लेनियोन[1] (Goodstein and Lanyon, 1975) ने समायोजी व्यवहार को इस प्रकार परिभाषित किया हैं–
- "समायोजी व्यवहार से तात्पर्य उस सीमा से होता है जहाँ तक व्यक्ति कम-से-कम तीन तरह के चुनौतियों से निबटने में सक्षम होता है–(1) भौतिक वातावरण से मिलने वाली प्रत्यक्ष चुनौतियाँ (2) अपनी दैहिक सीमाओं से मिलने वाली चुनौतियाँ (3) अन्तर्वैयक्तिक चुनौतियाँ।"
- प्रतिबल या तनाव की गंभीरता है निपटने के लिए स्वास्थ्य मनोवैज्ञानिकों (health psychologists) ने प्रतिबल प्रबंधन (stress management) की कुछ प्रविधियों की ओर ध्यान दिया है। प्रतिबल प्रबंधन से तात्पर्य एक ऐसे कार्यक्रम से होता है जिसमें लोगों को तनाव के स्रोतों से अवगत कराते हुए उनसे निपटने के आधुनिक एवं वैज्ञानिक तरीकों के बारे में शिक्षा दी जाती है। इतना ही नहीं, ऐसे कार्यक्रम में तनाव को कम करने के कौशलों का अभ्यास भी करवाया जाता है।

26.9 शब्दकोश (Keywords)

1. **दैहिक प्रतिक्रिया**–शारीरिक प्रतिक्रिया।
2. **यौक्तिकीकरण**–कार्य, स्राव आदि को तर्क के माध्यम से समझाने की कोशिश।

26.10 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. तनाव अथवा प्रतिबल का अर्थ एवं विशेषताएँ बताइए।
2. तनाव की प्रतिक्रियाएँ कितने प्रकार की होती हैं? विस्तार से समझाइए।
3. तनाव में की गई प्रतिक्रियाओं के कारक तत्वों का विश्लेषण कीजिए।
4. तनाव मापन की विधियाँ समझाइए।
5. तनाव कम करने के उपाय एवं उसके प्रबंधन को विस्तार से समझाइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (ख) 2. (ख) 3. (ग) 4. (क)

26.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

नोट

पुस्तकें

1. मनोविज्ञान–*मानव व्यवहार का अध्ययन–ब्रजकुमार मिश्र, पी.एच.आई. लर्निंग, नई दिल्ली।*
2. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
3. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
4. मनोविज्ञान–*डॉ. सरयू प्रसाद, आगरा बुक स्टोर, आगरा।*

नोट

इकाई 27: दुश्चिंता (Anxiety)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

27.1 दुश्चिंता का अर्थ एवं परिभाषा (Anxiety : Meaning and Definition)

27.2 दुश्चिंता की प्रकृति (Nature of Anxiety)

27.3 दुश्चिंता के प्रकार (Kind of Anxiety)

27.4 दुश्चिंता के सिद्धांत (Principles of Anxiety)

27.5 दुश्चिंता के कारण (Causes of Anxiety)

27.6 दुश्चिंता की विशेषताएँ (Characteristics of Anxiety)

27.7 सारांश (Summary)

27.8 शब्दकोश (Keywords)

27.9 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

27.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- दुश्चिंता एवं दुश्चिंता की प्रकृति को समझने में।
- दुश्चिंता के प्रकार एवं सिद्धांत को समझने में।
- दुश्चिंता के कारणों को जानने में।
- दुश्चिंता की विशेषताओं को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

मानव का भयभीत होना एक सामान्य सी बात है। कभी तो वह देवी-देवताओं के शाप से भयभीत एवं चिन्तित हो जाता है, तो कभी व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं से दुश्चिन्तित हो उठता है। फ्रायड (1939) मनुष्य में इड, इगो एवं सुपर इगो के बीच अन्तर्द्वन्द्व को ही दुश्चिंता का प्रमुख कारण मानता है। यह बात अपने आप में बहुत कुछ सीमा तक सत्य दिखायी पड़ती है, किन्तु हार्गी (1939) का कथन है कि इसका विकास सामाजिक कारणों,

नोट

पारिवारिक कलहपूर्ण वातावरण, व्यक्ति की समाज के लोगों द्वारा आलोचना एवं व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति का न होना आदि दुश्चिंता की प्रकृति को विकसित करने में सहायक होता है। दुश्चिन्तित व्यक्ति में निराशा, हताशा, कुण्ठा, उदासीनता मानसिक तथा शारीरिक दुर्बलता एवं उत्साह आदि की कमी दिखायी पड़ती है। इस प्रकार से दुश्चिंता का आधार 'भय' एवं सामाजिक असमायोजन दोनों को ही आधार माना गया है।

27.1 दुश्चिंता का अर्थ एवं परिभाषा (Anxeity : Meaning and Definition)

दुश्चिंता शब्द अंग्रेजी भाषा के एंग्जाइटी शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है जो लैटिन भाषा के एग्सीयस शब्द से बना है। जिसका अंग्रेजी में तात्पर्य 'स्टैट आफ एजीटेशन' है तथा हिन्दी में इसे उद्वेलन की स्थिति कहते हैं।

दुश्चिंता को मनोवैज्ञानिकों ने अलग-अलग ढंग से परिभाषित किया है–

1. **फ्रायड** (1936): दुश्चिंता मानवीय विकास में एक रुकावट है। आज के भौतिकवादी युग में दुश्चिंता की मानवीय व्यवहारों में एक अहम् भूमिका है। प्रारंभ में अस्पष्ट एवं अदृश्य अनुभवों से प्रारंभ होती है। परन्तु जब यह विकसित होने लगती है, इसका स्वरूप गंभीर होने लगता है, जिससे व्यक्ति के व्यवहार, क्रिया-कलाप, दिनचर्या आदि में भी परिवर्तन दिखाई पड़ने लगता है।
2. **सोलियन** (1955): दुश्चिंता एक दुखदायी मानसिक तनाव की स्थिति है जो विगत व्यक्तिगत अनुभवों द्वारा उत्पन्न होती है।
3. **डब्ल्यू लिसकर** (1956): मनुष्य का शारीरिक एवं मानसिक विचलन ही दुश्चिंता है।
4. **लोरेल** (1955): माता-पिता का बालक के साथ व्यवहार का प्रतिफल ही दुश्चिंता है।
5. **ड्रवेवर** (1958): दुश्चिंता अनेक संवेगों का एक मिश्रित स्वरूप है, जिसमें मुख्य रूप से क्रोध, भय, हीन भावना एवं मानसिक ज्वलन आदि होता है।
6. **कोलमैन:** दुश्चिंता से तात्पर्य स्वतंत्र दिशाहीन चिन्ता से है।
7. **फिशर:** चिन्ता मन:स्नायु विकृति में उन आन्तरिक व्यक्तिगत अप्रवेश योग्य कठिनाइयों की प्रक्रिया है, जिसका ज्ञान व्यक्ति को नहीं होता है।
8. **रोजनव ग्रेगटी:** इस रोग से पीड़ित व्यक्ति में बेचैनी, आशंका एवं स्वतंत्र दिशाविहीन चिन्ता पायी जाती है।
9. **आर.आर. बिलयर्ड** (1965): दुश्चिंता का सबसे बड़ा कारण सभ्यता में अचानक परिवर्तन है।
10. **कैमरॉन:** इस प्रकार के रोगियों में व्यापक संवेगात्मक तनाव व स्वतंत्र चिन्ता होती है।
11. **मैक्डूगल:** चिन्ता भय से उत्पन्न होती है।
12. **बुग्लेस्की:** किसी भी कार्य को सीखने में दुश्चिंता एक प्रारम्भिक तत्व है। अवधान पुरस्कार की इच्छा, दण्ड से बचने का प्रयास जिज्ञासा आदि के परिणाम स्वरूप ही दुश्चिंता होती है।

मोवर (1950) ने बताया कि दुश्चिंता के विकसित होने का कारण आधुनिक परिवेश है। जिसमें शराब, तम्बाकू धुम्रपान, नशीली गोलियाँ, जुआ, काम प्रवृत्ति की अधिकता आदि का होना बताया गया है। मोवर ने आगे बताया कि आज की आधुनिक प्रसाधन सामग्री एवं वेशभूषा, काकटेल पार्टियों में शामिल होना तथा भौतिकता में अधिक मनोवृत्ति का होना आदि दुश्चिंता विकसित करने में सहायक होते हैं। जिसका प्रतिफल कभी-कभी यह होता है कि व्यक्ति हत्या आत्महत्या, तलाक एवं अन्य असामाजिक कार्य कर बैठता है।

मोवर ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि दुश्चिंता का अध्ययन मनोविज्ञान में सन् 1930 के पहले नहीं किया जाता था। इसका अध्ययन उस समय से मनोविज्ञान में किया जाने लगा जब फ्रायड तथा उसके अनुयायियों ने दुश्चिंता का

नोट

अध्ययन मानवीय विकार के रूप में करना प्रारंभ कर दिया। **डैलाड** एवं **मिलर** (1950) ने बताया कि दुश्चिंता मनुष्य के व्यक्तित्व से जुड़ी होती है। इसका समर्थन **सीयर्स** ने भी किया है।

27.2 दुश्चिंता की प्रकृति (Nature of Anxiety)

दुश्चिंता ने लम्बे समय से अनेकानेक मनोवैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट कर रखा है। वास्तव में दुश्चिंता मानजीवन के लिए एक अभिशाप ही है, यदि वह सीमा का अतिक्रमण कर जाती है। जहाँ एक ओर अत्यल्प मात्रा में सीमित दुश्चिंता व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक बतायी गयी है, वहीं दूसरी ओर सीमा से अधिक दुश्चिंता व्यक्तित्व का विघटन कर देने वाली होती है। विशेषकर शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों एवं विद्यालयी छात्रों के व्यक्तित्व के लिए तो यह और भी घातक है।

अलबर्ट तथा **हेवर, मेडलर** एवं **वॉटसन, स्पेन्स** एवं **स्पेन्स, वाइन** तथा **सर्जन** आदि अनेक मनोवैज्ञानिकों ने दुश्चिंता की प्रकृति सुनिश्चित की है। उनके अनुसार दुश्चिंता की प्रकृति निम्नवत् है–

1. दुश्चिंता का आधार कार्य की प्रकृति, परिणामों का आकलन संवेगिकता हुआ करता है। अलबर्ट एवं लेबर (1960) ने भी उक्त तथ्य की पुष्टि करते हुए कहा है–"दुश्चिंता हमेशा कार्य करने की प्राकृतिक मूल्यांकन एवं संवेग की प्रकृति पर आधारित होती है।"

2. दुश्चिंता का प्रादुर्भाव कार्य में व्यवधान से होता है। दुश्चिंता व्यक्ति की असहाय अवस्था का सांवेगिक प्रस्फुरण है। मैडलर एवं वॉट्सन (1966) की उक्ति है कि जब व्यक्ति कोई कार्य करता है तो उस कार्य करने की अवधि में ही यदि कोई व्यवधान उपस्थित हो जाता है तथा उस कार्य का कोई दूसरा विकल्प न हो तो व्यक्ति अपने आपको असहाय एवं मानसिक बिखराव की स्थिति में पाता है। जिसे दुश्चिंता के रूप में माना जाता है।

3. मानसिक द्वन्द्व दुश्चिंता का अग्रगामी घटक है। यह मानसिक द्वन्द्व ही आगे चलकर दुश्चिंता का रूप लेता है। **अमेल्पे** (1966) का कथन है कि किसी व्यक्ति में उपयुक्त मानसिक दशाओं के बावजूद किसी कारणवश उसके अधिगम में यदि किसी प्रकार की रुकावट होती है तो उसमें एक प्रकार की मानसिक द्वन्द्व की स्थिति आ जाती है, जो आगे चलकर दुश्चिंता का कारण बन जाती है।

4. यदि कार्य का रूप कठिन है अथवा सरल होने पर भी व्यक्ति की क्षमता के बाहर है तो यह स्वाभाविक है कि व्यक्ति दुश्चिंता का शिकार हो जाए। स्पेन्स एवं स्पेन्स (1966) ने बताया है कि दुश्चिंता हमेशा कार्य की कठिनता एवं कार्य की क्षमता पर आधारित होती है।

27.3 दुश्चिंता के प्रकार (Kind of Anxiety)

दुश्चिंता की प्रकृति एवं स्वरूप के आधार पर इसे मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है–

(क) प्रकृति या स्वरूप के आधार पर वर्गीकरण

(1) स्वतन्त्र दिशाविहीन चिन्ता या अमूर्त्त चिंता

(2) मूर्त्त चिंता

1. स्वतन्त्र दिशा विहीन चिन्ता या अमूर्त्त चिन्ता

फ्रायड (1953) का कथन है कि–दुश्चिंता एक आधार विहीन एवं आकार विहीन मानसिक चिन्ता है। इसके आनुसार जो भी चिन्ता अकारण अवलम्ब होती है, उसे इसके अन्तर्गत रखा जाता है।

नोट

ओल्पे (1969) ने इसकी व्याख्या करते हुए बताया है कि–स्वतन्त्र दिशा विहीन चिन्ता से तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के दुश्चिंतित लोगों में ध्यान के केन्द्रीकरण का अभाव, निर्णय लेने में अक्षमता, अत्यन्त संवेदनशीलता, हतोत्साह एवं अकारण मानसिक तनाव पाया जाता है।

2. मूर्त्तचिन्ता

कोलमैन के अनुसार, इस प्रकार की दुश्चिंता से तात्पर्य है कि यह आधार पूर्ण एवं किसी कारणवश होती है जैसे–आन्तरिक अशान्ति, स्वास्थ्यहीनता, प्रियजन की मृत्यु, परीक्षा में पास न होना एवं किसी व्यक्ति का आगमन आदि ऐसी चिन्ताएँ इसके अन्तर्गत आती हैं।

(ब) लक्षण के आधार पर दुश्चिंता का वर्गीकरण

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने लक्षण के आधार पर दुश्चिंता का वर्गीकरण किया है। जो निम्नवत् है–

1. कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो प्रकृति से परिश्रमी होते हैं। परन्तु कतिपय कारणों से चिन्तित हो जाते हैं। जिसके फलस्वरूप उनमें अत्यन्त दुखद शारीरिक एवं मानसिक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। यह स्थिति मुख्यतया प्रौढ़ावस्था में पायी जाती है। इसके कारण ऐसे लोग चिन्ता मन:स्नायु विकृति से पीड़ित हो जाते हैं।

2. कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो दूसरों पर निर्भर रहते हैं। इनमें बुद्धि कम पायी जाती है तथा लोग जीवन की कठिनाइयों का सामना करने से कतराते हैं। ऐसे लोग स्वार्थी एवं आत्मकेन्द्रित हो जाते हैं। साथ ही ये अन्य व्यक्ति के लिए मुसीबत बन जाते हैं। स्वार्थ, कमजोरी एवं असमर्थता के कारण इन व्यक्तियों में प्रकार की मन:स्नायु विकृतियों के लक्षणों का विकास हो जाता है।

3. फ्रायड (1940) ने बताया कि कुछ ऐसी विवाहित स्त्रियां होती हैं जिनका संवेगात्मक विकास पूर्ण नहीं हो पाता है। इससे वे दूसरों पर अधिक निर्भर होने के कारण असहनशीलता एवं अनुदार प्रकृति की हो जाती हैं। यदि भविष्य में उन्हें कठोर व्यवहार वाले पति मिले तो उनमें एकाकीपन, हीन भावना एवं असुरक्षा की भावना का विकास हो जाता है। फलस्वरूप इनका जीवन क्लेशयुक्त हो जाता है और वे सहानुभूति प्राप्त करने के लिए चिन्ता मन:स्नायु विकृति से पीड़ित हो जाती हैं।

27.4 दुश्चिंता के सिद्धान्त (Principles of Anxiety)

अनेक मनोवैज्ञानिकों ने दुश्चिंता की अवधारणा, प्रकृति एवं परिभाषा को प्रतिपादित किया है। इसी आधार पर दुश्चिंता के सिद्धान्त को निरूपित किया जाता है जो अधोलिखित है–

(1) फ्रायड का दुश्चिंता सिद्धान्त

फ्रायड (1933) ने दुश्चिंता के सिद्धान्त के विषय में बताया कि मनुष्य के इड, इगो एवं सुपर इगो कि बीच अंर्तद्वंद से जो मानसिक तनाव विकसित होता है वह दुश्चिंता है। अर्थात इन तीनों के आपसी तारतम्यता के अभाव से ही दुश्चिंता का जन्म होता है।

(2) कार्नहानी का दुश्चिंता का सिद्धान्त

कार्नहानी (1937) ने दुश्चिंता सिद्धान्त के बारे में बताया कि बालक में अधिक दुश्चिंता उसके सामाजिक प्रभावों से बढ़ती है न कि जैवकीय कारकों इड, इगो एवं सुपर इगो से। इसकी मान्यता है कि बालक सबसे पहले माता-पिता, समाज से भयभीत होता है। पारिवारिक कलहपूर्ण वातावरण, परिवार के सदस्यों द्वारा आलोचना आदि से बालक अपने आपको परिवार एवं समाज से जोड़ने का प्रयास करता है जिसे हानी ने प्रयास एवं त्रुटि के सिद्धान्त के रूप में माना है। उसका कथन है कि द्वन्द्व जैविकीय कारकों (इड, इगो एवं सुपरइगो) में न होकर वरन् आवश्यकताओं के बीच में होता है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

दुश्चिंता के संबंध में निम्नलिखित परिभाषाएँ किसने दी हैं–

1. "दुश्चिंता एक दुखदायी मानसिक तनाव की स्थिति है जो विगत व्यक्तिगत अनुभवों द्वारा उत्पन्न होती है।"
2. "मनुष्य का शारीरिक एवं मानसिक विचलन ही दुश्चिंता है।"
3. दुश्चिंता से तात्पर्य स्वतंत्र दिशाहीन चिंता से है।
4. दुश्चिंता का सबसे बड़ा कारण सभ्यता में अचानक परिवर्तन है।

27.5 दुश्चिंता के कारण (Causes of Anxiety)

शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों में जो दुश्चिंताएँ जन्म लेती हैं और विकराल रूप धारण कर लेती हैं, उनके भी वही कारण हुआ करते हैं जो किसी भी व्यक्ति मे दुश्चिंता के प्रस्फुटित होने के कारण बनते हैं। वैसे तो दुश्चिंता के अनेक कारण हो सकते हैं, किन्तु कोलमैन ने अपनी पुस्तक 'नार्मल साइकोलाजी एण्ड माडर्न लाइफ' में उन सभी कारणों को मुख्य रूप से तीन कारणों के अन्तर्गत समाहित करते हुए वर्गीकृत किया है वे हैं–

1. जैविकीय घटक
2. मनोवैज्ञानिक घटक
3. सामाजिक सांस्कृतिक घटक

1. जैविकीय घटक

इस प्रभावक घटक के बारे में सबसे पहले पोलिन (1969) एवं कोहेन (1974) ने प्रकाश डाला। इस घटक का सीधा सम्बन्ध वंशानुक्रम से है। इसके अन्तर्गत ग्रस्त व्यक्ति की आयु, लिंग, संवेगात्मक तनाव एवं अधिक भय आदि वंशानुक्रम द्वारा ही प्राप्त होते हैं। इसका एक ज्वलन्त उदाहरण यह है कि जो देश जितने ही समृद्ध हैं उनमें उतनी ही दुश्चिंता पायी जाती है। जैविकीय प्रभावक घटकों में केवल वंशानुक्रम ही एक ऐसा घटक है जो मानसिक रोगी में जन्मजात पाया जाता है।

2. मनोवैज्ञानिक घटक

इस प्रभावक घटक के अन्तर्गत कोलमैन ने प्रमुख रूप से दो उपप्रभावक घटकों का उल्लेख किया है–

(*i*) दोषपूर्ण अधिगम

जब किसी बालक का उचित अधिगम नहीं हो पाता है तो उसमें कुसमायोजन की भावना का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यह कुसमायोजन ही धीरे-धीरे उसे समाज से अलग थलग कर देता है। फल यह होता है कि यह कुंठा, निराशा, हतोत्साह एवं उदासीनता का शिकार हो जाता है। इस प्रकार दोषपूर्ण अधिगम भी दुश्चिंता के लिए प्रभावक घटक के रूप में माना गया है।

(*ii*) व्यक्तिगत प्रगति में बाधा

जब कभी किसी व्यक्ति को व्यक्तिगत जीवन में बढ़ने का या प्रगति करने का पूर्ण अवसर नहीं मिलता तो वह व्यक्ति निश्चित रूप से किसी न किसी मानसिक रोग का शिकार हो जाता है क्योंकि चिड़चिड़ापन जैसी मानसिक कमजोरी का शिकार होना स्वाभाविक है। उक्त सभी विसंगतियाँ दुश्चिन्ता के मूल कारण के रूप में कार्य करती हैं और उसे प्रादुर्भूत कर बढ़ाती हैं।

3. सामाजिक सांस्कृतिक घटक

नोट

प्रसिद्ध समाजशास्त्री किड्सन एवं जोन्स (1968) पश्चिम आस्ट्रेलिया के लोगों के अध्ययन के आधार पर बताया कि जो लोग अधिक सभ्यता में रह रहे हैं उनमें दुश्चिंता अधिक पायी जाती है। जबकि कम सभ्यता वालों में कम, दुश्चिंता पायी जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक सांस्कृतिक घटक दुश्चिंता को प्रभावित करते हैं।

क्या आप जानते हैं कोलमैन (1976) ने बताया कि पिछड़े देशों में उन्मादी स्नायु: ग्रस्तता अधिक पायी जाती है। जबकि विकसित देशों में दुश्चिंता अधिक पायी जाती है।

इसका प्रमुख कारण दुख है। इस प्रकार से विभिन्न शोध कार्यों के आधार पर कोलमैन (1976) ने निष्कर्ष निकाला कि सुसमायोजित स्थिति एवं संस्कृति के अभाव में भी जीवन के प्रति असन्तोष बना रहता है और यही असन्तोष मनुष्य की मानसिकता को प्रभावित करता है।

कोलमैन द्वारा बताए गये दुश्चिंता के कारणों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रभावपूर्ण कारण निम्नवत् है–

(*i*) **भय**

फ्रायड (1936) ने सबसे पहले इस तथ्य की तरफ संकेत किया कि दुश्चिंताग्रस्त लोगों में मानसिक एवं शारीरिक दोनों प्रकार का आधारहीन भय व्याप्त रहता है, जैसे किसी दुर्घटना के होने का भय नौकरी से निकाले जाने का भय अथवा परीक्षा में पास न होने का भय आदि।

(*ii*) **दीर्घकालीन रोग**

कोरल (1955) का कथन है कि जब कोई व्यक्ति बहुत समय तक बीमारी की अवस्था में रहता है तो उसमें हीन भावना जैसी मानसिक विकृतियाँ स्वयं जन्म लेती हैं जैसे–अब हम नहीं ठीक होंगे एवं लोग मेरी उपेक्षा कर रहे हैं आदि।

(*iii*) **तीव्र चिन्ता**

दुश्चिंता पर किये गये अनेक शोध अध्ययनों के आधार पर एक और भी निष्कर्ष निकलता है कि किसी भी कारण विशेष से जब किसी व्यक्ति में किसी तथ्य-विशेष के कारण तीव्र चिन्ता हो जाती है तो कभी-कभी उस चिन्ता के कारण की समाप्ति के बाद भी उसमें वह दुश्चिंता बनी रहती है। उदाहरणार्थ, चलती ट्रेन से एक बार दुर्घटना के बाद भी जब कभी पुन: गाड़ी से यात्रा करनी पड़ती है तब भी उसमें पुन:दुर्घटना का भय पूर्ववत् बना रहता है।

(*iv*) **पारिवारिक क्लेश**

दुश्चिंता के पीछे स्वस्थ पारिवारिक वातावरण का भय भी एक कारण है। माता-पिता का आपस में लड़ना पिता-पुत्र में लड़ाई का होते रहना एवं भाई-भाई में बराबर तनाव का बना रहना आदि भी दुश्चिंता के पनपने के कारण के रूप में देखे जाते हैं।

(*v*) **कठोर दण्ड**

बर्ट (1947) ने सुझाया है कि कुछ बच्चों के दुश्चिंता ग्रस्त होने के पीछे विद्यालय एवं परिवार के व्याप्त कठोर दण्ड का भय भी होता है। ऐसे बालक प्रारम्भ में अथवा विद्यालय से पलायनवादी प्रकृति रखते हैं और धीरे-धीरे अन्य कार्यों के प्रति भी उनमें पलायन की प्रवृत्ति जन्म लेती है।

(*vi*) **आन्तरिक भावनाओं का दमन**

फ्रायड के अनेक अध्ययनों से निष्कर्ष निकलता है कि ऐसे बालक जो अर्न्तमुखी व्यक्तित्व के होते हैं उनमें दुश्चिंता का विकास होता है, क्योंकि वह अपने मनोभावों को दबाकर रखते हैं। जिससे उनमें कुण्ठा एवं आत्महीनता जैसी मानसिकता का विकास हो जाता है। और वही धीरे-धीरे दुश्चिंता का कारण बन जाती है।

नोट

(*vii*) **वांछित फल की अप्राप्यता**

मॉर्गन का कथन है कि जिन लोगों को अपने वांछित फल की प्राप्ति नहीं हो पाती ऐसे लोगों में स्वत: दुश्चिंता जन्म ले लेती है। इस प्रकार की दुश्चिन्ता प्राय: धन की प्राप्ति न होने पर नौकरी न पाने पर जिस लड़की से प्यार है उसकी शादी अन्यत्र हो जाने पर आदि कारणों के चलते आ जाती है।

(*viii*) **अपराध की भावना**

मॉर्गन के कथन के परिणाम स्वरूप यह तथ्य सामने आया कि किसी व्यक्ति में अपराधी प्रवृत्ति विकसित हो जाने पर भी दुश्चिंता का जन्म हो जाता है। अपराधी प्रवृत्ति से दुश्चिंता ग्रस्त व्यक्ति ज्यों-ज्यों अपराध करता जाता है त्यों-त्यों उसमें अपराध की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है।

नोट्स

मॉर्गन ने एक महिला के बारे में अध्ययन करके बताया कि उसने अपराधी प्रवृत्ति इतनी बढ़ायी कि वह अपने बच्चे को ही मारना चाहती थी। ऐसे अनेक उदाहरण इस बात की पुष्टि करते हैं कि अपराध एवं पाप-भावना से ही दुश्चिंता का जन्म हुआ करता है।

(*ix*) **बराबर असफल होना**

प्राय: ऐसा देखा गया है कि जो बालक या व्यक्ति किसी कार्य में बराबर असफल होता जाता है उसमें एक प्रकार की कुण्ठा का आ जाना स्वाभाविक है। यही कुण्ठा धीरे-धीरे दुश्चिंता का स्थान ले लेती है। कोई छात्र जब किसी कक्षा में बार-बार असफल होगा तो वह कुण्ठा ग्रस्त हो जायेगा। यही कुण्ठा आगे चलकर दुश्चिंता में बदल सकती है।

(*x*) **अन्य कारक**

ऐसे (1952) ने दुश्चिंता के कारणों के सम्बन्ध में बताया है कि अधिक धूम्रपान, मित्रों द्वारा अपेक्षित सहायता का न मिलना, परिवार एवं समाज द्वारा तिरस्कृत किया जाना, असुरक्षा की भावना, अधिक स्वार्थ का होना, हीन भावना का होना एवं अधिक शंका की मानसिकता आदि प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में व्यक्ति को प्रभावित कर उसे दुश्चिंता ग्रस्त बना देते हैं।

27.6 दुश्चिंता की विशेषताएँ (Characteristics of Anxiety)

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने दुश्चिंता की कुछ विशेषताएँ बतायी हैं जो निम्नवत् हैं–

(1) **दिशाहीनता**

फ्रायड ने बताया कि दुश्चिंतायुक्त व्यक्ति में सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वह मानसिक रूप से किसी भी कार्य में एक निश्चित दिशा नहीं बना पाता। क्योंकि दुश्चिंता की अपने आप में एक विशेषता है कि यह स्वयं में ही अस्थिर, दिग्भ्रमित एवं आधारविहीन होती है।

(2) **आधारहीनता**

फ्रायड की यह मान्यता है कि दुश्चिंता एक आधारहीन भय है अर्थात दुश्चिंता का कोई ठोस आधार नहीं होता है। कभी-कभी दुश्चिन्तित व्यक्ति स्वयं भी यह नहीं जान पाता कि वह किस लिए दुश्चिन्तित है। फिर भी वह दुश्चिन्तित बना रहता है।

नोट

(3) **दुश्चिंता आन्तरिक होती है**

दुश्चिंता एक मानसिक उद्वेलन की स्थिति है। इसलिए यह मुख्य रूप से आन्तरिक होती है। इसमें व्यक्ति अनुभव तो करता है किन्तु यदि उसे व्यक्त करना पड़ता है तो वह ठीक-ठीक ढंग से पूरा व्यक्त नहीं कर सकता। इसके अलावा दुश्चिंता की एक और विशेषता है कि यह पूर्णरूपेण व्यक्तिगत होती है।

(4) **दुश्चिंता अकारण होती है**

दुश्चिंता का कोई ठोस आधार नहीं होता है। इसकी एक विशेषता है कि यह स्वयं आ जाती है और अकारण होती है। अथवा जो कारण होते हैं वे बहुत स्पष्ट नहीं होते।

(5) **निर्णय लेने में कठिनाई**

दुश्चिंता अकारण, आधारहीन एवं दिशाविहीन जैसी विशेषताओं से युक्त है। इसलिए दुश्चिंतायुक्त व्यक्ति में द्वन्द्व जैसी मानसिकता का उदय होना स्वाभाविक है। जिससे दुश्चिंताग्रस्त व्यक्ति यह निर्णय नहीं ले पाता कि क्या सही है और क्या गलत आदि द्वन्द्वात्मक भावनाओं से निर्णय लेने में कठिनाई होती है, जिससे व्यक्ति दुश्चिंता के पंजे में जकड़ कर रह जाता है।

(6) **दुश्चिंता अत्यधिक संवेदनशील होती है**

दुश्चिंता व्यक्ति को अधिक संवेदनशील बना देती है अर्थात दुश्चिंतायुक्त व्यक्ति थोड़ी भी मानसिक, शारीरिक एवं सामाजिक परिस्थित के बदलाव में उद्वेलन महसूस करने लगता है। फलतः यह दुश्चिंता की ही विशेषता मानी जानी चाहिए।

टास्क संवेदनशील व्यक्तियों में दुश्चिंता की भावना अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है। इस कथन के संदर्भ में अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

(7) **दुश्चिंता रूपहीन होती है**

दुश्चिंता एक अमूर्त्त चिन्तन है। फ्रायड जैसे मनोवैज्ञानिको का कथन है "वस्तुतः दुश्चिंतायुक्त व्यक्ति यह सोच नहीं पाता है कि वह किस कारण से दुश्चिंतित है। फलतः इसका कोई स्वरूप नहीं होता है।"

(8) **दुश्चिंता मानसिक उत्तेजनायुक्त होती है**

दुश्चिंता की विशेषताओं में मानसिक उत्तेजना भी है। दुश्चिंता जितनी ही अधिक होगी, मानसिक उत्तेजना उतनी ही अधिक होगी। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि मानसिक उत्तेजना ज्यों-ज्यों बढ़ती जायेगी, दुश्चिंता भी वैसे -वैसे बढ़ती जाएगी क्योंकि दुश्चिंता भी स्वयं में एक मानसिक उद्वेलन है।

(9) **बौद्धिक कुशलता की कमी**

दुश्चिंता भय, आधारहीन एवं दिवास्वप्न जो कि एक तरफ अधिक प्रेरित करते हैं जिससे दुश्चिंतायुक्त व्यक्ति अधिक मानसिक एवं शारीरिक तनाव में रहता है। इसलिए ऐसे लोगों में बौद्धिक क्षमता बढ़ सकती है, परन्तु उसमें बौद्धिक कुशलता का ह्रास मिलता है।

(10) **भविष्य की आशंकाओं से युक्त स्वप्नों की अधिकता**

कोलमैन जैसे वैज्ञानिक ने यह प्रमाणित किया है कि दुश्चिंता के कारण सोते समय ऐसे स्वप्न आते हैं जिसमें भविष्य की आशंकाएँ अपना खेल खेलती हैं। ऐसे स्वप्न विशेषकर असफलताओं एवं अपराधों से युक्त हुआ करते हैं।

नोट

(11) **अनुपयुक्तता की भावना विकसित होती है**

दुश्चिंता व्यक्ति में अपने प्रति अनुपयुक्तता की भावना पैदा करती है। यह भावना शैक्षिक, पारिवारिक, सामाजिक व अन्य किसी भी बात को लेकर हो सकती है। यह भावना आत्महीनता का द्योतक हुआ करती है।

(12) **अस्त–व्यस्तता–जनक प्रभाव**

दुश्चिंता व्यक्ति के सामान्य एवं विशिष्ट दोनों जीवन के क्षेत्रों में अनियोजित वातावरण पैदा कर देती है जैसे खान-पान, रहन-सहन, आचार विचार, अध्ययन-अध्यापन एवं जीवन के क्षेत्रों में पूर्णरूपेण अस्थिरता एवं अस्त व्यस्तता पायी जाती है।

(13) **अन्य**

उक्त दुश्चिन्ता की विशेषताओं के अलावा और भी विशेषतायें हैं। अकारण भयाक्रान्त रहना, एकाग्रता का अभाव स्वार्थ की अधिकता, शीघ्र ही बेचैनी एवं अनिच्छा जैसी भावनाओं का विकसित हो जाना भी दुश्चिंता की विशेषता है।

27.7 सारांश (Summary)

- मानव का भयभीत होना एक सामान्य सी बात है। कभी तो वह देवी-देवताओं के शाप से भयभीत एवं चिन्तित हो जाता है, तो कभी व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं से दुश्चिन्तित हो उठता है। फ्रायड (1939) मनुष्य में इड, इगो एवं सुपर इगो के बीच अन्तर्द्वन्द्व को ही दुश्चिंता का प्रमुख कारण मानता है।
- वास्तव में दुश्चिंता मानजीवन के लिए एक अभिशाप ही है, यदि वह सीमा का अतिक्रमण कर जाती है। जहाँ एक ओर अत्यल्प मात्रा में सीमित दुश्चिंता व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक बतायी गयी है, वहीं दूसरी ओर सीमा से अधिक दुश्चिंता व्यक्तित्व का विघटन कर देने वाली होती है। विशेषकर शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों एवं विद्यालयी छात्रों के व्यक्तित्व के लिए तो यह और भी घातक है।
- शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों में जो दुश्चिंताएँ जन्म लेती हैं और विकराल रूप धारण कर लेती हैं, उनके भी वही कारण हुआ करते हैं जो किसी भी व्यक्ति मे दुश्चिंता के प्रस्फुटित होने के कारण बनते हैं।

27.8 शब्दकोश (Keywords)

1. **दुश्चिंता**–बुरी चिंता
2. **दोषपूर्ण अधिगम**–सीखने में खामियाँ।

27.9 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. दुश्चिंता के प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
2. दुश्चिंता की प्रकृति पर एक नोट लिखिए।
3. दुश्चिंता के कारणों पर प्रकाश डालिए।
4. दुश्चिंता की विशेषताएँ बताइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment) नोट

1. सोलियन 2. डब्ल्यू लिसकर 3. कोलमैन 4. आर.आर. बिलियर्ड।

27.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शिक्षा मनोविज्ञान– *एस.एच. सिन्हा और रचना शर्मा, अटलांटिक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।*
2. शिक्षा मनोविज्ञान– *एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
3. मनोविज्ञान– *मानव व्यवहार का अध्ययन–ब्रजकुमार मिश्र, पी.एच.आई. लर्निंग, नई दिल्ली।*
4. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया– *ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 28: समायोजन (Adjustment)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

28.1 समायोजन क्या है? (What is Adjustment?)

28.2 कुण्ठा (Frustration)

28.3 मानसिक द्वंद्व (Mental Conflict)

28.4 मानसिक द्वन्द्व को सुलझाने एवं तनाव दूर करने के उपाय (Methods of Resolving the Conflicts and Tension Reduction)

27.5 सारांश (Summary)

27.6 शब्दकोश (Keywords)

27.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

27.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- समायोजन एवं कुण्ठा के विषय में जानकारी प्राप्त करने में।
- मानसिक द्वंद्व को समझने में।
- मानसिक द्वंद्व को सुलझाने एवं तनाव दूर करने के उपायों की जानकारी प्राप्त करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

व्यक्ति को सफल जीवन व्यतीत करने लिए अपने वातावरण और परिस्थितियों के साथ समायोजन स्थापित करना आवश्यक हो जाता है। व्यक्ति के जीवन में अनेक प्रकार की अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती रहती हैं जिनका उसे सामना करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अलग-अलग क्षमता के अनुसार समायोजन करने का प्रयत्न करते हैं। कुछ लोग प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने में सफल होते हैं और कुछ लोग हार मानकर अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठते है। इस प्रकार के व्यक्ति असन्तोष या कुण्ठा, मानसिक द्वन्द्व एवं तनाव के शिकार बने रहते हैं। ये बातें शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं। अत: यहाँ व्यक्तित्व-समायोजन सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करने के लिए समायोजन का अर्थ, कुसमायोजन, कुण्ठा, द्वन्द्व एवं तनाव का अर्थ, कारण एवं इसके निवारण के उपायों पर विचार किया जायेगा।

28.1 समायोजन क्या है? (What is Adjustment?)

नोट

समायोजन का अर्थ–समायोजन को सामंजस्य, व्यवस्थापन या अनुकूलन भी कहते हैं। समायोजन दो शब्दों को मिलाकर बना है–सम और आयोजन। सम् का अर्थ है भली-भाँति, अच्छी तरह या समान रूप से और आयोजन का अर्थ है व्यवस्था अर्थात् अच्छी तरह व्यवस्था करना। अतएव समायोजन का अर्थ हुआ सुव्यवस्था या अच्छे ढंग से परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की प्रक्रिया जिससे कि व्यक्ति की आवश्यकताएँ पूरी हो जाएँ और मानसिक द्वन्द्व न उत्पन्न होने पाये। इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अन्य प्राणियों की भाँति मनुष्य की अनेक आवश्यकताएँ होती हैं। यही आवश्यकताएँ ही व्यक्ति को लक्ष्य-प्राप्ति की ओर प्रेरित करती हैं और वह आगे बढ़ता है। जब व्यक्ति को अपने लक्ष्य की प्राप्ति सरलता से हो जाती है तो उसे संतोष का अनुभव होता है। किन्तु जब लक्ष्य प्राप्ति में उसे बाधाओं का सामना करना पड़ता है तो उसे एक अप्रिय अनुभूति होती है जिसे असंतोष, हताशा, निराशा या कुण्ठा (Frustration) कहते हैं। इसी प्रकार जब व्यक्ति को अपनी इच्छाओं और रुचियों के प्रतिकूल शक्तियों का सामना करना पड़ता है तो उसके अन्दर मानसिक द्वन्द्व (Conflict) उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार कुण्ठा और मानसिक द्वन्द्व के परिणामस्वरूप व्यक्ति में मानसिक तनाव उत्पन्न हो जाता है। तनाव के कारण व्यक्ति के मन में एक प्रकार की उथल-पुथल मच जाती है जिसे दूर करने के लिए वह बाधाओं को दूर करने का प्रयास करता है। उसका यह प्रयास यदि सृजनात्मक और परिस्थितियों के अनुकूल रहकर बाधाओं को दूर करने में सफल रहा तो वह वातावरण के साथ समायोजन स्थापित कर लेता है। वहीं व्यक्ति यदि बाधाओं को दूर करने में असमर्थ रहा और उसने अवांछनीय मार्ग को अपना लिया तो कुसमायोजन उत्पन्न हो जाता है। साधारणतया समायोजन की यह प्रक्रिया व्यक्ति के जीवन-काल में निरन्तर चलती रहती है। समायोजन का अर्थ स्पष्ट करते हुए **गेट्स एवं अन्य** विद्वानों ने लिखा है कि 'समायोजन' शब्द के दो अर्थ हैं। एक अर्थ में निरन्तर चलने वाली एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति स्वयं और पर्यावरण के बीच अधिक सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध रखने के लिए अपने व्यवहार में परिवर्तन कर देता है। दूसरे अर्थ में समायोजन एक संतुलित दशा है जिस पर पहुँचने पर हम उस व्यक्ति को सुसमायोजित कहते हैं।"

समायोजन की प्रक्रिया को अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए हमें **सुसमायोजित एवं कुसमायोजित** व्यक्तियों के लक्षणों को जान लेना आवश्यक है–

सुसमायोजित व्यक्ति के लक्षण (Characteristics of well Adjusted Person)–समायोजन की परिभाषाओं के आधार पर तथा व्यवहारों के निरीक्षण से सुसमायोजित व्यक्ति में अग्रलिखित लक्षण दिखाई पड़ते हैं–

1. सुसमायोजित व्यक्ति पर्यावरण और परिस्थितियों का ज्ञान और नियंत्रण रखने वाला तथा उन्हीं के अनुकूल आचरण करने वाला होता है।
2. वह स्वयं तथा पर्यावरण के बीच संतुलन बनाये रखता है।
3. वह अपनी आवश्यकता एवं इच्छा के अनुसार पर्यावरण एवं वस्तुओं का लाभ उठाता है।
4. अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए समाज के अन्य लोगों को बाधा नहीं पहुँचाता है।
5. साधारण परिस्थितियों में भी सन्तुष्ट और सुखी रहकर अपनी कार्य-कुशलता को बनाये रखता है।
6. सामाजिकता की भावना से युक्त, आदर्श चरित्र वाला, संवेगात्मक रूप से संतुलित और उत्तरदायित्व स्वीकार करने वाला होता है।
7. वह स्पष्ट उद्देश्य वाला तथा साहसपूर्ण व ठीक ढंग से कठिनाइयों तथा समस्याओं का सामना करने वाला होता है।

नोट

इसी प्रकार **गेट्स एवं अन्य** विद्वानों ने लिखा है कि "संक्षेप में, सुसमायोजित व्यक्ति वह है जिसकी आवश्यकताएँ एवं तृप्ति सामाजिक दृष्टिकोण तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की स्वीकृति के साथ संगठित हों।" (In short, the well adjusted person is one, whose needs and satisfaction in life are integrated with a sense of social feeling and an acceptance of social responsibility.)

कुसमायोजित व्यक्ति के लक्षण (Characteristics of Malajusted Person)–कुसमायोजित व्यक्ति को निम्नलिखित लक्षणों द्वारा पहचाना जा सकता है–

1. कुसमायोजित व्यक्ति अपने को पर्यावरण के अनुकूल बनाने में असमर्थ होता है।
2. वह अनिश्चित मन वाला, अस्थिर बुद्धि वाला, संवेगात्मक रूप से असंतुलित, अनिर्दिष्ट उद्देश्य वाला, घृणा, द्वेष और बदले की भावना वाला होता है।
3. वह असामाजिक, स्वार्थी और सर्वथा दु:खी होता है।
4. वह साधारण-सी बाधा एवं समस्या उत्पन्न होने पर मानसिक संतुलन खो देने वाला होता है।
5. स्नायु रोगों से पीड़ित, मानसिक द्वन्द्व एवं कुण्ठा से ग्रस्त तथा तनावयुक्त होता है।

उपर्युक्त लक्षणों से हमने देखा है कि कुसमायोजित व्यक्ति मानसिक द्वन्द्व एवं कुण्ठा से युक्त होता है। वास्तव में यह दोनों ही व्यक्ति के समायोजन में अधिक बाधक होते हैं। अत: संक्षेप में, इन दोनों का अर्थ, कारण और इनके दुष्परिणामों को समझ लेना श्रेयस्कर है।

टास्क सुसमायोजित एवं कुसमायोजित व्यक्ति का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

28.2 कुण्ठा (Frustration)

कुण्ठा का अर्थ–व्यक्ति दिन में प्रति क्षण प्राय: छोटी-छोटी कठिनाइयों और बाधाओं को सहन करता रहता है। उनमें से अधिकांश ऐसी होती है जिन्हें आसानी से सुलझाया जा सकता है। परन्तु कभी-कभी ऐसी बाधाएँ या अवरोध उत्पन्न हो जाते हैं जो व्यक्ति की आवश्यकताओं और प्रेरकों की पूर्ति में हस्तक्षेप करते हैं अर्थात् वह लक्ष्य तक पहुँचने में रुकावट डालते हैं। व्यक्ति इन बाधाओं या अवरोधों को दूर करने का भरसक प्रयत्न करता है। जब वह बाधाओं को दूर करके अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सफल हो जाता है तो उसे एक प्रकार की खुशी और संतोष की अनुभूति होती है, किन्तु जब अनेक प्रयास करने के बावजूद भी वह बाधाओं या अवरोधों को दूर नहीं कर पाता और लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता तो उसे दु:ख होता है और एक प्रकार की विफलता या निराशा की अनुभूति होती है जिसे मनोवैज्ञानिक भाषा में कुण्ठा कहते हैं। कुण्ठा को भग्नाशा के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि–"कुण्ठा व्यक्ति की वह मानसिक स्थिति और भावात्मक दशा है जो उसे अनेक अवरोध और परस्पर विरोधी विकल्पों का सामना करने पर प्राप्त होती है।"

क्या आप जानते हैं एक विद्वान के अनुसार–"कुण्ठा वह तीव्र अनुभूति है जो व्यक्ति को असफल होने पर या असंतुष्ट होने पर होती है।"

नोट

कुण्ठा के कारण–भग्नाशा के अनेक कारण एवं स्रोत हो सकते हैं जिनमें से कुछ कारण निम्नलिखित हैं–

1. **भौमिक कारण**–वातावरण में पाये जाने वाले अनेक भौतिक या प्राकृतिक तत्व जहाँ एक ओर व्यक्ति की आवश्यकताओं और प्रेरकों की पूर्ति में सहायक होते हैं, वही दूसरी ओर अनेक भौतिक तत्व, जैसे–अकाल, बाढ़, अनावृष्टि, भूचाल आदि आवश्यकताओं और प्रेरकों की पूर्ति में बाधक सिद्ध होते हैं जिससे व्यक्ति के मन में घोर निराशा और असंतोष उत्पन्न होता है।
2. **व्यक्तिगत कारण**–कुछ व्यक्ति अथवा बालक अपने मानसिक, संवेगात्मक या शारीरिक दोषों, जैसे–बुद्धि की कमी, भय, हीनता की भावना, अकुशलता, अंधापन, बहरापन, लंगड़ापन, मोटापा आदि के कारण अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति में असफल रह जाते हैं। इससे भी मन में असंतोष और कुण्ठा की भावना पैदा होती है।
3. **सामाजिक कारण**–समाज के कठोर नियम, रीति-रिवाज, परम्पराएँ, जाति-प्रजाति, धर्म और कानून भी व्यक्ति की स्वतंत्र इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधक होते हैं जिनसे व्यक्ति को निराशा और असंतोष का सामना करना पड़ता है और वह अपने को वातावरण के साथ समायोजित कर पाने में कठिनाई का अनुभव करता है।
4. **आर्थिक कारण**–कुण्ठा का एक प्रमुख कारण आर्थिक कारक भी है। आर्थिक परिस्थिति अच्छी न होने के कारण व्यक्ति अपनी बहुत-सी इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ होता है और अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता।
5. **व्यक्ति का नैतिक मानक**–अपने जीवन में कुछ नैतिक आदर्श जैसे अहिंसा, चोरी न करना, झूठ बोलना आदि होते हैं जिससे कि वह अपनी कुछ इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाता। उदाहरण के लिए एक परीक्षार्थी का लक्ष्य परीक्षा पास करना है, किन्तु कठिन प्रश्न-पत्र उसके मार्ग में एक अवरोध के रूप में उपस्थित होता है। इस अवरोध को दूर करने का एक मार्ग नकल करना ढूँढता है, किन्तु उसी समय उसके मन में यह आता है कि यह एक अपराध और चोरी है तो नैतिकता की दृष्टि से अनुचित है। वह नकल करने की भावना का त्याग अपने इस नैतिक आदर्श के कारण करता है, किन्तु प्रश्न हल न कर पाने से परीक्षा में असफलता के कारण उसे असंतोष और घोर निराशा होती है।
6. **वर्तमान परिस्थितियाँ और दशाएँ**–सामाजिक महँगाई, निर्धनता, बेकारी, रहने का अनुपयुक्त स्थान, घर का अशांत वातावरण आदि के कारण बालक की बहुत-सी आवश्यकताएँ एवं इच्छाएँ अपूर्ण रह जाती हैं, इससे उसे निराशा होती है। उदाहरण के लिए हाईस्कूल पास करने के बाद एक बालक उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहता है, किन्तु निर्धनता के कारण या उससे क्षेत्र में उच्च विद्यालय के अभाव में उसकी यह इच्छा या उद्देश्य अपूर्ण रह जाता है और उसे असंतोष और कुण्ठा की अनुभूति होती है।
7. **असंगत आवश्यकताएँ या लक्ष्य**–बहुत-सी विरोधी आवश्यकताओं या लक्ष्य के कारण भी व्यक्ति में मानसिक द्वन्द्व उत्पन्न होता है जिसके कारण उसे निराशा का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए एक बालक विद्यालय जाना भी आवश्यक समझता है और घर में बीमार पिता की सेवा के लिए घर पर रुकना भी चाहता है, किन्तु इन दोनों लक्ष्यों में से एक ही को प्राप्त करना सम्भव है, अतः दूसरा लक्ष्य न पूरा होने पर उसे विफलता अथवा निराशा का सामना करना पड़ता है।

कुण्ठा के दुष्प्रभाव–व्यक्ति के विकास एंव वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करने में कुण्ठा का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके कुछ दुष्परिणाम निम्नलिखित हैं–

1. व्यक्ति के विकास एवं समायोजन में बाधा।
2. व्यक्ति की भावात्मक दशा अस्थिर हो जाती है जिससे वह घबराया हुआ एवं असंतुलित-सा दिखाई पड़ता है।

नोट

3. असाधारण व्यक्तित्व-प्रकाशन।
4. असामाजिकता और विमुखता।
5. मानसिक तनाव में वृद्धि और मानसिक रुग्णता।

28.3 मानसिक द्वन्द्व (Mental Conflict)

मानसिक द्वन्द्व का अर्थ–व्यक्ति की अनेक इच्छाएँ, आवश्यकताएँ और रुचियाँ होती है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि उसकी समस्त इच्छाएँ व आवश्यकताएँ पूरी ही हो जाएँ। पर्यावरण में उसे कुछ विरोधी शक्तियों का सामना करना पड़ता है और उसके मन में एक प्रकार का संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार जब व्यक्ति को दो बिल्कुल विरोधी वस्तुओं में से एक का चुनाव करना पड़ता है तो भी उसे संघर्ष का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए एक विद्यार्थी जिसकी बी.ए. फाइनल की परीक्षा अगले सप्ताह शुरू होने वाली है, उसको उसी सप्ताह में नौकरी ज्वाइन करने के लिए नियुक्ति-पत्र मिलता है। ऐसी स्थिति में वह परीक्षा से भी मोह करता है और नौकरी से भी, किन्तु किस तरफ जाये, यह निर्णय कर पाने में कठिनाई का अनुभव करता है। उसके मन में एक प्रकार की उथल-पुथल मच जाती है–वह क्या करे? वह जिस दशा में पड़ जाता है उसे ही मनोवैज्ञानिक भाषा में मानसिक द्वन्द्व या संघर्ष कहते हैं।

क्रो एवं **क्रो** (L.D. Crow and A. Crow) के अनुसार–"द्वन्द्व या संघर्ष उस समय उत्पन्न होते हैं, जब एक व्यक्ति को पर्यावरण की उन शक्तियों का सामना करना पड़ता है जो उसकी स्वयं की रुचियों और इच्छाओं के विपरीत कार्य करती है।" (Conflict arises when an individual is faced with forces in his environment that act in opposition to his own interest and desires.)

मानसिक द्वन्द्व का अर्थ स्पष्ट करते हुए फ्रायड ने लिखा है "इदम्, अहम् और परम अहम् के बीच सामंजस्य का अभाव होने से मानसिक द्वन्द्व होता है।" (Mental conflict is caused by the lack of adjustment between Id, Ego and Supper ego.)

मानसिक द्वन्द्व के कारण– मानसिक द्वन्द्व के कारणों की कोई निश्चित सूची नहीं प्रस्तुत की जा सकती। इसके अनेक कारण हो सकते हैं, किन्तु फिर भी इसके निम्नलिखित कारण प्रमुख हैं–

1. जैविकीय और भौतिक कारण–इसके अन्तर्गत भौतिक तत्व और जैविक इच्छाएँ, जैसे–भोजन की आवश्यकता, कामेच्छा आदि हैं और शारीरिक दशाएँ भी इसी के अन्तर्गत आती हैं जो मानसिक द्वन्द्व को उत्पन्न करती हैं।

2. संवेगात्मक कारण–इच्छाओं की तृप्ति या अतृष्टि, प्रसन्नता, दु:ख, काम और भावना-ग्रथियाँ आदि भी मानसिक द्वन्द्व उत्पन्न करते हैं।

3. सामाजिक कारण–समाज के नियम, प्रथाएँ, रीति-रिवाज, नैतिक आदर्श, आचरण के प्रतिमान, जाति-प्रजाति, विचार और धर्म आदि के कारण व्यक्ति को मानसिक द्वन्द्व का सामना करना पड़ता है।

4. आर्थिक कारण–आर्थिक परिस्थिति अच्छी होने के कारण भी व्यक्ति को अपनी इच्छाओं की पूर्ति तथा उपयुक्त मार्ग में चुनाव में कदम-कदम पर मानसिक द्वन्द्व का सामना करना पड़ता है।

मानसिक द्वन्द्व के दुष्प्रभाव–मानसिक द्वन्द्व के कारण व्यक्ति के सामान्य विकास तथा पर्यावरण के साथ समायोजन स्थापित करने में अनेक बाधाएँ आती हैं और उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व कुप्रभावित हो जाता है। इसके कुछ प्रमुख दुष्प्रभाव निम्नलिखित हैं–

1. असामान्य मानसिक क्रियाएँ–मानसिक द्वन्द्व की दशा में व्यक्ति की समस्त मानसिक प्रक्रियाएँ प्रभावित होती हैं। उसमें विस्मरण की मात्रा अधिक हो जाती है, स्वप्न अधिक देखने लगता है और प्रत्यक्षीकरण में कठिनाई का अनुभव करता है।

नोट

2. असामान्य-संवेग प्रदर्शन–व्यक्ति में प्रसन्नता, दु:ख, हास्य, उत्साहहीनता, उदासी आदि बिल्कुल असाधारण रूप से परिलक्षित होते हैं।

3. असामाजिक व्यवहार–एकान्तप्रिय, समाज-विमुखता और अन्तर्मुखी (Introversion) व्यवहार दिखलाई पड़ता है।

4. अपराधी प्रवृत्तियाँ–मानसिक द्वन्द्व की दशा में व्यक्ति का मानसिक सन्तुलन अस्त-व्यस्त हो जाता है। उसे भले-बुरे का ज्ञान नहीं रह जाता है और वह सामाजिक और वैधानिक अपराध की ओर प्रवृत्त हो जाता है।

5. मानसिक रुग्णता–मानसिक द्वन्द्व के दुष्प्रभाव से व्यक्ति को अनेक स्नायुविक रोग हो जाते हैं एवं मानसिक तनाव बना रहता है।

उपर्युक्त कुण्ठा एवं मानसिक द्वन्द्व के दुष्प्रभावों से व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रभावित होता है और फिर उसे अपने पर्यावरण के साथ समायोजन स्थापित कर पाने में कठिनाई होती है।

28.4 मानसिक द्वन्द्व को सुलझाने एवं तनावों को दूर करने के उपाय (Methods of Resolving the Conflicts and Tension Reduction)

संवेगात्मक उथल-पुथल, तीव्र असंतोष एवं मानसिक संघर्ष या तनाव की प्रचण्डता के फलस्वरूप व्यक्ति का मानसिक संतुलन बिगड़ने लगता है। ऐसी दशा में इन कष्टदायी अनुभूतियों से बचने के लिए व्यक्ति अचेतन रूप से कुछ सुरक्षा प्रक्रियाओं का सहारा लेता है जिनका उल्लेख आगे अप्रत्यक्ष उपायों के अन्तर्गत किया जा रहा है। **मनोवैज्ञानिक कैमरन, शेफर एवं शोबेन** ने समायोजन की युक्तियों को दो प्रकार का बताया है–रक्षात्मक युक्तियाँ और पलायन युक्तियाँ। रक्षात्मक युक्तियों का मुख्य कार्य व्यक्ति के अहम् की रक्षा करना है। पलायन युक्तियों का मुख्य कार्य व्यक्ति को तनावपूर्ण स्थिति से हटाकर उसे व्यक्तिगत समायोजन में सहायता प्रदान करना है। यह व्यक्तिगत समायोजन व्यक्ति की दृष्टि से उपयुक्त होता है, किन्तु सामाजिक दृष्टि से नहीं, क्योंकि व्यक्ति तभी सुसमायोजित माना जाता है, जबकि उसका व्यवहार सामाजिक मानदण्ड के अनुकूल होता है। यहाँ हम रक्षात्मक युक्तियों द्वारा समायोजन किस प्रकार होता है इसका वर्णन करेंगे। मनोवैज्ञानिक **कैमरन** ने निम्नलिखित पाँच रक्षात्मक युक्तियों का वर्णन किया है।

1. अवधान प्राप्ति (Attention Getting)
2. तादात्मीकरण (Identification)
3. प्रतिपूर्ति (Compensation)
4. संयुक्तीकरण या औचित्य स्थापन (Rationalization)
5. प्रक्षेपण (Projection)

सुविधा की दृष्टि से सम्पूर्ण उपायों को निम्नलिखित चार भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(क) प्रत्यक्ष उपाय (Direct Methods)

(ख) अप्रत्यक्ष उपाय (Indirect Methods)

(ग) क्षतिपूरक विधियाँ (Compensatory Methods)

(घ) आक्रामक उपाय (Aggressive Methods)

नोट

अब प्रत्येक का अलग-अलग विस्तार से वर्णन निम्नलिखित है–

(क) प्रत्यक्ष उपाय– तनाव को कम करने के प्रत्यक्ष उपाय वे हैं जिनमें व्यक्ति चेतनावस्था में अपने तनाव को कम करने के लिए कुछ प्रयत्न करता है। इन उपायों को करने में वह अपनी तर्क-शक्ति का सहारा लेता है। कुछ प्रत्यक्ष उपाय निम्नलिखित हैं–

1. बाधाओं को नष्ट या दूर करना–व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति में या लक्ष्य तक पहुँचने में जो अवरोध मार्ग में आते हैं, उन्हें वह चेतन रूप से दूर करने या पूर्ण रूपेण नष्ट करने का प्रयास करता है। इस प्रकार बाधाओं को दूर कर देने या नष्ट कर देने से व्यक्ति अपने उद्देश्य पूर्ति में सफल हो सकता है और उसका मानसिक तनाव दूर हो जाता है। उदाहरण के लिए जब बालक अपनी मंद लेखन गति के कारण परीक्षा में पूरे प्रश्न नहीं कर पाता और बार-बार उसे असफलता मिलती है जिससे उसका मानसिक तनाव दिन-प्रतिदिन बढ़ाता जाता है। उसकी सफलता में बाधा मंद लेखन गति है। अत: वह अधिक अभ्यास द्वारा इस बाधा को दूर करके अपनी गति बढ़ाता है और सफलता प्राप्त करता है। इससे उसका मानसिक तनाव दूर हो जाता है। यदि व्यक्ति के दैनिक जीवन का भली-भाँति निरीक्षण किया जाये तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि वह इस विधि का अधिक प्रयोग करता है।

नोट्स

हम आवश्यकतानुसार जब किसी कार्य को सफलतापूर्वक अंजाम देने में असमर्थ रहते हैं तो प्रयास एवं अभ्यास के द्वारा उस कार्य को करने में सफलता प्राप्त करते हैं। इस प्रकार हम इस उपाय द्वारा मानसिक तनाव दूर करते हैं।

2. अन्य मार्ग खोजना–जब व्यक्ति अपने उद्देश्य-पूर्ति के मार्ग में आई हुई बाधाओं को नष्ट या दूर नहीं कर पाता है तो वह दूसरा रास्ता ढूँढ़ निकालता है। दूसरा रास्ता ढूँढ़ लेने पर जब वह अपने उद्देश्य को पूरा कर लेता है तो उसका मानसिक तनाव अपने आप दूर हो जाता है।

3. अवधान-प्राप्ति की युक्ति (Attention Getting Mechanism)– इसका प्रयोग बालक जीवन के आरम्भ से ही करने लगता है।

शेफर और शोबेन के अनुसार–"अवधान प्राप्ति एक ऐसा कार्य है जो एक व्यक्ति को दूसरे लोगों के व्यवहार का केन्द्र बनाता है।" (Attention-getting is an act that makes person the focus of other people's behaviour.)

जब एक व्यक्ति अपने को उपेक्षित अनुभव करता है तब वह इस युक्ति का प्रयोग दूसरे व्यक्तियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए करता है। इस विधि द्वारा वह चाहता है कि दूसरे उसकी ओर ध्यान दें। व्यक्ति की यह मनोवैज्ञानिक आवश्यकता होती है कि दूसरों द्वारा उसे अनुमोदन एवं मान्यता प्राप्त हो। प्राय: जिन बालकों को माता-पिता या अभिभावकों से समुचित स्नेह नहीं मिलता या समाज में वे तिरस्कृत समझे जाते हैं, वे ही इस युक्ति का प्रयोग करते हैं। यह युक्ति व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं या दोषों में दिखाई देती है जिससे सामाजिक समायोजन में कठिनाई होती है। अत: यह युक्ति अधिक दोषपूर्ण है।

4. अन्य लक्ष्यों का प्रतिस्थापन–जब व्यक्ति अपने उपाय और हर सम्भव प्रयास करने पर भी अपने मूल लक्ष्य तक पहुँचने में असमर्थ रह जाता है तो वह उसी लक्ष्य से लगभग मिलता-जुलता दूसरा लक्ष्य अपनाता है जो आसानी से पूरा हो सके। इस प्रतिस्थापित लक्ष्य की पूर्ति से उसका मानसिक तनाव कुछ कम हो जाता है। उदाहरण के लिए व्यक्ति विश्वविद्यालय में प्रोफेसर होने की कामना रखता है, किन्तु कुछ बाधाओं के कारण यदि वह प्रोफेसर नहीं हो पाता तो कॉलेज में लेक्चरार होकर ही अपनी उक्त कामना की पूर्ति करता है। इससे उसे कुछ मानसिक शन्ति मिलती है और तनाव कम हो जाता है।

नोट

5. विश्लेषण एवं निर्णय–जब व्यक्ति के सामने एक से अधिक विरोधी इच्छाएँ या लक्ष्य होते हैं तो उसके अन्दर मानसिक द्वन्द्व उत्पन्न होता है और मानसिक तनाव बढ़ता है। व्यक्ति यह निर्णय नहीं कर पाता कि किस लक्ष्य को प्राप्त करे और किसको छोड़ दे या कोई ऐसा मध्य का रास्ता अपनाये कि दोनों लक्ष्य प्राप्त हों। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर व्यक्ति दोनों लक्ष्यों के हर पहलू का भली-भाँति विश्लेषण करता है और जो उसे अधिक उचित समझ पड़ता है, उसी के पक्ष में निर्णय लेता है। ऐसा करते समय वह अपने पूर्व अनुभवों की सहायता लेता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान की पूर्ति करें–

1. व्यक्ति परिस्थितियों के अनुकूल रहकर बाधाओं को दूर करने में सफल रहता है तो वातावरण के साथ ..... स्थापित कर लेता है।
2. कुण्ठा वह तीव्र अनुभूति है जो व्यक्ति को ..... होने पर या असंतुष्ट होने पर होती है।
3. जब व्यक्ति को दो विरोधी वस्तुओं में किसी एक का चयन करना पड़ता है और वह द्विधा में पड़ जाता है तो इसे मनोवैज्ञानिक भाषा में ..... कहते हैं।
4. जब व्यक्ति परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करने में असमर्थ रहता है तो मनोवैज्ञानिक भाषा में इसे ..... कहते हैं।

(ख) अप्रत्यक्ष उपाय–तनाव को कम करने के अप्रत्यक्ष उपाय वे हैं, जिन्हें व्यक्ति अचेतन रूप में अपनाता है तनाव से उत्पन्न मानसिक पीड़ा अथवा सुख अनुभूतियों से बचने के लिए इन उपायों को **सुरक्षा युक्तियाँ** (Defence Mechanisms) कहा जाता है। ये सुरक्षा युक्तियाँ अचेतन मन के द्वारा सन्तोषजनक समंजन (adjustment) प्राप्त करने तथा अपने मानसिक द्वन्द्व को दूर करने का प्रयत्न हैं। व्यक्तित्व का समायोजन विभिन्न प्रकार से किया जाता है। रक्षात्मक युक्तियों द्वारा अन्तर्द्वन्द्व से उत्पन्न मानसिक तनाव कम हो जाते हैं। नीचे कुछ महत्त्वपूर्ण रक्षात्मक युक्तियों का वर्णन किया जा रहा है, जो तनाव को कम करके समायोजन में सहायक होती हैं–

1. शोधन (Sublimation)–शोधन अचेतन मन की वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके अन्दर व्यक्ति की मूल-प्रवृत्यात्मक शक्ति या संवेगात्मक शक्ति, पाशविक आवश्यकताएँ या इच्छाएँ आदि को ऐसे कृत्रिम पक्ष की ओर मोड़ दिया जाता है, जिसे समाज की स्वीकृति प्राप्त है। उदाहरणार्थ व्यक्ति की काम-प्रवृत्ति, कलात्मक वृत्तियों की रचना, संगीत, धर्म और दर्शन की ओर मुड़ जाती है। इससे मूल प्रवृत्तियों का शोधन हो जाता है। इस विचार के समर्थक **फ्रायड** महोदय हैं।

2. पलायन (Withrawal)–प्राय: व्यक्ति दु:खद या तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों से अपने को अलग कर लेता है या पीछे हट जाता है। ऐसे व्यक्ति को पलायनवादी कहा जाता है। ये व्यक्ति किसी को कष्ट नहीं पहुँचाते, किन्तु जब इनका पलायन असाधारण रूप से असामाजिक हो जाता है तो वे समायोजित होने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। उदाहरण के लिए कक्षा में जब कोई बालक अपने सहपाठियों द्वारा चिढ़ाया या अपमानित किया जाता है तो हो सकता है कि वह इन सहपाठियों से अपने को अलग रखने लगे। किन्तु इस बालक का व्यवहार यदि असाधारण हो जाता है तो आगे चलकर उसे समायोजन में परेशानी अवश्य ही होगी। अत: पलायन भी एक निश्चित सीमा के अन्दर तक ही होना चाहिए। पलायन निम्नलिखित दो अन्य रूपों में दिखलाई पड़ता है–

***(i)* प्रतिगमन** (Regression)–मूलत: प्रतिगमन जीवन में समझ न आने वाली समस्या की प्रतिक्रिया है जो बाल्यावस्था की प्रतिक्रिया के आधार पर होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब व्यक्ति के अन्दर असंतोष के कारण तनाव उत्पन्न होता है जो वह उस दु:खद अनुभूति से मुक्ति पाने के लिए अपने पूर्व अनुभवों या प्रतिक्रियाओं की ओर लौट जाता है। उदाहरण के लिए एक प्रौढ़ व्यक्ति बच्चों जैसा व्यवहार रोना, चिल्लाना, पैर पटकना, मुँह बनाना, तुतलाकर बोलना आदि शुरू कर देता है।

नोट

***(ii)* दिवा-स्वप्न** (Day-Dreaming)–दिवा-स्वप्न वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने को वर्तमान दु:खद अनुभूतियों से हटाकर कल्पना-जगत में विचरण करने लगता है। साधारण बोलचाल की भाषा में इसे हवाई महल बनाना भी कहते हैं। दिवा-स्वप्न के द्वारा व्यक्ति अपनी असफलताओं को सफलता के रूप में देखने की कल्पना करके कुछ समय के लिए संतोष प्राप्त करना चाहता है और इस प्रकार अपने मानसिक तनाव को कुछ कम करता है। उदाहरण के लिए परीक्षा में बार-बार फेल होने वाला बालक कल्पना-जगत में अपने को अच्छी श्रेणी में पास अथवा उच्च पद पर नियुक्त एक अधिकारी के रूप में देखा सकता है। दिवा-स्वप्न में व्यक्ति अपने को कभी विजयनायक तो कभी पराजित नायक के रूप में अनुभव करता है। व्यक्ति को इससे अस्थायी रूप से आनन्द की प्राप्ति होती है। किन्तु दिवा-स्वप्न की अधिकता से समायोजन में कठिनाई भी आ सकती है।

3. तादात्म्य स्थापित करना (Identification)–तादात्म्य स्थापित करना समायोजन की एक साधारण अवस्था है। यह प्रवृत्ति लगभग सभी व्यक्तियों में पाई जाती है। जब किसी क्षेत्र में असफल या गुणहीन होता है तो वह किसी अन्य सफल एवं गुणशील व्यक्ति के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है अर्थात् उसके गुणों एवं कृत्यों को अपने में देखने लगता है। उदाहरण के लिए मोहन एक बहुत मंद बुद्धि तथा खेलकूद में कमजोर लड़का है, किन्तु उसके पिताजी कालेज में प्रोफेसर हैं जो कि अपने विद्यार्थी जीवन में सदा उच्च श्रेणी से पास होते रहे हैं और अच्छे खिलाड़ी रहे हैं, तो वह अपने मित्रों के बीच अपनी कमजोरी के कारण उत्पन्न हीनता की भावना को कम करने के लिए अपना परिचय एक विद्वान प्रोफेसर के बेटे के रूप में देता है न कि अपने व्यक्तिगत गुणों के आधार पर। तादात्म्य द्वारा व्यक्तिगत भाव कम हो जाते हैं और हीनता की भावना दूर हो जाती है। हीनता की भावना दूर करने एवं तनावों को कम करने तक तो तादात्म्य स्थापित करने की प्रवृत्ति उचित है, किन्तु जहाँ इसके द्वारा सामाजिक व्यवहारों पर प्रभाव पड़ता है, वहाँ यह हानिकारक है।

4. आश्रित होना (Becoming Dependent)–जब व्यक्ति हर सम्भव प्रयास करने के बावजूद भी लगातार असफल होता रहता है तो वह अपनी समस्या को सुलझाने का उत्तरदायित्व किसी सबल या अधिक बुद्धिमान को सौंप देता है और उसके सुझावों, निर्देशों और आज्ञाओं का पालन करता है। इस उपाय में उसका मानसिक तनाव तो दूर होता है साथ ही साथ दोनों के सम्मिलित प्रयास से समस्याओं के हल करने में बड़ी सहायता मिलती है और आश्रित व्यक्ति का बहुत हित होता है।

5. औचित्य-स्थापना (Rationalization)–औचित्य-स्थापना की प्रक्रिया को समझने के लिए यदि हम प्रचलित कहावत 'अंगूर खट्टे हैं' के संदर्भ में अर्थ करें तो अधिक उपयुक्त होगा। जब व्यक्ति किसी क्षेत्र में असफल होता है तो वास्तविक कारण की अपेक्षा ऐसे कारण ढूँढ़ निकालता है जो कम दु:खद होते हैं। उदाहरणार्थ विद्यालय देर से पहुँचने पर अपने मानसिक तनाव को दूर करने का प्रयास करता है।

6. दमन (Repression)–व्यक्ति अपने मानसिक तनाव को कम करने के लिए दु:खद अनुभूतियों को भूल जाना चाहता है। इसी प्रकार वह अपना असामाजिक रूप लिए हुए मूल इच्छाओं और कामनाओं का जो संवेगात्मक प्रकटीकारण चाहती हैं, दमन कर देता है। दमन का तात्पर्य है–इच्छाओं तथा कामनाओं को स्वतंत्र रूप में प्रकट न होने देना। ऐसा माना जाता है कि जन्मजात प्रेरकों पर आधारित व्यवहार प्राय: समाज विरोधी हुआ करते हैं। उनमें नैतिकता और आदर्श के विरोधी तत्व रहते हैं। समाज कभी भी ऐसे व्यवहारों को स्वतंत्र रूप में प्रकटीकरण को मान्यता नहीं देता। उस पर कुछ सीमा तक समाज का अंकुश रहता है। उदाहरण के लिए यदि व्यक्ति की काम-प्रवृत्ति के स्वतंत्र प्रकटीकरण पर समाज का कोई नियंत्रण न रहे तो व्यक्ति अनेक प्रकार के व्यभिचार कर सकता है और उस समय समाज का कोई आदर्श नहीं रह जायेगा। अत: व्यक्ति चाहते हुए भी समाज-विरोधी इच्छाओं का दमन कर देता है। किन्तु व्यवस्थापन का यह ढंग अच्छा नहीं है, क्योंकि इसके कारण व्यक्ति में अन्य व्यावहारिक दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

7. प्रक्षेपण (Projection)–प्राय: ऐसा देखा जाता है कि व्यक्ति अपनी असफलता का दोष वातावरण के अन्य पदार्थों का व्यक्तियों के सिर पर डाल देते हैं यहाँ पर 'नाच न जाने आँगन टेढ़ा' वाली कहावत चरितार्थ होती है।

नोट

उदाहरण के लिए किसी पद पर नियुक्ति के लिए आयोग्य ठहराये जाने पर और न चुने जाने पर व्यक्ति यह कहकर संतोष करता है कि किसी से कम योग्य नहीं था, किन्तु चयन समिति (Selection Committee) ने पक्षपात किया। इसी प्रकार परीक्षा में फेल होने वाले परीक्षार्थी सारा दोष प्रश्न-पत्र पर और परीक्षक पर डाल देते हैं।

8. विपरीत रचना (Reversal Formation)–विपरीत रचना का कार्य मानसिक द्वन्द्व को दूर करना है। यह अचेतन मन की वह किया है जिसमें कि व्यक्तित्व में चेतन रूप से ऐसे व्यवहारों, रुचियों, विचारों और भावनाओं का निमार्ण कर लेता है जो आंशिक रूपों में दमन की हुई इच्छाओं के विपरीत होती है। उदाहरण के लिए व्यक्ति अचेतन मन में निहित तीव्र काम प्रवृत्ति को छिपाने के लिए अहम् के द्वारा नैतिक आदर्शों की दुहाई देते हुए यौनाचार से तीव्र घृणा प्रदर्शित करता है।

(ग) प्रतिपूरक विधियाँ (Compensatory Methods)–प्राय: व्यक्ति किसी क्षेत्र में असफल होता है अथवा अपने अन्दर कमी का अनुभव करता है तो वह किसी दूसरे क्षेत्र में कुशलता प्राप्त करके या उसी क्षेत्र में अधिक परिश्रम करके उस कमी को पूरा करना चाहता है। इससे उसका मानसिक तनाव कम हो जाता है। **क्रो और क्रो** ने क्षतिपूर्ति की परिभाषा देते हुए लिखा है कि–"यह अतिरिक्त शक्ति का गुणों के विकास में प्रयोग करना है, जिससे कि वास्तविक या काल्पनिक असफलता के कारण उत्पन्न तनावों को कम किया जा सके।" (Compensation may be defined as the utilization of extra energy in the development of a trait or traits to alleviate the tension caused by a real or imagined defect.)

क्षतिपूर्ति व्यक्ति **प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष** दोनों प्रकार से करता है। क्षतिपूर्ति का प्रत्यक्ष ढंग वह है जिसमें व्यक्ति परिश्रम करके उसी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करता है जिसमें कि वह कमी अनुभव करता है। उदाहरण के लिए पढ़ाई-लिखाई में कमजोर बालक अधिक मेहनत करके और रात-दिन पढ़ाई करके अच्छा विद्यार्थी बन जाता है और वह अपनी क्षतिपूर्ति कर लेता है। क्षतिपूर्ति का **अप्रत्यक्ष** ढंग वह है–जिसमें एक क्षेत्र में असफलता प्राप्त करने पर किसी दूसरे क्षेत्र में कुशल एवं प्रवीण होकर सफलता प्राप्त करता है। इस प्रकर उसकी हीनता की भावना जो पहले क्षेत्र में असफलता के कारण उत्पन्न हुई थी दूर हो जाती है और उसका मानसिक तनाव कम हो जाता है। उदाहरण के लिए पढ़ाई-लिखाई में कमजोर बालक अच्छा खिलाड़ी, वक्ता या कलाकार बनकर अपनी क्षतिपूर्ति करने का प्रयास करता है। व्यावहारिक जीवन से अन्य क्षेत्रों में क्षतिपूर्ति करते हुए प्राय: सभी व्यक्ति किसी-न-किसी रूप से पाये जाते है। छोटे कद के लोगों का ऊँची एड़ी की सैंडिल या जूते पहनना, कम सुन्दर लोगों का अधिक बनाव शृंगार करना और तड़क-भड़क के कपड़े पहनना आदि क्षतिपूरक ढंग ही हैं। यहाँ पर पाठकों के मन में शंका उत्पन्न हो सकती है कि स्वरूपवान् व्यक्ति भी अधिक बनाव-शृंगार करते हैं और तड़क-भड़क की पोशाकें पहनते हैं, तो वे कौन-सी क्षतिपूर्ति करते हैं। यहाँ पर समाधान रूप में यह कहा जा सकता है कि दूसरों की निगाहों में भले ही वे स्वरूपवान हों किन्तु अपनी स्वयं की दृष्टि में वे अपने को अवश्य ही किसी-न-किसी से कम रूपवान समझते हैं, अत: उस कमी को पूरा करने और अधिक स्वरूपवान दिखाई पड़ने के लिए ही वे ऐसा करते हैं। किन्तु यह निर्विवाद है कि कम स्वरूपवान व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) अधिक स्वरूपवान व्यक्ति की अपेक्षा अधिक बनाव-शृंगार और फैशन की ओर झुकते हैं।

(घ) आक्रामक उपाय (Aggressive Methods)–आक्रामक उपाय से तात्पर्य उस उपाय से है जिसमें व्यक्ति आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा पहुँचाने वाले या असंतोष उत्पन्न करने वाले व्यक्ति या वस्तु को चोट या क्षति पहुँचाकर अपने मानसिक तनाव को कम करना चाहता है। आक्रामकता भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार की हो सकती है। प्रत्यक्ष आक्रामकता वह है–जिसमें व्यक्ति उसी व्यक्ति या वस्तु पर आक्रमण करता है जो उसके असंतोष का कारण होता है। उदाहरण के लिए एक परीक्षार्थी जो नकल करना चाह रहा है, किन्तु कक्ष निरीक्षक (Invigilator) उसे ऐसा करने से मना करता है अर्थात् उसके लक्ष्य-पूर्ति में बाधा बनता है तो बालक कक्ष निरीक्षक पर ही आक्रमण करता है। यहाँ पर नकल करने के उद्देश्य की पूर्ति न होने पर उसमें आक्रामकता की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। **अप्रत्यक्ष** आक्रामकता वह है–जिसमें व्यक्ति असंतोष उत्पन्न करने वाले व्यक्ति या वस्तु पर

नोट

आक्रमण न करके किसी दूसरे व्यक्ति या वस्तु पर आक्रमण करता है। इसे ही **आक्रामकता प्रतिस्थापना** (Displacement of Aggression) भी कहते हैं। जैसे उक्त परीक्षार्थी कक्ष निरीक्षक पर आक्रमण न करके बाहर आकर अपने दोस्तों या छोटे भाईयों से लड़-झगड़ कर भी अपना तनाव दूर कर लेता है। कभी-कभी व्यक्ति अपने को ही दण्डित करता है इसे **अन्तर्निदेशित आक्रामकता** कहते हैं। अन्तर्निदेशित आक्रमता स्त्रियों, बच्चों और निर्बल लोगों में अधिक दिखलाई पड़ती है। छोटे बच्चों को जब किसी प्रकार की असफलता या असंतोष होता है तो वे अपने ही खुद दाँत काट लेते हैं या बुशर्ट फाड़ लेते हैं। इसी पकार स्त्रियाँ और निर्बल लोग किसी के द्वारा अपमानित होने पर, असफल होन पर या निराश होन पर अपना ही मुँह पीट लेते हैं। यद्यपि कि इस विधि में मानसिक तनाव कुछ कम हो जाता है, किन्तु इसके परिणाम अधिकतम हानिकार ही होते हैं। अत: इस विधि को किसी भी प्रकार से अच्छी विधि नहीं कहा जा सकता।

उपर्युक्त विधियों के अतिरिक्त भी अन्य कई विधियाँ जैसे **इच्छित वातावरण और अतिरेचन** (Catharsis) आदि हैं जिनके माध्यम से मानसिक तनावों को कम किया जा सकता है और व्यक्ति सुसमायोजित हो सकता है।

28.5 सारांश (Summary)

- व्यक्ति के जीवन में अनेक प्रकार की अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती रहती हैं जिनका उसे सामना करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अलग-अलग क्षमता के अनुसार समायोजन करने का प्रयत्न करते हैं। कुछ लोग प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने में सफल होते हैं और कुछ लोग हार मानकर अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठते है। इस प्रकार के व्यक्ति असन्तोष या कुण्ठा, मानसिक द्वन्द्व एवं तनाव के शिकार बने रहते हैं।
- आवश्यकताएँ ही व्यक्ति को लक्ष्य-प्राप्ति की ओर प्रेरित करती हैं और वह आगे बढ़ता है। जब व्यक्ति को अपने लक्ष्य की प्राप्ति सरलता से हो जाती है तो उसे संतोष का अनुभव होता है। किन्तु जब लक्ष्य प्राप्ति में उसे बाधाओं का सामना करना पड़ता है तो उसे एक अप्रिय अनुभूति होती है जिसे असंतोष, हताशा, निराशा या कुण्ठा (Frustration) कहते हैं। इसी प्रकार जब व्यक्ति को अपनी इच्छाओं और रुचियों के प्रतिकूल शक्तियों का सामना करना पड़ता है तो उसके अन्दर मानसिक द्वन्द्व (Conflict) उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार कुण्ठा और मानसिक द्वन्द्व के परिणामस्वरूप व्यक्ति में मानसिक तनाव उत्पन्न हो जाता है। तनाव के कारण व्यक्ति के मन में एक प्रकार की उथल-पुथल मच जाती है जिसे दूर करने के लिए वह बाधाओं को दूर करने का प्रयास करता है। उसका यह प्रयास यदि सृजनात्मक और परिस्थितियों के अनुकूल रहकर बाधाओं को दूर करने में सफल रहा तो वह वातावरण के साथ समायोजन स्थापित कर लेता है। वहीं व्यक्ति यदि बाधाओं को दूर करने में असमर्थ रहा और उसने अवांछनीय मार्ग को अपना लिया तो कुसमायोजन उत्पन्न हो जाता है।
- व्यक्ति जब अनेक प्रयास करने के बावजूद भी बाधाओं या अवरोधों को दूर नहीं कर पाता और लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता तो उसे दु:ख होता है और एक प्रकार की विफलता या निराशा की अनुभूति होती है जिसे मनोवैज्ञानिक भाषा में कुण्ठा कहते हैं।
- जब व्यक्ति को दो बिल्कुल विरोधी वस्तुओं में से एक का चुनाव करना पड़ता है तो भी उसे संघर्ष का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए एक विद्यार्थी जिसकी बी.ए. फाइनल की परीक्षा अगले सप्ताह शुरू होने वाली है, उसको उसी सप्ताह में नौकरी ज्वाइन करने के लिए नियुक्ति-पत्र मिलता है। ऐसी स्थिति में वह परीक्षा से भी मोह करता है और नौकरी से भी, किन्तु किस तरफ जाये, यह निर्णय कर पाने में कठिनाई का अनुभव करता है। उसके मन में एक प्रकार की उथल-पुथल मच जाती है–वह क्या करे? वह जिस दशा में पड़ जाता है उसे ही मनोवैज्ञानिक भाषा में मानसिक द्वन्द्व या संघर्ष कहते हैं।

नोट

- **मनोवैज्ञानिक कैमरन, शेफर एवं शोबेन** ने समायोजन की युक्तियों को दो प्रकार का बताया है–रक्षात्मक युक्तियाँ और पलायन युक्तियाँ। रक्षात्मक युक्तियों का मुख्य कार्य व्यक्ति के अहम् की रक्षा करना है। पलायन युक्तियों का मुख्य कार्य व्यक्ति को तनावपूर्ण स्थिति से हटाकर उसे व्यक्तिगत समायोजन में सहायता प्रदान करना है। यह व्यक्तिगत समायोजन व्यक्ति की दृष्टि से उपयुक्त होता है, किन्तु सामाजिक दृष्टि से नहीं, क्योंकि व्यक्ति तभी सुसमायोजित माना जाता है, जबकि उसका व्यवहार सामाजिक मानदण्ड के अनुकूल होता है।

28.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **कुण्ठा**–निराशाजन्य अतृप्त भावना
2. **रुग्णता**–बीमारी
3. **कुसमायोजन**–परिस्थितिनुसार ढलने में असमर्थ होना

28.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. समायोजन क्या है? समायोजन के लक्षण बताइए।
2. कुण्ठा से आप क्या समझते हैं? कुण्ठा के कारण बताइए।
3. मानसिक द्वंद्व से आप क्या समझते हैं? मानसिक द्वंद्व के कारणों पर प्रकाश डालिए।
4. मानसिक द्वंद्व को सुलझाने एवं तनाव दूर करने के उपाय समझाइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. समायोजन 2. असफल 3. मानसिक द्वंद्व 4. कुसमायोजन

28.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
2. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
3. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.एच. सिन्हा और रचना शर्मा, अटलांटिक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।*
4. बच्चों में शिक्षा का महत्त्व एवं जानकारियाँ–*सीमा चोपड़ा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 29: किशोरावस्था (Adolescence)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

29.1 किशोरावस्था की विशेषताएँ (Characteristics of Adolescence)

29.2 किशोरावस्था की समस्याएँ (Problems of Adolescence)

29.3 किशोरावस्था में शिक्षा का स्वरूप अथवा किशोरों को निर्देशन एवं परामर्श (Nature of Education in Adolescence Or Guiding and Counselling Adolescents)

29.4 किशोरावस्था: एक तनाव एवं संघर्षमय स्थिति (Adolescence: A Period of Storm and Stress)

29.5 अध्यापक की भूमिका (Role of the Teacher)

29.6 सारांश (Summary)

29.7 शब्दकोश (Keywords)

29.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

29.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- किशोरावस्था की विशेषताओं को समझने में।
- किशोरावस्था की समस्याओं को समझने में।
- किशोरावस्था में शिक्षा के स्वरूप अथवा किशारों का निर्देशन एवं परामर्श को समझने में।
- किशोरावस्था की तनाव एवं संघर्षमय स्थिति को समझने में।
- आध्यापकगण की भूमिका जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

किशोरावस्था, बाल्यावस्था के बाद आती है। यह अवस्था 12 वर्ष की आयु से प्रारम्भ होती है तथा 19 वर्ष की आयु तक चलती है। मनोवैज्ञानिकों ने इस काल को तूफान एवं परेशानी का काल कहा है। विशेषकर यौन दृष्टि से इस काल में अनेक परिवर्तन होते हैं जिनकी वजह से किशोर का जीवन तनाव, चिन्ता, संघर्ष आदि से घिर जाता है।

अत: इस अवस्था में किशोरों का सही मागदर्शन करने की आवश्यकता रहती है। पश्चिमी विद्वानों ने इसे 'टीन एज' (Teen Age) भी कहा है। यह विकास की सबसे जटिल अवस्था मानी जाती है। नोट

29.1 किशोरावस्था की विशेषताएँ (Characteristics of Adolescence)

किशोरावस्था की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है–

शारीरिक विकास (Physical Development): किशोरावस्था में दो प्रकार के शारीरिक परिवर्तन होते हैं–आन्तरिक तथा बाह्य। इन परिवर्तनों के कारण ही किशोर का व्यक्तित्व एक विशेष प्रकार से विकसित होता है। इस अवस्था में हड्डियों का लचीलापन समाप्त होकर उनमें कठोरता (दृढ़ता) आ जाती है तथा वे गोल होने लगती हैं। लड़कियों के कूल्हों के पास चर्बी इकट्ठी होने लगती है तथा उनमें भारीपन आ जाता है। लड़कियों के चेहरे में प्रौढ़ता के दर्शन होने लगते हैं तथा उनके चेहरे से लगने लगता है कि वे अब वयस्क होने जा रही हैं। चेहरे पर मुंहासे निकलने लगते हैं। किशोरों के शरीर के विभिन्न अंगों जैसे– बगल, छाती, दाढ़ी, गुप्तांग आदि पर बाल निकलने लगते हैं। कुछ लड़कियों में भी मूंछ तथा दाढ़ी निकल आती हैं जिसका कारण ग्लैण्ड्स का ठीक से कार्य न करना होता है। किशोरों के पसीने से एक विशेष प्रकार की गन्ध निकलती है। इस अवस्था की महत्त्वपूर्ण देन लड़के-लड़कियों के प्रजनन अंगों का पूर्ण विकास है जिससे उनमें प्रजनन क्षमता उत्पन्न हो जाती है। लड़कियों में ये परिवर्तन तेजी से देखे जा सकते हैं। उनका वक्षस्थल भारी होने लगता है। कभी-कभी स्तनों का विकास आयु से पहले भी हो जाता है जिसका कारण ग्रन्थियों का ठीक से कार्य न करना है। लड़कों की छाती चौड़ी होने लगती है। लड़कों में वीर्यपात तथा लड़कियों में मासिक धर्म उनके किशोर होने की पहचान है। इसके साथ ही शरीर के आन्तरिक अंगों का भी पूर्ण विकास हो जाता है, जैसे-मस्तिष्क, हृदय, श्वास, पाचन-क्रिया, स्नायु संस्थान आदि। बीमारियों से लड़ने के लिये भी शरीर में क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

मानसिक विकास (Mental Development): इस अवस्था में चंचलता समाप्त होकर ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता विकसित हो जाती है तथा स्मरण शक्ति भी बढ़ जाती है। लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा रटने की शक्ति अधिक होती है। किशोर कल्पना जगत में अधिक घूमते हैं तथा दिवा-स्वप्न के भी शिकार हो जाते हैं। कल्पना का विकास लड़कों में लड़कियों से अधिक होता है। तर्क शक्ति बढ़ जाती है तथा अनेक रुचियाँ भी पैदा हो जाती हैं। लड़के फुटबाल, कबड्डी तथा लड़कियाँ नाच-गाने, ड्रामा व संगीत में अधिक रुचि लेती हैं। इस अवस्था में शरीर-प्रदर्शन की भावना भी विकसित हो जाती है। लड़के शरीर को अधिक मजबूत करने तथा लड़कियाँ शृंगार पर अधिक ध्यान देती हैं। किशोरों में हास्य, कहानी, कविता, व्यंग्य, देश-प्रेम, रोमांच, प्रेम कहानियाँ व सैक्स सम्बन्धी साहित्य पढ़नें में रुचि उत्पन्न हो जाती है। कुछ सिनेमा, होटल, रोडियो, फिल्मी गाने आदि के शौकीन हो जाते हैं। सामाजिक चेतना भी विकसित हो जाती है तथा उनका बातचीत करने का क्षेत्र भी निर्धारित हो जाता है। लड़के, लड़कियों के बारे में तथा लड़कियाँ, लड़कों के बारे में बात करने में रुचि लेते हैं। इस अवस्था में किशोर भविष्य सम्बन्धी योजनायें भी बनाते हैं।

सामाजिक विकास (Social Development): सामाजिक विकास की दृष्टि से अब किशोर की रुचि परिवार से हटकर बाहरी दुनियाँ की तरफ मुड़ जाती है। वह अपने माता-पिता के प्रति कठोर व्यवहार अपना सकता है लेकिन अपने संगी-साथियों को नहीं छोड़ सकता। माता-पिता की सलाह में उसे अपनी आलोचना ही दिखाई पड़ती है। वह आसानी से आत्म-समर्पण नहीं करता बल्कि अपनी बात मनवाने के लिए जिद पर अड़ा रहता है। वह उनकी विचारधाराओं से समझौता नहीं करता तथा उन्हें चुनौती देता है, साथ ही साथ उसमें धार्मिक भावनाएँ तथा सामाजिक चेतना का भी उदय होने लगता है। वह समूह बनाता है तथा अपने आपको उसी में अधिक संतुष्ट पाता है। इसीलिये वह अपना अधिकांश समय घर से बाहर ही गुजारता है। लेकिन कुछ किशोर अपने भविष्य के प्रति अधिक सजग रहते हैं तथा अधिकांश समय पढ़ने, लिखने में ही लगाते हैं। इस अवस्था में किशोर अपने लिये 'आदर्श' चुनता है

नोट

जो अध्यापक, खिलाड़ी, विद्वान या फिल्मी कलाकार कोई भी हो सकता है। उसकी इस भावना को सही दिशा न मिलने पर उसका अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है।

29.2 किशोरावस्था की समस्याएँ (Problems of Adolescence)

किशोरावस्था की प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं–

(1) आत्म-सम्मान, आत्म-स्वीकृति, तथा सुरक्षा की समस्या (Problems of Self-respect, and Security) : ये तीनों ही बातें किशोर को अधिक चिन्तित रखती हैं। आत्म-सम्मान की दृष्टि से वह घर में या समूह में जहाँ कहीं भी रहता है, सम्मान चाहता है। इसी दृष्टि से वह कक्षा मॉनीटर, कैप्टन या छात्र संघ का पदाधिकारी बनने की इच्छा रखता है। वह चाहता है कि उसके द्वारा किये गये कार्यों की दूसरे सराहना करें, उसे माता-पिता अध्यापकों एवं संगी साथियों का स्नेह मिले। जो किशोर अत्यधिक गरीब होते हैं उन्हें असुरक्षा की भावना हर समय सताती रहती है। परिणामस्वरूप वे हीन भावना के शिकार हो जाते हैं। इन अवश्यकताओं की पूर्ति उसके समायोजन को बेहतर बनाती है तथा इनकी पूर्ति न होने पर उसका व्यक्तित्व दोषपूर्ण बन जाता है।

(2) स्वतन्त्रता की समस्या (Problem of Independence)–इस अवस्था में किशोर अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता है तथा अपने भविष्य की कल्पनाओं को साकार करना चाहता है। इन कल्पनाओं को साकार करने के लिए वह पूर्ण स्वतन्त्रता चाहता है जैसे किसी और की सलाह को अपने रास्ते में हस्तक्षेप समझता है, लेकिन किशोर इतना समर्थ नहीं होता कि उसे भविष्य सम्बन्धी निर्णय लेने में बिल्कुल अकेला छोड़ दिया जाये, यह उचित नहीं। माता-पिता व अध्यापकों के मार्गदर्शन की तो आवश्यकता उसे पड़ेगी ही। इस तथ्य को समझे बिना किशोर अपने लक्ष्य को पाने में उलझकर रह जाता है। अत: उसे चाहिये कि वह अपनी सीमाओं और क्षमताओं को समझे तथा दूसरों के सहयोग से अपनी मंजिल प्राप्त करे। दूसरों से प्राप्त सहयोग को उसे अपनी प्रतिष्ठा या अहं का प्रश्न नहीं बनाना चाहिये।

(3) रोमांच एवं आनन्द की चाह (Need for Adventure): इस अवस्था को सुखद अवस्था भी कहा जाता है। किशोर अत्यधिक सुख एवं आनन्द की कामना करता है। उसे सिनेमा देखना, होटलों में जाना, कहानी-उपन्यास पढ़ना या लिखना, गाने सुनना, अभिनय करना अच्छा लगता है। विपरीत सेक्स से दोस्ती करना उसकी सबसे प्रबल इच्छा रहती है। लड़के, लड़कियों से तथा लड़कियाँ, लड़कों से बात करने के हर समय इच्छुक रहते हैं। उन्हें सेक्स सम्बन्धी जानकारी अच्छी लगती है तथा वे इसकी पूर्ति सेक्स सम्बन्धी साहित्य पढ़कर, पशुओं की मैथुन क्रिया देखकर, चलचित्रों में नग्न चित्र देखकर तथा मित्रों से इस समबन्ध में बात करके करते हैं तथा अपनी इस भावना का प्रदर्शन शौचालयों की दीवारों पर गन्दी बातें लिखकर व चित्र बनाकर करते हैं। सम-लिंगीय मैथुन, भिन्न-लिंगीय मैथुन, हस्त मैथुन, अश्लील बातें करना, प्रेम-पत्र लिखना आदि में इनकी प्रबल रुचि होती है।

(4) आत्म निर्भर बनने की समस्या (Need for Self-support): किशोर यह अहसास करने लगता है कि अब वह बड़ा हो गया है तथा उसे माता-पिता पर बोझ नहीं बनना चाहिये। उसे, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भी उसे धन की जरूरत पड़ती है। इसीलिये वह आत्म-निर्भर होना चाहता है तथा किसी अच्छे व्यवसाय को अपनाना चाहता है। यह विचार पहले तो कल्पना लगते हैं, फिर बेकार की बातें लगती हैं और अन्त में वह लक्ष्य प्राप्ति के लिये गम्भीर हो जाता है। देखने में आता है कि निर्धन परिवारों के किशोर अपने माता-पिता का व्यवसाय अपनाने में रुचि नहीं रखते जबकि उच्च परिवारों के किशोर अपने माता-पिता का व्यवसाय अपनाने में रुचि रखते हैं। कुछ किशोरों में यह भावना इतनी हावी रहती है कि उनके व्यवहार में यह स्पष्ट दिखाई देती है। बड़े शहरों में किशोर अपने लक्ष्य के लिए अधिक बेचैन रहते हैं।

नोट

(5) बिछुड़ने का भय या स्नेह की लालसा (Threat of Being Isolated or Need of Belongingness): ये दोनों ही भावनाएँ किशोर पर हर समय छाई रहती हैं। अपनी भावनात्मक संतुष्टि के लिये वे अपने दोस्तों पर अधिक निर्भर रहते हैं। वे दूसरों से स्नेह लेना चाहते हैं और दूसरों को भी स्नेह देना चाहते हैं। उनका कोई दोस्त उनसे अगर थोड़े समय के लिये भी रूठ जाये या बिछुड़ जाये तो उन्हें सहन नहीं होता। उनका किसी भी काम में मन नहीं लगता। समूह में अपना स्थान बना लेने पर वे सुरक्षित महसूस करते हैं तथा इसके विपरीत यदि उन्हें समूह में उचित स्थान नहीं मिलता या तिरस्कार मिलता है तो वे दु:खी होते हैं जो कभी-कभी घातक भी सिद्ध होता है।

(6) नैतिक मूल्यों में बँधे रहने की समस्या (Adherence to Codes and Morals): किशोर नैतिक मूल्यों एवं सामाजिक मूल्यों को बंधन महसूस करता है। उसे एक ही समय पर बहुत से मूल्यों में बँधना होता है। माता-पिता का कठोर अनुशासन, स्कूल का वातावरण, दोस्तों की भावनाएँ आदि उसे एक साथ निभानी पड़ती हैं। ऐसी स्थिति में किसी समय विशेष में जो भावना अधिक प्रबल हो जाती है किशोर उसी तरफ मुड़ जाता है, लेकिन दूसरे मूल्यों के सन्दर्भ में वह विपरीत समझी जाती है। इसीलिये वह एक ही समय में सबको संतुष्ट करने के प्रयास में स्वयं उलझ कर रह जाता है। अत: किशोर को इस तनाव से मुक्त रखने के लिए माता-पिता, शिक्षकों एवं समाज का यह कर्त्तव्य है कि वे किशोर को ठीक से समझकर उसके व्यक्तित्व का सम्मान करें।

(7) कल्पना की बहुलता (Too much Fantasy): किशोरावस्था में कल्पना की प्रधानता रहती है। वह दिवा-स्वप्न की दुनिया में विचरण करता है। दिवास्वप्न बालक को प्रेरणा भी देते हैं और साथ ही उसकी इच्छाओं की आंशिक संतुष्टि में सहायक होते हैं। दिवास्वप्न के आधार पर किशोर कविता, कहानी, लेख आदि लिखने के लिये प्रेरित होता है। इसी प्रकार जिन कार्यों को करने में वह स्वयं को अक्षम पता है उनको वह दिवास्वप्न के माध्यम से पूरा करके कुछ सन्तोष अनुभव करता है। किन्तु दिवास्वप्न की बहुलता किशोरों के लिये हानिकारक भी होती है। दिवास्वप्न दृष्टा किशोर व्यावहारिक जीवन में असफल रहते हैं। कल्पना शक्ति का विकसित होना तभी अच्छा रहता है जबकि उसके द्वारा साहित्यिक रचनाओं की ओर उनका मार्गान्तीकरण किया जाये।

(8) वीर-पूजा (Hero-Worship): किशोरों में वीर-पूजा की भावना विकसित हो जाती है। वे आदर्श पुरुष का अनुकरण प्रारम्भ कर देते हैं। अपने को अपने आदर्श पुरुष के अनुरूप बनाने का प्रयास करने लगते हैं। आदर्श, उनके लिये विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित हो सकते हैं। सिनेमा का अभिनेता या अभिनेत्री, ऐतिहासिक वीर-पुरुष या धार्मिक नेता, राजनैतिक नेता या विद्वान उनके आदर्श पुरुष हो सकते हैं।

क्या आप जानते हैं

भारत में आजकल अधिकांश किशोर या किशोरी का आदर्श सिने-जगत का अभिनेता या अभिनेत्री होती है। वे उसी के अनुरूप बनने के लिये वैसे ही वस्त्र पहनना, उसी की तरह बाल रखना तथा उसी की भाँति बोलना प्रारम्भ कर देते हैं।

कॉलेजों में किशोर या किशोरियों के आदर्श पुरुष कोई अध्यापक या अध्यापिका होती है जो उनको अधिक प्रभावित करते हैं। किशोर अपने आदर्श व्यक्ति का गुणगान करते नहीं थकते हैं। कभी-कभी इस वीर-पूजा की परिणति प्रेम के रूप में भी देखी जा सकती है।

(9) विद्रोह की भावना (Feeling of Revolt): किशोर में स्वाभिमान की भावना का विकास हो जाता है। अब वह माता-पिता या अध्यापक के नियन्त्रण को पसन्द नहीं करता है। वी.एन. झा. ने लिखा है कि किशोर में नवीन जीवन-दर्शन के प्रादुर्भाव से उसमें आत्मसम्मान की प्रबल प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। वह अपने को बन्धनों से मुक्त रखना पसन्द करता है। **कॉलसनिक** का कथन है कि किशोर, प्रौढ़ों को अपने मार्ग में बाधा समझता है क्योंकि वे उसकी स्वतन्त्रता पर नियन्त्रण रखना चाहते हैं। प्रौढ़ों के नियन्त्रण के विरोध में किशोर विद्रोह प्रारम्भ कर देते हैं। वे माता-पिता या अध्यापक की आज्ञा का विरोध करने लगते हैं।

नोट

(10) विशेष रुचियाँ (Special Hobbies): आयु में वृद्धि के साथ रुचियों में भी परिवर्तन होता है। **स्ट्रैंग** के अनुसार, 15 वर्ष की आयु तक किशोरों की रुचियाँ परिवर्तित होती रहती हैं किन्तु इसके बाद उनमें स्थिरता आने लगती है। किशोर और किशोरी में कुछ समान रुचियाँ होती हैं तथा कुछ असमान रुचियाँ। समान रुचियाँ सामान्यत: कहानी, नाटक, उपन्यास का पढ़ना, शरीर को सुन्दर बनाना, नवीन फैशन के वस्त्र पहिनना, विषमलिंगी के साथ प्रेम करना, रेडियो सुनना, सिनेमा देखना आदि हैं। दोनों की रुचियों में भिन्नता इस प्रकार हैं–लड़के खेल-कूद, व्यायाम तथा भावी व्यवसाय के चयन में अधिक रुचि लेते हैं किन्तु लड़कियों की विशिष्ट रुचियाँ संगीत, कला, अभिनय, शृंगार करने के कार्यों में दिखाई देती हैं।

(11) यौन-विकास (Sex Development): किशोरावस्था का महत्त्वपूर्ण लक्षण यौनिक विकास है। इस काल में किशोर या किशोरी के यौन अंगों में पर्याप्त वृद्धि होने से उनमें प्रजनन शक्ति आ जाती है। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि शैशवास्था की यौन-भावना की पुनरावृत्ति किशोरावस्था में आरम्भ होती है। शैशवकालीन यौन-भावना बाल्यावस्था में सुषुप्त अवस्था में रहती है और इसकी जागृति किशोरावस्था में होती है। इसीलिए किशोर काल को यौन-भावना का जागृति काल कहते हैं। यौन-भावना का इस काल में विस्फोट-सा होता है। किशोर पर काम प्रवृत्ति का ज्वार-सा चढ़ जाता है। किशोर में यौन-विकास की तीन प्रमुख अवस्थाएँ होती हैं, जो इस प्रकार हैं–

***(i)* स्व-प्रेम (Auto-Erotism):** किशोरकाल में यौन-विकास की प्रारम्भिक अवस्था स्व-प्रेम की होती है। स्व-प्रेम के दो रूप होते हैं–एक रूप के अनुसार किशोर अपने को सबसे अधिक सुन्दर मानता है। इस सुन्दरता को बढ़ाने के लिए वह सौन्दर्य-प्रसाधनों का प्रयोग करता है। बार-बार दर्पण में अपने शरीर को देखकर आनन्दित होता है। कभी अपने बालों को सँवारता है तो कभी बार-बार वस्त्र बदलकर देखता है कि कौन-सा वस्त्र उसके शरीर की सुन्दरता को अधिक बढ़ाता है। फ्रॉयड ने इस स्थिति को Narcissim की स्थिति कहा है। दूसरे रूप के अनुसार किशोर अपने लिंग-अवयवों को स्पर्श करके यौनिक आनन्द की अनुभूति करता है। अब उसको लिंग-अवयवों का स्पर्श करने पर गुदगुदी-सी अनुभव होती है। ऐसा करने से किशोर में हस्त-मैथुन (Masturbation) जैसी गन्दी आदत का विकास हो जाता है। यह हस्त-मैथुन की आदत केवल लड़कों में ही नहीं होती है अपितु लड़कियाँ भी इसकी शिकार बनती हैं। आजकल मनोवैज्ञानिक हस्त-मैथुन को स्वाभाविक क्रिया मानते हैं, किन्तु फिर भी इस प्रकार के अप्राकृतिक कार्यों को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिये।

नोट्स

किशोरावस्था में किशोर अपने लिंग अवयवों को स्पर्श करके यौनिक आनंद की अनुभूति करता है। उसको लिंग-अवयवों का स्पर्श करने पर गुदगुदी महसूस होती है।

***(ii)* समलिंगीय कामुकता (Homo-Sexuality):** यौन-विकास की दूसरी अवस्था समलिंग कामुकता की है। इस अवस्था में समान लिंग के व्यक्तियों में परस्पर प्रेम होता है। लड़के-लड़कों के साथ और लड़कियाँ-लड़कियों के साथ रहना, घूमना, खाना, बातचीत करना पसन्द करते हैं। वे आपस में चुम्बन लेते हुए भी देखे जा सकते हैं। यहाँ तक कि दोनों लिंग के व्यक्ति परस्पर अपने समलिंग के गुणों को उत्तेजित करने के कार्य में संलग्न पाये जाते हैं। समलिंगीय कामुकता के लिए कुछ कारक उत्तरदायी होते हैं। एक कारण समलिंगीय कामुकता का लड़के-लड़कियों को एक-दूसरे से दूर रखने से संबन्धित है। जब विषमलिंग के साथ मेलजोल बढ़ाने का अवसर नहीं मिलता है तो किशोरावस्था में बालक काम-प्रवृत्ति की सन्तुष्टि समलिंगीय प्रेम के द्वारा करते हैं। भारतीय समाज में यही स्थिति है। यहाँ लड़कों को लड़कियों से पृथक् रखा जाता है। अतएव वे समलिंग को ही कामुकता की सन्तुष्टि का साधन मानने लगते हैं। समलिंगीय कामुकता उन विद्यालयों में भी पाई जाती है जहाँ सहशिक्षा का अभाव रहता है। सहशिक्षा

नोट

के अभाव के कारण विषमलिंग के प्रति आकर्षित होने तथा प्रेम करने का अवसर नहीं मिलता है। रेमजे, झिंगरन और किंसे ने अपने अध्ययनों के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि समलिंगीय कामुकता प्रारम्भिक किशोरावस्था में अधिक पाई जाती हैं। किंसे का मत है कि लगभग एक-चौथाई किशोरों में समलिंगीय कामुकता का प्रभाव रहता है। समलिंगीय कामुकता शीघ्र परिपक्व होने वाले लड़कों में देर से परिपक्व होने वालों की अपेक्षा अधिक प्रबल रहती है। कभी-कभी समलिंगीय कामुकता की प्रवत्ति किशोरावस्था के बाद प्रौढ़ावस्था में प्रवेश कर जाती है। इस प्रकार की अवस्था शोचनीय होती है। इस प्रकार का आप्रकृतिक कार्य प्राकृतिक विषमलिंगीय कामुकता में बाधक बन जाता है।

***(iii)* विषम-लिंगी कामुकता (Hetero-Sexuality):** यौन-प्रवृत्ति की परिपक्व अवस्था विषमलिंगीय कामुकता है जो उत्तर किशोरावस्था में विकसित होती है। यौन सम्बन्धों की यह प्रकृतिक एवं स्वभाविक दशा है। इस स्थिति में किशोर लड़के, लड़कियों की ओर और लड़कियाँ, लड़कों की ओर आकर्षित होती हैं, वे परस्पर बातचीत करते, आपस में मिलते-जुलते हैं। घनिष्ठता और बढ़ने पर वे सिनेमा देखते, चुम्बन करते तथा आलिंगन करते हुए देखे जाते हैं। यहाँ तक कि कुछ शादी से पूर्व ही सम्भोग क्रिया में रत् पाये जाते हैं। यह स्थिति भयानक होती है और उनको सभी समाज में हेय दृष्टि से देखते हैं। शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने के भय से अभिभावक लड़के-लड़कियों के मिलने पर नियन्त्रण लगाते हैं जिसके कारण लड़के-लड़कियों में अनुशासनहीनता फैलती है। यदि लड़के-लड़कियों को सामूहिक रूप में कार्य करने को प्रोत्साहित किया जाए तो उनमें यौन-सम्बन्धों के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण पैदा किया जा सकता है।

29.3 किशोरावस्था में शिक्षा का स्वरूप अथवा किशोरों को निर्देशन एवं परामर्श (Nature of Education in Adolescence or Guiding and Counselling Adolescents)

किशोरावस्था की विशेषताओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि यह एक ऐसा काल है जिसके कारण बालक में शक्ति का ज्वार-सा उठता है। इस शक्ति का उपयोग करने के लिए शिक्षा के सही स्वरूप पर ध्यान देना चाहिए जो कि उनकी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि में सहायक हो। यहाँ हम शिक्षा के स्वरूप पर विचार करेंगे–

(1) शारीरिक विकास के लिए शिक्षा (Education for Physical Development) : किशोरावस्था में शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है। उसकी लम्बाई में अधिक वृद्धि होती है। शरीर के पुष्ट एवं स्वस्थ विकास के लिए विद्यालय में व्यायाम की शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। इसके साथ ही खेलकूद के ऊपर भी ध्यान देना चाहिए।

(2) संवेगों का प्रशिक्षण (Training of Emotions): किशोर में क्रोध, भय, चिन्ता, द्वेष, प्रेम आदि संवेग प्रबल रूप में पाये जाते हैं। किशोर अपने संवेगों का प्रदर्शन विभिन्न रूपों में करते हैं। किशोरों की भावनाओं और संवेगों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। किशोरों के संवेगों का दमन नहीं करना चाहिये। उनके संवेगों के शोधन पर अध्यापकों को ध्यान देना चाहिये। किशोर कविता, संगीत, उपन्यास, कहानी, नाटक आदि के अध्ययन में अधिक रुचि लेते हैं। अध्यापक को इन विषयों के अध्यापन के समय किशोर के संवेगों के शोधन पर ध्यान-देना चाहिए। आवश्यकतानुसार संवेगों के स्थानान्तरण का भी प्रयत्न करना चाहिए। उसे देश, धर्म व समाज की सेवा के लिए प्रोत्साहित करना चाहिये।

(3) नैतिक शिक्षा (Moral Education): किशोर मानसिक द्वन्द्व की स्थिति में रहता है। अतएव किशोरों को नैतिक शिक्षा देना आवश्यक हो जाता है। नैतिकता की शिक्षा सैद्धान्तिक न होकर व्यावहारिक होनी चाहिये। सत्य, आत्म-नियन्त्रण, कर्त्तव्य, न्याय, समय की पाबन्दी आदि का अभ्यास छात्रों को करवाना चाहिये। अध्यापकों को भी उपदेश के स्थान पर उदाहरण प्रस्तुत करने चाहिये।

नोट

(4) व्यावसायिक पथ-प्रदर्शन (Vocational Guidance): किशोर सामान्यत: अपने भविष्य के बारे में चिन्तित रहते हैं। विद्यालय का यह कर्त्तव्य है कि वह किशोर को व्यवसाय के चयन के बारे में उचित पथ प्रदर्शन प्रदान करे। भारत जैसे देश में व्यवसाय का चुनाव एक समस्या है क्योंकि यहाँ पर बेकारी समस्या भयंकर रूप में फैली है। अध्यापकों को अध्यापन के समय विचित्र व्यवसायों से सम्बन्धित सूचनाएँ छात्रों को व्यवसाय से परिचित कराने की दृष्टि से देनी चाहिए।

टास्क किशोरों के व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली कहाँ तक सक्षम है? अपने विचार व्यक्त कीजिए।

(5) उत्तम साहित्य पढ़ने की प्रेरणा (Motivation to Read good Literature): मनोवैज्ञानिकों का मत है कि किशोरों में अध्ययन के प्रति प्रबल रुचि पैदा होती है। इस अवस्था में किशोरों को निर्देश देना चाहिए कि वे कौन-सी पुस्तकों का अध्ययन करें। इस अवस्था में बालकों को महान पुरुषों की जीवनी तथा उच्चकोटि के साहित्य का अध्ययन करने की प्रेरणा देनी चाहिए।

(6) सामाजिकता का विकास (Development of Social traits): किशोर को सामाजिक व्यवस्थापन में सहयोग देने की दृष्टि से उसमें सामाजिक गुणों के विकास पर ध्यान देना चाहिए। किशोर में भी सामूहिकता की भावना होती है। विद्यालयों में सामूहिक शिक्षण पर अध्यापकों को बल देना चाहिए। इसके द्वारा उनमें स्नेह, सहयोग, सहकारिता आदि गुणों का विकास किया जा सकता है। प्रोजेक्ट विधि के द्वारा अध्यापक किशोरों में उत्तरदायित्व की भावना का विकास कर सकता है। इसके माध्यम से उनमें नेतृत्व के गुण भी विकसित किये जा सकते हैं। भारत जैसे लोकतान्त्रिक देश में नेतृत्व प्रदान करने वाले तथा साथ ही अन्धानुकरण न करने वाले नागरिकों की आवश्यकता है। अतएव ऐसे देशों में सामाजिक व्यवहार की दृष्टि से कुशल एवं स्वतन्त्र चिन्तन एवं निर्णय ले सकने योग्य व्यक्तियों के निर्माण पर बल देना चाहिए।

(7) उपयुक्त शिक्षण-प्रविधियों का प्रयोग (Use of Proper Teaching Techniques): किशोरावस्था में बुद्धि का विकास चरम बिन्दु पर होता है। उसकी समस्त मानसिक योग्यताएँ विकसित हो जाती हैं। अतएव अध्यापकों को ऐसी शिक्षण-विधियों का प्रयोग करना चाहिये जिनमें छात्रों को स्वयं परीक्षण, निरीक्षण, विचार और तर्क करने की शक्ति का अभ्यास करने का अवसर मिल सके। इस अवस्था में भी करके सीखने पर जोर देना चाहिये। किशोर की कल्पना-शक्ति भी विकसित होती है। अतएव अध्यापक अपने शिक्षण में उसका भी उपयोग कर सकता है। किशोरों को अत्म-प्रदर्शन का अवसर देना चाहिए। इसके लिए विद्यालय में पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के संगठन पर ध्यान देना चाहिये।

(8) स्व-शासन एवं आत्म-नियन्त्रण (Self Discipline and Self Control): किशोरावस्था में अनुशासन ऊपर से नहीं थोपना चाहिये। किशोर अपने ऊपर नियन्त्रण के विरोध में विद्रोह करते हैं और अनुशासनहीनता की समस्या पैदा करते हैं। किशोरों को स्वशासन के लिए प्रेरित करना चाहिए। विद्यालय में अनुशासन समिति गठित करके उसमें छात्रों के कुछ प्रतिनिधि भी रखने चाहये। कॉलेज में जितने कार्यक्रम या उत्सवों का आयोजन हो, उनका प्रबन्ध छात्रों के हाथों में होना चाहिए। ऐसा करने से उनमें दायित्व की भावना विकसित होती है तथा वे आत्मनियन्त्रण करना सीखते हैं।

(9) अध्यापकों का व्यवहार (Behaviour of Teacher): अध्यापकों के व्यवहार का किशोरों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। किशोर के साथ शिशु या बालक जैसा व्यवहार नहीं करना चाहिये। अधिकांश माता-पिता तथा अध्यापक किशोरों को बालक ही समझते हैं। ऐसे व्यवहार से किशोरों को चिढ़ पैदा होती है। अध्यपक को किशोरों के साथ वयस्क जैसा व्यवहार करना चाहिये। उनको किशोरों के साथ प्रेम तथा सहानुभूति का भाव रखना चाहिए।

नोट

ऐसा करने से किशोरों के सांवेगिक व्यवहार में स्थिरता रहती है और किशोरों को काम करने की प्रेरणा मिलती है। किशोरों में सामाजिक व्यवहार की दक्षता बढ़ती है।

(10) यौन-शिक्षा (Sex-Education): किशोरावस्था में काम-प्रवृत्ति का ज्वार-सा आता है। किशोर की अनेक समस्याओं की जड़ काम-प्रवृत्ति ही होती है। इसी के कारण किशोर के संवेग, व्यवहार, रुचि आदि में अस्थिरता रहती है। विद्वानों का मत है कि किशोरों के लिए यौन-शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। यौन-शिक्षा द्वारा किशोरों में काम के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण पैदा करने का प्रयास करना चाहिए। यौन-शिक्षा के दो बिन्दुओं पर मतभेद हैं-एक तो, यौन-शिक्षा का स्वरूप क्या होना चाहिए और दूसरे, यौन-शिक्षा देने के लिए उपयुक्त विधि कौन-सी है?

किशोरावस्था का प्रारम्भ भी लड़के और लड़कियों में भय तथा उद्वेग पैदा कर देता है। लड़कों को किशोरावस्था में स्वप्नदोष होता है। जिसके कारण उसके वीर्य का स्राव होता है। लड़कियों में मासिक धर्म होता है जिसके अन्तर्गत रक्तस्राव होता है। इनका ज्ञान न होने से ऐसी दशा में दोनों ही बहुत घबराते हैं। इसको वे एक प्रकार की बीमारी मानते हैं। लड़कियों को मासिक धर्म का ज्ञान न होने से ऐसी दशा में वे अत्यधिक लज्जा अनुभव करती हैं। अतएव इस अवस्था में रजस्वला होने से पूर्व ही किशोरियों को तथा वीर्यपात होने से पूर्व किशोरों को यौन अंगों की रचना, उनके कार्य तथा रजोदर्शन और वीर्य सम्बन्धी ज्ञान दे देना चाहिए।

यौन-शिक्षा देकर लड़के-लड़कियों में विषमलिंगी के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण पैदा करना चाहिये। उनको सन्तानोत्पत्ति की प्रक्रिया का भी ज्ञान होना चाहिये। किन्तु ये सभी ज्ञान कराते समय यह ध्यान अवश्य रखा जाए कि यौन-शिक्षा उनके लिए उत्तेजना देने वाली न हो जाये। इसके साथ ही आवश्यक है कि नैतिक एवं चारित्रिक शिक्षा की व्यवस्था हो। कुछ विद्वानों का मत है कि सह-शिक्षा पर जोर देना चाहिए। सह-शिक्षा द्वारा काम-सम्बन्धी अनेक भ्रम स्वत: ही दूर हो जाते हैं। यौन-शिक्षा देने के लिए घर पर माता-पिता और विद्यालय में अध्यापक को यह कर्त्तव्य पूरा करना चाहिए।

अध्यापकों को ऐसे रचनात्मक कार्यों में किशोरों को लगाना चाहिए जिनमें लगने से किशोरों की काम-शक्ति का मार्ग परिवर्तन हो सके। साहित्य, कला, संगीत, समाज-सेवा आदि कर्म ऐसे हैं जिनमें किशोरों को संलग्न करने से उनकी काम-शक्ति का मार्गांतीकरण हो जाता है।

29.4 किशोरावस्था: एक तनाव एवं संघर्षमय स्थिति (Adolescence: A Period of Storm and Stress)

किशोरावस्था उम्र का वह पड़ाव है, जहाँ न तो बचपना रह जाता है और न ही वैचारिक परिपक्वता आती है। ऐसे में किशोर-किशोरियों को समझाना-संभालना उनके अभिभावकों के लिए खासा मुश्किल भरा काम होता है। इस मामले में जरा-सी चूक किसी भी अप्रिय नतीजे को जन्म देने के लिए काफी होती है। आखिर कैसे मिले किशोर-किशोरियों को सही राह?

अकसर बच्चों की बात की जाती है या फिर बड़ों की। उन किशोरों को प्राय: अनदेखा कर दिया जाता है, जो न छोटों में आते हैं, न बड़ों में। यानी तेरह से उन्नीस वर्ष के बीच आने वाले टीनएजर्स, जो शारीरिक, मानसिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहे होते हैं और जिन की समस्याएँ उलझती चली जाती हैं। कभी-कभी वे परिवार एवं विद्यालय के लिए 'प्रॉब्लम चाइल्ड' भी बन जाते हैं।

इनकी समस्याएँ भी विचित्र होती हैं, मसलन, 'मैं अट्ठारह वर्ष की छात्रा हूँ। मुझे एक विजातीय प्रेम हो गया है। वह मुझे चाहता है, परन्तु इन दिनों वह किसी अन्य लड़की की ओर आकर्षित है। मैं उसके बिना जी नहीं सकती। आत्महत्या का विचार मन में आता है।' अथवा 'मैं तेरह वर्षीय कक्षा आठ की छात्रा हूँ। मुझे घर में कोई प्यार नहीं करता। माता-पिता डाँटते-फटकारते हैं। पढ़ाई में मन नहीं लगता। इस वर्ष फेल हो गई हूँ। घर से भाग जाने का मन

नोट

करता है।' इसी प्रकार सौंदर्य, यौन-संबंधी प्रश्न होते हैं, माता-पिता द्वारा समय न दिए जाने की समस्या होती है, तो कहीं गलत संगति में पड़ गए कुटेव का उल्लेख होता है।

ये उस उम्र के दौर के बच्चे होते हैं, जिन्हें बातचीत में अपनी सलाह देने पर यह कहकर फटकार दिया जाता है, कि 'बड़ों के बीच में बोलने की जरूरत नहीं है' या फिर 'बच्चों हो बच्चों' की तरह रहो।' कभी गलती हो जाने पर झिड़का जाता है, 'इतने बड़े हो गए हो, अक्ल धेले भर की नहीं' या फिर, 'जब मैं तुम्हारे बराबर की थी, पूरी गृहस्थी मेरे ऊपर थी', वगैरह-वगैरह। बेचारे टीन एजर्स तलवार की धार पर चलने को मजबूर होते हैं। एक तरफ कुआँ दूसरी तरफ खाई। किशोरावस्था उम्र का वह दौर है जब बचपन विदा लेता है और युवावस्था के द्वार खुलने लगते हैं। ऐसे में शारीरिक परिवर्तन से वह स्वयं डरा, सहमा-सा रहता है। लड़कियाँ ऋतुचक्र के प्रारंभ पें परेशान रहती हैं तो लड़के उग आई दाढ़ी-मूंछों से शर्म महसूस करते हैं। अंत:स्रावी ग्रंथियों के फलस्वरूप उनकी मानसिक अवस्था डाँवाडोल रहती है। विपरीत लिंग की ओर स्वाभाविक रूप से आकर्षण बढ़ जाता है। इसी उम्र में अधिकतर बच्चे प्रेम में उलझ जाते हैं जो वास्तव में प्रेम नहीं होता। भिन्न लिंगी के प्रति उपजे आकर्षक को ही वे प्रेम मानकर तदनुसार आचरण करने लगते हैं। ऐसे में पढ़ाई से जी उचट जाना स्वाभाविक ही है।

विद्यालय में अध्यापकों द्वारा दिखाई गई उदासीनता अथवा शारीरिक दंड, दोनों गहरा असर डालते हैं। अध्यापक विशेष की ओर आकर्षक या द्वेष भी बहुत स्वभाविक है। इस उम्र के बच्चों को विशेष भावनात्मक सहयोग, स्नेह एवं भरोसे की आवश्यकता होती है, तभी वे अपना आत्मविश्वास बनाए रख पाते हैं। बचपन में जिस मार-पीट एवं फटकार को बच्चा सह ले जाता है उसी पर किशोरावस्था में भिन्न प्रतिक्रिया दर्शाता है। उद्दंड बच्चे जवाब देने पर उतारू हो जाते हैं और अंतर्मुखी बच्चे मन-ही-मन घुटने लगते हैं। माता-पिता का आपसी तनाव, आर्थिक-सामाजिक व्यस्तता, बच्चे के प्रति असहिष्णुता एवं संवादहीनता किशोरों में रोष उत्पन्न करती है। घर के वातावरण से उन्हें अरुचि होने लगती है। फलत: वे अधिक-से-अधिक समय घर से बाहर व्यतीत करना चाहते हैं। इसके लिए वे बहाने बनाते हैं, झूठ बोलते हैं और किसी भी तरह अपनी बात मनवाना चाहते हैं।

किशोर लड़के-लड़कियों को माता-पिता की बातें उपदेश लगती हैं। वे माता-पिता के विचारों से असहमत रहते हैं। कभी-कभी जानबूझकर माता-पिता की इच्छा के विपरीत कार्य करते हैं। बहुधा इसके पीछे उनका ध्यानाकर्षण ही मुख्य उद्देश्य होता है। यहाँ एक मनोवैज्ञानिक समस्या है जिसका हल समझदारी से ही निकल सकता है। कठोर कदम उठाने पर किशोर घर से भागने जैसा अविवेकपूर्ण कदम भी उठा लेते हैं।

किशोरावस्था में बच्चे भावुकता के वशीभूत होकर आचरण करते हैं। यही उनका दोष भी है और गुण भी। इसी संवेदनशीलता को सही मार्ग दिखाकर सृजनात्मक गुणों का विकास संभव है, तो यही भावुकता उन्हें दिवा-स्वप्नों की दुनिया में धकेल कर पलायनवादी, आलसी और निकम्मा बना देती है। कल्पनाशील होना अच्छा है परंतु यथार्थ की जमीन छोड़कर कल्पना के बादलों में उड़ते किशोर स्वप्न भंग होने पर हताश हो जाते हैं। ऐसे में लड़का हो या लड़की, किशोरवस्था में उन्हें उनकी प्रिय रुचियों में व्यस्त कर देना अच्छा होता है। रुचि के अनुसार उन्हें पेंटिंग, गायन-वादन, नृत्य, लेखन आदि सिखाया जा सकता हैं। खेलने के प्रति रुझान रखने वाले किशोर-किशोरी विशेष खेल, तैराकी का प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं जिससे उनका शारीरिक व्यायाम होगा। व्यस्त रहने से मन इधर-उधर भी नहीं भटकेगा। समय के अनुसार बच्चे अपने क्षेत्र में विशेषज्ञ भी बन सकते हैं। किशोरावस्था की यही रुचियाँ एक दिन उनका व्यवसाय बन सकती हैं।

किशोरावस्था की निजी समस्याओं के अतिरिक्त यही वह समय होता है जब बच्चे के केरियर का प्रश्न भी साथ-साथ खड़ा होता है। महत्त्वकाँक्षी अभिभावक अपने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के प्रति काफी सतर्क रहते हैं जिसका दबाव बच्चे के कोमल मन-मस्तिष्क पर बना रहता है। कैरियर के अनुरूप कक्षा में विषयों का चुनाव, वांछित विषय मिलने की ऊहापोह, विद्यालय का चुनाव, अभिभावकों की आशाएँ बच्चे को मनोवैज्ञानिक रूप से तनाव में रखती हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

रिक्त स्थान की पूर्ति करें–

1. पश्चिमी विद्वानों ने किशोरावस्था को ..... भी कहा है।
2. किशोरावस्था में अनेक समस्याओं की जड़ में ..... होती है।
3. 12 वर्ष से ..... तक की आयु को किशोरावस्था माना गया है।
4. किशोरावस्था में स्वाभाविक रूप से ..... लिंग के प्रति आकर्षण बढ़ जाता है।

विद्यालय परिसर का माहौल किशोरों को आक्रांत किए रहता है। स्वार्थी शिक्षक कक्षाध्यापन में रुचि न रखकर प्राइवेट कोचिंग पर जोर देते हैं। बच्चों को कक्षा में बार-बार अपमानित करते हैं। वे कोचिंग न लेने पर फेल कर देने की धमकी भी देते हैं। जागरूक अभिभावक, विद्यालय के अध्यापकों से प्राइवेट कोचिंग दिलवाने में रुचि नहीं रखते। ऐसे में बच्चा क्या करे? घर और विद्यालय की इस तनातनी का एक दुष्परिणाम यह भी होता है कि बच्चा स्कूल जाना ही बंद कर देता है। स्कूल का समय किसी संगी-साथी के साथ पार्क में या सिनेमा हॉल में बिताकर घर लौट आता है। फलस्वरूप कक्षा में पिछड़ जाता है। एक बार पढ़ाई में पिछड़ने पर वह बराबर पिछड़ता चला जाता है। तब अभिभावक परेशान होता है।

टीवी के विभिन्न चैनलों के माध्यम से किशोर बहुत कुछ जान-समझ लेता है। एड्स से बचाव हेतु दिए गए विज्ञापनों का दुर्बल पक्ष यह है कि बच्चे छोटी आयु में ही यौन-संबंध एवं समलैंगिकता के विषय में कुछ-कुछ समझने लगते हैं। यह आधी-अधूरी जानकारी खतरनाक साबित होती है। जिज्ञासा के समाधान हेतु वे वयस्क पुस्तकें पढ़ते हैं और भ्रमित होते हैं। इसी समय बड़ी उम्र की महिलाओं और पुरुषों की ओर भी आकर्षण बढ़ता है, तथाकथित आंटी-अंकल के जाल में फंसकर यौन अनुभव प्राप्त करने का रोमांच अंततः किशोरों के लिए ग्लानि, हीन भावना, अपराध बोध एवं मनौवैज्ञानिक ग्रंथियों का कारण बनता है।

भारतीय समाज उन्मुक्त यौन चर्चा के लिए अनुकूल नहीं है। विदेशी चैनलों पर दिखाई गई डेट समस्या, चुंबन, आलिंगन, पिता-पुत्री के मध्य पुरुष मित्र एवं महिला मित्र संबंधी चर्चाएँ हमारे मध्यमवर्गीय समाज में प्रचलित नहीं हैं। यौन-शिक्षा पर अभी विचार-विमर्श ही चल रहा है। किशोरियाँ विदेशी चैनलों की देखा-देखी अल्प वस्त्र पहनना चाहती हैं, ब्वाय फ्रेंड्स बनाने में रुचि रखती हैं, परन्तु इस मैत्री की गरिमा को बनाए रखने में वे प्रायः अक्षम रहती हैं। अविवाहित मातृत्व विदेशों में आम बात है परंतु हमारा समाज अभी इन मूल्यों को पचाने में असमर्थ है।

पश्चिमी देश उन्मुक्त यौन-संबंधों का परिणाम देख रहे हैं, भोग रहे हैं। एड्स के रूप में हमारा देश भी इस चपेट में आ चुका है, किंतु अब पश्चिमी देश भी हमारी मान्यताओं, मूल्यों से प्रभावित हो रहे हैं। चारित्रिक शुद्धता, योग, ध्यान, पूजा-पाठ की ओर उन्मुख हो रहे हैं।

यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि किशोरावस्था में बच्चे स्वयं को बहुत समझदार समझते हैं और अपनी तुलना में अभिभावकों को मूर्ख। यही कारण है कि वे अभिभावकों से झूठ बोलते हैं, बहाने बनाते हैं और इसी कारण वे प्रायः विपत्ति में भी फँस जाते हैं। डींग हाँकना, बढ़ा-चढ़ाकर कहना उनकी आदत बन जाती है। कुछ बच्चे तो अंत तक अपना परीक्षाफल अभिभावकों को नहीं दिखाते, प्राप्तांकों को मिटाकर अंक बढ़ा लेना, अभिभावक के हस्ताक्षर बना लेना उनके लिए साधारण-सी बात होती है। बच्चे ऐसा मासूम चेहरा बनाकर दोष छुपा ले जाते हैं कि उनके अध्यापक और प्रिंसीपल तक धोखा खा जाते हैं, फिर अभिभावकों को धोखा देना तो आम बात है।

उम्र के इसी दौर में हिंसा, चोरी, लूटपाट की घटनाएँ भी पाई जाती हैं। यद्यपि लड़कियों का अनुपात इस क्षेत्र में लड़कों से काफी कम है, फिर भी दो वर्ष पूर्व दो लड़कियों द्वारा एक लड़की की हत्या की घटना सारे देश में चर्चित हो चुकी है। अतः इस ओर भी विचार करना आवश्यक है।

नोट

किशोरावस्था में तनाव व कुंठा भी देखी जाती है। बहुधा इसका कारण उच्च महत्त्वाकाँक्षा, ईर्ष्या और क्षमता से अधिक अपेक्षा को पाया गया है। अभिभावक अपने बच्चों से ढेर सारी अपेक्षाएँ रखते हैं। बच्चे न हुए रेस के घोड़े हो गए, जिन्हें प्रथम आना ही है। बच्चे भी आशान्वित रहते हैं और असफल होने पर आत्महत्या अथवा घर से भागने जैसा अविवेकी कदम उठा लेते हैं।

आज का समाज संक्रांति काल से गुजर रहा है। पुरानी मान्यताएँ टूट रही हैं, नई बनने की प्रक्रिया में हैं। पुराने मूल्य टूट रहे हैं, नए अभी बन नहीं पाए हैं। ऐसे समाज में जहाँ कथनी और करनी में विरोधाभास पाया जाता है, किसी एक कार्य के अलग-अलग परिणाम निकलते हैं, किशोरों का डगमगाना स्वभाविक है।

ऐसी स्थिति में उनमें सुरक्षा की भावना जगाने का कार्य परिवार एवं विद्यालय दोनों ओर से होना चाहिए। बच्चे पर भरोसा करना चाहिए जिससे वह आप पर और स्वयं अपने पर विश्वास कर सके। गलती पर दंड अवश्य मिलना चाहिए लेकिन उसके लिए सुधारात्मक तथा सकारात्मक रुख अपनाना चाहिए।

किशोर-किशोरियाँ भावुक होते हैं, संवेदनशील होते हैं और उनमें अपार ऊर्जा भरी होती है। इस ऊर्जा का सुदपयोग होनी चाहिए। उद्देश्यपरक व रोजगारपरक शिक्षा होनी चाहिए जिसमें सुखद भविष्य की गारंटी हो।

29.5 अध्यापक की भूमिका (Role of the Teacher)

किशोरों का जोश खरोश अक्सर उद्दंडता में, अंहकार में और प्रचलनों को तोड़ने के रूप में उभरता देखा गया है। कभी तो यह विकृति अश्लील छेड़खानियों तक जा पहुँचती है। गुरुजनों का कर्त्तव्य है कि इस आयु के बालकों के लिए एक आँख प्यार की और दूसरी सुधार की रखी जाए। प्यार की इसलिए कि उनके साथ आत्मीयता, घनिष्ठता बनी रहे, परायेपन जैसा विरोधाभास उत्पन्न न होने पाये और सुधार की टेढ़ी आँख इसलिए कि उनके उभरते हए दोष, दुर्गुणों पर नियंत्रण स्थापित किया जा सके। यह कार्य इतनी कुशलता से होना चाहिए कि सांप मरे न लाठी टूटे, किशोर समीक्षा सुनकर भड़कने न लगें। वस्तु स्थिति का कहना इसलिए आवश्यक है कि उसे कड़ाई के साथ कहे बिना सीधे रास्ते पर नहीं लाया जा सकता। मात्र नम्रता अपनाने से तो वे बात को हँसी-मजाक में टाल देते हैं और उस गलती की गंभीरता नहीं समझते और कई बार तो उलटे चिढ़ने-चिढ़ाने लगते हैं। बुद्धिमानी इसी में है कि बीच का रास्ता निकाला जाए और विरोध, आक्रोश बढ़ाए बिना सुधार का उद्देश्य पूरा हो जाए।

किशोरावस्था में नैतिक शिक्षा-दीक्षा की समस्या बड़ी टेढ़ी है। इसे अकेले अध्यापक या अभिभावक हल नहीं कर सकते। दोनों ही लड़ाई-झगड़े और उद्दंडता से डरते हैं। समझाने-बुझाने में वे अपनी हेकड़ी दिखाते हैं और बगावत करने पर उतारू होते हैं। कोई ऐसा कड़ा दंड भी नहीं दिया जा सकता जिससे उनका भविष्य बिगड़े और बदनामी हो। ऐसी दशा में अध्यापकों और अभिभावकों को मिल जुल कर ही रास्ता निकालना चाहिए। दोनों के बीच पारस्परिक परामर्श होता रहे और ऐसा रास्ता निकलता रहे कि लड़के बागी न होने पावें। उन्हें समझाने-बुझाने से लेकर किसी काम का नेतृत्व भी देना चाहिए। वस्तुतः उद्दंडता नेतागिरी की आकाँक्षा से उभरती है और दूसरों के मुकाबले अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए किशोर कुछ न कुछ ऊटपटाँग करते हैं। ऐसे किशोर के सामने उन महामानवों के चरित्र विशेष रूप से रखने चाहिएं जिन्होंने अपनी प्रतिभा को आदर्श स्थापित करने या लोकोपयोगी महत्त्वपूर्ण काम करने में लगाया और अन्ततः सामान्य लोगों की तुलना में असामान्य भी बने और यशस्वी भी कहलाये। प्रतिभा को एक दुधारी तलवार की तरह समझने का प्रयत्न करना चाहिए जिसका दुरुपयोग होने पर मनुष्य गुजरा हो जाता है, बदनाम होता है और दंड भुगतता है। इसके विपरीत, जिन्होंने प्रतिभा का सुदपयोग किया वे आगे बढ़े, ऊँचे बने और सिरमौर कहलाये। ऐसे किशोर की प्रतिभा और महत्वाकाँक्षा यदि श्रेष्ठता की दिशा में मोड़ी जा सके तो वे आगे चलकर कुछ ऐसे काम भी कर सकते हैं जो उनके लिए ही नहीं समूचे समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो और उन्हें बड़प्पन का अधिकारी बनाये। प्रतिभा दुधारी तलवार है, वह गलत मार्ग पर चल पड़े तो अपना और दूसरों का विनाश भी करती है किन्तु यदि वह उच्च प्रयोजनों में लग पड़े तो ऐसा काम कर गुजरते हैं जो सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करे और

उस व्यक्ति को यशस्वी-मनस्वी बनाये। ऐसे लोगों से निपटना है तो टेढ़ी खीर, पर यदि उन्हें अध्यापक और अभिभावक रचनात्मक ढंग से सुधारें तो उनका सुधारना कठिन भी नहीं होता। नोट

29.6 सारांश (Summary)

- किशोरावस्था, बाल्यावस्था के बाद आती है। यह अवस्था 12 वर्ष की आयु से प्रारम्भ होती है तथा 19 वर्ष की आयु तक चलती है। मनोवैज्ञानिकों ने इस काल को तूफान एवं परेशानी का काल कहा है। विशेषकर यौन दृष्टि से काल में अनेक परिवर्तन होते हैं जिनकी वजह से किशोर का जीवन तनाव, चिन्ता, संघर्ष आदि से घिर जाता है। अत: इस अवस्था में किशोरों का सही से मागदर्शन करने की आवश्यकता रहती है। पश्चिमी विद्वानों ने इसे 'टीन एज' (Teen Age) भी कहा है। यह विकास की सबसे जटिल अवस्था मानी जाती है।
- किशोरावस्था में दो प्रकार के शारीरिक परिवर्तन होते हैं–आन्तरिक तथा बाह्य। इन परिवर्तनों के कारण ही किशोर का व्यक्तित्व एक विशेष प्रकार से विकसित होता है।
- चंचलता समाप्त होकर ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता विकसित हो जाती है तथा स्मरण शक्ति भी बढ़ जाती है। किशोर कल्पना जगत में अधिक घूमते हैं तथा दिवा-स्वप्न के भी शिकार हो जाते हैं। कल्पना का विकास लड़कों में लड़कियों से अधिक होता है। तर्क शक्ति बढ़ जाती है तथा अनेक रुचियाँ भी पैदा हो जाती हैं।
- सामाजिक विकास की दृष्टि से अब किशोर की रुचि परिवार से हटकर बाहरी दुनियाँ की तरफ मुड़ जाती है। वह अपने माता-पिता के प्रति कठोर व्यवहार अपना सकता है लेकिन अपने संगी-साथियों को नहीं छोड़ सकता। माता-पिता की सलाह में उसे अपनी आलोचना ही दिखाई पड़ती है। वह उनकी विचारधाराओं से समझौता नहीं करता तथा उन्हें चुनौती देता है। आत्म-सम्मान की दृष्टि से वह घर में या समूह में जहाँ कहीं भी रहता है, सम्मान चाहता है।
- जो किशोर अत्यधिक गरीब होते हैं उन्हें असुरक्षा की भावना हर समय सताती रहती है। परिणामस्वरूप वे हीन भावना के शिकार हो जाते हैं।
- इस अवस्था में किशोर अत्यधिक सुख एवं आनन्द की कामना करता है। उसे सिनेमा देखना, होटलों में जाना, कहानी-उपन्यास पढ़ना या लिखना, गाने सुनना, अभिनय करना अच्छा लगता है। विपरीत सेक्स से दोस्ती करना उसकी सबसे प्रबल इच्छा रहती है। आत्म निर्भर बनने के लिये भी उसे धन की जरूरत पड़ती है। इसीलिये वह आत्म-निर्भर होना चाहता है। कुछ किशोरों में यह भावना इतनी हावी रहती है कि उनके व्यवहार में यह स्पष्ट दिखाई देती है। बड़े शहरों में किशोर अपने लक्ष्य के लिए अधिक बेचैन रहते हैं।
- किशोर नैतिक मूल्यों एवं सामाजिक मूल्यों को बंधन महसूस करता है। उसे एक ही समय पर बहुत से मूल्यों में बँधना होता है। इसीलिये वह एक ही समय में सबको संतुष्ट करने के प्रयास में स्वयं उलझ कर रह जाता है। अत: किशोर को इस तनाव से मुक्त रखने के लिए माता-पिता, शिक्षकों एवं समाज का यह कर्त्तव्य है कि वे किशोर को ठीक से समझकर उसके व्यक्तित्व का सम्मान करें।
- किशोरों में वीर-पूजा की भावना विकसित हो जाती है। वे आदर्श पुरुष का अनुकरण प्रारम्भ कर देते हैं। अपने को अपने आदर्श पुरुष के अनुरूप बनाने का प्रयास करने लगते हैं। कभी-कभी इस वीर-पूजा की परिणति प्रेम के रूप में भी देखी जा सकती है।

नोट

- आयु में वृद्धि के साथ रुचियों में भी परिवर्तन होता है। किशोर और किशोरी में कुछ समान रुचियाँ होती हैं तथा कुछ असमान रुचियाँ। लड़के खेल-कूद, व्यायाम तथा भावी व्यवसाय के चयन में अधिक रुचि लेते हैं किन्तु लड़कियों की विशिष्ट रुचियाँ संगीत, कला, अभिनय, शृंगार करने के कार्यों में दिखाई देती हैं।
- किशोरावस्था का महत्त्वपूर्ण लक्षण यौनिक विकास है। इस काल में किशोर या किशोरी के यौन अंगों में पर्याप्त वृद्धि होने से उनमें प्रजनन शक्ति आ जाती है। यौन-भावना का इस काल में विस्फोट-सा होता है।
- किशोरावस्था की शक्ति का उपयोग करने के लिए शिक्षा के सही स्वरूप पर ध्यान देना चाहिए जो कि उनकी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि में सहायक हो।
- कशोरावस्था में शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है। उसकी लम्बाई में अधिक वृद्धि होती है। शरीर के पुष्ट एवं स्वस्थ विकास के लिए विद्यालय में व्यायाम की शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए।
- किशोर मानसिक द्वन्द्व की स्थिति में रहता है। अतएव किशोरों को नैतिक शिक्षा देना आवश्यक हो जाता है। नैतिकता की शिक्षा सैद्धान्तिक न होकर व्यावहारिक होनी चाहिये।
- किशोर सामान्यत: अपने भविष्य के बारे में चिन्तित रहते हैं। विद्यालय का यह कर्त्तव्य है कि वह किशोर को व्यवसाय के चयन के बारे में उचित पथ प्रदर्शन प्रदान करे।
- मनोवैज्ञानिकों का मत है कि किशोरों में अध्ययन के प्रति प्रबल रुचि पैदा होती है। इस अवस्था में बालकों को महान पुरुषों की जीवनी तथा उच्चकोटि के साहित्य का अध्ययन करने की प्रेरणा देनी चाहिए।
- किशोर को सामाजिक व्यवस्थापन में सहयोग देने की दृष्टि से उसमें सामाजिक गुणों के विकास पर ध्यान देना चाहिए। किशोर में भी सामूहिकता की भावना होती है। विद्यालयों में सामूहिक शिक्षण पर अध्यापकों को बल देना चाहिए।
- किशोर की अनेक समस्याओं की जड़ काम-प्रवृत्ति ही होती है। इसी के कारण किशोर के संवेग, व्यवहार, रुचि आदि में अस्थिरता रहती है। विद्वानों का मत है कि किशोरों के लिए यौन-शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। यौन-शिक्षा द्वारा किशोरों में काम के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण पैदा करने का प्रयास करना चाहिए।
- किशोर-किशोरियाँ भावुक होते हैं, संवेदनशील होते हैं और उनमें अपार ऊर्जा भरी होती है। इस ऊर्जा का सुदपयोग होनी चाहिए। उद्देश्यपरक व रोजगारपरक शिक्षा होनी चाहिए जिसमें सुखद भविष्य की गारंटी हो।

29.7 शब्दकोश (Keywords)

1. **समलिंगी**–समान लिंग वाले जैसे–स्त्री-स्त्री
2. **विषम लिंगी**–विरोधी लिंग वाले जैसे–स्त्री-पुरुष

29.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. किशोरावस्था में होने वाले परिवर्तनों को विस्तार से समझाइए।
2. किशोरावस्था में किशोर के समक्ष क्या-क्या समस्याएँ आती हैं? समझाइए।
3. किशोरावस्था में किशोरों की शिक्षा एवं उनके मार्गदर्शन के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
4. किशोरावस्था की संघर्षपूर्ण परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।
5. किशोरावस्था में अध्यापक की क्या भूमिका होनी चाहिए? समझाइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment) नोट

1. टीन एज 2. काम प्रवृत्ति 3. 19 वर्ष 4. विरोधी

29.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. मनोविज्ञान–*डॉ. सरयू प्रसाद, आगरा बुक स्टोर, आगरा।*
2. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.एच. सिन्हा और रचना शर्मा, अटलांटिक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।*
3. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
4. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 30: व्यावहारिक समस्याएँ (Behavioural Problems)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

30.1 बालक के व्यवहार पर हानिकारक प्रभाव डालने वाले कारक (Factors which Adversely Affect Behaviour of Child)

30.2 बालक के व्यवहार को अच्छा बनाए रखने के उपाय (Measures to keep Good Behaviour of Child)

30.3 सारांश (Summary)

30.4 शब्दकोश (Keywords)

30.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

30.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- बालक के व्यवहार पर हानिकारक प्रभाव डालने वाले कारक तत्वों को समझने में।
- बालक के व्यवहार को बेहतर बनाने वाले उपायों को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा का उद्देश्य स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का विकास करना है। शिक्षा द्वारा ही बालक को मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाया जा सकता है। शिक्षा-प्रक्रिया की सफलता मानसिक स्वास्थ्य पर ही निर्भर है जैसा कि मनोवैज्ञानिक **फ्रेन्डसन** का विचार है–"मानसिक स्वास्थ्य और सीखने में सफलता का बहुत घनिष्ठ संबंध है।" (Mental health and success in learning is very closely related.) **–Frandsen**

इस कथन के अनुसार, शिक्षण-प्रक्रिया में शिक्षार्थी एवं शिक्षक दोनों के मानसिक स्वास्थ्य का ठीक होना अनिवार्य है। मानसिक रूप से स्वस्थ न होने पर बालक को शिक्षा ग्रहण करने में तथा शिक्षक को शिक्षण-कार्य में सफलता नहीं मिलती। अत: उनके मानसिक अस्वास्थ्य के कारणों पर तथा मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाए रखने वाले उपायों पर विचार करना आवश्यक है।

नोट

30.1 बालक के व्यवहार पर हानिकारक प्रभाव डालने वाले कारक (Factors which Adversely Affect Behaviour of Child)

बालकों के मानसिक स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालने वाले अनेक कारण या कारक होते हैं। ये कारक निम्नलिखित हैं–

1. **वंशानुक्रम का प्रभाव**–दोषपूर्ण वंशानुक्रम के कारण बालक में मानसिक दुर्बलता जैसे बुद्धि की कमी या स्नायु संबंधी रोग पाये जाते हैं। इस कारण वह मानसिक रूप से अस्वस्थ रहता है।

नोट्स वंशानुक्रम संबंधी दोष बच्चों में सदैव अथवा अनिवार्य रूप से नहीं होते।

2. **शारीरिक स्वास्थ्य का प्रभाव**–शारीरिक स्वास्थ्य का मानसिक स्वास्थ्य से घनिष्ठ संबंध है। रोगी व्यक्ति नई परिस्थितियों से सामंजस्य करने में कठिनाई का अनुभव करता है।
3. **शारीरिक दोष या विकार का प्रभाव**–शारीरिक दोष दुर्घटना या बीमारी आदि के कारण आ जाते हैं। शारीरिक दोष के कारण भी बालक में हीनता की भावनाएँ पैदा हो जाती हैं। उसके लिए हीनता की भावनाएँ अपने साथियों और समाज के बीच समायोजन की समस्याएँ पैदा कर देती हैं।
4. **परिवार से संबंधित कारक**–बालक के व्यक्तित्व पर परिवार संबंधी निम्नांकित कारकों का प्रभाव पड़ता है–

   (क) **परिवार का वातावरण**– यदि परिवार के सदस्यों में सदा लड़ाई-झगड़ा या पारस्परिक संघर्ष होता रहता है तो बालक पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

   (ख) **परिवार की निर्धनता**– परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण बालक कठोर और उग्र हो जाता है, उसमें सुरक्षा का अभाव, आत्मविश्वास की कमी तथा हीनता की भावना पैदा हो जाती है और ये सब बातें उसके मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालती है।

   (ग) **परिवार का कठोर अनुशासन**–यदि बालक को छोटी-छोटी बातों पर डाँट-फटकार पड़ती रहती है तो उसमें आत्महीनता की भावना पैदा हो जाती है। ऐसे वातावरण में वह मानसिक रूप से अस्वस्थ रहने लगता है।

   (घ) **माता-पिता का अनुचित पक्षपात**–यदि परिवार में माता-पिता किसी कारणवश किसी बच्चे को कम और किसी को अधिक स्नेह करते हैं तब भी उन बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ता है जिन्हें कम स्नेह मिलता है। ऐसी स्थिति में अन्य भाई-बहनों से या परिवार के अन्य बच्चों से ईर्ष्या-द्वेष के भाव रखते हैं। उनमें झगड़ालू प्रवृत्ति पैदा हो जाती है और वे सदा दूसरों को हानि पहुँचाने का प्रयत्न करते रहते हैं।

   (ङ) **माता-पिता की अत्यधिक ममता**– बहुत से माता-पिता इकलौते बच्चों को या मुश्किल से जीवित रहने वाले बच्चों को या अमीरी आदि के कारणों से बच्चों को अत्यधिक स्नेह करते हैं। इससे भी बालकों को हानि होती है। उनमें आत्मनिर्भता का अभाव पाया जाता है। वे जीवन की कठिनाइयों का सामना करने में असमर्थ होते हैं। उन पर हर समय बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है, इससे उनका स्वतंत्र विकास नहीं हो पाता।

नोट

(च) **माता-पिता के ऊँचे आदर्शों का प्रभाव**–जिस परिवार में माता-पिता ऊँचे नैतिक आदर्शों वाले होते हैं, वे अपने बच्चों से भी उन्हीं आदर्शों के अनुकूल आचरण करने की आशा करते हैं। इन ऊँचे आदर्शों के बोझ से दबकर बच्चों को नुकसान उठाना पड़ता है–वे साधारण जीवन से दूर रहकर, कल्पना लोक में विचरण करने लगते हैं और इस प्रकार वे सांसारिक समस्याओं को हल नहीं कर पाते। उनके मन में आदर्श और यथार्थ के बीच सदा संघर्ष होता रहाता है। फलस्वरूप स्नायुमंडल (Nervous System) प्रभावित होता है और उनमें स्नायु संबंधी रोग उत्पन्न हो जाता है।

5. **मनोवैज्ञानिक कारण**–मानसिक अस्वास्थ्य के उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त कुछ ऐसे मनोवैज्ञानिक कारण हैं जो मानसिक अस्वस्थता या मानसिक विकार उत्पन्न करने में सहायक होते हैं, जिन्हें मानसिक संघर्ष संवेगात्मक तनाव, भावना-ग्रन्थियाँ, चिन्ता, मानसिक दुर्बलता और थकान आदि कहा जाता है। इनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इन सबका बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

6. **समाज से संबंधित कारण:** बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर समाज के दोषपूर्ण संगठन और वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। असंगठित समाज के बालकों का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं रह सकता क्योंकि यहाँ के वातावरण में सदा कलह, लड़ाई-झगड़े, विभिन्न प्रकार की सामाजिक बुराइयाँ जैसे चोरी, झूठ, बेईमानी आदि दिखाई देती है। इस प्रकार के समाज में पलने वाले बालकों में संवेगात्मक अस्थिरता, ईर्ष्या, द्वेष, कलह, आचरणहीनता आदि दुर्गुण स्थान बना लेते हैं। समाज के जातीय और धार्मिक संघर्ष, धनी और निर्धन वर्ग की दूरी, ऊँच-नीच की भावनाएँ, विभिन्न समूहों में ईर्ष्या, द्वेष, असहयोग आदि– बालकों में मानसिक तनाव पैदा कर देते हैं। समाज की इस प्रकार की स्थिति और वातावरण बालक के मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है।

टास्क क्या आप इससे सहमत हैं कि वर्ग विषमता (धनी अथवा निर्धन वर्ग) एवं जातिगत विषमता बच्चों में हीन भावना उत्पन्न करने में मददगार होती है? पक्ष अथवा विपक्ष में अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

7. **विद्यालय से संबंधित कारण**–परिवार के बाद बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर विद्यालय का भी अवांछनीय प्रभाव इस प्रकार पड़ता है–

(क) **विद्यालय का वातावरण**–यदि विद्यालय में बालक पर अत्यधिक नियंत्रण रखा जाता है, उसकी इच्छाओं का दमन किया जाता है या पाठ्य विषयान्तर क्रियाओं में भाग नहीं लेने दिया जाता, तब उसके मानसिक स्वास्थ्य में बाधा पड़ती है। यदि विद्यालय तथा कक्षा में सदा कड़े अनुशासन और भय का वातवरण रहता है, तो बालक मानसिक रूप से अस्वस्थ रहता है।

(ख) **दोषपूर्ण पाठ्यक्रम**–यदि बालकों को उनकी रुचि, आवश्यकताओं और योग्यताओं के अनुसार पाठ्यक्रम नहीं मिलता तो वे पढ़ने में रुचि नहीं लेते और परीक्षा में असफल हो जाते हैं, इससे उनका मानसिक स्वास्थ्य खराब हो जाता है। जब उन्हें पाठ्य-विषय नहीं याद हो पाता तो वे सदा चिन्तित और भयभीत रहते हैं कि उन्हें कक्षा में दण्ड मिलेगा। ऐसे बालक मानसिक तनाव की स्थिति में रहते हैं और अपराध-प्रवृत्ति के शिकार हो जाते हैं। प्राय: वे पाठशाला से भाग जाते हैं।

(ग) **अनुपयुक्त शिक्षण-विधियाँ**–यदि शिक्षक वैयक्तिक भिन्नता पर ध्यान न देकर, अमनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करते हैं, तो बालक को ज्ञानार्जन में कठिनाई होती है और वह जब कुछ सीख नहीं पाता तो निराश हो जाता है।

नोट

(घ) **दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली**–वर्तमान समय में आत्मनिष्ठ परीक्षाएँ प्रचलित हैं, उनसे बालक की वास्तविक प्रगति और योग्यता का सही मूल्यांकन नहीं हो पाता। प्राय: परीक्षा के अनेक दोषों के कारण योग्य बालकों को कक्षोन्नति नहीं मिल पाती और भाग्यवश किन्हीं कारणों से अयोग्य बालक अच्छे नंबरों से उत्तीर्ण हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में योग्य बालक निरुत्साहित होकर आत्मविश्वास खोने लगते हैं और अयोग्य बालक भी पढ़ने में रुचि नहीं लेते हैं। इस प्रकार के बालक विद्यालय तथा समाज में अपने को समायोजित नहीं कर पाते।

(ङ) **प्रतियोगिता की भावना**–प्रतियोगिता की भावना, जिसमें ईर्ष्या, द्वेष और घृणा के भाव होते हैं वह भी बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है।

(च) **शिक्षक के व्यक्तित्व का प्रभाव**–यदि शिक्षक में संवेगात्मक अस्थिरता होती है तो वह बालक से उचित व्यवहार नहीं कर पाता। उसका व्यवहार कठोर और पक्षपातपूर्ण हो जाता है। यदि वह छोटी-छोटी बात पर दण्ड देता या डाँटता रहता है तो बालकों का मस्तिष्क असंतुलित हो जाता है। ऐसी स्थिति में बालक अधिक उग्र और उद्दण्ड बन जाते हैं या सदा भयभीत से रहते हैं और भावना-ग्रंथियों के शिकार बन जाते हैं।

30.2 बालक के व्यवहार को बेहतर बनाए रखने के उपाय (Measures to Keep Good Behaviour of Child)

बालक के मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में परिवार, विद्यालय तथा समाज का विशेष योगदान है। इस दृष्टि से बालक के मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने तथा उन्नति करने में सहायता देने वाले कारक या उपाय निम्नलिखित हैं–

(क) **परिवार के कार्य**–मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा करने में परिवार का सबसे अधिक महत्त्व है। परिवार मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने में निम्नांकित रूप से सहायक हो सकता है–

1. **विकास के लिए आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करना**– मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, "मानसिक रूप से स्वस्थ्य बालक में 6 वर्ष की आयु में स्वतंत्रता, आत्मविश्वास और उत्तरदायित्व की भावनाओं का विकास हो जाता है।" परिवार को बालक की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तथा उसकी रुचि, आकांक्षा और मानसिक योग्यता के विकास के लिए पूर्ण अवसर, सुविधा और वातावरण प्रदान करना चाहिए।

क्या आप जानते हैं मानसिक रूप से स्वस्थ बालक में 6 वर्ष की आयु में ही उत्तरदायित्वों की भावना का विकास हो जाता है।

2. **परिवार का वातावरण**–बालक के मानसिक स्वास्थ्य को बनाने के लिए परिवार का वातावरण शान्तिपूर्ण होना चाहिए तथा परिवार के सभी सदस्यों में परस्पर प्रेम और सद्भावनाएँ होनी चाहिए। बालक को रुचि के अनुसार कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। माता-पिता का मानसिक स्वास्थ्य भी अच्छा होना चाहिए।

3. **माता-पिता का व्यवहार**– माता-पिता का बच्चों के प्रति उचित व्यवहार उनके मानसिक स्वास्थ्य की उन्नति में सहायता करता है। इस संबंध में **कुप्पूस्वामी** ने लिखा है, "जो माँ अपने बच्चों को प्रेम और सुरक्षा प्रदान करती है, वह उनके मानसिक स्वास्थ्य में सहयोग देती है, जो पिता अपने बच्चों के साथ

नोट

अपना जीवन और समय व्यतीत करता है, वह उनको स्वस्थ मानसिक दृष्टिकोण का विकास करने में सहायता करता है।"

(ख) **विद्यालय के कार्य**–बालक के व्यक्तित्व का विकास परिवार से आरंभ होता है, किन्तु विद्यालय में विभिन्न साधनों द्वारा यह कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न किया जाता है। विद्यालय में शिक्षक का कार्य बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। वह बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने में तथा मानसिक अस्वस्थता को रोकने के लिए निम्न कारकों पर ध्यान देकर सहायता कर सकता है। विद्यालय में मानसिक स्वास्थ्य की उन्नति के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए–

1. **अच्छा वातावरण**–विद्यालय के वातावरण का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर बहुत प्रभाव पड़ता है। विद्यालय में नियमित शारीरिक शिक्षा, भोजन, विश्राम, खेलकूद, व्यायाम, स्वच्छता तथा रोगों के उपचार की व्यवस्था होनी चाहिए।
2. **शिक्षकों का स्नेहपूर्ण व्यवहार**–शिक्षक को बालकों से नम्र, शिष्ट और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। शिक्षक को सभी विद्यार्थियों से बिना किसी भेदभाव के समान व्यवहार करना चाहिए।
3. **अनुशासन**– विद्यालय का अनुशासन जनतंत्रीय सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए अर्थात् भय, दण्ड, दमन और कठोरता की नीति नहीं अपनानी चाहिए। बालकों में आत्मानुशासन की भावना जाग्रत करने के लिए उन्हें विद्यालय के उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करने के लिए देना चाहिए।
4. **सन्तुलित और उपयुक्त पाठ्यक्रम**–पाठ्यक्रम बालक की आयु, रुचि और आवश्यकता के अनुकूल और लचीला हो। पाठ्यक्रम में इस प्रकार के विषय हों जिससे विद्यार्थी के व्यक्तित्व के समस्त पहलुओं पर स्वस्थ और संतुलित विकास हो सके।
5. **संतुलित गृह-कार्य**–विद्यार्थियों को बहुत अधिक गृह-कार्य नहीं देना चाहिए। गृह-कार्य के बोझ से उन्हें सदा चिन्ता लगी रहती है कि विद्यालय में गृह-कार्य न करके ले जाने पर दण्ड मिलेगा। इससे उनके मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है।
6. **पाठ्य-विषयान्तर क्रियाओं का आयोजन**–विद्यालय में खेलकूद, मनोरंजन, स्काउटिंग एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन होना चाहिए। इन क्रियाओं के द्वारा बालकों की मूल-प्रवृत्तियों, प्रेरणाओं और इच्छाओं को स्वस्थ रूप में व्यक्त होने का अवसर मिल जाता है।
7. **शिक्षण-विधि के प्रति नया दृष्टिकोण**–परम्परागत शिक्षण-विधियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। नवीन मनोवैज्ञानिक शिक्षण-विधियों का प्रयोग करना चाहिए जो कि क्रिया, व्यवहार, अभ्यास, स्वानुभव तथा स्वतंत्रता के सिद्धांतों पर आधारित हो।
8. **शैक्षिक निर्देशन**–बालकों को उनकी रुचि और योग्यता के अनुसार विषय चुनने में सहायता करना चाहिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

दिए गए कथन के सामने सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए।

1. माता-पिता के ऊँचे आदर्श बच्चे में हीनभावना पैदा करते हैं। ☐
2. मानसिक रूप से अस्वस्थ्य बच्चों में भी असाधारण प्रतिभा होती है। ☐
3. स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है। ☐

नोट

4. आवश्यकता से अधिक गृह-कार्य का बोझ बच्चों में तनाव को जन्म देता है। ☐

5. बच्चों में सीखने की क्षमता होती है, अत: किसी भी प्रकार के वातावरण में सीखने में सक्षम रखते हैं। ☐

9. **व्यक्तिगत निर्देशन**–बालकों की बहुत-सी समस्याएँ ऐसी होती हैं जिन्हें वे स्वयं नहीं सुलझा सकते। अत: कुशल व्यक्तियों तथा मनोवैज्ञानिकों की सहायता से समस्याओं का समाधान सरलतापूर्वक किया जा सकता है। इस प्रकार के निर्देश की विद्यालय में व्यवस्था होनी चाहिए।

10. **व्यावसायिक निर्देशन**–शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य व्यावसायिक कुशलता प्रदान करना है। किशोरों को अपने अध्ययनकाल में भावी व्यवसाय की चिन्ता सताने लगती है। व्यावसायिक निर्देशन द्वारा उन्हें उपर्युक्त व्यवसाय चुनने में सहायता दी जा सकती है।

11. **अध्यापक-अभिभावक परिषद्**–बालक की शिक्षा में परिवार तथा अभिभावक विशेष योग देते हैं। इसलिए बालक के स्वस्थ विकास में शिक्षकों तथा अभिभावकों दोनों को मिलकर समय-समय पर विचार-विमर्श करना चाहिए। इस कार्य के लिए अभिभावक-अध्यापक परिषद् की स्थापना की जानी चाहिए।

12. **धार्मिक और नैतिक शिक्षा की व्यवस्था**–बालक के नैतिक और चारित्रिक विकास के लिए धर्म और नीति संबंधी बातों से भी उसे समय-समय पर अवगत कराते रहना चाहिए। इससे वे स्वस्थ भावनाओं और अच्छे आदर्शों को सहजता से अपनाते हैं।

13. **अच्छी आदतों का निर्माण**–मानसिक स्वास्थ्य के लिए अच्छी आदतों का निर्माण आवश्यक है। शिक्षक को बालकों में नियमित जीवन, संतुलित खान-पान तथा सादा जीवन उच्च विचार की आदतों को डालने का प्रयत्न करना चाहिए।

14. **मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञों से सलाह लेना**–विद्यालयों में बालकों के मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का तथा समस्यात्मक बालकों के अध्ययन करने के लिए विशेषज्ञों से सलाह लेनी चाहिए और उचित रूप से उस की व्यवस्था की जानी चाहिए।

    विद्यालय में बालकों की शैक्षिक प्रगति अन्य क्रियाओं तथा आचरण-व्यवहार का लेखा अवश्य रखना चाहिए। इसे देखकर शिक्षक तथा अभिभावक बालकों के मानसिक स्वास्थ्य की उन्नति के लिए प्रयास कर सकते हैं।

15. **अच्छी नागरिकता की शिक्षा**–बालकों को अच्छा नागरिक बनाने की शिक्षा आरंभ से ही विद्यालय में देनी चाहिए। समाज का सदस्य होने के नाते, सामाजिक गुणों के विकास के लिए विविध विषयों के माध्यम से तथा विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा आदर्श नागरिकता एवं सामाजिकता की शिक्षा देनी चाहिए।

मानसिक स्वास्थ्य को अच्छा बनाए रखने के लिए उपर्युक्त उपाय मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम के साधारण उपाय हैं।

30.3 सारांश (Summary)

- शिक्षा का उद्देश्य स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का विकास करना है। शिक्षा द्वारा ही बालक को मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाया जा सकता है।

नोट

- मानसिक रूप से स्वस्थ न होने पर बालक को शिक्षा ग्रहण करने में तथा शिक्षक को शिक्षण-कार्य में सफलता नहीं मिलती। अत: उनके मानसिक अस्वास्थ्य के कारणों पर तथा मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाए रखने वाले उपायों पर विचार करना आवश्यक है।
- बालकों के मानसिक स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालने वाले अनेक कारण या कारक होते हैं। (1) वंशानुक्रम का प्रभाव, (2) शारीरिक स्वास्थ्य का प्रभाव (3) शारीरिक दोष या विकास का प्रभाव (4) परिवार से संबंधित कारक (5) मनोवैज्ञानिक कारण (6) समाज से संबंधित कारण (7) विद्यालय से संबंधित कारण।
- बालक के मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में परिवार, विद्यालय तथा समाज का विशेष योगदान है। इस दृष्टि से बालक के मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने तथा उन्नति करने में सहायता देने वाले कारक या उपाय निम्नलिखित हैं–(क)परिवार के कार्य–(1) विकास के लिए आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करना, (2) परिवार का वातावरण, (3) माता-पिता का व्यवहार (ख) विद्यालय के कार्य–(1) अच्छा वातावरण (2) शिक्षकों का स्नेहपूर्ण व्यवहार (3) अनुशासन, (4) संतुलित और उपयुक्त पाठ्यक्रम (5) संतुलित गृह-कार्य (6) पाठ्य-विषयान्तर क्रियाओं का आयोजन (7) शिक्षण-विधि के प्रति नया दृष्टिकोण (8) शैक्षिक निर्देशन (9) व्यक्तिगत निर्देशन (10) व्यावसायिक निर्देशन (11) अध्यापक-अभिभावक परिषद् (12) धार्मिक और नैतिक शिक्षा की व्यवस्था।

30.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **आत्मनिष्ठ**–आत्मनिर्भर
2. **जनतंत्रीय सिद्धांत**–समानता के भाव पर आधारित, जनतांत्रिक प्रक्रिया द्वारा चलाया जाने वाला।

30.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. बालक के व्यवहार पर हानिकारक प्रभाव डालने वाले कारक तत्वों का विवेचना कीजिए।
2. बालक के व्यवहार को बेहतर बनाने वाले उपायों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (✓) 2. (×) 3. (✓) 4. (✓) 5. (✓)

30.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
2. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.एच. सिन्हा और रचना शर्मा, अटलांटिक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।*
3. मनोविज्ञान–*डॉ. सरयू प्रसाद, आगरा बुक स्टोर, आगरा।*
4. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*

नोट

इकाई 31: चिन्तन, तर्क व समस्या-समाधान (Thinking, Reasoning and Problem-Solving)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

31.1 चिन्तन का स्वरूप (Nature of Thinking)

31.2 चिन्तन के प्रकार (Types of Thinking)

31.3 चिन्तन के साधन (Tools of Thinking)

31.4 भाषा और चिन्तन (Language and Thinking)

31.5 चिन्तन और शिक्षा (Thinking and Education)

31.6 तर्क तथा समस्या-समाधान (Reasoning and Problem-Solving)

31.7 तर्क के प्रकार (Types of Reasoning)

31.8 तार्किक चिन्तन का प्रशिक्षण (Training of Logical Thinking)

31.9 समस्या-समाधान का अर्थ (Meaning of Problem-Solving)

31.10 समस्या-समाधान की विधियाँ (Methods of Problem-Solving)

31.11 सारांश (Summary)

31.12 शब्दकोश (Keywords)

31.13 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

31.14 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- चिंतन के स्वरूप एवं प्रकार को समझने में।
- चिंतन के साधन को जानने में।
- भाषा, शिक्षा और चिंतन को समझने में।
- तर्क समस्या एवं तर्क के प्रकार को जानने में।

नोट

- तार्किक चिंतन के प्रशिक्षण के विषय में जानकारी प्राप्त करने में।
- समस्या-समाधान की विधियों को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

विश्व की प्रगति में मानव की चिन्तन-प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण योगदान है। चिन्तन-शक्ति के कारण ही मनुष्य सभी प्राणियों में श्रेष्ठ माना जाता है। वह स्वभावत: चिन्तनशील होता है। यह शक्ति उसे प्रकृति द्वारा प्राप्त होती है। मनोविज्ञान के अनुसार चिन्तन एक मानसिक प्रक्रिया है जिसमें संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, ध्यान, स्मृति और कल्पना आदि प्रक्रियाओं का समावेश होता है। व्यक्ति की विचार-प्रक्रिया में कोई-न-कोई प्रयोजन निहित होता है। इस प्रयोजन को पूरा करने के लिए ही वह चिन्तन का सहारा लेता है। व्यक्ति की अपनी इच्छाओं या लक्ष्यों की पूर्ति तथा समस्याओं को सुलझाने में अनेक प्रयत्न करने पड़ते हैं और इस प्रकार के कार्यों में सफलता प्राप्त करने के लिए उसे पहले से ही एक निश्चित योजना बनानी पड़ती है और इस योजना के लिए सोच-विचार कर कार्य करना पड़ता है तब उसे सफलता मिलती है। अत: आरम्भ से शिक्षा के माध्यम से बालकों के चिन्तन-प्रत्यय, निर्माण और तर्क-शक्ति के विकास पर ध्यान देना आवश्यक है।

31.1 चिन्तन का स्वरूप (Nature of Thinking)

पिछले अध्यायों में सीखने की प्रक्रिया तथा ज्ञानात्मक विकास से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं पर यथा-अवधान और रुचि, आदत, निर्माण, संवेदना और प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, कल्पना आदि पर विचार किया गया। सीखने की जटिल प्रक्रिया में ये सभी क्रियाएँ निहित हैं। वह प्रक्रिया जिसमें हम अतीत के अनुभवों के निष्कर्षों का प्रयोग किसी नयी स्थिति का सामना करने के लिए और किसी समस्या का समाधान करने के लिए करते हैं, उस मानसिक प्रक्रिया को **'चिन्तन'** कहा जाता है।

नोट्स

शिक्षण-कार्य में बालकों को स्वयं विचार या चिन्तन करने का प्रशिक्षण भी देना चाहिए, ताकि वे अपने पूर्व आर्जित ज्ञान का प्रयोग और अधिक ज्ञानार्जन में कर सकें। कुछ बालक नैसर्गिक रूप से दूसरों से अच्छे विचारक हो सकते हैं, अन्य सभी बालकों में चिन्तन या विचार-शक्ति का विकास तथा प्रत्यय-निर्माण बुद्धिमत्तापूर्ण प्रशिक्षण द्वारा किया जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक सी. टी. मॉर्गन ने इस सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं– "वास्तव में प्रतिदिन की वार्ता में प्रयोग होने वाले 'चिन्तन' या 'विचारण' शब्द में विभिन्न क्रियाओं का विस्तृत विन्यास निहित रहता है।" एक ओर इसका अर्थ स्मरण कराना या स्मृति से कुछ ही अधिक होता है। उदाहरणार्थ, जिस सड़क पर हम आ रहे हैं और संकेत लिखा है, "विचार करो असावधानी से चलने का परिणाम है, दुर्घटना।" यहाँ विचार करो का अर्थ है दुर्घटना के सम्बन्ध को याद करो या ध्यान में रखो। इसी प्रकार जब कोई कहता है कि 'सोच कर बताओ' तब वह ऐसी बात को स्मरण करने के लिए कहता है जिसे हमने कभी सीखा था। इन स्थितियों में स्मरण की प्रक्रिया में कुछ चिन्तन निहित रहता है। दूसरी ओर 'चिन्तन' शब्द का अर्थ उस गंभीर विचारशील क्रिया से होता है जिसमें किसी गहन और जटिल समस्या को सुलझाने में एक वैज्ञानिक संलग्न रहता है। वह घंटों गणित के सिद्धान्तों में उलझा रहता है या विभिन्न विधियों की कल्पना करता है जिनसे वह समस्या सुलझ सकती है।

नोट

चिन्तन सरल हो या जटिल, इनमें एक तथ्य सदा निहित रहता है–एक मध्यस्थ प्रक्रिया। जब हम विचार करते हैं, तब पूर्व अधिगम को वर्तमान अनुक्रिया से कुछ जोड़ते हैं। उद्दीपन स्थितियों और उनके प्रति जो अनुक्रियाएँ हम करते हैं, इन दोनों के बीच के रिक्त स्थान की पूर्ति मध्यस्थ प्रतिक्रियाएँ करती हैं। जब हम किसी समस्या को सुलझाने में लगे रहते हैं, ये प्रक्रियाएँ ऐसे तथ्यों को स्थानापन्न करती हैं, जिन्हें हम सम्भवत: स्पष्ट रूप से प्रयत्न और भूल पद्धति में करें। इसे स्पष्ट करने के लिए एक प्रसिद्ध उदाहरण प्रस्तुत है–

"मान लीजिए आपको एक जिगशा पहेली को जोड़ना है। इस पहेली को सुलझाने का कठिन तरीका यह होगा कि हर टुकड़े को यथार्थत: जोड़कर देखना कि वह दूसरे टुकड़े के साथ ठीक बैठता है या नहीं। यहाँ विशुद्ध 'प्रयत्न और भूल' द्वारा पहेली को सुलझाना होगा। यदि इस पहेली में बहुत टुकड़े जोड़ने होंगे, तो बहुत अधिक समय लगेगा और जोड़ने में हजारों 'प्रयत्न और भूल' के प्रयास करने होंगे। सम्भवत: इनमें से आप कुछ क्रियाओं को करेंगे। किन्तु, जो उपयुक्त क्रियाओं के निकट होंगी, वैसी दो या तीन संभावित क्रियाओं को आप चुनें। अधिकांशत: आप विचारेंगे। आपके विचारने में वे ही बातें होंगी, जिन्हें आप जैसे 'प्रयत्न या भूल' द्वारा करते टुकड़ों को वास्तव में रखे बिना बहुधा विचारेंगे कि उन टुकड़ों को किस तरह रखा जाये। आप अपने मस्तिष्क में ही उन्हें साथ-साथ रखेंगे और हाथों से चेष्टा करने से पूर्व निर्णय लेंगे कि वे उस प्रकार ठीक से रखे जा सकेंगे या नहीं। अत: आप चिन्तन द्वारा वही करेंगे, जो आप उन टुकड़ों को ठीक जगह पर रखकर करते हैं।" इसी प्रकार हम शतरंज के खेल का उदाहरण भी दे सकते हैं जिसमें शतरंज के मोहरों को वास्तविक स्थान पर रखने के पूर्व हम विचारेंगे कि उनको किस प्रकार रखा जाए। उन मोहरों को ठीक स्थान पर रखने के लिए हम उन्हें मस्तिष्क में रखते हए निर्णय लेते हैं।

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि चिन्तन-प्रक्रिया एक मध्यस्थ प्रक्रिया के रूप में किस प्रकार कार्य करती है।

इसी प्रकार **मनोवैज्ञानिक ह्यूजेस** (Hughes) ने चिन्तन-प्रक्रिया का विश्लेषण एक शब्द वर्ग पहेली का उदाहरण देकर समझाया है–शब्द वर्ग पहेली में सही हल ढूँढ निकालने के लिए हमारी विचार-प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। विभिन्न शब्दों की उपयुक्तता पर हम बार-बार सोचते रहते हैं और तब हम प्रत्येक शब्द-विशेष में निहित विचार पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस प्रकार मस्तिष्क में विभिन्न हल या समाधान उपस्थित होते चलते हैं। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि ढूँढा हुआ शब्द उस रिक्त स्थान की पूर्ति करने में उपयुक्त प्रतीत हो। यदि आप वर्ग पहेली के हलों को ढूँढने में प्रवीणता प्राप्त कर चुके हैं तो यह भी सम्भव है कि आपके मास्तिष्क में आया हुआ कोई हल भी पुन: चिन्तन के बाद इसलिए न जँच सके, क्योंकि वह बिल्कुल सटीक नहीं बैठ रहा है। अतएव मस्तिष्क में सही शब्द ढूँढने का प्रयास एवं उनमें निहित विचार का परीक्षण अबाध गति से चलता रहता है और अन्ततोगत्वा कोई हल जो हर दृष्टि से उपयुक्त होता है, एकाएक सामने उपस्थित हो जाता है।

चिन्तन एक ज्ञानात्मक प्रक्रिया (Cognitive Process) है। इसके अन्तर्गत प्रत्यक्षात्मक तथा प्रत्ययात्मक या कल्पनात्मक ज्ञान निहित है। दूसरे शब्दों में चिन्तन या विचार व्यक्ति की समस्त मानसिक प्रक्रियाओं में समाया रहता है। वह मानव मस्तिष्क की एक ऐसी प्रक्रिया है जो हमें पहले से ही किसी परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार कर देती है। व्यक्ति विचार-शक्ति के कारण ही किसी सम्भावित जीवनचर्या की क्रियाओं की कल्पना या उसका मानसिक चित्रण कर लेता है और उसी के अनुसार वह आने वाली परिस्थितियों से अनुकूलन स्थापित करने का प्रयास करता है।

क्या आप जानते हैं

पशु वास्तविक रूप से प्रयास और त्रुटि द्वारा सीखते तथा समस्या का समाधान कर लेते हैं। किन्तु मनुष्य विचारात्मक स्तर (Ideational Level) पर 'प्रयास और भूल' क्रिया को सम्पन्न करता है। चिन्तन के समय प्रतीकों (Symboles) या भाषा के सहारे किसी समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया जाता है।

नोट

जिस समय किसी समस्या पर विचार किया जाता है मन में अनेक समाधान उपस्थित होते रहते हैं और जो समाधान ठीक नहीं होता है, उसे हम छोड़ते जाते हैं। इस प्रकार सम्भव समाधानों के सहारे समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया जाता है। अत: कह सकते हैं कि चिन्तन वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा समस्याओं का समाधान किया जाता है। चिन्तन के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिकों की परिभाषाओं का अध्ययन करना आवश्यक है जो इस प्रकार है–

(1) वारेन (Warren)– "चिन्तन एक प्रतीकात्मक स्वरूप की विचारात्मक प्रक्रिया है, जिसका प्रारम्भ व्यक्ति के समक्ष उपस्थित किसी समस्या या कार्य से होता है। इसमें कुछ प्रयत्न और भूल से युक्त किन्तु उसकी समस्या प्रवृत्ति से प्रभावित क्रिया होती है जिससे कि अन्त में समस्या का समाधान या निष्कर्ष मिलता है।" (Thinking is an ideational activity symbolic in character, initiated by the problem or task the individual is facing, involving some trial and error but under directing influences of his problem set and ultimately leading a conclusion or solution of the problem.)

(2) रॉस (Ross)– "चिन्तन मानसिक क्रिया का ज्ञानात्मक पहलू है।" (Thinking is mental activity in its cognitive aspect.)

(3) वेलेन्टाइन (C. W. Valentine)– "मनोवैज्ञानिक विवेचन में चिन्तन शब्द का प्रयोग उस क्रिया के लिए किया जाता है, जिसमें विशेष रूप से शृंखलाबद्ध विचार किसी लक्ष्य या उद्देश्य की ओर प्रवाहित होते हैं।" (In Psychological discussion it is well to keep the term thinking" for an activity which consists essentially of a connected flow of ideas which are directed towards end of purpose.)

वुडवर्थ के अनुसार चिन्तन-प्रक्रिया में निम्नांकित तत्व होते हैं–

(1) किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होना, (2) लक्ष्य-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना, (3) पूर्व निरीक्षित तथ्यों या अनुभवों का स्मरण करना, (4) पूर्व तथ्यों और अनुभवों को नये नमूने (Pattern) में संयोजित करना, (5) आन्तरिक वाक्गतियाँ और मुद्राएँ।

विचार प्रक्रिया में ये तत्व निहित होते हैं। शिक्षाशास्त्री **डीवी** ने भी अपनी पुस्तक 'हाउ वी थिंक' (How we think) में मानव-मस्तिष्क में विचारों की प्रक्रिया में पाँच तार्किक स्थितियों का वर्णन किया है। **डीवी** के अनुसार विचार-प्रक्रिया पाँच सोपानों द्वारा सम्पन्न होती है–

(1) सोचने का प्रारम्भ किसी समस्या या कठिनाई की प्रेरणा से होता है।

(2) मस्तिष्क में सम्पूर्ण स्थिति की व्याख्या तथा समस्या का उद्घाटन होता है।

(3) विभिन्न सुझावों के आधार पर सम्भावित समाधानों का विवरण तैयार होता है।

(4) प्रत्येक समाधान को भली-भाँति समझकर सर्वश्रेष्ठ समाधान को प्रयोग के लिए प्रेषित या प्रस्तुत किया जाता है।

(5) पुनर्निरीक्षण, प्रयोग तथा परिणाम के अनुसार समाधान स्वीकृत अस्वीकृत कर दिया जाता है।

इस प्रकार चिन्तन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है जो किसी समस्या के उत्पन्न होने के समय आरम्भ होती है और समस्या के समाधान के अन्त तक चलती रहती है। इस प्रकार समस्या के समाधान में उपर्युक्त सोपान सहायक होते हैं।

शिक्षा में इसे ध्यान में रखकर ही ज्ञानार्जन पर बल देना चाहिए।

चिन्तन-प्रक्रिया प्रमुख रूप से प्राय: दो स्तरों पर सम्भव होती है। पहला स्तर है– प्रत्यक्षात्मक जिसकी परिभाषा **रॉस** महोदय ने इस प्रकार दी है– "इन्द्रियों के साथ उपस्थित रहने वाली तथा उनको प्रभावित करने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में मानसिक क्रिया।" इसमें विचार इन्द्रिय संवेदनाओं द्वारा मस्तिष्क में पहुँचता है। संवेदना प्रत्यक्षात्मक विचार

नोट

करने का वस्तुगत रूप है। प्रत्यक्षीकरण एवं संवेदन का वर्णन गत अध्याय में किया जा चुका है। दूसरा स्तर है **प्रत्यात्मक**। इसे समझने के लिए प्रत्यात्मक प्रक्रिया (Conceptual process) तथा चिन्तन के साधनों पर ध्यान देना होगा। इनका उल्लेख आगे किया जा रहा है।

चिन्तन की कला (The Art of Thinking)– जैसा कि उपर्युक्त उदाहरण में स्पष्ट किया जा चुका है कि शब्द वर्ग पहेली का हल ढूँढ़ निकालने में मस्तिष्क में काफी विचार-मंथन होता है और इस प्रकार व्यक्ति को अन्तर्दशन (Introspection) के अभ्यास का अवसर मिलता है जिसके परिणामस्वरूप वह चिन्तन प्रक्रिया में निम्न सोपानों को ढूँढ़ निकालने की स्थिति में है। मनोवैज्ञानिक **ह्यूजेस** (Hughes) ने इन सोपानों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

(1) समस्या का सही आकलन (Appreciation of a problem)

(2) समस्या से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन (Collection of adequate relevants data)

(3) निष्कर्ष पर पहुँचना (Arriving at a conclusion)

(4) निष्कर्ष का परीक्षण (Testing the conclusion)

उपर्युक्त सोपानों की सहायता से बालक को चिन्तन-प्रक्रिया के विकास में सहायता दी जा सकती है। इन सोपानों को इस प्रकार समझाया गया है–

(1) समस्या का सही आकलन: समस्या का उत्पन्न होना व्यक्ति के अनुभव व क्रियाओं के परिणामस्वरूप होता है या जिसे वह सार्थक समझता है। बालक भी किसी समस्या का आकलन इसी प्रकार करता है। प्रारम्भ में उसकी समस्याएँ मूर्त वस्तुओं से सम्बन्धित होती हैं, शब्दों या अमूर्त विचारों से नहीं होतीं। उदाहरणार्थ एक बालक नल के पास पानी से खेल रहा है। वह नल से पानी आता देखता है। अब वह मन में या बोलकर प्रश्न करता है कि पानी कहाँ से आ रहा है? उसके लिए यह एक समस्या जो किसी उसकी जिज्ञासा को बढ़ाती है। इस समस्या के समाधान के लिए वह किसी से सहायता ले सकता है, किन्तु वह इस पर स्वयं विचार करने लगता है। जब कोई उसे पानी किस प्रकार आ रहा है, नल बन्द करके, खोलकर समझाना आरम्भ करता है, तब वह सब बातें समझने का प्रयत्न करता है और अब वह सोचना आरम्भ करता है। अत: बालक के सामने समस्याएँ इस प्रकार प्रस्तुत की जाएँ जिसमें वह वास्तव में रुचि ले और उसमें जिज्ञासा उत्पन्न हो और वह समस्या विचार करने के लिए उद्दीपन का कार्य करे। जैसे-जैसे उसका शारीरिक और मानसिक विकास होता है मूर्त वस्तुओं के बिना भी वह सोचने-विचारने का प्रयास करता है। इस समय शब्द अर्थपूर्ण हो जाते हैं और किसी परिस्थिति विशेष की कल्पना की जा सकती है। अत: शिक्षकों को चाहिए कि वे शब्दों से सम्बन्धित विषय-वस्तु का चुनाव बुद्धिमत्तापूर्वक करके बालक के चिन्तन के लिए समस्या प्रस्तुत करें।

(2) समस्या से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन: समस्या को समझ लेने के बाद हम उन तथ्यों का संकलन करना आरम्भ करते हैं जिनकी सहायता से उसका समाधान प्राप्त हो सकेगा। विभिन्न सुझाव जो मष्तिष्क में आयेंगे वे हमारे प्रयोजन से नियंत्रित रहेंगे। तथ्यों का संकलन स्मृति द्वारा, अध्ययन द्वारा, निरीक्षण द्वारा या प्रश्नों द्वारा हो सकता है। यहाँ शिक्षक को यह देखना है कि छात्र ने समस्या को अच्छी तरह ग्रहण (Grasp) कर लिया है और फिर आवश्यक तथ्यों के संकलन के लिए स्मृति को जाग्रत करने के लिए प्रेरणा देना, पूर्वार्जित ज्ञान, को दोहराने के लिए कहना, अच्छी पुस्तकें पढ़ने का सुझाव देना शिक्षक का कर्त्तव्य है। स्मरण किये हुए तथ्य ही चिन्तन-क्रिया की प्रमुख सामग्री हैं। यहाँ शिक्षा में 'योजना पद्धति' (Project Method) का उदाहरण दिया जा सकता है। इस पद्धति में कार्य की एक उद्देश्यपूर्ण योजना होती है। बालक अपनी रुचि के अनुसार कोई कार्य चुनता है। उस कार्य का एक उद्देश्य होता है। उद्देश्य पूरा करने के लिए उसके सामने समस्या प्रस्तुत की जाती है। इस समस्या का समाधान करने के लिए वह सक्रिय रहकर रुचिपूर्वक प्रयत्न करता है और इस प्रकार विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त करता है। जब

नोट

बालक के सामने कोई समस्या रहती है तो वे सूचनाएँ एकत्र करने के लिए विचार मग्न रहते हैं और वे ज्ञान के एक विषय-वस्तु (item) का दूसरे से सम्बन्ध देखने का प्रयास करते हैं।

(3) निष्कर्ष पर पहुँचना: तथ्यों का संकलन करने के बाद उनका क्रमानुसार व्यवस्थित ढंग से लेखा तैयार करने की विधि शिक्षक को बतानी चाहिए। इसकी सहायता से एक विषय-वस्तु की तुलना दूसरे से की जा सकती है और निष्कर्ष पर पहुँचने में सहायता मिलती है। उदाहरणार्थ विज्ञान सम्बन्धी कोई योजना में अन्वेषण सम्बन्धी कार्य और समस्याएँ प्रस्तुत की जाती हैं, जैसे-दैनिक जीवन में उपयोग में आने वाली वस्तुओं के भौतिक और रासायनिक पदार्थों का विश्लेषण करना, बाग में विभिन्न वनस्पतियों का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करना। बीज के अंकुरित होने में कौन-सी दशाएँ आवश्यक हैं? इस प्रयोग में पानी, हवा, रोशनी, ताप आदि कारकों का प्रभाव देखा जाता है और फिर विचारपूर्वक निरीक्षण करते हुए तथ्यों का संकलन करने के बाद एक निष्कर्ष निकाल लिया जाता है। इस प्रकार बालक अपनी रुचि और प्रयत्न द्वारा सीखते हैं और अपने अनुभवों से लाभ उठाते हैं।

(4) निष्कर्ष का परीक्षण: विचार-प्रक्रिया के परिणामों का परीक्षण भी आवश्यक होता है। वे परिणाम पूर्व स्थापित सत्यों के प्रतिकूल नहीं होने चाहिए। यदि इसमें कोई भूल हो रही हो तो शिक्षक के निष्कर्ष परीक्षण के लिए उचित निर्देशन एवं संकलित तथ्यों का पुन: निरीक्षण करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। पुनर्निरीक्षण, प्रयोग तथा परिणाम के अनुसार ही समाधान स्वीकृत या अस्वीकृत कर दिये जाते हैं।

31.2 चिन्तन के प्रकार (Types of Thinking)

मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन के निम्नलिखित प्रकार बताये हैं–

(1) प्रत्यक्षात्मक चिन्तन (Perceptual Thinking)– इस प्रकार का चिन्तन पशुओं और छोटे बालकों में पाया जाता है। इस प्रकार के चिन्तन का मुख्य आधार प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। इसमें संवेदना और प्रत्यक्षीकरण कार्य करते हैं। व्यक्ति किसी वस्तु या परिस्थिति को देखकर चिन्तन करता है। इसमें किसी प्रकार के शब्द या नाम का प्रयोग नहीं किया जाता। इस प्रकार का चिन्तन पूर्व अनुभवों पर आधारित होता है। उदाहरणार्थ, एक बार आग से जला हुआ बालक पुन: जब आग देखता है तब भयभीत हो जाता है। इसी प्रकार बालक जब कक्षा में गृह कार्य नहीं करके ले आता तो उसे दण्ड मिलने का भय होता है, उसके भयभीत होने में चिन्तन आ जाता है। यह चिन्तन प्रारम्भिक कोटि का कहा गया है।

(2) कल्पनात्मक चिन्तन (Imaginative Thinking)– इस प्रकार के चिन्तन में कोई वस्तु या परिस्थिति प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित नहीं रहती। इसमें प्रत्यक्ष का अभाव होता है। इसमें स्मृति के सहारे पूर्व अनुभवों का प्रयोग किया जाता है और मानसिक प्रतिमाओं के माध्यम से चिन्तन होता है। इसमें प्रत्यक्ष वस्तुओं के न रहने पर भी प्रयत्नों के सहारे उन वस्तुओं की कल्पना की जाती है। उदाहरणार्थ नित्य शाम को घर लौटने पर पिता बालक के लिए कोई-न-कोई खाने की वस्तु लेकर आता है इसलिए बालक शाम होते ही पिता की प्रतीक्षा और वस्तु की प्राप्ति हेतु चिन्तन करने लगता है। यह कल्पनात्मक चिन्तन है।

(3) प्रत्ययात्मक चिन्तन (Conceptual Thinking)– यह चिन्तन का सर्वोच्च रूप है। प्रत्ययात्मक चिन्तन में पूर्व निर्मित का प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम विचार केन्द्रिय प्रत्यक्ष (Sense Perception) से बंधे होते हैं। धीरे-धीरे ये प्रत्यक्षीकृत तथ्यों से हटकर प्रत्ययों पर पहुँच जाते हैं और व्यक्ति पूर्व अनुभवों के आधार पर किसी वस्तु या स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण करके, भविष्य को दृष्टि में रखते हुए प्रत्ययों की सहायता से किसी निश्चय पर पहुँचता है। प्रत्ययात्मक चिन्तन में भाषा ज्ञान आवश्यक है। प्रत्ययात्मक चिन्तन के स्वरूप को समझने के लिए 'प्रत्यय ज्ञान' को भी समझना आवश्यक है।

नोट

(4) तार्किक चिन्तन (Logical Thinking)– यह सर्वोत्कृष्ट चिन्तन है। **डीवी** ने इसे 'विचारात्मक चिन्तन' (Refletive Thinking) कहा है। चिंतन की जटिल प्रक्रिया को समझने के लिए प्रत्यय निर्माण, तर्क तथा समस्या समाधान के विषय में अध्ययन करना आवश्यक है।

31.3 चिन्तन के साधन (Tools of Thinking)

प्राय: किसी समस्या पर विचार करने में कुछ कठिनाई उपस्थित हो जाती है जैसे विभिन्न उद्दीपनों के कारण ध्यान बँट जाना या बहुत से विचारों में भटक जाना आदि। इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के लिए कुछ उपकरणों का आश्रय लेना पड़ता है जिन्हें चिन्तन के प्रमुख साधन कहा जाता है। चिन्तन के कुछ प्रमुख साधन निम्नलिखित हैं–

(1) प्रतिमा (Image)– व्यक्ति अपने व्यावहारिक जीवन में जिन वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण करता है उनकी प्रतिमाएँ उसके मस्तिष्क में बन जाती हैं। **ड्रेवर** महोदय के अनुसार, "प्रतिमा किसी वस्तु या वस्तुओं की अनुपस्थिति में, जिन्होंने आरम्भ में हमारे एन्द्रिय बोध या प्रत्यय (Sense Perception) को निश्चय किया था, किसी वस्तु या वस्तुओं का ज्ञान है।" भिन्न-भिन्न संवेदनाओं से संबंधित भिन्न-भिन्न प्रतिमाएँ व्यक्ति के मस्तिष्क में बनती हैं, जैसे– स्पर्श, दृष्टि, श्रवण, घ्राण (सूँघना) एवं स्वाद सम्बन्धी संवेदनाओं की प्रतिमायें। साधारणतया इनमें से दृष्टि प्रतिमा प्रधान मानी जाती है। कल्पनात्मक चिन्तन में हम मनोमूलक वस्तु की प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न स्तरों में भेद कर सकते हैं जिसका सरल रूप प्रारम्भिक स्मृति प्रतिमा है। **रॉस** ने कहा है - "प्रारम्भिक स्मृति प्रतिमाएँ वास्तविक ऐन्द्रिय बोध के स्थानापन्न (Substitute) समझी जा सकती हैं।" उदाहरणार्थ जब मैं एक पुस्तक देखता हूँ तो मनोमूलक वस्तु एक संवेदना है, परन्तु यदि मैं आँख बंद कर लेता हूँ, तो उसे फिर देख सकता हूँ और अब मनोमूलक एक दृष्टिक प्रतिमा (Visual) है। प्रतिमा के आवश्यक लक्षणों में से एक यह है कि उसकी अनुभूति इस प्रकार की जाए मानो वह इन्द्रियों के लिए उपस्थिति नहीं है। ये प्रतिमाएँ चिन्तन का साधन कही गयी हैं। प्रतिमा के विषय में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि चिन्तन में उनका क्या योग रहता है? क्या वे चिन्तन में मध्यस्थ प्रक्रियाएँ हैं? कुछ विद्वानों ने इसका समर्थन किया और कुछ ने इसका विरोध किया। इस प्रश्न का वैज्ञानिक उत्तर देने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन में प्रतिमा के महत्त्व पर गम्भीर प्रयोग किये हैं।

(2) संकेत (Symbols and Signs)– चिन्तन के साधन के रूप में संकेत या प्रतीक भी सहायक होते हैं। ये चित्र, शब्द या वस्तुओं के माध्यम से प्रस्तुत किये जाते हैं। संकेत वह उद्दीपन है जो किसी अनुपस्थित वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है। जैसे ट्रैफिक के चौराहे पर लाल या हरी बत्ती का संकेत देखने पर हम उस पर बिल्कुल भिन्न दृष्टिकोण से विचार करते हैं।

मनोवैज्ञानिक वुडवर्थ ने चिन्तन में संकेत-साधन को इस उदाहरण से स्पष्ट किया है– "यदि आप किसी को यह समझा रहे हैं कि किस प्रकार आप की मोटरकार दूसरी कार से टकरा गयी, तब आप उसे समझाने के लिए कहते हैं– यह एक सड़क है और यहाँ दूसरी सड़क है, और मान लो यह पुस्तक मेरी कार है और दूसरी पुस्तक दूसरी कार है ....." यहाँ पर अनुपस्थित वस्तु के लिए दो प्रकार के संकेतों के चित्रों और शब्दों का प्रयोग किया गया। पुस्तक और बताया हुआ स्थान सड़कों के रूप में स्थिति का चित्र, उपस्थित कर देते हैं और ये शब्द 'मेरी कार और दूसरी कार' मौखिक संकेत हैं जो कि एक अनुपस्थित वस्तु को दूसरी से पृथक् बताते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि शब्द और चित्र चिन्तन के साधन हैं।

(3) भाषा (Language)– भाषा चिन्तन का प्रमुख साधन है। भाषा की सहायता से ही हम प्रतिमा और प्रत्यय में सम्बन्ध स्थापित करते हैं। भाषा के माध्यम से ही व्यक्ति अपने विचारों को व्यक्त करने में, समर्थ हो पाता है। भाषा का प्रत्येक शब्द किसी-न-किसी प्रतिमा या प्रत्यय का निश्चित बोध-चिह्न है। जिस व्यक्ति का भाषा-ज्ञान

नोट

जितना अधिक होगा उतना ही अधिक वह विचार करने में सफल हो सकता है। भाषा और चिन्तन पर आगे विस्तार से वर्णन किया गया है।

(4) प्रत्यय (Concept)– प्रत्यय चिन्तन का महत्त्वपूर्ण आधार है। प्रत्यय को संकल्पना भी कहते हैं। सामान्य प्रत्ययों के निर्माण में मस्तिष्क व्यक्तिगत प्रतिमाओं में निहित विशिष्ट गुणों को निकाल कर उनमें जो सामान्य गुण निहित होता है, उसको मिला देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्यय के निर्माण में सामान्यीकरण और पृथक्करण का बहुत महत्त्व है। प्रत्यय के स्वरूप एवं प्रत्यय-निर्माण का विस्तृत विवेचन आगे किया जा रहा है।

31.4 भाषा और चिन्तन (Language and Thinking)

भाषा द्वारा ही प्रत्यय की रचना होती है। भाषा चिन्तन का महत्त्वपूर्ण साधन है। व्यक्ति भाषा के द्वारा विचार करता है। भाषा, चिन्तन को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने का माध्यम है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन को आन्तरिक सम्भाषण (Inner Speech) कहा है। जिस व्यक्ति के पास भाषा-शक्ति या शब्द-भण्डार अधिक होता है, वह अपने विचारों को सरलता और स्पष्टता से व्यक्त कर सकता है। भाषा शाब्दिक या सांकेतिक हो सकती है। प्राय: लोग किसी कठिन समस्या पर विचार करते हुए स्वागत वार्तालाप करते हैं या हाथ या मुख-मुद्रा से हाव-भाव प्रकट करते हुए मौन या आन्तरिक सम्भाषण में लीन दिखाई देते हैं।

इससे ज्ञात होता है कि चिन्तन में भाषा का प्रयोग किसी-न-किसी रूप में किया जाता है। भाषा द्वारा ही चिन्तन के विभिन्न रूपों को समन्वित किया जा सकता है। भाषा एक प्रकार का प्रतीक (Symbol) है, जिसके सहारे व्यक्ति अपने भावों और विचारों को प्रकट कर सकता है। चिन्तन या विचार को व्यक्ति मस्तिष्क में विद्यमान उपयुक्त शब्दों में अभिव्यक्त करता है। **वैलेन्टाइन** ने भाषा और चिन्तन के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार व्ययक्त किये हैं– "भाषा प्रत्ययों के निर्माण में सहायक होती है। एक शब्द अर्थ के लिए केन्द्र भाव बनता है– चाहे वह शब्द प्रतिमा के रूप में विकसित हो या प्रस्तावित कार्य या विचार साहचर्य के रूप में हो।" उदाहरणार्थ बालक के सामने जब हम पुस्तक, कापी या कलम शब्द का उच्चारण अलग-अलग करते हैं तो वह इन शब्दों का अर्थ समझ लेता है, यद्यपि ये वस्तुएँ उसे दिखाई नहीं जाती हैं। पुस्तक शब्द की प्रतिमा उसके सामने रहती है और पुस्तक का प्रत्यय भी उसे ठीक से होता है। 'पुस्तक' सुनते ही वह विचार कर लेता है कि पुस्तक में छपे पन्ने होते हैं और यह पढ़ने के काम आती है। इस प्रकार के विचारने में भाषा ही सहयोग देती है। यहाँ किताब 'शब्द' किताब-वस्तु के लिए प्रतीक का काम करता है और चिन्तन-क्रिया में प्रतीकों की सहायता ली जाती है। अत: हम यह कह सकते हैं कि चिन्तन और भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध है और बिना भाषा के चिन्तन सम्भव नहीं है। किन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि चिन्तन भाषा के बिना भी हो सकता है। प्राय: ऐसे अवसर भी आते हैं, जब हम बिना भाषा का प्रयोग किये भी सोचते हैं। कभी-कभी किसी विचार को व्यक्त करने के लिए हम उपयुक्त शब्दों को नहीं ढूँढ पाते।

किन्तु यह सर्वमान्य है कि चिन्तन में भाषा का बहुत महत्त्व है। इस तथ्य के अनुसार चिन्तन में भाषा के निम्नांकित कार्य हैं–

1. भाषा द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति होती है।
2. भाषा विचार-विनिमय का साधन है, " भाषा द्वारा ही विचार दूसरों पर प्रकट किये जा सकते हैं।"
3. भाषा विचार की सहायक है।
4. प्रत्ययों का निर्माण भाषा-विकास पर आधारित है।
5. प्रत्यात्मक चिन्तन में भाषा का अधिक महत्त्व है। प्रत्यय-निर्माण की अन्तिम मानसिक क्रिया में हम शब्द या भाषा के प्रयोग द्वारा ही सामान्य प्रत्यय का नामकरण करते हैं।

नोट

6. भाषा स्मरण करने मे सहायता करती है।
7. भाषा चिन्तन की बचत का साधन है। भाषा के प्रयोग से विचार करने की कम आवश्यकता पड़ती है। विस्तृत विचारों को हम कम शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं।
8. भाषा द्वारा ही चिन्तन में विस्तार किया जा सकता है।
9. भाषा विचारों की ओर ध्यान केन्द्रित करने में सहायता करती है। अनवधान की स्थिति में चिन्तन क्रिया में आन्तरिक सम्भाषण सहयोग देता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रत्यय और भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध है और चिन्तन के विकास में प्रत्यय और भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये दोनों चिन्तन के प्रमुख साधन हैं।

31.5 चिन्तन और शिक्षा (Thinking and Education)

शिक्षा के क्षेत्र में चिन्तन का अत्यधिक महत्त्व है। यह व्यक्ति की महत्त्वपूर्ण मानसिक क्रिया है। बौद्धिक विकास में चिन्तन का सर्वोच्च स्थान है। शिक्षा की क्रिया को भली-भाँति संचालित करने के लिए चिन्तन-शक्ति का विकास करना अत्यन्त आवश्यक है। बालक की चिन्तन-शक्ति को विकसित करने के लिए शिक्षक को निम्नलिखित उपायों का प्रयोग करना चाहिए–

(1) प्रत्यक्षीकरण और अनुभव के विकास पर ध्यान देना– चिन्तन-क्रिया में प्रत्यक्ष ज्ञान और स्थूल पदार्थों के अनुभव का बहुत महत्त्व है। अत: शिक्षकों को चाहिए कि वे बालक के सामने इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न करके निरीक्षण के लिए पार्याप्त अवसर प्रदान करें जिससे बालक निजी अनुभव के आधार पर सामान्य प्रत्यय बना सके।

(2) प्रत्यय-निर्माण में सहायता– शिक्षक को वैज्ञानिक ढंग से प्रत्यय-निर्माण में सहायता करनी चाहिए। प्रत्यय प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर आधारित होते हैं। अत: उन्हें विविध प्रकार का अनुभव प्राप्त करने की सुविधा देनी चाहिए। अध्यापक को प्रत्येक विषय का पूर्ण और स्पष्ट ज्ञान देना चाहिए। प्रत्यय-ज्ञान के सहारे ही चिन्तन शक्ति का विकास होता है।

(3) भाषा-विकास पर ध्यान देना– भाषा को चिन्तन की आधारशिला कहा गया है। चिन्तन को स्पष्ट रीति से भाषा द्वारा ही व्यक्त किया जा सकता है। भाषा और विचार का घनिष्ठ सम्बन्ध है। पूर्व अनुभवों की स्मृति के लिए उपयुक्त शब्दावली की आवश्यकता होती है। अत: बालकों के शब्द-भण्डार को बढ़ाने तथा भाषा-विकास के लिए सरस, रोचक और उपयुक्त शिक्षण-विधि का प्रयोग करना चाहिए।

(4) रटने की आदत दूर करना– शिक्षकों को चाहिए कि वे बालकों में बिना समझे रटने की आदत न पड़ने दें, बल्कि विषय को समझ कर याद करने के लिए प्रोत्साहित करें। प्राय: बालक व्याकरण, विज्ञान, गणित आदि विषयों में परिभाषाएँ रट लेते हैं और शिक्षक भी परिभाषाएँ तत्सम्बन्धी अनुभव होने के पूर्व ही रटा देते हैं। इस प्रकार प्राप्त किया ज्ञान स्पष्ट नहीं होता, बालक बिना चिन्तन या विचार किए हुए इस ज्ञान का यंत्रवत् प्रयोग करते हैं। बालक के सामने बहुत से उदाहरण प्रस्तुत करके सामान्य नियम की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहिए, ताकि वे परिभाषा की रचना स्वयं कर सकें। यह विधि चिन्तन-विकास में सहायक होती है।

(5) जिज्ञासा को जाग्रत करना– शिक्षक को बालक के सामने इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी चाहिए जिससे उनमें विषय के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हो और वे विषय को आत्मसात् करने के लिए चिन्तन कर सकें।

(6) ध्यान और रुचि का विकास करना– चिन्तन के लिए ध्यान और रुचि का होना बहुत आवश्यक है। जिस विषय में रुचि नहीं होती उसमें ध्यान नहीं लगता। अत: शिक्षक को चाहिए कि वह स्वाभाविक चिन्तन के लिए ध्यान और रुचि को उपयुक्त शिक्षण-विधि द्वारा जाग्रत रखे।

नोट

(7) प्रेरणा प्रदान करना– चिन्तन के लिए प्रेरणा की आवश्यकता होती है। किसी प्रेरणा से प्रेरित होकर ही किसी समस्या को सुलझाने के लिए चिन्तन किया जाता है। अत: बालक को ज्ञान-प्राप्ति तथा समस्या-समाधान के लिए उचित प्रेरणा प्रदान करनी चाहिए।

(8) तर्क एवं वाद-विवाद के लिए अवसर देना– शिक्षक को शिक्षा में पाठ्य-विषय से सम्बन्धित तथा पाठ्य-विषयान्तर क्रियाओं के माध्यम से तर्क और वाद-विवाद के लिए अवसर प्रदान करना चाहिए जैसे– सामूहिक परिचर्चा, वाद-विवाद प्रतियोगिता आदि का आयोजन करना। इस प्रकार बालकों को पाठ्य-विषय तथा अन्य सामान्य ज्ञान सम्बन्धित विषयों पर चिन्तन करने का अवसर मिलता है।

(9) उत्तरदायित्व सौंपना– बालकों को उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपने चाहिए। इससे चिन्तन को स्वस्थ रूप में विकसित होने की प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलता है।

(10) विचार-अभिव्यक्ति के लिए स्वतंत्रता प्रदान करना– बालकों को अपने विचारों को व्यक्त करने की स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिए। उनकी स्वतंत्र क्रियाओं में अनुचित हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। **फ्रोबल** और **मॉन्टेसरी** ने बालक की आत्मभिव्यक्ति के लिए शिक्षा में आत्मक्रिया और स्वतंत्रता के सिद्धान्त का समर्थन किया है।

(11) अध्यापन-विधि पर ध्यान देना– अध्यापक को चिन्तन-शक्ति के विकास के लिए मनोवैज्ञानिक ढंग से उपयुक्त शिक्षण-विधियों की सहायता लेनी चाहिए। बालकों से विचारात्मक प्रश्न पूछे जाएँ और परीक्षा में सदा एक ही ढंग से प्रश्न पत्र न दिये जाएँ। उपयुक्त शिक्षण-विधि द्वारा चिन्तन-योग्यता में वृद्धि की जा सकती है।

31.6 तर्क तथा समस्या-समाधान (Reasoning and Problem-Solving)

तर्क चिन्तन का सर्वोत्कृष्ट रूप है। तर्क चिन्तन की एक प्रक्रिया है, जिसमें अर्जित प्रत्ययों का किसी परिस्थिति की व्याख्या तथा समाधान के लिए प्रयोग किया जाता है। मस्तिष्क में प्रत्ययों का संगठन जब व्यवस्थित रूप में होता है तब इनके सहारे किसी नवीन समस्या का समाधान किया जाता है। व्यक्ति को दैनिक जीवन में बहुत-सी समस्याओं का समाधान करना पड़ता है। परिस्थितियों के साथ समायोजन करने के लिए विभिन्न समस्याओं का सामना करना आवश्यक होता है। समस्या वह परिस्थिति है जिसके लिए व्यक्ति के पास पहले से तैयार कोई समाधान नहीं होता।

जब व्यक्ति के सामने कोई समस्या उत्पन्न होती है, तब उसे उसके विषय में खोज करने की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में तार्किक चिन्तन का उदय होता है। उदाहरणार्थ– "विद्यालय जाते समय मेरी कलम जो पढ़ने की मेज पर रखी थी नहीं मिलती। कलम मूल्यवान है अत: मेरे सामने कलम ढूँढने की समस्या उत्पन्न होती है और मैं इधर-उधर कलम ढूंढती हूँ और विचार करती हूँ कि कौन कलम ले गया? शायद नौकर कमरा साफ करने आया था या मेरी छोटी बहन जिसकी परीक्षा चल रही है लिखने के लिए ले गयी होगी। मुझे स्मरण हो जाता है कि कल वह कह रही थी कि उसकी कलम खराब हो गयी और परीक्षा में अच्छी कलम ले जाना चाहिए। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचती हूँ कि इस समय मैं विद्यालय जाने की जल्दी में हूँ, लौटकर आने पर छोटी बहन के पास कलम अवश्य मिल जायेगी। इस प्रकार वर्तमान समस्या का समाधान हो जाता है।" यह तर्क है। **वुडवर्थ** ने तर्क को मानसिक **'तर्क अनुसंधान'** (Mental Exploration) कहा है। सरल शब्दों में तर्क द्वारा वर्तमान परिस्थिति का निरीक्षण करके पूर्व अनुभवों या स्मृति सामग्री के आधार पर एक निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न किया जाता है।" निष्कर्ष निकालना तर्क का प्रमुख तत्व है। किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए सुसंगठित मानसिक प्रक्रिया और व्यवस्थित तार्किक चिन्तन-प्रक्रिया की आवश्यकता होती है। तर्क के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये विभिन्न विद्वानों ने निम्नलिखित परिभाषाएँ दी हैं–

(1) एन. एल. मन (N. L. Munn)– "तर्क एक समस्या को हल करने के लिए अतीत के अनुभवों को सम्मिलित रूप से मिलाना, जिसको केवल पिछले समाधानों के प्रयोग से हल नहीं किया जा सकता है।"

नोट

(Reasoning is combining past experiences in order to solve a problem which can-not be solved by mere reproduction of earlier solutions.)

(2) बर्नार्ड (Bernard)– "तर्क वह प्रक्रिया है जो प्रतिक्रिया को उस समय तक स्थगित रखती है, जब तक सम्बन्धित समस्या के आँकड़े एकत्र न हो जाएँ जिससे निर्धारित लक्ष्य स्पष्ट हो जाएँ।" (Reasoning is a process of delaying response until data are arranged into a new combination so that a clearly perceived goal can be reached.)

(3) गेट्स व अन्य (Gates and Others)– "तर्क फलदायक या उत्पादक चिन्तन है, जिसमें किसी समस्या का समाधान करने के लिए पूर्व अनुभवों को नवीन रूप और तरीकों से पुन: संगठित या सम्मिलित किया जाता है।" (Reasoning is productive thinking in which previous experiences are organised or combined in new ways, to solve a problem.)

31.7 तर्क के प्रकार (Types of Reasoning)

(1) आगमन तर्क (Inductive Reasoning)– इस प्रकार के तर्क में व्यक्ति अपने विभिन्न अनुभवों द्वारा संकलित तथ्यों या दृष्टांतों के आधार पर एक सामान्य नियम या सिद्धान्त की खोज करता है। इस प्रकार के तर्क में पहले से कोई नियम नहीं माना जाता। आगमन तर्क के तीन स्तर होते हैं– (1) निरीक्षण, (2) प्रयोग, और (3) सामान्यीकरण। इसमें सर्वप्रथम तथ्यों का निरीक्षण किया जाता है। निरीक्षण के बाद उनके सम्बन्ध में एक नियम की कल्पना की जाती है और नियम का प्रयोग करके सत्यता की जाँच की जाती है। प्रयोग के फलस्वरूप सामान्य नियम निर्धारित किया जाता है। आगमन तर्क का उदाहरण भाषा की शिक्षा में दिखाई देता है, जैसे अध्यापक को व्याकरण में संज्ञा की परिभाषा बतानी है। अध्यापक पहले ही संज्ञा की परिभाषा नहीं बताता। बालक को पहले कई वस्तु, व्यक्ति और स्थान आदि के नाम से परिचित कराया जाता है फिर प्रश्नों द्वारा बालक को इस निष्कर्ष पर पहुँचने में सहायता दी जाती है कि किसी वस्तु, व्यक्ति या स्थान के नाम को संज्ञा कहते हैं।

(2) निगमन तर्क (Deductive Reasoning)– इस प्रकार के तर्क में पूर्व निश्चित विचार या सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया जाता है और उसी के आधार पर किसी परिस्थिति या वस्तु विशेष की सत्यता प्रमाणित की जाती है। उदाहरणार्थ, सभी व्यक्ति मरणशील (Mortal) हैं। राम एक व्यक्ति है। अत: वह मरणशील है।

तर्क के उपर्युक्त प्रकारों के आधार **भाटिया** के शब्दों में कह सकते हैं– "आगमन विधि खोज और अनुसंधानों की विधि है और 'निगमन विधि' प्रयोग और प्रमाण की विधि है।

31.8 तार्किक चिन्तन का प्रशिक्षण (Training of Logical Thinking)

बालक की मानसिक शक्तियों का विकास तर्क एवं चिन्तन के माध्यम से ही होता है। अत: शिक्षा में चिन्तन-प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए तर्कशक्ति को विकसित करना आवश्यक है। बालक की तार्किक चिन्तन-शक्ति के लिए निम्नांकित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए–

(1) उपयुक्त समस्या को उपस्थित करना– तार्किक चिन्तन के लिए बालक के सामने उसके पूर्व अनुभव, बौद्धिक एवं शैक्षिक स्तर को ध्यान में रखकर, अपेक्षित समस्या को प्रस्तुत करना चाहिए।

(2) एकाग्रता, संलग्नता और अन्वेषण प्रवृत्ति का विकास– शिक्षक को इन प्रवृत्तियों के विकास के लिए पूर्ण अवसर देना चाहिए। इनके अभाव में तार्किक चिन्तन नहीं हो सकता।

(3) व्यावहारिक समस्याएँ प्रस्तुत करना– बालकों के सामने जो भी समस्या प्रस्तुत की जाय, वह उनके वर्तमान व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित हों तथा उपयोगी हों।

नोट

(4) उपयुक्त शिक्षण-विधियों का प्रयोग– तार्किक चिन्तन-शक्ति के विकास में समस्या-मूलक विधियों जैसे– प्रोजेक्ट-विधि, प्रश्नोत्तर-विधि का प्रयोग तथा भाषण प्रतियोगिता, वाद-विवाद प्रतियोगिता, विचार-विमर्श गोष्ठियाँ बहुत सहायक होती हैं। इनमें तर्क-शक्ति का प्रयोग होता है तथा कल्पना शक्ति एवं प्रत्ययात्मक चिन्तन के विकास के लिए पूर्ण अवसर मिलता है।

(5) नवीनता का सिद्धान्त– बालकों में किसी समस्या के प्रति रुचि जाग्रत करने के लिए नवीन समस्याओं को प्रस्तुत करना चहिए। उन्हें सवयं 'करके सीखने' तथा 'अनुभव द्वारा सीखने' के लिए प्रोत्साहन एवं अवसर प्रदान करना चाहिए।

(6) विषयों का गहन अध्ययन– अवस्था एवं आवश्यकतानुसार बालकों को सम्बन्धित विषयों का गहन अध्ययन करने के लिये प्रेरित करना चाहिए। इससे तार्किक चिन्तन के विकास में सहायता मिलती है।

(7) आगमन विधि का प्रयोग– शिक्षक को पाठ्यविषयों के शिक्षण में आगमन विधि का प्रयोग करना चाहिए। शिक्षक को स्वयं ही पहले किसी समस्या का समाधान नहीं प्रस्तुत करना चाहिए, वरन् बालकों से ही समाधान करना चाहिए। इस विधि से तार्किक चिन्तन का अधिकतम विकास होता है।

(8) तर्क एवं समस्या-समाधान की वैज्ञानिक विधि का प्रयोग– शिक्षक को तर्क की वैज्ञानिक विधियों का ज्ञान प्रदान करना चाहिए। इस विधि से बालक स्वयं किसी समस्या का अध्ययन करके एक नियम या निष्कर्ष निकालने में समर्थ हो जाते हैं।

स्वमूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान की पूर्ति करें–

1. मनुष्य विचारात्मक स्तर पर ..... क्रिया को संपन्न करता है।
2. चिंतन के संबंध में रॉस का कथन है कि चिंतन मानसिक क्रिया का ..... पहलू है।
3. ..... चिंतन का महत्त्वपूर्ण साधन है।
4. तर्क ..... का सर्वोत्कृष्ट रूप है।

31.9 समस्या-समाधान का अर्थ (Meaning of Problem-Solving)

समस्या-समाधान तर्क का एक आवश्यक अंग है। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि तर्क का लक्ष्य किसी समस्या का समाधान करना ही होता है। समस्या-समाधान का अर्थ **स्टेनले ग्रे** ने इस प्रकार किया है– "समस्या-समाधान वह ढाँचा या प्रतिमान (Pattern) है जिसमें तार्किक चिन्तन निहित है।" **स्किनर** के अनुसार, "समस्या-समाधान किसी लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक प्रतीत होती कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की प्रक्रिया है।" (Problem solving is a process of overcoming difficulties that appear to interfere with the attainment of a goal.)

डीवी ने चिन्तन-प्रक्रिया में पाँच तार्किक स्थितियों का वर्णन किया है और तर्क को तार्किक चिन्तन कहा है। इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। तार्किक चिन्तन द्वारा ही समस्या का समाधान होता है।

31.10 समस्या-समाधान की विधियाँ (Methods of Problem Solving)

समस्या-समाधान की निम्नांकित विधियाँ हैं–

(1) बिना सीखे एवं आदतजन्य व्यवहार द्वारा समस्या का हल– निम्न कोटि के प्राणी अपनी समस्याओं के समाधान करने के लिए इसी विधि का प्रयोग करते हैं। उदाहरणार्थ सर्प और मधुमक्खी अपने जीवन रक्षार्थ सदा काटने या डंक मारने को तैयार रहते हैं।

नोट

(2) प्रयास एवं त्रुटि विधि– इस सम्बन्ध में थार्नडाइक ने एक बिल्ली पर प्रयोग किया और इस बात की पुष्टि की है कि पशु प्रयास एवं त्रुटि द्वारा समस्या का समाधान करते हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी जब किसी समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करता है तो मानसिक रूप से चिन्तन में प्रयास और त्रुटि की क्रिया चलती रहती है जो कि समस्या से सम्बन्धित होती है जिनमें से कोई एक समाधान उसकी समस्या को सुलझा देता है।

(3) अन्तर्दृष्टि या सूझ विधि– इस विधि द्वारा भी समस्या का समाधान किया जाता है। इस सम्बन्ध में कोहलर द्वारा वनमानुषों पर किया गया प्रयोग उल्लेखनीय है।

(4) वैज्ञानिक विधि– आज प्रत्येक क्षेत्र में समस्या-समाधान करने के लिए वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया जाता है। इसमें आरम्भ से अन्त तक व्यवस्थित ढंग से कार्य किया जाता है। इसमें सर्वप्रथम समस्या से सम्बन्धित तथ्यों को वास्तविक निरीक्षण द्वारा एकत्रित किया जाता है, इसके बाद एकत्रित तथ्यों को उनकी समानता के आधार पर वर्गीकरण करके व्यवस्थित किया जाता है और अन्त में उनका विश्लेषण करके एक निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि शिक्षा में समस्या-समाधान के लिए तार्किक चिन्तन के प्रशिक्षण पर ध्यान देना चाहिए। शिक्षक को समस्या-समाधान की वैज्ञानिक विधि में पूर्ण रूप से प्रशिक्षित होना चाहिए और इनका प्रयोग सभी विषयों और स्तरों पर आवश्यकतानुसार करना चाहिए।

31.11 सारांश (Summary)

- विश्व की प्रगति में मानव की चिन्तन-प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण योगदान है। चिन्तन-शक्ति के कारण ही मनुष्य सभी प्राणियों में श्रेष्ठ माना जाता है। वह स्वभावत: चिन्तनशील होता है। यह शक्ति उसे प्रकृति द्वारा प्राप्त होती है। मनोविज्ञान के अनुसार चिन्तन एक मानसिक प्रक्रिया है जिसमें संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, ध्यान, स्मृति और कल्पना आदि प्रक्रियाओं का समावेश होता है।
- वह प्रक्रिया जिसमें हम अतीत के अनुभवों के निष्कर्षों का प्रयोग किसी नयी स्थिति का सामना करने के लिए और किसी समस्या का समाधान करने के लिए करते हैं, उस मानसिक प्रक्रिया को 'चिन्तन' कहा जाता है।
- चिन्तन एक ज्ञानात्मक प्रक्रिया (Cognitive Process) है। इसके अन्तर्गत प्रत्यक्षात्मक तथा प्रत्ययात्मक या कल्पनात्मक ज्ञान निहित है। दूसरे शब्दों में चिन्तन या विचार व्यक्ति की समस्त मानसिक प्रक्रियाओं में समाया रहता है। वह मानव मस्तिष्क की एक ऐसी प्रक्रिया है जो हमें पहले से ही किसी परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार कर देती है। व्यक्ति विचार-शक्ति के कारण ही किसी सम्भावित जीवनचर्या की क्रियाओं की कल्पना या उसका मानसिक चित्रण कर लेता है और उसी के अनुसार वह आने वाली परिस्थितियों से अनुकूलन स्थापित करने का प्रयास करता है। पशु वास्तविक रूप से प्रयास और त्रुटि द्वारा सीखते तथा समस्या का समाधान कर लेते हैं। किन्तु मनुष्य विचारात्मक स्तर (Ideational Level) पर 'प्रयास और भूल' क्रिया को सम्पन्न करता है। चिन्तन के समय प्रतीकों (Symboles) या भाषा के सहारे किसी समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया जाता है।
- मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन के निम्नलिखित प्रकार बताये हैं– प्रत्यक्षात्मक चिन्तन, कल्पनात्मक चिन्तन, प्रत्ययात्मक चिन्तन, तार्किक चिन्तन।
- शिक्षा के क्षेत्र में चिन्तन व्यक्ति की महत्त्वपूर्ण मानसिक क्रिया है। बौद्धिक विकास में चिन्तन का सर्वोच्च स्थान है। शिक्षा की क्रिया को भली-भाँति संचालित करने के लिए चिन्तन-शक्ति का विकास करना अत्यन्त आवश्यक है।

नोट

- तर्क चिन्तन का सर्वोत्कृष्ट रूप है। तर्क चिन्तन की एक प्रक्रिया है, जिसमें अर्जित प्रत्ययों का किसी परिस्थिति की व्याख्या तथा समाधान के लिए प्रयोग किया जाता है। जब व्यक्ति के सामने कोई समस्या उत्पन्न होती है, तब उसे उसके विषय में खोज करने की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में तार्किक चिन्तन का उदय होता है।
- निष्कर्ष निकालना तर्क का प्रमुख तत्व है। किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए सुसंगठित मानसिक प्रक्रिया और व्यवस्थित तार्किक चिन्तन-प्रक्रिया की आवश्यकता होती है।
- बालक की मानसिक शक्तियों का विकास तर्क एवं चिन्तन के माध्यम से ही होता है। अतः शिक्षा में चिन्तन-प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए तर्कशक्ति को विकसित करना आवश्यक है।

31.12 शब्दकोश (Keywords)

1. **प्रत्यय**–विचार, आवश्यकता, कारण, हेतु
2. **आगमन तर्क**–इस प्रकार के तर्क में सामान्य निष्कर्ष निकाला जाता है
3. **निगमन तर्क**–इस प्रकार के तर्क में अनुमान के लिए कम सामान्य से अधिक सामान्य का निष्कर्ष निकाला जाता है।

31.13 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. चिंतन से आप क्या समझते हैं? चिंतन का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
2. चिंतन के प्रकार समझाइए।
3. चिंतन के साधनों का उल्लेख कीजिए।
4. चिंतन के माध्यम के रूप में भाषा का महत्त्व समझाइए।
5. शिक्षा में चिंतन का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।
6. तर्क द्वारा समस्या समाधान की व्याख्या कीजिए।
7. समस्या समाधान की विधियों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. 'प्रयास और भूल' 2. ज्ञानात्मक 3. भाषा 4. चिंतन

31.14 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. बच्चों में शिक्षा का महत्त्व एवं जानकारियाँ–*सीमा चोपड़ा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।*
2. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.एच. सिन्हा और रचना शर्मा, अटलांटिक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।*
3. शिक्षा मनोविज्ञान–*एस.के. मंगल, पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि., नई दिल्ली।*
4. अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया–*ए. के. वर्मा, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली*

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY
Jalandhar-Delhi G.T. Road (NH-1)
Phagwara, Punjab (India)-144411
For Enquiry: +91-1824-300360
Fax.: +91-1824-506111
Email: odl@lpu.co.in